विराटपट दर्शन

प्रकाशक

श्री ५ नवतनपुरी धाम

जामनगर

॥ श्रीमन्निजानन्दो विजयते ॥

विराटपट–दर्शन

लेखक

सद्धर्मसिद्धान्तवागीश पं० श्रीकृष्णदत्तशर्म 'सूरि'

साहित्यायुर्वेदाचार्य

श्रीमन्निजानन्द–सम्प्रदायके आद्य–धर्मपीठाधीश्वर आचार्य

श्री १०८ धर्मदासजी महाराज 'धर्मभूषण'

की

आज्ञानुसार

—: प्रकाशक :—

श्री खीजडा मंदिर ट्रस्ट बोर्ड

श्री ५ नवतनपुरी धाम-जामनगर

श्रीविजयाभिनन्द बुद्धजी शाके ३०९

विक्रम सम्वत् २०४४

मकर संक्राति (जनवरी १९८८)

दूसरा संस्करण १००० प्रति

निछावर – ३०/–

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्रीः

समर्पणम्

तारतम्य-प्रदातारं तारतम्य फल-प्रदम् ।
निजधामावतीर्णं त्वां न शक्यं स्तोतुमप्यहो !

त्वत्प्रसादाल्लब्धं किल यत्किञ्चिन्नन्विदं मयि ।
त्वदीयं सर्वमेतद्धि कथं तुभ्यं समर्पये ॥

तथापि निजतोषार्थं सर्वं संगृह्य पावनम् ।
अर्पणं चास्य ग्रन्थस्य स्वीकारस्तु कृपा तव ॥

श्रीमन्निजानन्द प्रभो !

पावन इसे कर दीजिये, प्रभु परम् पावन दृष्टिसे ।
तो सृष्टि–व्यष्टि–समष्टिको, पावन करे निज पुष्टिसे ॥

आपका—अकिञ्चन
कृष्णदत्त वाजपेयी

Shri Prannath Ji Pustkalay

दो शब्द

पं० कृष्णदत्त शास्त्री विरचित "विराट पट दर्शन" प्रणामी साहित्य जगत की एक अनमोल निधि है। लेखक के जीवन कालमें ही इसका पहला संस्करण प्रकाशित हुआ था। उसके ५-७ वर्ष पश्चात् ही इसकी प्रतियां समाप्त हो गयी थीं, और चारों ओर से ग्रन्थ की मांग होने लगी थी। सुन्दरसाथकी इस मांग को ध्यान में रखते हुए, ग्रन्थ छपवाने की कोशिश की गयी, फिर भी "श्रेयांसि वहुविघ्नानि" के अनुसार विलम्ब हो गया। श्री राजजी की असीम अनुकम्पा से अव इसकी दूसरी आवृति छपकर आपके हाथ में आयी है। इसको अच्छी तरह से पठन–पाठन एवं मनन करके अपने अभीष्ट लक्ष्यको सही पहचानने की कोशिश करें।

सद्साहित्य मानव को मानवता तक पहुंचा सकता है। व्यक्ति और समाज को सुसाहित्य ही उन्नति के पथपर अग्रसर करता है। साधु, सन्त, उपदेशक गांव-गांव, घर-घर में नहीं पहुंच पाते, पर साहित्य देश, शहर, गांवके प्रत्येक घर-घर के कोने तक ही नहीं अपितु हर मानव के हृदयको झंकृत कर आलोक से भर देता है। इसलिए धार्मिक साहित्य का पठन – पाठन और मनन अत्यावश्यक है।

इस ग्रन्थमें पाताल से लेकर "अक्षरात्परतः परः" अक्षर ब्रह्म से भी पर अक्षरातीत ब्रह्म के दिव्य परमधाम पर्यन्त का विवेचन सरल भाषा में, शास्त्रीय प्रमाण सहित किया गया है। अतः सुन्दसाथ तथा पाठकवृन्द इस अनमोल सद्ग्रन्थ का जिज्ञासा पूर्वक अध्ययन करेंगे, इसी विश्वास के साथ—

आपका शुभचिन्तक

आचार्य महाराज श्री धर्मदास जी
श्री ५ नवतनपुरी धाम
जामनगर – ३६१००१

श्री प्राणनाथजी पुस्तकालय

Shri Prannath Ji Pustkalay

कृतज्ञता

सात लोक तले जिमीके, मृत्यु लोक है तिन पर ।
इन्द्र ब्रह्मा रुद्र बीचमें, ऊपर विस्नु वैकुण्ठ घर ।।
निराकार वैकुण्ठ पर, तिन पर अक्षर ब्रह्म ।
अक्षरातीत ब्रह्म तिन पर, यों कहे ईसे–का–इलम[1] ।।

उपरोक्त महामति प्राणनाथ की चौपाई को चरितार्थ (सिद्ध) करने की पूर्ण कोशिश लेखक महोदयने इस ग्रन्थमें की है। ऐसे तो विभूति स्वरूप महान आत्माओं की अलौकिक दिव्य वाणी का विवेचन कौन कर सकेगा ? फिर भी लेखक ने अपनी तपस्या के बल से एवं असाधारण विद्वत्ता के फलस्वरूप शास्त्रोक्त प्रमाण युक्त इस ग्रन्थ को रचना की है। यह ग्रन्थ प्रणामी साहित्य गगन का एक चमकता हुआ सितारा है। ऐसी महान् अमूल्य साहित्य निधि का द्वितीय संस्करण प्रकाशनार्थ सम्पादन कार्य प्रातः स्मरणीय पूज्य महाराज श्री १०८ धर्मदास जी ने मुझे सौंपा। इतने महान् कार्य को सम्हालने की क्षमता मुझ में नहीं थी, फिर भी आप श्री का ही दिव्याशीर्वाद से कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न कर पाया।

ग्रन्थ प्रकाशानार्थ हर वस्तु का पूर्ण सहयोग महाराज श्री राधिका दास जी भिवानी, से मिला और आप श्री के ही सान्निध्य में रहकर इसका प्रकाशन "महामति प्रिंटिङ्ग प्रेस"में किया गया। सम्पादन कार्य में डॉ० बुद्धि प्रकाश वाजपेयी, पीएच. डी. और श्री कृष्णमणि शास्त्री साहित्याचार्य जी ने अतुलनीय सहयोग प्रदान किया। इसकी पूर्ण सफलता का श्रेय उक्त महानुभावों का ही है। अतः तीनों महापुरुषों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। और श्री कृष्ण दास शास्त्री ने प्रूफ देखने में सक्रिय भाग लिया, वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

कितनी ही सावधानी पूर्वक प्रूफ देखने पर भी कई त्रुटियां रह जाती हैं। अतः पाठकवृन्द इन त्रुटियों के प्रति ध्यान न देकर इसकी विषय वस्तु की गरिमा को अवलोकन करने की कोशिश करेंगे। इसी आकांक्षा के साथ—

1 सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी का ज्ञान

प्रार्थी
अमृतराज शर्मा
श्री ५ नवतनपुरी धाम
जामनगर ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

विषय प्रवेश

विषय	पृष्ठ संख्या
श्लोक सूची	१
भूमिका	
अवतरण	१
अध्यात्मवाद	१०
अक्षरब्रह्म	२४
क्षरपुरुष	६१
ज्योतिः स्वरूप	१२५
महतत्त्व	१३२
आदिपुरुषका महाकारण स्वरूप	१३६
महाशून्य समष्टि	१३९
विभूति ब्रह्म–अक्षर	१४३
काल निरंजन	१५७
सात महाशून्य	२६१
अव्याकृतका महाकारण	१६४
अव्याकृतके निर्मल चेतन में रासलीला	१७८
नित्य गोलोक	१८५
केवलधाम	१९५
सत्स्वरूप	२००
परब्रह्मस्वरूप तथा परमधाम	२२०
मोक्षपर्व	२८७
मोक्ष–सिद्धि	३२९
माधुर्यभावसे मोक्ष	३६१
रामावतार तारतम्य	४००
प्रणामका आदर्श	४११

Shri Prannath Ji Pustkalay

विराटपट दर्शन के श्लोकों का सूचीपत्र

श्लोक	पृष्ठ संख्या	श्लोक	पृष्ठ संख्या
अ			
अनन्ताऽखण्ड	१	असंख्यामूर्त्तय	१४६
अपूज्या	६	अनादिरात्मा	१४६
अचिन्त्याः	१८–३८	अत्र कारण	१५१
अब्धिल	२१	अमात्रश्च	१५५
अथहैनं	२५	अमात्रो	१५५
अक्षरः परमात्मा	२६	अकारोब्रह्म	१५६
अक्षरं ध्रुवमेव	२८	अधिदैवमथा	१५८
अण्डकोशो	३०	अक्षरात्सं	१६०
अशब्द	३३	अथातो	१६५
अव्यक्ताद	३४	अन्धतमः	१७०
अहं कृत्स्नः	३४	अचिन्त्या	१७६
अव्यक्तोऽक्षर	३४	अशब्द	२०२
अथ खल्वियं	४८	अभाविनो	२०५
अद्वयं च	४६	अक्षरं ध्रुव	२२१
अथ कस्मा	२१	अस्मिन्ब्रह्म	२२८
अव्यक्तम क्षरे	५४	अथ कस्मादु	२३१
अव्याकृतगुण	५८	अथात आत्मा	२४२
अहो अमीषां	७५	अथ यदि	२५७
अत्र जन्म	७५	अस्मिन्	२६०
असुर्या	६५	अपर्हत	२६५
अनन्दा	६६	अमृता देवाः	२६८
अन्तराल	१००	अथात	२७३
अधःशिरोभिः	१०४	अण्डकोशो	२६६
अन्ये च	१०६	अध्यस्त	२६८
अस्य ब्रह्माण्डस्य	१२४	अभाव	३१७
असंख्या	१२६	अन्तः	३२१
अकारश्चाप्यु	१२७	अंशो—	३२२
अन्तःपरं	१३२	अज्ञान	३२३
अधिदैवमथा	१३२	अस्ति	३२४
अक्षरं ध्रुवमे	१४४	आरुरुक्षो	३२६
अपादग्रे	१४५	अनन्य	३३८–३८४
अबोधाद	१७–१५५	अविद्यायां	३४१
		आकाशात्प	३८६

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्लोक	पृष्ठ संख्या
अकामः	३४३
अलं	३४५
अभ्यासेन	३५५
अपिचेत्	३६३
अहोभाग्य	३६४
आदर्श प्रति	३६५
अमृतस्व	३६६
अनिर्वचनीयं	३६७
अन्तर्भवे	३६८
अनन्यशरणे	३८४
आनन्दंब्रह्मणो	३६८
आश्चर्यं	१६
आपोनारा	६२
आत्मसम्भा	६६
आसुरी	६६
आत्माद्वि	१४
आपातरम्या	२
आगमोत्थं	२४
अचिन्त्य	२६
आदि मध्यान्त	१३१
आनन्दरूपा	१८८–१६६
आत्मेत्येव	२२१
आप्ताः शिष्टा	२५३
आत्मानं	२५४
आत्मैव	२५६
आधार	२६६
आस्वलायनो	२८३
आत्मेत्येव	३०७

ए

श्लोक	पृष्ठ संख्या
एकस्यात्मनो	२७
एतस्माद	३२
एको देवः	४१
एको वशी	४१
एतस्य	५५
एतावानस्य	५७
एकमात्रो	५६
एतेषु	६७
एकैकशो	६७
एतद्देश	७७
एष नैमित्तिक	८७
एतद्देश	११
ऐन्द्रपुर्या	१०२
एतदण्डकटा	११६
एतदण्डविशे	११६
एतद्भगवतो	१२३
एतस्मिन्	१२७
एकादश्यां	१२६
एकमात्री	१५२
एतत्क्षरा	१५६
एवमेत	१७१
एवमेतद्विष्णो	१७७
एकदा राध्या	१८५
एष जज्ञे	१६३
एतावानात्म	१६८
ऐश्वर्यस्य	२०२
एकस्या	२३१
एतत्सत्यं	२५१
एवं विदित्वा	२८५
एकमात्रो	३०५
एवं गुणाः	३१४
एवविद्या	११०

इ

श्लोक	पृष्ठ संख्या
ईक्षेत	५१
इन्द्रियाणां	५३

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्लोक	पृष्ठ संख्या	श्लोक	पृष्ठ संख्या
इतः स्वर्गश्च	७२	क्लिश्यन्ति	३३१
इष्टे यज्ञे	८२	किंजन्म	३३२
ईश्वरः सर्व	१२७	कृष्णेति मंगलं	३४२
इतर लाभेपि	२४६	कलौ भक्ति	३४५
इन्द्रियेभ्यः	२८१	कृष्णभक्तिः	३७२
इत्थमेव	२८६	केवलेन	३८४
उ		केशेषु	३८८
उत्तमातत्त्व	२१	को ह्येवान्यात्कः	४०
उत्तरं यत्समुद्र	७७	कौपीन युगलं	१०८
उर्ध्वं गच्छन्ति	९७	कैलासा	१८०
उद्गारिणी	१८२	**ग**	
उपाधि	१८५	गाणपत्येषु	३६२
उपरितन	१९०	गोत्रमुक्तं	३८७
उलूकस्य	२४६	गोलोकाभ्य	१८६
उत्तिष्ठत	३०६	गुणातीतं तु	१८९
		गुणातीतं सरः	१९८
क		**घ**	
कस्मिन्नु	१९	घृतह्रदा	२७०
कल्पायुषां	७५	घट मध्ये	३५८
कुक्षिः	७०	**च**	१–२९
कूटस्थस्य	५१	चाक्षुषः	२९
कीर्तनादेव	७३	चतुर्विभाग	९६
काष्टदण्डो	१०८	चतुरशीति	१२०
काले तपः	१५७	चतुस्र	१६९
काले मनः	१५७	चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे	१७०
कालः कर्ता	१५८	चतुर्भुजस्य	१८१
काली तारा	१५९	चिदानन्द	२५३
कार्यात्यये	१६८	चिदेव पञ्च	२५५
कूटस्थ	१८४	चिदादित्यं	२५७
किं हेयं	२१२	चतु षष्ट्या	२७१
क्लेशकर्म	२५६	चिदानन्दमयी	३४७
कूटस्थ एव	२६७	चतुर्विधा	३५५
कामक्रोधा	२९४	चञ्चलं	२५२
कांस्यघं	३०५	चैतन्य	

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्लोक	पृष्ठ संख्या	श्लोक	पृष्ठ संख्या
ज			
जगच्छक्ति	४१	तस्माल्लीला	२३७–२४०
जगन्मोहात्मकं	५३	तस्य योनिं	२४४
ज्योतिर्वै	६२	तयोर्ध्वं	२४८
जम्बूद्वीप	७०	तं चेद् ब्रूयुः	२५८
जलजा	९५	तदपरा	२६४
जलावरण	१६६	तस्मै सहोवाच	२८४
जगच्चक्रेषु	२०१	तद्विद्धि प्रणि०	२८६
जगद्द्रष्टा	३२२	तमेव विदित्वा	३१२
जन्मान्तर	३६१	तमसस्तु	३१५
जाग्रत	३२४	तम्मात्पादत्रयं	३१५
जाग्रति देवाः	२६८	ततः शुद्ध	३१५
जितेन्द्रियो	२०२	तन्वभावे	३१८
त			
तमसो मा	३८१	तपस्विभ्यो	३३१
तत सृष्ट्वा	४०	ततो दशगुणः	३३३
तदह्यवं	५८	त्वदन्विताश्च	३६०
तदण्डमभव	६२	तस्य सीतापते	३६१
तस्य मूलादेशे	६३	तारतम्येन	२३
तत्कट्यां	६७	तावत्सुतल	६६
तत्रापि भारत	७८	तामिस्रमन्ध	१०९
ततः तमः समावृत्य	११७	तारतम्येन	२२७
तस्मादिदं	१३७	तेनानुभूय	१००
त्वमेवाद्या	१५०	तेषामुपरि	१७२
तदायुधधरा	१५२	तेजोमंडल	१७४
ततः शून्यमिदं	१६५	ते ये शतमानन्द	२११
तत्र मध्यम	१६८	ते ये शतप्रजा	२११
त्वमेव सर्वजननी	१८२	ते ध्यानयोगानु	२३२
तत्प्रिया प्रकृति	१८६	तेषामसौ	२८५
तस्मिन्ब्रह्म	१९५	ते ब्रह्मलोके	२९८
तत्त्वहीने	२०१	ते वै लोके	३५९
तमीश्वराणां	२२९	तुच्छानिवचनीया	२०८
तदेजति	२३७	तुरीयपादस्तु	१७८
		त्र	
		त्रयाणामपि	७४

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्लोक	पृष्ठ संख्या	श्लोक	पृष्ठ संख्या
तस्मादपि	२४६	ध्रुवमेकाक्षरं	१४८
तमेवशरणं	३६७	ध्यायन्ति	१८७
तत्रांशेन	३६६	धनवृद्धा	३१४
तदूर्ध्वं चैव	१३०	धर्मार्थकाम	३३४
		न	
तमसो मा	३६१	न जातुकाम	२
त्रिभ्यो यदेकं	८१	न्यायचर्चेयमी	१८
त्रिजगत्यां	१०१	न खल्वन्यत्र	७६
त्रिपादूर्ध्वं	१४३	नृदेयमाद्य	७६
त्रिष्वेकपाद	१४५	नमो यमाय	१०१
त्रिपाद्वि	२०३	नयतामून	१०१
त्वं ब्रह्म	३६८	नरकानेक	१०६
द			
द्वाविमौ	२४	नरकानां च	११३
दूरस्था	६५	न जानन्ति	१४४
दशमन्वतराणि	१३४	न कश्चित्पति	२०६
द्वितीयं विष्णु	१३६	न तत्र सूर्यो	२२३
द्वितीयं वैष्णवं लोकं	१६६	न जानन्ति	२३०
देवं परमकं	१६७	न स्थानतो	७०–२३२
द्विधुजं मुरली	१८६	न सोऽस्ति	२५२
दर्शनार्थं	२४८	न वै देवाः	२६८
द्वादशाह	३१८	न साधयति	३३८
द्वादशानन्दा	३२०	न रोधयति	३३६
दुर्बलत्वाद	३२४	न बुद्धिभेदं	३४१
द्रव्यशुद्धिः	३४०	न च तस्मान्म	३८६
द्वैवं कृतयुगे	८०	न देवा दण्ड	३६५
द्वे कोटी तु जलालको	८७	नावेदविद्	१५
दानधर्मरता	१०५	नासदासीन्नो	३२
देहं त्यक्त्वा	१०६	नारायणश्च	८६
द्वे वाव ब्रह्मणे	८१	नादरूपा	१२८
देहान्ते देवः	२३	नासदासीन्नो	१४०
दासोऽहमिति	३७२	नादकोटि	१४६
दीक्षामात्रेण	३८५	नास्य ज्ञानं	१७८
ध			
धनुर्वत्सं	७१	नाद्वैतश्रुति	२४२
धर्मेण सह	८६	नानाकान्ति	१२८

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्लोक	पृष्ठ संख्या	श्लोक	पृष्ठ संख्या
नानास्वीयं	३१०	पारुष्यमनृतं	१११
नाश्रमः कारणं	३३०	पादत्रये	३१५
नायमात्मा	३३१	पादो वैश्वा	१५४
नाहं वेदैर्न	३३८	पातालाद्	१३०
नारायणश्च	२९५	पुंसां कलि	३४२
निःप्रवेशे	६१	पुरूष	३४८
निरपेक्षं	८०	पुरूष एवेदं	५६
नित्यदा	८६	पूर्णब्रह्मस्व	७४
नित्य आत्मा	१७४	पूर्णमदः	२२१
निरपेक्षं	२१९	पूर्णात्पूर्ण	२३९
निर्गुणात्मन	२४९	पूर्वजस्य	३१०
निर्दोष	२५५	पूर्णब्रह्म	३२७
नित्यसाकार	२८२	प्रयत्ना	३३३
निष्फलं	२८४	प्रायश्चिता	३४२
निर्गुणे	३००	प्रतिबिम्बा	३२१
नित्यसाकार	३१६	प्रभुविभि	२६५
निरपेक्षं	३२१	प्रत्येक्षणानु	२५३
निर्विण्णानां	३२९	प्रतीति मात्र	४६
निजशक्यत्यभि	३९४	प्रणवात्मकं	५८
नैवमात्मा	३६९	प्रलयः	८८

प

परिच्छिन्नं	३३	प्रज्ञानत्रो	१२२
पञ्चविंशति	३५	प्रधानादि	१३८
पश्यन्ति	१०४	प्राकृते प्रलये	१४१
परद्रव्ये	१११	प्रणवमेव	१४८
पञ्चधा	१५२	प्रणवो ह्यपरं	१५०
पद्मसूत्र	१६२	प्रकृतिर्या	१५०
परब्रह्म	१८२	प्रणवात्प्र-	१५१
पञ्चब्रह्म	१८४	प्रकृति सा	१६१
पद्मावती	२०६	प्रकृष्टवाचकः	१६१
पञ्चविंशत्स	२५०	प्रतिज्ञा	३५७
परमेश्वर	२६२	प्रत्यक्षस्यानु	३९५
परिणाम	२८९	गच्छन्तिष्ठन्	३९१
पातालाद	१७२	आप्तोपदेश	३९४

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्लोक	पृष्ठ संख्या
ब	
बन्धो	३२३
बहून्वर्ष	११०
बीजाक्षरं	१४६
बुध्यादि	१८
बुद्धि प्रतिबिंब	३२१
ब्रह्मा विष्णु	७६
ब्रह्माणं	११६
ब्रह्मसंज्ञकम्	१२५
ब्रह्माविष्णुश्च	१८१
ब्रह्मानन्दमयो	१६१
ब्रह्माभास	२०१
ब्रह्मवेदमृतं	२२२
ब्रह्मलोके	२४७
ब्रह्मलोका	२४६
ब्रह्मपुरे	२५२
ब्रह्म सत्ता तु	२५६
ब्रह्मलोके	२६७
ब्रह्मविद्या	३१७
ब्रह्मभूतः	३८८
ब्राह्मधर्मा	३८३
ब्राह्मो नैमित्तिक	१४२
भ	
भयादस्याग्नि	५५
भचक्रं	८३
भक्तिरेका	३४५
भयादस्या	३५८
भक्तिः पुनाति	३७१
भारतं प्रथमं	७१
भारतस्यास्य	७६
भावानां सर्व	१६७
भावं जैमनि	३१७
भिद्यते हृदय	२५
भूमेः समन्ता	११८
भूमीरापो	३४-४३-१२३
भूर्लोकः	६४
भेष बनाय	२८५
म	
महाताल	६५
मधुरमधुरगीतं	
महापातक	११५
मनो बुद्धिरहं	१२३
मनसः खं.	१२३
मत्तंस	२१०
महाविष्णो	२६५
महाविष्णु	२६५
महाप्रसादे	३६२
मयादत्तो	३६२
मच्चिता	३६४
मय्यर्पितात्मा	३८२
मयि निर्बद्ध	३८४
मधुरमधुरगीतं	३६०
मत्तः परतरं	३६५
महाभूतो	३२१
माया मात्रन्तु	४६
मानसं भनेसे	१११
मायातीतं	१३०
मायाधेनोः	१८५
मामेवहि	२२२
मायया	२४२
मां च योऽव्यभि	३६६
मुक्तिश्चतु	२६२
मुक्ता	३२१
मूलमंदिरं	२६६
मूलाविधा	१६०
मूलाविद्या	५६

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्लोक	पृष्ठ संख्या
मेरोः पूर्वेण	७१
मैत्रेय ! श्रूयतां	६६
मोक्षश्चतु	६१
मोक्ष साधन	३७१
मोहनाशे	२१०
य	
यस्मात्स	१३
यच्चाप्नो	१४
यस्तन्नवेद	१५
यतो वाचो	१८
यथोर्णनाभिः	३१
यः पृथिव्याम्	३८
यस्य पृथिवी	३८
यः सर्वेषु	३८
यथा तरङ्गा	२९६–४३
यस्यचित्तमयो	४६
यथामनोरथ	५२
यथा तदुद्भ	५३
य एतं देवमेक	५४
यथा च पादयोम्	५७
यस्येहावय	६३
यस्मिश्च	६४
यस्य हस्तौ	८१
यमादयो	८६
यदैवमेतेन	८८
यमाय	१०३
यमद्वारे	१०६
यदि तु प्रायशोः	११४
स्यैकनिश्वास	१३७
यथा मनोरथ	१३७
यतः सर्वाणि	१३८
यथासूर्योद	१३९
यदेकं ज्योति	१४९
यत्रेमे सदस	३०१–१४०
यत्तत्कारण	१६१
यदब्रह्मपरमै०	१८९
यदयं विरही	३१९–१९१
य आत्मदा	१९३
यत्र कैशोर	१९५
यदायमनुगृ	२०१
यदा पश्यः पश्यते	२०२
यं यं जीवमधि	२०४
यथा स्वप्नमयो	२१०
यत्र देवाऽमृत	२१४
यत्र ज्योतिरजस्रं	२२०
यस्मात्परं	२२२
यथा सैन्धव	२३८
य एतद्विद	२३९
य एतद्विदुर	२५०
यत्रनान्यत	२४०
यज्ज्ञात्वा	२४८
यमुनाजी	२७२
यत्र नान्यत्प	२७३
यतो वाचो	२८३
यस्य देवे परा	२८६
यदा पश्य	२९३
यथा इतरलाभे	२९८
यथा च मणिसूत्रे	३००
यच्चक्षुषा	३०६
यं यं वापि	३२८
यथाग्निः	३६३
यस्याङ्घ्रि	३६४
य इदं परमं	३८९
यस्मिन्स	७८–३९०
यः सर्वज्ञः	३९२
ज्ञथातरोमूल	३९६
यावत्सूर्य	६८
यानि किंपुरुषा	७८

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्लोक	पृष्ठ संख्या
यथाधरा	४१६
यां यां योनिं	१११
या वेद वा	१७६
येनाऽक्षरं	४८
येषां ये यानि	१४६
ये कैवल्यम्	१६७
ये तद्विदुर	२४६
ये वानी	२८५
ये तु सामान्य	३६५
ये च वेदविदो	३८५
येऽप्यन्य देवता	३६६
यो वा एत	२५
यो यो यां यां	७३
योजनानां	१०४
यो विज्ञाने	१२१
यो मारयति	२६४–१६०
यो वै तां	२२६
यो वाऽनन्तस्य	२८०
यो वाचमनु	२८२
योगास्त्रयो	३२६
यो वै भूमा	४००
यो भवेत्पू	४१४
र	
रसातले	६४
रहस्यं त्विदम	१७६
रसो वै ब्रह्म	२३६–१६६
रसं ह्येवायं	२३६
रहूगणैत	२४६
रजस्तमोभ्यां	२५३
रौद्रे तु पुष्कर	१०४
ऋग्वेदो	२५३
ल	
लक्ष्यन्ते	४४–२३०
लयःप्राकति	५४
लक्षयोजन	१०३
लयस्य	१५४
लिङ्गानां च	१२६
लोकं पितृषु	१००
लोमान्य	१०६
लोहशंकु	१०६
लोकानां	३१०
व	
वर्ष युग सहस्रा	६१
वसन्ति यत्र	६१
वहूनां	३३०
वनजौजल	४०६
व्याधस्या	३६३
वाग गद्गदा	३१६–३६८
वासुदेवः	६३
विनिषेधे	१
विराड्विश्व	१५१
विश्वेषामूर्ध्वं	१७२
विषयानन्द	१७३
विष्णोस्तु	१७७
विद्यानन्द	१७८
विष्णुश्चर	१७३–२५०
विष्णुश्च	२६४
विज्ञान	३३६
वेनस्तत्पश्यति	२१४
वेदाहमेतं	२५६
वैकुण्ठे त्वं	६२
वैकुण्ठः कल्पितो	६४–६२
वैकुण्ठादिषु	६३
वैवस्वतेन	१०१
वैरंच्यानन्द	२११
वैष्णवानन्द	२७६
वैराग्य	३५६
वृन्दया	१६६
वृदावनं महा	१८०
वृन्दारण्ये	१८६
वृदावनाश्रया	१८८

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्लोक	पृष्ठ संख्या
श	
शब्दब्रह्ममयं	१८४
शतानिदश	१०५
शतं सहस्रं	१४६
शब्द्रब्रह्मणी	२५२
शंखचक्रे	३१०
शङ्कापङ्का	३३७
शान्ताकारं	१६६
शाश्वतं	२३६
शाब्दप्रमाण	३६५
शांकरभाष्य	२४८
शास्त्रयोनि	३६५
शीर्यतेभिद्यते	११०
शिवात्मके	१८१
शुद्धसत्त्वप्रधा	१८४
शुद्धासंवलि	२००
शून्यं तत्र प्र०	१३६
श्वेतद्वीपनिवासी	१६७
श्वेतद्वीपान्निवृत्त	१६७
ष	
षड्गुणेन	६०
षष्ट्यामि	१३५
स	
सर्भपूज्याव	४१०
सब्रह्मविद्या	२०
सर्वस्य धाता	२७
सत्त्वरजस्तमसां	३५
स्वांशश्चाथोभिन्न	४३
संख्या चेद्रज	४४
संध्ये सृष्टिराह	५६
सर्वत्रासो	६४
स देवो भगवान	६४
संकर्षणाच्च	६५
सर्वधर्मान्परि	७३

श्लोक	पृष्ठ संख्या
सर्वेष्वपि खण्डे	७६
सर्वत्र महीगोले	८३
स्वर्गादूर्ध्वं	८५
सर्वे प्राकृता	६१
सर्वान् कामान्	१०१
सप्तसागर	१०२
सत्यव्रत	१०६
संख्या चेद्रज	१२५–१३६
स बिन्दुः सोऽपि	१२६
सनातनं	१४५–२१८
सर्वे वेदा	१४७
सहोवाच	१५१
स्वसृष्टमिदमा०	१५३
स्वमहिम्ना	१६६
सर्वबीजस्व	१८२
सर्गस्थित्यप्यया	१७६
स एव मूल	१८३
स्थानं नित्य	१६१
स एवात्माद्वि	१६६
स्वप्नेनजा	२०८
सन्मूलाः	२०६–३६६
सच्चिदानन्द	२१३
सत चिद	२१३
सर्वं मद्भक्ति	२१८
सवेदैत	२२५
स यो ह वै	२२६
स्वस्य याली	२४१
सर्वे पाप्मा	२४५
स्तोतुं नालं	२५०
सरस्वती	२५०
सर्वे नित्याः	२५५
स वा एष	२५६
सब्रूयाद	२५६
स शिवः	२६०

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्लोक	पृष्ठ संख्या
समेधयति	२६०
स यदि पितृलोक	२६२
सकामिनो	२६८
सत्यकाम	३१७
संकल्पादेव	३१७
स्वप्रकास	३२३
स्वप्नं मनो	३२५–३३५
संन्यासः कर्म	३२६
सर्वभूतस्थितं	३३१
सर्वेषामेव	३३६
सकृदेव प्रपन्नाय	३४४
सवाग्नि	३५१
स्वधर्मेनि	२६६
स्वल्पमन्तर	३५५
स तरति	३६७
संगृह्यमांस	३७६
सा च प्रशास	५५
सा वाग् यया	३५१
साम्यावस्था	१६२
सात्वतां	१८०
सालोक्यादि	२६३
साकारस्य	३१०
सा त्वस्मिन्	३६६
सात्विकं	४१०
सूक्ष्ममलिङ्ग	३३
सुधासिन्धो	१८०
सैषाऽऽनन्दस्य	२१२
सोऽश्नुते	२६३
श्रवणायापि	२८३–१६
शृंगारहास्य	१६६
श्रवणं तु	२२५
श्रोतव्य	२२५
श्रुतो युवा	२५४
श्रीकृष्णरस	३८७
हत्वाक्रूरं	४०३

श्लोक	पृष्ठ संख्या
हंसो गणेशो	१६४
हरिब्रह्मा	२६४
हिरण्यगर्भ	६२
हिरण्मये	२६४–२२८
हिरण्मयेन पा०	३०७
ज्ञानोदा	६०
ज्ञानशक्ति	२०३
ज्ञानमार्गेस्तु	३३०
ज्ञानभूमि भूमिका पृष्ठ	२
समाधानपर्वके श्लोक—	
प्राप्तराज्यस्यराम	४०५
पुत्रत्वं तु गते	४०३
परमस्वतन्त्र	४०२
वृन्दया शापितो	४०२
वत्स्यामि मानुषे	४०३
वैकुण्ठादाग	४०२
विष्णो पुत्रत्वं	४०१
रामो नाम श्रुतो	४०३
ततो विष्णोश्च	४०४
ततस्तौ राक्षसौ	४०४
अकाराक्षरसं	४०६
अस्मत्प्रसाद	४०४
एतस्मिन्नन्तरे	४०१
किं पुरुषे भगवन्तं	४०७
कुलेरघूणां	४०४
भृगुभार्या	४०२
महापापवतां	४०७
विष्णुः सर्वाधिको	४०७
मून्धां	४१३
न नाम	४१२
दृष्ट्वैव	४१२
न गर्हयन्ति	४१३
द्वापरस्य	४१०
कुर्वते वन्दनं	४१२

Shri Prannath Ji Pustkalay

भूमिका

यस्य ज्ञानलवानन्दो निजानन्दमहोदधौ ।
नीयते क्षण–मात्रेण वन्दे तं मुनिवन्दितम् ।।

सज्जनसौरभ सुमन ! परमकृपालु परमात्मा के असीम अनुग्रह से संप्रति हम जिस 'विराट पट दर्शन' नामक ग्रन्थ को आपके करकमलों में उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं, वह हमारी नवीन रचना अथवा संग्रहमात्र नहीं है, किन्तु प्राचीन सिद्धान्त का परम्परा प्राप्त आदर्श है। जिस प्रकार हीरा किंवा माणिकको संस्कार और सुदिव्य रत्न की शोभा प्रदान कर दी जाती है, वस्तुतः उसका मौलिक स्वरूप ज्यों का त्यों ही रहता है, उसी प्रकार इस अध्यात्म ज्ञानमणिको यथाशक्य सुसंस्कृत कर परिष्कृत स्वरूप आपके समक्ष उपस्थित किया गया है। इसे महापुरुषों के आत्मबलका निष्कर्ष, तारतम्य ज्ञानकी देन,एवं परब्रह्मके आवेश–पूर्ण विचारोंका समुल्लास कहें तो अत्युक्ति न होगी। यद्यपि यह ग्रन्थ किसी संप्रदाय विशेष की दायसम्पत्ति नहीं है; अपितु आत्मानुभव, वेद-शास्त्र-उपनिषद-पुराणादि एवं पराविद्या और ब्रह्मविद्या आदि के हृदयका रहस्य–पूर्ण दोहन है; तथापि इसका पूर्ण विवेचन तारतम्य ज्ञान द्वारा किया गया है, इसलिये तारतम्य के प्राकट्यको जनसमाज के समक्ष उपस्थित करने वाले श्रीमन्निजानन्द आचार्य–चरण के पथ–प्रदर्शक ग्रन्थ में इसे भी स्थान प्राप्त है।

इस प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्तर्गत आध्यात्मिक भावों से ओतप्रोत विविध विषयों का समावेश तथा ब्रह्म के सोपान पर्वों का मननीय दिव्य–दर्शन सन्निहित होने से इसका नाम भी 'विराटपट–दर्शन' अन्वर्थक ही रखा गया है।

(क) विराट के तात्त्विक स्वरूप का वर्णन तथा विराट के चतुर्दशात्मक भुवनों का विवेचन एवं विराट के नाश के अनन्तर विश्व के सूक्ष्म तथा कारण स्वरूप का प्रतिपादन एवं विराट से पर तत्त्वोंका वर्गीकरण और उनके धाम, स्थान, अधिकार और साकार, निराकार के समन्वयका स्थापन, ये सभी विषय उपरोक्त नाम से ध्वनित होते हैं, अतएव उपरोक्त नाम ही उचित लगता है।

(ख) विराट से लेकर अक्षरब्रह्म पर्यन्त कितने सोपान पर्व हैं, उन सबका सापेक्ष और शृंखलाबद्ध क्रम तथा मुक्ति आदि के 'मानचित्र' का दिग्दर्शन भी सन्निहित होने से 'विराटपट–दर्शन' नाम सुसङ्गत प्रतीत होता है।

(ग) पट नाम मानचित्र का भी होता है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत एक प्रकार से प्रधानता मानचित्रों की विद्यमान है एवं उन्हें प्रकाश में लाने का यथाशक्ति विचार विनिमय करते हुए सिद्धान्त का दर्शन भी कराया गया है। इसके अतिरिक्त अमुक लोकका, अमुक देव अध्यक्ष है। अमुक ब्रह्म, कार्य ब्रह्म हैं, तो अमुक अध्यस्त देव हैं एवं अमुक ब्रह्मका समावेश त्रिपाद्–विभूति में होता है तो अमुक अव्याकृत सापेक्ष है। अक्षर ब्रह्म और उसकी सत्ताका सापेक्ष क्षेत्र, किस प्रकार कहां तक माना गया है ? प्रणव ओङ्कार, काल पुरुष, शून्यमण्डल, परविष्णु आदि ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण, इत्यादि विविध विषयों के

Shri Prannath Ji Pustkalay

'मानचित्र' का दर्शन कराने के कारण इसका 'विराट पट दर्शन" नाम रखना और भी सुसंगत प्रतीत होता है। इसलिये 'ब्रह्मसोपानपर्व' अथवा 'सन्मार्ग दर्शक' नाम न रख कर उक्त नाम ही सम्बोधन करना अधिक प्रशस्त माना है।

'अध्यात्म' विषय में सबसे विशेष महत्व तो ब्रह्म के सोपान पर्वों का है। जब तक क्षरपुरुष [1] का और उसके सोपानों का ज्ञान न हो जावे, उसके आगे अव्याकृत का स्वरूप खड़ा नहीं होता। अव्याकृत ब्रह्म को तत्त्वतः जाने बिना विभूतिब्रह्म अथवा त्रिपाद्विभूति ब्रह्म के स्वरूप को जानने में सुगमता नहीं होती, और न उनके स्वरूप का आरोह अवरोह समझ में भरता है, इसलिये सबसे प्रथम क्षरपुरुष, अव्याकृत और त्रिपाद्–विभूतिको जानने की आवश्यकता है। क्योंकि त्रिपाद्–विभूति और क्षरपुरुषको न समझा जाए तो अक्षर ब्रह्म के 'व्याप्य व्यापक' स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। अक्षर ब्रह्म के स्वरूप की सत्ता और सदाकाश तथा चिदाकाश के रहस्यको न जाना जाए तो इधर भूताकाश और परमाकाश का भी ज्ञान नहीं होता। और न पुरुषोत्तम अक्षरातीत के स्वरूपको जान पाते हैं। इन सबका परस्पर ऐसा सम्बन्ध है कि एकके ज्ञानके बिना, दूसरे का ज्ञान होता ही नहीं। क्योंकि सापेक्ष ज्ञान की अपेक्षता का ज्ञान न हो, तब तक उसके स्वरूप का वास्तविक ज्ञान किस प्रकार हो? इसलिये इन सबके अनुभव को हृदयगत करना परमावश्यक है। कारण, यही सब अध्यात्म रहस्य है। इसको जानने से अपने आत्म परात्म तत्त्व का ज्ञान भी हो जाता है। आत्मस्वरूप का ज्ञान होते ही आत्मा मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। इस प्रकार देखा जाए तो अध्यात्म तत्त्व नितान्त उपयोगी ज्ञान है, जो मनुष्य मात्र को धारण करने योग्य है। योगी पुरुष योग द्वारा प्राप्त होने को भूमिका कहा करते हैं, परन्तु वास्तविक भूमिका[2] इन्हीं आध्यात्मिक

---

[1] 'क्षरः सर्वाणि' कह कर गीता (१५—१६) में पंचभौतिक जगत को किंवा सब विनश्वर विश्व को क्षर माना है। इस तथ्य को महाभारत (शान्ति पर्व) में भी स्पष्ट किया है। यथा—

यच्च मूर्तिमयं किञ्चित्सर्वं चेतन्निदर्शनम्।
जले भुवि तथाकाशे नान्यत्रेति विनिश्चयः॥
कृत्स्नमेतावतस्तात क्षरते व्यक्तसंज्ञितम्।
अहन्यहनि भूतात्मा ततः क्षर इति स्मृतः॥
"अव्याकृतविहारोऽसौ क्षर इत्यभिधीयते"

इस प्रकार पंचभौतिक विश्व के स्थूल, सूक्ष्म सभी तत्त्वों को क्षर माना है। जल, स्थल आकाश में जितने भी प्राणी नाशको प्राप्त होते हैं, वे सब क्षर में ही माने गये हैं।

[2] ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनु मानसी॥
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्ति नामिका।
पदार्थ भावना षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता॥
आसामन्तः स्थिता मुक्तिर्यस्यां भूयो न शोचति। (योगवशिष्ठ)

Shri Prannath Ji Pustkalay

विशेषताओं को जानना है। जो इन्हें तत्त्वतः जान लेता है, जीवन्मुक्त दशा को प्राप्त हो जाता है। जो इनके मानचित्रों को हृदय में धारण कर ब्रह्म के स्वरूप को निश्चित कर लेता है। मोक्ष पद का अधिकारी बन जाता है।

साक्षिभूते समे स्वच्छे निर्विकल्पे चिदात्मनि।
निरिच्छं प्रतिविम्बन्ति जगन्ति मुकुरे यथा॥
एकं ब्रह्म चिदाकाशं सर्वात्मकमखण्डितम्। (महोपनिषद्)

जिस प्रकार निर्मल दर्पण में मनुष्य अपने स्वरूप के दर्शन कर लेता है, उसी प्रकार से अनन्य-भक्त अपने निर्मल परात्म-स्वरूप द्वारा विकल्पातीत अविचल ब्रह्मानन्द स्वरूप को अपने इस स्वरूप में देखा करते हैं।

"वह खेलत पार पियाके; देखनको तन सागर माहीं।"

ऐसे अनन्य भक्तों का किम्वा परमहंसों का शरीर देखने मात्र को तो संसार में रहता है परन्तु वे अपनी अन्तर्वृत्ति से संसार से पर हो जाते हैं। इस प्रकार यह 'अध्यात्म' तत्त्व मनुष्य को सहज ही जन्म मरण के बन्धन से मुक्त बना देता है। अतएव मनुष्य को चाहिये कि दुर्लभ मानवतन पाकर इस अद्वितीय लाभ को अवश्यमेव लेवें। यद्यपि अनादि काल से महापुरुषों ने परब्रह्म पथ को यथाशक्ति निर्मल बनानेका श्रेय प्राप्त किया है, परन्तु कलियुग के प्रभावसे मनुष्यों में संकीर्णता आ गई है, अतएव श्रुतियोंके गर्भित आशयको जाने बिना मत मतान्तरोंने ब्रह्मतत्त्व के मार्गको और भी अधिक जटिल बना दिया है। जिसके कारण सहस्रों स्त्री पुरुष अध्यात्म

योगियों ने इन भूमिकाओं को योगावस्था में घटाया है, परन्तु वस्तुतः ये जाग्रदवस्था प्राप्त करने के लिये ज्ञान के विषय हैं। तारतम्य ज्ञान के द्वारा जो जानने की इच्छा करता है वही 'शुभेच्छा' नाम की प्रथम भूमिका है। तारतम्य तत्त्व के विचार में लगे रहना, यही 'विचारणा' नाम की 'द्वितीया' भूमिका है। शुभेच्छा और विचारणा के द्वारा ज्ञान की सूक्ष्मता को धारण करना अथवा ज्ञान के सूक्ष्म भेदों को जान लेना, तीसरी 'तनुमानसी' भूमिका है। उक्त तीनों के द्वारा सत्त्व की शुद्धता प्राप्त होती है। सत्त्व के विशुद्ध होने पर मनुष्य दृढ़ता को प्राप्त कर लेता है। उसकी निष्ठा निर्मल होने से उसे 'सत्त्वापत्ति' नामक चौथी भूमिका कहते हैं।

'आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।'

—छान्दोग्य श्रुति में भी सत्त्व शुद्धि को अध्यात्म विषय में विशेष उपयोगी माना है। आहार विहार की पवित्रता से सत्त्व की शुद्धि होती है और सत्त्व शुद्ध होने से अविचल स्मरण बना रहता है। किसी को ध्यान लगाना नहीं पड़ता अपने आप 'खाते पीते उठते बैठते सोवत स्वप्न जाग्रत' किसी भी अवस्था में उसे माया नहीं सताती। इससे उसका ध्यान स्थिर हो जाता है। वह संसार का कोई भी कार्य करता है, किन्तु उसमे लिपता नहीं। उसकी अवस्था निर्लेप हो जाती है अतएव उसे 'असंसक्ति' नाम की पांचवीं भूमिका कहते हैं। 'लिप्यते न स पापेन' वह फिर पापों से लिप्त नही होता। जिस प्रकार अग्नि सबको आहार करते हुए और 'सर्वभक्षो'

Shri Prannath Ji Pustkalay

तत्त्वसे विमुख होकर अध्यस्त उपासनामें समय व्यतीत कर रहे हैं। अतः दिनों दिन जन समाज–अध्यात्म तत्त्वसे विमुख होता जा रहा है।

सामान्यतया 'वृंहयतीति ब्रह्म' जो सदा सर्वदा सबको वृंहण–वृद्धि, उल्लास, आनन्दको देनेवाला है, जो निरन्तर उत्थानकी ओर ले जाने वाला है, जो सबके हितको पोषण करता है एवं सबका आश्रय स्वरूप है, उसे 'ब्रह्म' कहते हैं। जिसके आश्रयमें नित्य नवीन सुखों का सृजन होता है, जो निरन्तर ब्रह्मानन्दमें सर्वातीत स्वरूपसे विराजमान है, जिसकी लीला मात्रसे सबकी सत्ता विद्यमान है, जो सबको अपेक्षित होते हुए स्वयं निरपेक्ष है, वही ब्रह्मपद वाच्य है। उसी परात्पर सर्वातीत, उत्तम पुरुषको ब्रह्म, परमात्मा आदि नामों से विश्व पुकारता है। न्यूनाधिक प्रमाणमें उक्त भाव ब्रह्मादि देवोंमें भी पाया जाता है, अक्षर ब्रह्म और चतुष्पाद विभूति तो परब्रह्म के अङ्ग प्रत्यङ्ग स्वरूप ही माने गये हैं। इसलिये ब्रह्मादि देवोंके लिये भी कहीं–कहीं 'ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्' सूत्रके अनुसार 'ब्रह्म' शब्दका प्रयोग वेद, शास्त्र तथा पुराणों में आता है। चतुष्पाद्विभूति और अक्षर ब्रह्म के लिये तो ब्रह्म शब्द आना ही चाहिये। क्योंकि वे सब तो ब्रह्मके अङ्ग–प्रत्यङ्ग स्वरूप माने गये हैं।'

इस प्रकार शास्त्र पुराणों में बहुधा ब्रह्म शब्दका प्रयोग परब्रह्म के अतिरिक्त विभूति–ब्रह्म किंवा अध्यस्त देवों के लिये भी मिलता है। कहीं कहीं जड़ पदार्थों के लिये भी ब्रह्म शब्दका प्रयोग हुआ है। कारण, शास्त्र का नियम है जहां कहीं भी उत्कर्ष देखा उसके महत्त्व को सूचित करने के लिये 'ब्रह्म' शब्दका प्रयोग कर दिया जिसे देखकर अल्पश्रुत भ्रममें पड़ जाते हैं। यथा—

(क) मनो ब्रह्मेति उपासीत् (छां० ३–१८)
(ख) ओं खं ब्रह्म (श्रुति)
(ग) अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् (तै०)
(घ) प्राणो ब्रह्मेति, खं ब्रह्मेति व्यजानात् (तै० छां०)
(ङ) हृदयं वै सम्राट् (बृहदा०)

होते हुए भी सबसे निर्लिप्त रहता है,उसी प्रकार तारतम्य ज्ञानकी दृढ़तासे वह निर्लेप बन जाता है।

नित्य-अनित्य पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप जब हृदय में भर जाता है तो उसे अनित्य पदार्थों परसे आस्था उठ जाती है, और परमधाम के नित्य पदार्थ आत्मा में भर जाते हैं, जिन्हें वह निरन्तर अपने स्वरूपमें देखा करता है। अतएव इसे 'पदार्थभावना' नामकी छठी भूमिका कहते हैं। इस प्रकार की भावना जब दृढ़ हो जाती है तो वह जीवनमुक्त दशामें विचरते हुए भी परमधाम के आनन्दका अनुभव करने लगता है। जिस प्रकार दर्पण में मनुष्य अपने प्रतिबिम्ब को देखकर अपने स्वरूप का अनुभव कर लेता है। वस्तुतः वह दर्पण के स्वरूप में नहीं है, किन्तु अपने स्थूल स्वरूप में ही है। उसी प्रकार तुर्यावस्थासे तुर्यातीत स्वरूप का अनुभव उसे साक्षात्कार रूपसे होने लगता है, अतः वह उसमें विभोर हो जाता है। इसलिये इसे 'तुर्यगा' नाम की सातवीं भूमिका कहा है। यही बात मुकुन्द स्वामी ने लिखी है—

"परम पुनीत परमपुर रहहीं, परमहंस हुइ यह सुख लहईं।"

Shri Prannath Ji Pustkalay

(च) ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म (श्रुति)
(छ) सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छां० ३–१४–१)
(ज) आदित्यो–ब्रह्म (छां० ३–१–९१)

इस प्रकार दो चार ही नहीं, किन्तु अनेकों भौतिक जड़ पदार्थों को भी तत्तत् पदार्थों के उत्कर्ष को लेकर उन्हें ब्रह्मत्वेन निर्देश किया है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव, ईश्वर, सूर्य आदि विभूति देवोंके लिये तो पुराणों में परब्रह्म, जगदाधार, परमात्मा, परमेश्वर आदि शब्दों से उल्लेख किया ही है। इतना ही नहीं, प्रत्युत कहीं कहीं तो विष्णु, शिव आदि देवों ने अपनेसे पर अन्य पुरुष होनेका अथवा अन्य परमात्माकी उपासना करने का निषेध भी कर डाला है। अपने में अनुरक्त भक्तों को तो यहां तक विश्वास दिला दिया है कि—वस, हमारे से विशेष किंवा श्रेष्ठ कोई परमात्मा नहीं है, न अब इसके आगे तुम्हारे लिये जानने को कुछ शेष रह गया है। जो कुछ भी है सर्व सर्वा हम ही हैं।"

मान लिया जाय कि–अल्पज्ञ अनधिकारी जीवों को विशेष ज्ञातव्य विषयकी उलझन में न डालकर उन्हें थोड़े में ही सन्तोष करा देना किसी अंश तक युक्ति सङ्गत हो सकता है। क्योंकि अल्पज्ञ होनेके कारण वे विशेष ब्रह्मज्ञान को नहीं ग्रहण कर सकते। और कभी-कभी अल्पज्ञ होनेसे लाभके स्थानमें हानि भी उठा जाते हैं। इसलिये अल्पज्ञ जीवों को ब्रह्मतत्त्व के तारतम्य में न डाल कर, केवल कर्म में प्रवृत्त कराना अथवा ब्रह्म के लीलाभेदों को न कहना, उचित हो सकता है, परन्तु मुमुक्षु अथवा ब्रह्मज्ञ पुरुषों के मार्ग को आवरण डालकर छिपा देना अथवा उन्हें यथार्थ तत्त्व तक नहीं पहुंचने देना, तो अनिष्ट कारक ही कहा जायेगा।

इसलिये—श्रुतियों ने जगत के अचेतन जड़ पदार्थों का और विभूति कोटि के देवों का ब्रह्म शब्द से वर्णन तो किया है, किन्तु अन्ततोगत्वा यह भी कह दिया है कि–ये सब तो ब्रह्म मार्ग के सोपान पर्व हैं। इनकी उपासना से कैवल्य मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। अतएव स्पष्ट किया है कि—

"नानामार्गैस्तु दुष्प्रापं कैवल्यं परमं पदम्।'
"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"
"चर्म चक्षुपावे नहीं, निज नैनन सों देख।
भटकत नाना पन्थमें, निजपति तेरा एक॥"

मुमुक्षुओं ! नाना मार्गों ने नाना ब्रह्मों को जो कल्पित संख्या खड़ी कर दी है उसके द्वारा तुम्हें कैवल्य पद प्राप्त नहीं हो सकता। किन्तु परब्रह्म को प्राप्त करना है तो उसके स्वरूप को यथार्थ जानकर भजो, यही एक उपाय है। नाना प्रकार के अन्य मार्गों से वह प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार स्पष्ट शब्दों में 'न अन्यः पन्था' अन्य मार्ग नहीं हैं, सुना दिया; तथापि हम भटकते फिरें अथवा स्वर्ग वैकुण्ठ आदि के प्रलोभन में पड़ जावे तो वेद शास्त्रों का कोई दोष नहीं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

यद्यपि आर्ष ग्रन्थों में बृंहण धर्मको अथवा ब्रह्म के उत्कर्षको जिस किसी में पाया उसीको ब्रह्मत्वेन वर्णन करने की उदारता बताई है, परन्तु साथ ही सबका समन्वय भी कर दिया है। 'ब्रह्म' कहे जाने वाले सम्पूर्ण देवों की योग्यता निश्चित करते हुए विभूति कोटि के देवों के संस्थान, धाम किम्वा लोकादि का वर्णन भी कर दिया है। देवों के नाम और गुण तथा समार्थ्य अनुसार उनके कार्य, आयु, सत्ता, क्षेत्र आदि का पृथक-पृथक निर्णय करते हुए सबको सर्वातीत ब्रह्म के सापेक्ष और आश्रित भी प्रतिपादन कर दिया है जिससे सबके स्वरूप को समझने में किसी को कभी भ्रम न होने पाये।

इस प्रकार पाताल लोकसे लेकर महाविष्णु –(आदि नारायण) पर्यन्त जितने भी देव हैं, वे सब अध्यस्त और अनित्य हैं। उन सबका लय अव्यक्त में होता है, एवं उक्त सबकी शृंखलाकी अन्तिम कड़ी सबलिक ब्रह्मतक मानी गई है। इसका वर्गीकरण कर और चतुष्पाद विभूति [1] (जिसके अन्तर्गत अव्याकृत, सबलिक ब्रह्म, केवल ब्रह्म और सत्स्वरूप–इन चारों का सामवेश होता है) की अन्तिम कड़ी अक्षर ब्रह्म के स्वरूप में सन्निहित है और अक्षरब्रह्म अपने कूटस्थ स्वरूप में सम्बद्ध है। इसी प्रकार कूटस्थ अक्षरब्रह्म अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म के अङ्ग स्वरूप होने से सबकी एक शृंखला बन जाती है और स्वलीलाद्वैत ब्रह्म के स्वरूप में सबका अन्तर्भाव मान लिया जाता है।

"सर्वे देवा अस्मिन् एकवृतो भवन्ति" (अथर्व १३—२१)

एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति (निरुक्त)

एकत्वमक्षरमाहुर्नानात्वं क्षरमुच्यते (महाभा० मोक्षधर्मे)

इस प्रकार 'स्वलीलाद्वैत' ब्रह्म का समन्वय शास्त्र पद्धति से यथाक्रम वर्णन करते हुए सबके संस्थान, धाम आदि का संकलन भी सप्रमाण उपस्थित किया गया है। क्षरका अक्षर में लय होने का क्रम और अक्षर के अन्तर्गत चतुष्पाद विभूति का अखण्ड वर्तमान होते हुए अक्षरब्रह्म के सापेक्ष रहना तथा अक्षर ब्रह्म भी अक्षरातीत पूर्णब्रह्म के स्वरूप में केवल सदङ्गमात्र स्वरूप से नित्य निरन्तर अखण्ड वर्तमान रहना, यह सब युक्ति प्रमाण पूर्वक उपस्थित कर, उसे प्रकाश में लाने की यथाशक्य चेष्टा की गई है, जो मनन करने योग्य है।

---

[1] चतुष्पाद विभूतियों में से अव्याकृत को उभयवृत्ति माना गया है। विश्वोन्मुख वृत्ति से तो असंख्य विश्वों की रचना होती और है ब्रह्मोन्मुख वृत्ति से असंख्य मुक्त पुरुषों का मुक्ति धाम भी है। उससे पर जो त्रिपाद विभूति है, वह तो नित्य अखण्ड-स्वरूप और अक्षर ब्रह्मकी महिमा का क्षेत्र है। जैसा कि यजुर्वेद (३१—मं ३) में लिखा है। यथा—

"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।" एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पुरुषः

त्रिपाद्विभूतेर्लोकास्तु असंख्याताः प्रकीर्तिताः।
शुद्धसत्त्वमयाः सर्वे ब्रह्मानन्द सुखाह्वयाः॥
सर्वे नित्या निर्विकारा हेयरागादि वर्जिताः॥
सर्वे हिरण्मयाश्शुद्धाः कोटिसूर्य–समप्रभाः॥ (पद्मपु. उ. ख. अ. २२८)

इस प्रकार त्रिपाद विभूति के अन्तर्गत असंख्य लोकों का वर्णन मिलता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

"विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।
अवोधादन्यथा नीतः श्रुत्यर्थो बहुधा बुधैः ।।

हो सकता है कि वहुत श्रुत न होने के कारण अथवा इस विषय में यथार्थ वोध न होने के हेतु से कुछ अन्यथा प्रतीति होने लगे और अन्तरात्मा सप्रमाण विषयों के साथ भी सहमत न हो। परन्तु हमारा दुराग्रह नहीं है कि इसे अवश्यमेव मान ही लिया जाए। जव तक आत्मा साक्षी न दे किसी भी विषय की उपेक्षा की जा सकती है। दर्पण की मलीनता के कारण भी मनुष्य अपने को नहीं देख पाता तो कभी–कभी दर्पण स्वच्छ होते हुए भी हमारा लक्ष्य उस ओर न हो तो भी हम अपने स्वरूप का दर्शन नहीं कर पाते। परन्तु इस परसे दर्पण में यह शक्ति नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। कारण—

आदर्शे प्रतिरूप—दर्शकमयी शक्तिर्निसर्गस्थिता ।
दृष्टा तत्र मलापकर्षणविधिः सम्पाद्यते केवलम् ।।

यदि हम अपने को दुर्लक्ष्य से बचा ले जावें, और हमने जो कुछ जान रखा है 'उतना ही यथार्थ है' इस दुराग्रह के शिकार न वन बैठें तो शास्त्र हमें स्वतः प्रकाश में पहुँचा देता है। विशुद्ध हृदय को दूसरे प्रमाणों की विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती, वह तो स्वतः तत्त्व को ग्रहण कर लेता है। हमारे हृदय में यथार्थ जिज्ञासा है और हम निष्पक्ष–भाव से किसी सत्यशोध की तलाश में हैं अथवा हम स्वयं अन्वेषण पर विश्वास रखते हैं तो यह सुनिश्चित है कि हम यथेष्ट तत्त्व को ग्रहण करने में सफल हो सकते हैं। परन्तु थोड़ा सा सहारा चाहिये—

शास्त्रदृष्टं गुरोर्वाक्यं तृतीयं चात्मनिश्चयम् ।
त्रिविधं यो विजानाति स मुक्तो जन्मबन्धनात् ।।

महापुरुषों ने जो कुछ संग्रह किया है, वही वस है, पर्याप्त है, परन्तु उसे उपयुक्त प्रमाण में और उचित रूप में ग्रहण करना, यह भी तो हमें लक्ष्य में रखना चाहिये। उत्तम से उत्तम उपदेश दुर्लक्ष्यता के कारण हमसे छूट जाता है। नेत्रशक्ति की यथेष्ट शक्ति के विना चित्र का यथार्थ स्वरूप प्रतीत नहीं होता, यह तो हम नित्य प्रति अनुभव किया करते हैं। अतएव अध्यात्म तत्त्व को ग्रहण करने के लिये हमारी पूर्ण सतर्कता भी होनी चाहिये।

शास्त्रों के परिशीलन से हम दूर हैं। तो मनन तो मिलने से रहा और फिर गुरुदेव की सेवा तो स्वप्न में भी नहीं बनती, तव अध्यात्म तत्त्व किस प्रकार मिले ? जो तत्त्व हृदय में वसा ही नहीं उसके विषय में मनस्वी निर्णय करना कितना मूल्य रख सकता है ? इसलिये प्रेमी वाचकवृन्द ! प्रथम इस ग्रन्थ को अपने मनन में स्थान दीजिये, इसे अपनाइये और ठण्डे दिमाग से इसका अवलोकन कीजिये ! हमें विश्वास है कि आपका विशुद्ध हृदय इसमें से वहुत कुछ ग्रहण कर लेगा। आपके हृदय में जो ग्रहण करने की

Shri Prannath Ji Pustkalay

शक्ति है, वह कभी खाली हाथ पीछे नहीं लौटेगी। क्योंकि इस लघुकाय ग्रन्थ में बड़े बड़े परदाओं को दूर कर अध्यात्मक तत्त्व का दर्शन कराया गया है। इसलिये यह 'विराट पट दर्शन' यथार्थ में कुछ न कुछ दर्शन कराये बिना न रहेगा, ऐसी दृढ़ धारणा है।

जीवात्मा अपने स्थायी आनन्द के धाम से बिछुड़ गया है, तथापि अपने आनन्द को भूला नहीं। जहां कहीं जाता है उसी आनन्द को ढूंढता फिरता है, परन्तु इसे मिलता नहीं। अब तो पुनः अपने स्थायी धाम को प्राप्त कर ले तभी नित्य आनन्द को भोग सकता है। अन्यथा विषयानन्दों की क्षणिक आशा में नाना प्रकार से दुःख भोगते ही रहना पड़ेगा। कदाच किसी तत्त्वज्ञगुरु की कृपा हो जावे और तारतम्य ज्ञान से इस भूल का 'विराट पट–विशाल पर्दा' को दूर कर देवे तो इस जीवन में ही स्थायी सुख का द्वार खुल जावे और आत्मानन्द के दर्शन होने लगे। इसलिये वेद में आत्मा को प्राप्त करने के लिये आज्ञा है—

आत्मेत्येवोपासीत्। योऽन्यां देवतामुपास्ते न स वेद।
यथा पशुरेवं स देवानाम् (शतपथ ब्रा० १४—४)

अध्यात्म–तत्त्वका ही उपासक होना चाहिये, उस की आराधना करना धर्म है। जो आत्मतत्त्व को नहीं जानते और अन्य देवता की उपासना में लगे हैं, वे वेद की दृष्टि में पशुतुल्य हैं। इस प्रकार वेद भी यही आज्ञा देता है कि जब तक आत्मतत्त्वका तारतम्य–भेद समझमें नहीं आता, जब तक परमात्मा की उपासना के स्थान में अन्य की उपासना में मन लगा है, तब तक जीवन पशु तुल्य है। क्योंकि–उससे आत्म–तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

इसलिये इस विराट–विशाल दर्शन में अनेकों पटों–आवरणों को दूर कर आत्म तत्त्व के दर्शन कराने वाले मार्ग पर पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। उसमें कहां तक सफलता मिली है, उसके द्वारा जन समाज को कितना लाभ हो सकता है, इन सबका निर्णय करना मननशील पाठकों का ही कर्त्तव्य है।

इस ग्रन्थमें परब्रह्म के प्रत्येक सोपान पर्वको समझने के लिये अथवा उसका तारतम्य जानने के लिये 'क्षरपुरुष, अव्याकृत और सत्स्वरूप' जो अक्षर ब्रह्म के स्वरूपमें माने जाते हैं, तीनो के मानचित्र (नक्शा) का ब्लाक बनाकर चित्र भी लगा दिये हैं। यह ग्रन्थ छप कर आपके सामने पहुंच रहा है, जिसके लिये पूर्णब्रह्म और सद्गुरु कृपाका उपकार और बारम्बार प्रणाम है।

यस्य ज्ञानलवानन्दो निजानन्द–प्रकाशकः।
विजयतां निजानन्दः प्राणनाथ–प्रकाशदः॥

विनीत—
कृष्णदत्त वाजपेयी

Shri Prannath Ji Pustkalay

॥ श्री परब्रह्मणे नमः ॥

अथ विराट-पट दर्शन

अनन्ताऽखण्डरूपाय चिदानन्दघनाय वा[1] ।
स्वलीलाऽद्वैतसिद्धाय पूर्णब्रह्माऽऽत्मने नमः ॥

अवतरण—

अध्यात्म तत्त्व नितान्त अपेक्षित (आवश्यक) वस्तु है। अध्यात्म तत्त्व को जाने बिना उसकी महिमाको नहीं ग्रहण किया जा सकता। अध्यात्मतत्त्व ही एक ऐसा पदार्थ है जो त्रिकालाबाध्य सर्वतोमुखी समुन्नतिकी ओर मनुष्य को अभिमुख कर सकता है। परन्तु खेद है कि आज के युग प्रभावने महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक स्वरूपको भूलाकर जन समाजका महान अहित सम्पादन किया है, जिसके परिणाम स्वरूप असंख्य मानव समाज अपने जीवनके क्षण पूरे किये बिना अकालमें ही कालके ग्रास बनते चले जा रहे हैं।

मानव जीवन के साथ अध्यात्मतत्त्व का कितना महत्त्वपूर्ण और अविभाज्य सम्बन्ध है, इस बातको हमारे पूर्वज अध्यात्म-तत्त्वदर्शी महर्षियोंने साक्षात्कार करके उसे जीवनमें उतारा था, इतना ही नहीं, प्रत्युत उसके गौरवपूर्ण लाभको अपरोक्ष सिद्ध कर दिखाया था।

मानव समाजके अन्तर्गत सुख और शान्तिके एकमात्र उपादान—आध्यात्मिक तत्त्वोंका जबतक विकास और बृंहण होता रहा, हमारा अतीत काल

---

[1] यहां पर 'वा' शब्दका प्रयोग विकल्पार्थ किम्वा पृथग्भावके अर्थमें नहीं किन्तु समुच्चय अर्थमें विवक्षित है। वा शब्द के विविध अर्थ होते हैं। यथा—

विनिवेधे पृथग्भावे वा विकल्पोपमानयोः ।
समुच्चये चैव पापे च वाक्यारम्भ प्रसिद्धयोः ॥ (वैजयन्ती कोश)
"अथापि समुच्चयार्थे भवति" (निरुक्त १-४)

Shri Prannath Ji Pustkalay

सुसमृद्ध और सुखमय बना रहा। जनसमाज के लिये आध्यात्मिक तत्त्वों का जितना कुछ उत्कर्ष और विकास सापेक्ष है, वह सुरक्षित रहेगा तभी तक समाज सुसमृद्ध और सुखी दृष्टिगोचर होगा एवं ऐहिक तथा पारलौकिक जीवन की कलियां विकसित होती रहेंगीं, यह प्रकृति सिद्ध और सुनिश्चित है ।

आजका मानवजीवन भौतिक वादके कमाल की कल्पना, विषयवासना, उपभोगोंकी लिप्सा, कृत्रिम-चमक दमक, कल्पित सौन्दर्य की लालसा और महत्त्वाकांक्षाके मोहपाशमें नियंत्रित हो चुका है। कलुषित कामना और दूषित विचारोंकी शृंखलाके कारण अध्यात्म तत्त्वके विश्वासको खोकर अवश्यंभावी विनाशकी ओर स्वतः आकर्षित होता चला जा रहा है। भौतिक वादके ही कारण विश्वमें भयंकर युद्ध, राजविप्लव, भूतद्रोह, असद्भावना, समाजविद्रोह, असत्कर्म और शोषण पल्लवित होते चले जा रहे हैं।

भौतिक वाद शुभ परिणाम शून्य है, तथापि उसमें आकर्षण और मन मोहकता कूट कूट कर भरी हुई है। यही कारण है कि— तथ्य ज्ञानसे अनभिज्ञ साधरण बुद्धिवाले मनुष्य उसके पीछे पागल बनते चले जा रहे हैं।

"आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः"

"तत्काल रमणीय लगनेवाले विषय परिणाममें दुःखद प्रतीत होते हैं" प्रायः सब मनुष्य इस बातको नहीं समझ पाते कि—प्रलोभन और भोग वासना का दुष्परिणाम[1] हमें किस गर्त्त में अनन्त कालके लिये जा पटकेगा ।

---

[1] भोगवासना, अधिक सौन्दर्य, कल्पित भावना के सुखका व्यामोह, अधिक व्यसन और भोगों के साधनों की भरमार—यही तो शीघ्र विनाश के कारण हैं। बगीचा के पुष्पों को तो प्रायः सभीने देखा होगा। वे फूलने भी नहीं पाते, उनका सौन्दर्य पूर्णतया विकसित भी नहीं हो पाता कि— उनके विनाश की नौबत आ पहुंचती है। किसी कविने ठीक कहा है **"ओ ! गुलशन की मुंदी कली ! फूल बनकर पछताओगी। तेरी हौंस न पूरी होगी, करकमलों में मुरझाओगी।"**

विश्व भी एक उपवन है, इसमें अधिक फूलना ही अपराध है। जो महात्मा पुरुष इस तथ्यसे परिचित रहे हैं वे तो सदाकाल हमें भौतिकवाद के परिणामशून्य मिथ्या सौन्दर्यसे बचकर जीवन व्यतीत करने की सम्मति प्रदान करते आये हैं ।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ (भाग० ९-२०-१४)

Shri Prannath Ji Pustkalay

भौतिकवादके प्रवाहमें वहनेवाले इसके परोक्ष परिणामों से अनभिज्ञ ०यक्ति कुछ भी क्यों न कहें ! भौतिक अभ्युदय से अपना अभ्युदय मान लें अथवा उसके पीछे जीवन को निछावर कर खाली हाथ चले जावें किवा भौतिक साधनोंमें तत्पर बनते जावें! परन्तु ठंडे दिमागका कोई भी विवेकशील मनुष्य इस वात को भली भांति समझ सकता है कि—मनुष्य जीवन के भौतिक साधन ज्यों ज्यों वढ़ते जा रहे हैं, हमारा प्राकृतिक सुख हमसे छिनता जा रहा है। एवं हमें थोड़े ही समयमें अनुभव होगा कि—हम एक ऐसे रेखावृत पर जा उपस्थित होनेवाले हैं —जहांपरसे मानव के संहार, सर्वनाश और सदा के लिए जीवन बलिदान के अतिरिक्त कुछ भी हाथ लगने वाला नहीं है।

वर्तमान युग के नेता और सत्तासीन पुरुषों के मस्तिष्क में एक दूसरी हवा सवार है, जिसके झोंकोंमें पड़कर वे वास्तविक उन्नति के साधनोंको कोशों दूर छोड़ते चले जा रहे हैं। इतना ही नहीं प्रत्युत् विनाश की ओर भी अग्रसर होते जा रहे हैं। महात्मा गान्धीने कुछ अंशोंमें इस वातका अनुभव किया भी तो उसे वे भौतिक वादकी स्टेज (स्तर) पर लाना चाहते थे, अतः जितनी सफलता मिलनी चाहिये थी न मिल सकी। और अब "कात्युं वीछ्युं कपाशोयुं थाय" काता बुना सब कपास का कपास रह गया।

शीतकाल में मनुष्य गरम वस्त्रोंके संग्रहको नितान्त आवश्यक समझने लगता है, यह वात प्रत्यक्ष सिद्ध है, परन्तु उसे अतीत कालका ध्यान अवश्य रखना चाहिये। अतीतमें जिस उष्णताप को छोड़कर वह शीतऋतु में आपड़ा है, वहां भी उसे आवश्यकता तो उष्णताप की ही है। कारण, बिना उष्णतापके न तो मनुष्य स्वस्थ रह सकता है और न उसे भोजन आदि ही सुलभ हो सकते हैं। क्योंकि अन्न, औषधि, फूल, फल, जल,आदि यावत् पदार्थ हैं, वे सब उष्णतापसे अनुकूल वन सकते हैं। शीतके वाद फिर भी उष्णताप आयेगा और वह हमें पाचक, दाहक और प्रकाशक आदि अनेक रूपों में उपयोगी होगा। यह उष्णताप हमारी आन्तरिक स्वस्थता है न कि वाह्य साधन।

अर्थ—जिस प्रकार अग्निमें आहुति डालनेसे अग्नि और भी सुदीप्त होती चली जाती है, उसी प्रकार—मानवकी भोगेच्छा विषयोंके उपभोगोंसे शांत होनेकी अपेक्षा अधिक वढ़ती जाती है। मनुष्य भोगोंको भोगने जाता है, परन्तु स्वयम् ही भुगत जाता है। भौतिकवादके इस तथ्य को अन्तिम समय समझकर दुखी दशामें कालका ग्रास वन जाता है। कभी कभी तो अचानक ही हृदय की गति रुक जानेसे मृत्यु को भी प्राप्त हो जाता है और यह सोचने भी नहीं पाता कि—एकत्रित ऐश्वर्य राशिका परिणाम क्या हुआ। निदान सब कुछ यहीं छोड़कर खाली हाथ चला जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

बस, इसी प्रकार आज हम युगप्रभाव के कारण कम्पित हो रहे हैं, परन्तु विश्वास रखना चाहिये कि— सुख और शान्ति प्राप्ति का आधार भौतिक साधनों पर नहीं अपितु अध्यात्म मार्ग के साथ केवल— स्वार्थ त्याग, आदर्शजीवन, दया, दान, तप, तितिक्षा, अहिंसा आदि गुणों के उत्कर्ष पर निर्भर है। यह सनातन सत्य है कि— असत्कर्म, असद्भावना और शोषण—ये सभी समष्टि व्यष्टि रूप से दैवीकोप के कारण बन जाते हैं और हमारे लाखों उपाय करने पर भी कलह, क्लेश, उपाधि, व्याधि, मान-अपमान आदि अनेक प्रकारसे हमें आ घेरते हैं। यही कारण है कि— भौतिक साधनों के उपलब्ध होते हुए भी हम स्थायी रूप से सुख शान्ति का अनुभव नहीं कर पाते।

आज करोड़ों सुख साधनोंके बढ़ जाने पर भी प्राकृतिक पदार्थों का अभाव—सा होता चला जा रहा है। आजसे २० वर्ष पूर्व भारत के प्रत्येक नगर और देशों में कपास पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होता था। आज उसकी मात्रा कितनी कम हो चुकी है, इस बातको जरा किसानोंसे पूछ देखिये। उत्तर मिलेगा क्या करें! कई बार बोया पर अब होता ही नहीं, अतएव उसको बोना ही छोड़ दिया।

घी का भी यही हाल है। आजसे २० वर्ष पूर्व तक प्रत्येक बड़े बड़े नगरों और गांवों में देशी घी का ही प्रयोग होता था। विवाह—शादी, जनेऊ, जन्म, कथा, भागवत, मेला-उत्सव, मरे-जिए, जिधर देखिये उधर ही, देशी घी प्रयोग में लाया जाता था। शहर के दुकानदार मिठाई आदि में भी देशी घी डालते थे। फिर भी नगर और बाजारों में लाखों मन घी प्रचुर मात्रा में, चाहे जहाँ से खरीदा जा सकता था।

आज विवाह—शादी, मरे-जिए, मेला-उत्सव, यज्ञ आदि में भी अधिकतर वेजीटेबल घी खर्च होने लगा है। दुकानदार भी वेजीटेबल से ही काम चला रहे हैं। अधिकतर खाने में भी वेजीटेबल उपयोग में आने लगा है। इस प्रकार देखा जाय तो देशी घी का खर्च बहुत कम हो गया है। फिर भी देशी घी ढूंढ़े नहीं मिलता और पर्याप्त मात्रा में चाहें तो है भी नहीं।

यही दशा फलों की और अन्न की भी हो रही है। आज से १५ वर्ष पहले तक आमों की फसल इतनी आती थी कि—बगीचों में आम पड़े पडे सड़ा करते थे। यू.पी. के अवध प्रान्त में तो गाय बैल और गधे तक आम खाते खाते इतने अघा जाते थे कि—आमों को सूंघ २ कर चखते थे। तब कहीं इच्छा हुई तो खा लिया, नहीं तो पड़े सड़ रहे हैं। किसान लोग आमों के रस को निकालकर सुखा लेते थे और वह (आमरस—अमावट) लाखों मन बाजार में चार-पाँच रुपया मन बिकता था। आज आम के वृक्ष कम नहीं, बगीचों की कमी नहीं, किन्तु अब वे उतना फलते नहीं। जिस वृक्ष पर १० मन आम आते थे। अब ५ मन भी, नहीं लगते। कभी कभी तो लोग चटनी के लिये तरस जाते हैं और आम नहीं मिलते। यह

Shri Prannath Ji Pustkalay

सब क्या है ? इसीका नाम है दैवी प्रकोप ! !

अन्नकी भी यही दशा है । आज से कुछ वर्ष पहिले तक देश में अन्न इतना अधिक था कि मारा मारा फिरता था । दश-दश, पांच-पांच सेर तो लोग प्रतिदिन गाय बैल और घोड़ा आदि जानवरों को खिला दिया करते थे । आज घोड़ा बैलों की बात छोड़ दीजिये, मनुष्यों को भी पेटभर अन्न नसीब नहीं होता । जमीन पहिले से अधिक प्रमाण में बोई जाती है,बंजर ऊसर भी बोये जाने लगे। पटवारी लोगों के खसरा खतोंनी देखें तो पता चलेगा कि जमीन करोड़ों वीघा अधिक जोती जाने लगी है। गोचर ऊसर आदि भी जोते गए फिर भी अन्न पेटभर प्राप्त नहीं हो रहा हैं । आज कई वर्ष होने आये अन्न का अभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता ही चला जा रहा है।

कुछ जेंटिलमेन सभ्य और न्यूज पेपरों के पंडित कहने लगते हैं : पंडित जी ! आपको पता नहीं कि-भारत वर्षकी जन संख्या कितनी बढ़ चुकी है; इसलिये खाद्य पदार्थों का अभाव प्रतीत होने लगा है।

पर इनसे पूछा जाय कि—अरे जनाव ! ४० करोड़ की संख्या को देख कर ही अधिक अधिक चिल्लाने लगे । इस भारतवर्ष के एक कोने में ५६ करोड़ यादव पड़े थे । आज से ५ हजार वर्ष पहिले भारत की जनसंख्या २ अरब ५० करोड़ थी । जितनी आज सारे भारतकी जन संख्या है इससे कहीं अधिक तो महाभारत और जरासिन्ध आदिके युद्ध में केवल वीर योद्धा मर चुके थे।

जब ढ़ाई अरब प्रजा भारत में वसती थी कभी अन्न और फलों की इस प्रकार कमी नहीं रहती थी। दूध का अभाव नहीं था। आज ४० करोड़ हो जाने पर ही दूध घी का दर्शन कठिन हो गया है, और मनुष्य जीवन की आयु का दिनोंदिन ह्रास होता जा रहा है।

राजा ययाति के समय में भी भारत की जनसंख्या दो अरब से अधिक थी। हां उस समय भारत की सीमा में तुर्किस्तान, ईराक, ईरान भी शामिल ये। किन्तु उक्त देशों को संयुक्त मान लेने पर भी अभी ५० करोड़ भी नहीं हो पाते । पूर्व-काल में लाखों एकड़ जमीन गोचर थी, तथापि अन्न कम नहीं होता था।

हां, तो आज खाद्य पदार्थों का इतना अभाव क्यों दिनोंदिन वढ़ता जा

Shri Prannath Ji Pustkalay

रहा है तो मानना पड़ेगा कि यह दैवीकोप[1] है। जिसके कारण रस कस सब दुर्लभ होते जा रहे हैं।

आज के युग प्रभाव ने असत्कर्म, असद्भावना और शोषण नीति को प्रोत्साहन देकर जन-समाज को निकृष्ट कोटि का बना दिया है। मानव संस्कृति और आध्यात्मिक भावना के कुचल जाने के कारण हम सब शाश्वत सुख के मार्ग से पीछे हट चुके हैं। इतना ही नहीं प्रत्युत् बाह्य चमक-दमक के मोह में फँस कर भौतिकवाद पर विश्वास करने लगे हैं। परिणाम यह हुआ कि हम बहुरूपिया संस्कृति के शिकार बन गए और हमारे सामने अनेक प्रकार के दुःख और कठिनाइयों की दीवाल खड़ी हो गई है।

अब जब तक अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पकड़ते कदापि स्थायी सुख और शान्ति के भाजन नहीं बन सकते। जितने भी देश भौतिकवाद की दासता स्वीकार करने वाले थे, सबके सब विनाश के तट पर खड़े हैं। कुछ देशों ने तो भौतिकवाद का पतझड़ अपने ही सामने देख लिया, तथापि महत्त्वाकांक्षा का मोह उनका पीछा अभी भी नहीं छोड़ता।

---

[1] असत्कर्म, अनाचार, असद्भावना और शोषण ये सब दैवी प्रकोपके कारण है।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं व्यथा॥

जिस देश या समाजमें अयोग्य पुरुष गौरव पाते हैं, पूजनीय महापुरुष तिरस्कार के पात्र बन जाते हैं, वहांपर तीन प्रकारका दैवी कोप बढ़ता है: दुर्भिक्ष, मृत्यु संख्या और आधि व्याधि, अन्न उत्पन्न न हो तो उसे दुष्काल कहते हैं। अन्न उत्पन्न होता रहे और जनसमाजको यथेष्ट भोजन न मिले, उसका कष्ट भोगना पड़े तो उसे दुर्भिक्ष कहते हैं। आज भारत वर्षों से दुर्भिक्ष पीड़ित है। मृत्यु संख्या और रोग दुःख आदि का पारावार और प्रमाण नहीं रहा, घर-घर लोग दुःखी हैं। रोग ने तो नव्वे फीसदी घेर लिया है। कहीं कहीं तो शत प्रतिशत मनुष्य आधि व्याधि से आक्रान्त हो रहे हैं।

यह सब क्यों हो रहा है? दैवी कोप के कारण। दैवीकोप क्यों नहीं हटता? हमारे देश में किंवा विश्व में आज असत्कर्म, असद्भावना और शोषण अनाचार आदि बहुत अधिक प्रमाण में बढ़ते चले जा रहे हैं और उन्हें रोकने की कौन कहे, प्रत्युत् प्रोत्साहन मिलता जा रहा है। जब तक देश का शासन-सूत्र पवित्र भावना वाले पुरुषों के हाथ में नहीं आता; राजव्यवस्था भी इसे रोकने का प्रयास नहीं कर सकती। अभी तो देश विलासिता, चमक-दमक, महत्त्वाकांक्षा के मोह में फंसता चला जा रहा है। अतः इसके कल्याण के चिह्न नहीं दृष्टिगोचर होते। प्रत्युत् विनाश ही सामने आता नजर पड़ता है। तथापि हम उसे मानने को तैयार नहीं, यही हमारा नैतिक पतन है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

आजकी सभ्यताका सिद्धांत स्वच्छन्द जीवनको पसंद करता है, जिसकी तहमें छीना—झपटी, असंतोष और दलबन्दीकी नीति छिपकर बैठी हैं। जर्मनी और जापान तो सामने से गुजर रहे हैं। योरोपकी दशासे आज सारा विश्व परिचित है। जर्मनी और जापानको किसने विनाशके उन्मुख खड़ा किया? भौतिकवाद ने। योरोप क्यों रो रहा है? भौतिकवाद के अभिशापसे सताये जानेके कारण।

रूसमें तो[1] सुख और स्वतंत्रताके नामपर बन्धन और नियंत्रण ही शेष हैं। बच्चा पैदा हुआ नहीं कि वह राष्ट्रका हो गया। माता पिताकी गोद से छीन लिया गया। अब उसको माता पिता प्यार भी नहीं कर सकते। उसे पहचान भी नहीं सकते। कदाच जरूरत आ पड़े तो कहीं सीरीयल नम्बर पर से समझ लीजियें कि यह हमारी सन्तान है। सन्तान सुख क्यों छिन गया? भौतिकवाद की बदौलत! घरबार आपका नहीं, परिवार बाप का नहीं। कमाएं आप और उसे खर्च करे सरकार! भोजन वस्त्र भी दूसरे की इच्छा पर ही निर्भर हैं। आप थोड़े से जेब खर्च के अतिरिक्त कुछ भी स्वतन्त्र रूप से उपभोग नहीं कर सकते।

"सिर्फ रोटी दाल तुम्हारी, बाकी माल सरकारी।
द्रव्य भी दरबार का, घरबार सब सरकार का॥"

कितनी सुन्दर स्वतन्त्रता! जगत में चार ही चीज अधिक प्रिय देखने में आती हैं—स्त्री, सन्तान, धन और ज़मीन। इनमें से एक भी वस्तु आपकी नहीं और न आपके कब्जे की रही। क्या ही अच्छा स्वराज्य!!

महफिल है उनकी, साकी है उनका।
आंखें हैं अपनी, बाकी है उनका॥

---

[1] वस्तुतः जितने भी वाद (नाजीवाद, फासिजमवाद, सोस्लिस्ट, जनतन्त्र, प्रजातन्त्र, प्रगतिवाद, साम्यवाद) आज विश्वमें बढ़ाए जा रहे हैं वे सब स्वार्थपूर्ण चालें हैं और सबके सब शोषण, नियंत्रण और परपीड़नसे खाली नहीं एवं स्वतन्त्रताके नामपर बन्धन और शोषणमें ही अध्यवसित हैं। परन्तु सबसे भयंकर और घातक साम्यवादकी आँधी है, जिसका प्रचंड वेग सबको आत्मसात् करता चला जा रहा है। साम्यवादमें सैद्धान्तिक रूपमें सत्यका कुछ अंश अवश्य प्रतीत होता है जो बहुत कम मात्रामें है। पर वह अपने वर्तमान रूपमें तो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्मोंकी, धार्मिक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक प्रवृत्तियोंका शत्रु है। परमेश्वर, धर्म, अध्यात्मतत्त्व जप, योग, दया, उदारता, आदर्श, देशभक्ति परोपकार आदिकी इसमें गन्ध भी नहीं है। हिंसा, क्रुरता, नियंत्रण आदि इसके अस्त्र-शस्त्र हैं। स्टीमरोलरकी तरह समस्त धर्मों और धार्मिक संस्कृतियों के मन्दिरों को नष्ट प्रायः करना इसका लक्ष्य है। जो भारतियों को विशेष रूप से घातक है।

(पुस्तक लिखने के समय स्टालिन के रूस की हालत कुछ ऐसी ही थी—सम्पादक)

Shri Prannath Ji Pustkalay

स्त्री भी दिनभर काम करे और मरद भी। वच्चे तो आपके हैं ही नहीं। न विवाह-शादी की खुशियां हैं न भाई वन्दी का स्वागत। न कोई किसी का सगा-सम्वन्धी, न कुटुम्व परिवार। न अपनी तवीयत (इच्छानुसार) है, न घर पर कभी आराम करने का मौका, आराम तो वीमार हो जाने पर डाक्टर की कलम की नोंक पर है। यदि उसने लिख दिया कि—हां, इसको आराम की आवश्यकता है, तो अस्पताल में दाखिल हो जाइये। भला! अस्पताल के कुहराम में भी किसी ने आज तक आराम देखा है?

सवके सव राष्ट्र का काम करें और सवके सव होटलों में भोजन करें। भारत में विवाह-शादो में कभी सौ दो सौ मनुष्यों को एकत्रित भोजन करना पड़ता है। हज़ारों रुपया व्यय हो जाते हैं, अनेक प्रकार के पाक बनते हैं, फिर भी लोग भूखे रह जाते हैं। क्यों? इसलिये कि सवकी रुचि एक-सी नहीं होती। फिर जहां पर वारहों मास होटल में ही गुज़ारा करना हो उसकी खूवी कौन कह सके? वहां की परतन्त्रता तो अनुभव करते ही वनती है।

वर्तमान युग में रूस के साम्यवाद को लोग वहुत महत्त्व प्रदान करते हैं, जहां पर सम्पूर्ण जीवन ही नियन्त्रण में वँधा है। भारत में कुछ दिनों से हो अमुक चीजों पर कन्ट्रोल चला आ रहा है। थोड़ा वहुत अनुभव तो सवको हो चुका है कि कन्ट्रोल कितनी वुरी और दुःखद प्रणाली है। न शुद्ध अन्न, न शुद्ध भोजन। न भोजन के पदार्थों की सुविधा न अच्छे वस्त्र, न मनमाने मकान। एक दूसरे प्रान्त-से भी कोई सम्वन्ध ही नहीं।

वोलिये! जहाँ पर समस्त पदार्थों पर और सम्पूर्ण जीवन पर कन्ट्रोल का पंज़ा शिर पर होगा, वहां की आजादी का मज़ा कितना किरकिरा या सुन्दर होगा? यह सब रूस को क्यों करना पड़ा? भौतिकवाद के कारण। क्योंकि—भौतिकवाद में छीना-झपटी की सोमा नहीं रहती। मनुष्य अपने कर्तव्य पथ से च्युत होकर ऐसे निम्न स्तर पर आ जाते हैं कि—जहां पर सुख शान्ति, अच्छे विचार और सदा-चार की परिभाषा ही भूल जाते हैं एवं ऐसी विषम परिस्थिति को ग्रहण कर वैठते हैं, कि जिसके कारण दुःखों की परम्पराओं का कभी अन्त नहीं हो पाता।

यह तो केवल भौतिकवाद के कलेवर का वाह्य अर्थदोष है। आभ्यन्तर अर्थदोष तो इससे भी कहीं अधिक विस्तृत और सूक्ष्मातिसूक्ष्म (अतीन्द्रिय) हैं। जो अन्वेषण गवेषण के वहुत काल वाद पवित्र पुरुषों को ही प्रतीत होते हैं, सव साधारण को नहीं। जिस प्रकार विज्ञान के सूक्ष्म सिद्धान्त साधारण पुरुषों की समझ में नहीं आते, उसी प्रकार भौतिकवाद के सूक्ष्म दोषों को साक्षात्कृत-धर्मा महापुरुषों के अतिरिक्त साधारण मनुष्य नहीं समझ सकते।

Shri Prannath Ji Pustkalay

भौतिक वादके के बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारके अर्थदोषोंको क्रांत-दर्शी पुरुषों ने भली भांति जानकर ही उसे घातक और हेय प्रतिपादित किया है। भौतिकवाद के भीतरी दोषोंको साक्षात् रूप से देखनेके लिए हमें पवित्रात्मा बनना होगा। अन्यथा वे दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। शरीर, इन्द्रियां और मनकी पवित्र-तामें बड़ी शक्ति है। पवित्रताका विचार और आचरण करते करते मनुष्य एक सूक्ष्म जगत के अधिकार को प्राप्त कर लेता है और फिर उसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिणामों का ज्ञान होने लग जाता हैं। यहाँ तक कि—वह त्रिकालज्ञ बन जाता है। यही कारण है कि—विश्व में पवित्रता को उच्चतम स्थान प्राप्त है, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, आदि सभी के धर्म ग्रन्थों में पवित्रता को महत्त्व प्रदान किया है। जो देश, जाति, समाज अपवित्र है, वह कभी उत्थान व गौरव को प्राप्त नहीं कर सकता। जिसका मन गन्दे पदार्थों के सेवन को पसन्द करता है, जो अपवित्र विषयों का सेवन करता है, जो अपवित्र (गन्दे) देशों में भ्रमण करता है, वह कभी सत्परामर्श नहीं ग्रहण कर सकता और न उसके हृदय में सत्य सिद्धांतों का स्फुरण ही हो सकता है।

अध्यात्म जगत का तो यह विश्वास है कि—विश्व का अस्तित्व ही संकल्प और ध्यान पर निर्भर है। सभी विषय संकल्प और ध्यान जनित हैं। जैसा तुम्हारा संकल्प तथा ध्यान होगा, जैसा तुम चिंतन करते रहोगे, परिणाम में वही तुम्हारे सामने उपस्थित होता जायेगा। जिस प्रकार हम स्वप्न में अपने ध्यान और संकल्प के बल पर अनन्त पदार्थों को सामने उपस्थित पाते हैं, उसी प्रकार जाग्रत में भी हम अपने ध्यान और संकल्प के वल पर ही विषयों को ग्रहण कर पाते हैं। अन्तर केवल इतना है: 'स्वप्न क्षणिक है अतः क्षणमात्र में ही सब कुछ उपस्थित हो जाता है: और जाग्रत क्षणिक नहीं किन्तु कालकृत साध्य है, अतः उसे देश काल की प्रतीक्षा सापेक्ष है।'

जो जितना पवित्र होगा, उतना ही सूक्ष्म तत्त्व का ज्ञाता और अध्यात्म में श्रद्धा निष्ठ होगा। अध्मात्म जगत में प्रवेश करने वाले को पवित्रता अत्यावश्यक है। आत्मिक ध्यान परमात्म—प्राप्ति का सोपान (सीढ़ी) है। असत्पथ को त्याग कर सत्पथ को पकड़ना, यह सद्भावना की सीढ़ी द्वारा ही सम्भव हो सकता है। महापुरुषों ने इस सीढ़ी को पकड़ा और ऊपर पहुंचे हैं। प्रत्येक पुरुष को कभी न कभी अपने घर पहुंचना होगा। देर अवेर चाहे जो हो पर अन्तिम समय सब को वहीं का बनता है।

वस, विलम्ब केवल अज्ञान के चक्कर का है। भ्रमरी कीट को चिन्तन के बल-पर अपना रूप प्रदान करा देती है। क्या मनुष्य ध्यान और धारणा के बल पर अपने अध्यात्म स्वरूप को नहीं प्राप्त कर सकता? पर देर तो केवल निश्चयपूर्वक पथावलम्बन की है। विश्वास और सत्य के वल पर वह आगे आगे बढ़ सकता है। ये दोनों तारतम्य ज्ञान के हृदयगत होने पर ही प्राप्त होते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अध्यात्मवाद

पूर्वज महर्षियों ने अपनी अप्रतिहत योगशक्ति के द्वारा विश्व के सूक्ष्माति-सूक्ष्म और गूढ़ाति गूढ़ रहस्यों को देखा और पुनः पुनः परीक्षण किया। वस्तुतः जब जगत के घटना–चक्र का मूल कारण–पुनर्जन्म, परलोक वास और परमात्मा की अद्वितीय सत्ता के केन्द्र को ही पाया, तब उसके केन्द्रीभूत अपेक्षित विषयों को प्रत्यक्ष-रूप से प्रस्तुत कर जनसमाज को अनुगृहीत किया। इसी का नाम है अध्यात्मवाद। अध्यात्मवाद का यह परिष्कृत रूप आज का नहीं किन्तु १ अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४९ हजार ५२ वर्ष पुराना है। इसके द्वारा करोड़ों वर्ष पर्यन्त विश्व में सुख–शान्ति ने स्थायी रूप से निवास किया।

बस, उपरोक्त इन्हीं तीनों–पुनर्जन्म, परलोकवास और परमात्मा के अस्तित्व का नाम ही आध्यात्मिक विज्ञान है। उक्त तीनों के कार्यों की अनुकूलता के बिना, उक्त तीनों के अपेक्षित गुणोत्कर्ष के बिना, लाखों बार सिर पटकने पर भी विश्व में स्थायी उन्नति और शान्ति का साम्राज्य नहीं टिक सकता।

संप्रति बड़े–बड़े पाश्चात्य डाक्टरों ने और वैज्ञानिकों ने एवं धुरन्धर फिलासफरों ने भी अपनी अनुसन्धान पद्धति के बल पर और अन्वेषण के आधार पर पुनर्जन्म और परलोक वास को मान लिया है एवं परमात्मा की अद्वितीय सत्ता को भी स्वीकार कर चुके हैं। तब उनके अनुयायी चेला चापर, मास्टर- शिष्टर भी थोड़े दिन में मानने लग जावेंगे, यह तो सुनिश्चित है।

भारतीय प्रजा तो करोड़ों वर्ष पूर्व ही इस तथ्य को सब प्रकार से सत्य मान चुकी थी। बल्कि लाखों महर्षियों ने इन सब बातों को साक्षात्कार करके भी बतला दिया था। पुनर्जन्म के तो लाखों उदाहरण आज भी मिलते चले जा रहे हैं। पर इतने दिन मगज–पच्ची करने के अनन्तर उन्हें अब कहीं यह समझ पड़ा कि पुनर्जन्म होता है। बस, पुनर्जन्म होता है इस बात को मान लेने के साथ ही अध्यात्मवाद का घटना–चक्र अपने आप समझ में आने लग जाता है और यह स्पष्ट मान लेना पड़ता है कि—

जगत की सुदृढ़ स्थिति और सुख शान्ति–भौतिकवाद, विज्ञान और परमाणु (Atom) तत्त्वों के अनुसन्धान पर नहीं, प्रत्युत परस्पर प्रेम, दया, क्षमा, स्वार्थ त्याग, परोपकार, अहिंसा,आदर्श जीवन आदि धार्मिक तत्त्वों के गुणोंत्कर्ष पर निर्भर है। और ये ही सब उस (लौकिक पारलौकिक सुखशान्ति) के आधार स्तम्भ हैं। वैयक्तिक

Shri Prannath Ji Pustkalay

जीवन से लेकर राष्ट्र की व्यवस्था तक में इन्हीं मूल तत्त्वों को किसी न किसी रूप में ओतप्रोत पाते हैं। सदाचार और सद्विचार ही अभ्युदय का सृजन कर सकते हैं। लौकिक पारलौकिक सुखों को हस्तगत करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि—हम अपने जीवन में उपरोक्त गुणों का उत्कर्ष दिन-प्रतिदिन बढ़ाते रहें और उसकी विशुद्ध शिक्षा का प्रचार भी अपनी भावी प्रजा के लिये पर्याप्त मात्रा में चालू करें। भारतवर्ष के पूर्व ऋषियों ने इस तथ्य को भलीभाँति जीवन में उतारा था। जिसके परिणामस्वरूप भारत की २ अरब प्रजा कभी दुखी नहीं रही। १ अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४९ हजार ५२ [2] वर्ष बीत चुके, भारत सभी स्वर्गीय सुखों का अनुभव और उपभोग करता रहा। थोड़े वर्ष हुए कि भारत की दैवी सम्पत्ति का ह्रास होने लगा। जिसके परिणामस्वरूप इसे यवनों के असह्य अत्याचारों का शिकार बनना पड़ा। यवनों से छुटकारा पाया तो विदेशी शासन में बंध गया। यह भारत का दुर्भाग्य कहा जा सकता है, या इसे परिवर्तन ऋतु का पतझड़ कह लीजिये। कुछ भी कहो, भारत ने अपने किये का बहुत कुछ दण्ड भोग लिया है। अब तो कम से कम अपनी खोई हुई दैवी सम्पत्ति का पश्चाताप होना चाहिये और पूर्वजों के पथ का अधिकारी बनकर पुनः अपने जीवन को समुज्वल बनाना चाहिये। भारत का एक समय था कि—

एतद्देश-प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ (मनु० २—२०)

भारतवर्ष के अग्रजन्मा विद्वानों से संसार के सभी मानव अपने अपने चरित्रों की शिक्षा लिया करते थे। जीवन का सार्वभौम अभ्युदय आध्यात्मिक तत्त्वों पर ही निर्भर है। इस सिद्धांत को सबने एक स्वर से कबूल करते हुए ईसा, मूसा मुहम्मद आदि पैगम्बरों ने भी अपने मजहबी ग्रन्थों में भारतीय अध्यात्मवाद की छाया ली। यहाँ तक भारतीय संस्कृति समुज्वल हो चुकी थी कि—क्रिश्चियन, यहूदी, नसारे, मुसलमान, आदि सभी ने अध्यात्मवाद को अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है।

---

1 यह संख्या सृष्टि सम्वतकी है। विश्वके प्रारम्भसे आजतक इतने वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। हमारी प्राचीन संस्कृति में इतना सौन्दर्य, इतना महत्व निहित है कि उसे कभी किसी के अनुकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। पर दुःख तो केवल इस बात का है कि—आज की बहुरूपिया संस्कृतिने हमें अपनी संस्कृतिसे वंचित ही नहीं किया प्रत्युत विश्वासको भी छीन लिया। हमें अब तो विश्वास भी नहीं होता कि हम अपनी संस्कृति को पुनः पकड़ लें तो सुखी बन सकते हैं। हम तो आज इतनी हीन दशा को प्राप्त हो चुके हैं कि अपने गौरव को भूल कर केवल अन्य देशवालों के अनुकरण को पकड़ने में ही अपना श्रेय मानने लगे हैं। अब देखें परमात्मा इस प्रवाह को कब तक चालू रखता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

कहीं कहीं तो अनुवाद ही[1] रख दिया है। सबका निचोड़ इतना ही है कि—स्वार्थ-त्याग, परोपकार, दया, क्षमा, धैर्य, ब्रह्मचर्य, आदर्शजीवन, अस्तेय (चोरी न करना), सद्भावना, सत्कर्म, सत्य, भजन, भाव, जप तप और परमात्मा के चिन्तन आदि बातों को सभी महापुरुषों ने अपनाया है और सिद्ध कर बताया है कि—लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार का सुख उपरोक्त गुणों के उत्कर्ष पर ही निर्भर है।

भौतिकवाद के साधन—मनमोहक, आकर्षक और सुखमय प्रतीत होते हैं अवश्य, परन्तु उनका अधिक संग्रह हमें पतन की ओर ले जाकर अध्यात्म तत्त्व को भुला देता है। अतएव उसे अधिक प्रमाण में एकत्रित करना भी पाप की सीमा को स्पर्श करता है। भौतिक सुख और साधनों का उपयोग यदि आत्म-तत्त्व के झुकाव के अनुसार होगा अथवा किसी को हानिप्रद न होकर केवल जीवनोपयोगी उद्योगाश्रित होगा तो वह अध्यात्मवाद में ही गिना जायेगा। क्योंकि वह चिरस्थायी शान्ति का बाधक नहीं बनता।

इस प्रकार यह निर्विवाद स्थिर हो जाता है कि—हमारी स्थायी उन्नति का द्वार अध्यात्मवाद में है, भौतिकवाद में नहीं। भौतिक पदार्थों का संग्रह अध्यात्मवाद को पुष्ट करने के उपयोग में लाना, यही उसका उचित लाभ है। अध्यात्मवाद में पतन और विनाश की तो सम्भावना ही मिथ्या है। वह तो अभ्युदय और[2] उत्थान की ओर ही ले जाने वाला है। कुछ लोग तात्कालिक भौतिक उन्नति को ही सर्वस्व मानकर उसी को बढ़ाने में जीवन व्यतीत कर रहे हैं, पर यह उनकी भूल है। कारण—नेत्रों की रोशनी चश्मा के बल पर नहीं, किन्तु नेत्र-ज्योति के बल पर प्रकाश पाती है। चश्मा तो देश, काल अनुसार उपयोगी सिद्ध होता है। दुर्बल देश काल से उपहित नेत्रों के लिये चश्मा आवश्यक है और सफल नेत्रों की शोभा बढ़ा देता है। पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि—हम चश्मा की शोभा बढ़ाने के लालच में या मोह में पड़कर नेत्रज्योति के महत्त्व को भुला दें और चश्मा के काच पर ही दिवाने बन बैठें। एवं नेत्रज्योति के प्रकाश के बिना काच के प्रकाश के बल पर दूर का निरीक्षण करना चाहें।

---

[1] कुरानमें हजरत मुहम्मद पैगम्बरका उपदेश है कि—

" अफ जलुल ईमान उत् तो हिब्बो लिन्नसे मा तोहिब्बो लेनप्सका, व तक्र हो लहुम मा तक्र हो लेनप्सेका"

अर्थात—"सबसे अफजल, सबसेबड़ा, सबसे उम्दा मजहव यही है कि-जो अपने लिये चाहते हो, वही दूसरे के लिये चाहो, और जो अपने लिए करीह—तकलीफदेय समझते हो, उसे दूसरे के लिये भी दुखदाई जानो।" यह उपदेश महाभारत, भागवत, मनुस्मृति आदि ग्रन्थोंका अक्षरशः अनुवाद है।

[2] **यतोऽभ्युदयः निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः (वैशेषिकदर्शन)**

Shri Prannath Ji Pustkalay

बस, इसी प्रकार से इस जगत में जो कुछ सुखमय प्रतीत होता है उसके उत्थान का मूल पूर्व-संस्कार किंवा हमारे शुभ कर्मों का परिणाम है, जो अध्यात्म-वाद का ही स्वरूप है। अध्यात्मतत्त्व ही किसी न किसी रूप में हमें सुखमय प्रतीत होता है और यही सुख शान्ति का मूल है। भौतिकवाद तो बतौर चश्मा के है, जो ऊपरी शोभा बढ़ाता है और गौरवप्रद है, वास्तविक नहीं।

उपरोक्त अवतरण पर से सुतरां स्पष्ट हो जाता है कि—हमारे उत्थान और अभ्युदय का उद्गम अध्यात्मवाद में निहित है। हम सदैव अध्यात्मवाद को लेकर ही स्थायी उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं, भौतिकवाद से नहीं। परन्तु अध्यात्मवाद है क्या वस्तु ? उसका स्वरूप क्या है ? उसके सापेक्ष क्षेत्र को समझने की विशेष आवश्यकता है। जब तक उसके स्वरूप को न समझ लिया जाय, उसके प्रति सद्भाव और श्रद्धा नहीं होती। श्रद्धा ही एक ऐसा पदार्थ है, जिसके बल पर मनुष्य शुभ-अशुभ किंवा अभ्युदय के स्वरूप को ग्रहण कर सकता है एवं अपने यथार्थ स्वरूप को पा सकता है। जब तक इसे अपने निजस्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, दुनियाँ की उधेड़बुन से प्रेमासक्ति नहीं छूटती।

अध्यात्मवाद का स्वरूप

यस्मात्सर्वमाप्नोति सर्वमादत्ते सर्वमत्ति च।
तस्मादुच्यते आत्मा इति ॥ (शांडिल्योपनिषत्)

जो सबको सब रूप से प्राप्त हो सके, सबको ग्रहण कर सके एवं जो सबको समेट लेने की शक्ति रखता हो और जो सर्वत्र फैला हो, उसको आत्मा कहते हैं। "सबको विकास की ओर ले जाना, समेटना, सबको अपेक्षित रूप प्राप्त होना, कर्मानुसार-इष्टानिष्ट, उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ आदि रूप में सबकी व्यवस्था करना इत्यादि कार्य चेतन तत्त्व का ही हो सकता हैं, अचेतन का नहीं" सबको सर्वत्र अपेक्षित स्वरूप में प्राप्त होकर सबको चेष्टा प्रदान कराने वाला सबका प्रेरक होने के कारण ही उस परमतत्त्व को चेतनात्मा माना गया है।

उपरोक्त महान तत्त्व के साथ जिसका तादात्म्य सम्बन्ध हो,जो आत्मा के बिना टिक न सके, जो आत्मा से ही जीवन पाता है, जिसमें आत्मा ओत प्रोत है, जो आत्मतत्त्व का उपबृंहण[1] करता है, उसको "अध्यात्म कहते हैं।" इस विवे-

---

[1]अथ य एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योति—रूपसंपद्य स्वेन स्वरूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति (छां ८—३—४)

Shri Prannath Ji Pustkalay

चन पर से—नीचे लिखे सभी विषयों को अध्यात्मवादमें ले सकते हैं। यथाः—

(१) जो विषय आत्माको लेकर प्रतिपादन किया जा सके।
(२) जो आत्मा के आश्रित तत्त्वको प्रकाशमें ला सके।
(३) जो तत्त्व आत्मानुबन्ध स्वरूप में अवस्थित है किंवा जिसमें आत्मतत्त्व ओत-प्रोत है।
(४) चेतन को अधिष्ठान बनाकर जिसे प्रतिपादन किया जावे।
(५) जीवात्मा परमात्मा सम्बन्धी विज्ञान।
(६) जिसमें पुनर्जन्म, परलोक आदि की सापेक्षताका निर्णय निष्कपट, सत्य और सन्नीतिके आधार पर किया जाय।
(७) चेतनके अभ्युत्थानसे विश्वशान्ति और स्थायी शान्ति, सुख आदि का प्रसव होता हैं और उत्थान और सुखशान्तिके आधार स्तम्भ (उपादान कारण) चेतन तत्त्व के गुणोत्कर्ष पर ही सब कुछ आश्रित है, इस प्रकार विश्वास होना।
(८) "आत्म" शब्दसे ब्रह्म और जीव दोनों का[1] ग्रहण होता हैं, अतएव वेद शास्त्र अथवा महापुरुषोंने उक्त आत्मतत्व पर जो कुछ भी प्रकाश डाला है अथवा डाला जा सकता है, वह सब अध्यात्म शब्दसे ग्रहण होता है।

"वेदान्त विज्ञान (फिलासफिकल नोलिज) भी मुख्यतया चेतन तत्वको ही महत्व प्रदान करता है। चेतनके अतिरिक्त जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह सब मिथ्या है, भ्रममात्र किंवा स्वप्नवत् है, उसकी सत्ता व्यावहारिकी है, उसका स्वरूप प्रातिभासिक स्वप्नवत् है, वास्तविक नहीं।" यही वेदान्त का निष्कर्ष है।

सर्वातीत परब्रह्म परमात्मा ही सबका आश्रय है। वही सब कारणों के कारणका अध्यक्ष है। वह अपनी सत्तामात्रसे सर्वत्र और शक्तिरूपसे सर्वगत एवं निजस्वरूप से परात्पर पूर्णात्पूर्ण और सर्वाध्यक्ष है। जो सम्पूर्ण लीलामय होते हुये भी सदा निरपेक्ष है। उसके अतिरिक्त अन्य सब—अक्षर ब्रह्म अथवा सर्वकारण ब्रह्म, चतुष्पाद विभूति—सत्स्वरूप, केवल, सबलिक, अव्याकृत—एवं प्रणवब्रह्म, सदाशिव, महाविष्णु आदि यावत् देव स्वरूप हैं ब्रह्म की इस स्वाप्निक लीलाके पात्र किंवा

---

[1] आत्मा द्विविधा जीवात्मा परमात्मा च। (तर्कसंग्रह)
यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह।
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्तितः॥ (श्रुति)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अध्यस्त देव हैं, जो सब उसके आश्रय में हैं और सदा सापेक्ष है। केवल एक परब्रह्म परमात्मा ही सर्वोपरि सर्वाध्यक्ष है, जो अध्यात्मतत्त्व की चरम सीमा और पूर्ण केन्द्र है। बस, केन्द्र से सम्बद्ध सभी तत्त्वों का 'अध्यात्म' शब्द से ग्रहण होता है।

अध्यात्मतत्त्व एक ऐसी विचित्र समष्टि है कि इसके अन्तर्गत निहित समस्त व्यष्टि तत्त्वों को पृथक्-पृथक् न जान लिया जाय, तब तक आध्यात्मिकवाद पर पूर्णतया विश्वास नहीं होता। एवं जब तक आध्यात्मिक स्वरूपों का अवलम्बन न किया जाय, तब तक न तो स्थायी शान्ति सुख का द्वार खुलता है और न भौतिकवाद का घातक मोह ही हटता है। इसलिये आध्यात्मिकवाद को प्रकाश और प्रचार में लाना नितान्त आवश्यक है, जिससे हम लौकिक अलौकिक सुख को ग्रहण कर सकें।

लखे पूछे चोए केर ? (तारतम वाणी)

"आत्मतत्त्व के जिज्ञासु—पूछने वाले तो लाखों हैं पर कहने वाला कौन ?" आत्मतत्व को न जानने के कारण ही आज का मानव जीवन निकृष्टतर स्तर को पकड़ता चला जा रहा है। अतएव विद्वत्समाज का कर्तव्य है कि अध्यात्म तत्व के तथ्य को अधिक समय तक उलझन में न पड़ा रहने देना चाहिये। अध्यात्मतत्व का क्षेत्र एक तो स्वभावतः ही असीम, अनन्त और अद्वैत है अथ च (और फिर) उसकी व्यापकता भी अपना एक स्वतन्त्र स्थान रखती है। उसे ब्रह्मविद[1] पुरुष ही तत्वतः कह सकता है, अन्य नहीं। क्योंकि जो पदार्थ अनन्त है, असीम और अद्वैत है, उसे अवगत करने के लिये व्यापक बुद्धि, पारिभाषिक ज्ञान और अनुगत विचारों की भी विशेष आवश्यकता है।

यस्तन्न वेद किं ऋचा करिष्यति (ऋग्वेद १—१६४—३९)

"जो अध्यात्मतत्व (परब्रह्म के अविनाशी स्वरूप) को नहीं जानता, वेद मन्त्र को लेकर ही क्या करेगा ?"

कहने का तात्पर्य यह है कि—अध्यात्मतत्त्व नितान्त अपेक्षित वस्तु है जिसके स्वरूप को यथार्थतया समझने के लिये—व्यक्त तत्त्व और अक्षर (अपर ब्रह्म) तथा अक्षरातीत ब्रह्म के अनुस्यूत और परस्पर सापेक्ष सम्बन्ध को जानने की परम आवश्यकता है। उक्त चारों—व्यक्ताव्यक्त, अक्षराक्षरातीत का विश्लेषण करना, तथा

---

[1] **नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्** (श्रुति)
"अल्पश्रुत एवं शास्त्रज्ञान के रहस्य से विमुख उसे नहीं जान सकता।"

Shri Prannath Ji Pustkalay

निर्विशेष के साथ सविशेषका और अक्षर के साथ अक्षरातीत ब्रह्म का एवं एक-एक के प्रति उनके अपेक्षित सम्बन्ध को यथार्थ वर्णन करना—यह सब तभी सुगम और सम्भव हो सकता है, जब ब्रह्म के सोपान पर्वों का तथा उन-उन सोपान पर्वों के स्वरूप का यथार्थ अनुभव हो और उन्हे पूर्णतया हृदय में उतारा गया हो। क्योंकि ब्रह्म के समष्टिस्वरूप को अवगत करने के लिये समष्टि के पृथक-पृथक व्यष्टि स्वरूप-सोपान पर्वों का परिशीलन भी प्रमाण कोटि का होना चाहिये। सोपानपर्वोंके ज्ञानके विना अध्यात्म स्वरूप का निश्चय करना अथवा ब्रह्मविषय में वोलना, अपने को धोखा देने के वरावर है।

ब्रह्म सोपान का स्वरूप क्या है ? उसके पर्व कितने हैं वे किस स्वरूप में अवस्थित हैं एवं उन्हें आध्यात्मिक दृष्टिकोण से किस प्रकार जानना चाहिये ? उक्त सबको यथार्थतया तो परमात्मा ही कह सकता है। हम सब तो ब्रह्मशक्ति द्वारा प्राप्त आलोक के वल पर ही कुछ कहने का साहस कर पाते हैं। कारण, प्रथम तो ब्रह्म तत्त्व का आध्यात्मिक स्वरूप है ही विचित्र और विलक्षण। अथ च उसके सोपान पर्वों का अथवा उसको लक्ष्य करने के मार्ग की पगथियों (पीठिका) का अनुसन्धान कर उसे आत्मानुभव में उतारना एवं उसे सर्वजनोपयोगी रूप में ढाल कर जनसमाज के समक्ष उपस्थित करना—यह सव प्रभु कृपा के बिना—मनुष्य शक्ति से नहीं वन सकता। यही कारण है कि—श्रुतियों में इसको अति दुर्लभ बतलाया है। यथा:—

श्रवणायापि वहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि वहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।

(कठोपनिषद् अ० १ वल्ली २ मं ७)

अर्थ:—(यः) जो आत्मतत्त्व (वहुभिः) वहुतों को तो (श्रवणाय अपि) सुनने को भी (न लभ्यः) नहीं मिलता। (वहवः) वहुत से विद्वान (शृण्वन्तः अपि) श्रवण करके भी (न विद्युः) नहीं समझ पाते। (अस्य) इस प्रकार के इस गूढ़ातिगूढ़ आत्म-तत्त्व का (वक्ता) वर्णन करने वाला पुरुष (आश्चर्यः) आश्चर्यमय-दुर्लभ है (लब्धा) प्राप्त करने वाला भी (कुशलः) कोई भाग्यशाली कुशल—विचक्षण पुरुष ही हो सकता है। (कुशलानुशिष्टः किसी ब्रह्मज्ञ पुरुष से इस दुर्लभ ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त कर लिया है, ऐसा (ज्ञाता) इसको जानने वाला भी (आश्चर्यः) कोई आश्चर्य—दुर्लभ पुरुष ही होगा गीता में भी [1]भगवान श्रीकृष्ण ने एसे दुर्लभ

---

[2]आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येन वेद न चैव कश्चित्॥ (गीता २—२९)

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्रतिपादन करते हुए यही स्थिर किया है कि—इस परम तत्त्व को कहने सुनने वाला कोई विरल पुरुष ही हो सकता है।

प्रपंच [1] ग्रस्त मानव जीवन के लिये इस दुर्लभ तत्त्व को कदाच परमात्मा अपनी किसी महान शक्ति के द्वारा अधिकारी पुरुषों तक पहुंचाने की कृपा कर भी दे तो भी वितण्डावादी शुष्क-तर्कवागीश उसे शुद्ध हृदयों तक नहीं पहुंचने देते। बल्कि श्री भट्टाचार्यजी के शब्दों में कहें तो—

"अबोधादन्यथा नीतः श्रुत्यर्थो बहुधा बुधैः"

बाल की खाल निकालने वाले पंडितों ने केवल तर्क और अधूरी समझ के कारण श्रुतियों के अर्थों को तोड़ मरोड़ कर कुछ का कुछ कर और भी जटिल बना दिया। इतना ही नहीं अपितु—

"विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं[2] प्रहरिष्यति" को चरितार्थ ही कर बताया, यही कारण है कि—जनसमाज अध्यात्मतत्त्व और उसके सोपान पर्वों के ज्ञान से वंचित रह गया।

अर्थ—हे अर्जुन ! इस अध्यात्म तत्व को कोई-कोई विद्वान तो आश्चार्यमय देखता है तो कोई आश्चर्य मय प्रतिपादन करता है। इसको सुनने वाला भी आश्चर्यमय (दुर्लभ) पुरुष विस्मय में पड़ जाता है तो कोई-कोई तो सुनकर भी समझ ही नहीं पाता। कहने का तात्पर्य इस तत्त्व के वक्ता तो दुर्लभ हैं ही, श्रोता भी भाग्यशाली ही बन सकता है, सब नहीं।

1 व्याकरण के अनुसार प्रकृष्ट पाँच तत्वों से बने हुये पदार्थ को 'प्रपंच' कहते हैं। भलीभांति रचित विश्व के सभी पदार्थ पंच भौतिक ही दृष्टिगोचर होते हैं। इसलिये विश्व के सभी मायाजन्य पदार्थों को प्रपंच कहा जा सकता है। प्रकृति से लेकर सभी देव, दानव, मनुष्य, कीट, पतंग, पशु आदि चेतन और परमाणु से लेकर सुमेरु पर्यन्त यावत स्थावर पदार्थ हैं, वे सभी प्रपंच के अन्तर्गत हैं। इसलिये चाहे कोई शुभ कर्मों द्वारा सबसे ऊंचे ब्रह्मा के लोक तक किंवा महाविष्णु लोक पर्यन्त क्यों न पहुंच जाय और वहां करोड़ों वर्ष पर्यन्त किंवा प्रलय पर्यन्त क्यों न सुख भोगता रहे, अन्त में उसे पुनः चौरासी लाख योनियों के चक्करमें ही आना होगा। क्योंकि—ब्रह्मलोक वैकुण्ठ, कैलाश किंवा नारायण, महाविष्णु आदि के समष्टि स्वरूप सभी प्रपंच के भीतर होने के कारण नाशवान हैं।

2 अल्पश्रुत—पारिभाषिक ज्ञानशून्य-हृदय, एक देशीय विचार पुष्ट-पुरुषों से वेद घबडाता है कि—अपरिपक्व बुद्धि, सर्वदेशीय ज्ञानको न जाननेके कारण मुझे ये लोग कहीं कुचल न डालें। वेद को कुचल डालने का मतलब है उसके विवक्षित अर्थ को छोड़कर कहीं का कहीं लगाना, जिसके कारण जनसमाज भ्रम में पड़ जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

यतो वाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह (तै० २—४)
अप्रमेयमनाद्यञ्च हेतु दृष्टान्त—वर्जितम् (श्रुति)

जो तत्त्व सनातन ब्रह्म रूप में विद्यमान है। जो प्रमाण प्रमेय के पर है। हेतु दृष्टान्तों द्वारा जो नहीं कहा जा सकता है। जिसे समझने में मन सहित वाणी पीछे हटती है, जो तत्त्व दुर्ज्ञेय और अगम्य है, उस परमतत्त्व को तर्क की कर्कश कसौटी पर तुलना कर इदं इत्थं' (इतना और ऐसा) कहना चाहो अथवा मीमांसा के मिश्रित मसाले के बल पर अवगत करने का दावा करने लगे तो वह और भी जटिल बनता जायेगा। युक्तिवाद और बुद्धि बल से तो वह और भी कठिन प्रतीत होने लगता है।

उपरोक्त कठिनाईयों से थक कर ही श्री शंकराचार्यजी ने उसे अनिर्वचनीय कहकर पीछा छुड़ा लिया। श्री वल्लभाचार्य जी ने विरुद्ध धर्माश्रय कहकर सन्तोष मान लिया। व्यासादि महर्षियों ने तो सहस्रों वर्ष पूर्व ही कह दिया था कि—"तर्काऽप्रतिष्ठानादप्यन्यथाऽनुमेयमिति" तर्क बुद्धि से काम नहीं चल सकता। तर्क से समझने लगें तो "विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्" कुछ का कुछ हो जाता है और कहते सुनते नहीं बनता। न्यायदर्शन के (तत्कारित्त्वादहेतुः ४—१—२१) सूत्र पर भाष्य करते हुए वात्स्यायन मुनि ने भी इस तथ्य को निम्न प्रकार से स्वीकार किया है।

"बुद्ध्यादिभिश्चात्मलिङ्गैर्निरूपाख्यमीश्वरं प्रत्यक्षानुमानागम विषयातीतं कः शक्त उपपादयितुम् ॥"

जो नैयायिक तर्क के बिना कदम रखना पाप समझते हैं, वे भी ईश्वर आदि अचिन्त्य पदार्थों को तर्क से समझने की अक्षमता स्वीकार करते हैं। यद्यपि—

"न्यायचर्चेयमीशस्य मनन—व्यपदेशभाक्" (कुसुमांजलि १—६)

उदयनाचार्य ने अपनी उक्त कारिका में तर्क चर्चा को भी वेदादि शास्त्रों के मनन के समकक्ष मानते हुए लिखा है कि—"यदि तर्क के द्वारा भी ईश्वर को सिद्ध न किया जा सका तो नैयायिकों का श्रम ही निष्फल हो जायेगा" परन्तु यह प्रौढ़वाद मात्र है। यही कारण है कि वात्स्यायन ने उसे महत्त्व नहीं दिया। महाभारत में भी लिखा है कि—

अचिन्त्याः खलु ये भावा न ताँस्तर्केण साधयेत् ।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ (महा० भीष्मपर्व ५-१२)

जो भाव अचिन्त्य हैं, उनको तर्क के द्वारा नहीं जान सकते। प्रकृति से

Shri Prannath Ji Pustkalay

पर जो तत्त्व है उसे अचिन्त्य कह सकते हैं। प्रकृति से पर जितने भी भाव हैं प्रायः वे सब चेतन के स्वरूप में अन्तर्निहित हैं। बस यही कारण है कि-जीव, ईश्वर और ब्रह्म ये तीनों ही अचिन्त्य हैं, अतः इन्हें तर्क के द्वारा नहीं जान सकते।

इस भाँति सभी आर्ष ग्रन्थ अध्यात्म विषयमें तर्क को अयोग्य ठहरा चुके हैं। कारण कि—तर्कके द्वारा आत्मतत्त्वको समझने लगें तो कुछ का कुछ हो जाता है, और हम लक्ष्यसे बहुत दूर पृथक् जा निकलते हैं। 'बनाने बैठे गणेशजी और बन गया बन्दर' वाली कथा चरितार्थ हो जाती है।

अतएव इस रहस्यको समझनेके लिये "तारतम्येन जानाति सच्चिदानन्द लक्षणम्" तारतम्य ज्ञानकी शरणमें जाना होगा। क्योंकि–क्षर, अक्षर, व्यक्त, अव्यक्त, अक्षरब्रह्म, परब्रह्म, एवं ब्रह्मकी चतुष्पाद विभूति, जिसके अन्तर्गत अव्याकृत, सबलिक केवलब्रह्म, सत्स्वरूप–इन चारों पादों के स्वरूपों का पृथक्-पृथक् सन्निवेश है। उन सबका विश्लेषण और स्वरूप निश्चय तारतम्य ज्ञान के बिना नहीं बन सकता।

यह स्मरण रहे कि—वेद शास्त्र अपरा विद्या है जब तक इसके साथ पराविद्या और ब्रह्मविद्या दोनों को न जोड़ दिया जाय, तब तक अपरा विद्या (वेदशास्त्र के ज्ञान) का रहस्य नहीं खुलता। अतएव नवरंग स्वामी लिखते हैं कि—

ना खुले अकेले वेद से, ना अकेले तारतम।
वेद तारतम जब मिलें, खुले अन्दर का मरम॥

विद्या को महर्षियों ने तीन कोटियों में खुले विभक्त कर उसके पृथक्-पृथक् क्षेत्र भी निश्चित कर दिये हैं। जिससे त्रिविध (क्षर, अक्षर, अक्षरातीत) तत्त्वों को समझने में किसी प्रकार का विक्षेप न पड़ने पाये।

कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति। तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्तिपरा चैवाऽपरा च॥ (मुंडक १-१-४)

महर्षि शौनक अंगिरा से पूछते हैं कि–भगवन्! किसके विज्ञान से सब कुछ जान लिया जाता है? इसके समाधान में अंगिरा ने कहा—हे शौनक! ब्रह्म को जानने वाले महर्षियों का कहना है कि जानने योग्य दो विद्याए हैं–एक तो परा और दूसरा अपरा।

Shri Prannath Ji Pustkalay

उन दोनों में से जिसके द्वारा लोक, परलोक सम्बन्धी भोगों का तथा उनकी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, जिसमें उपभोगों के प्रकार तथा उपभोगों की सामग्री एवं उनकी स्थिति आदि का प्रतिपादन है, उसे अपरा कहते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद और शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द, ज्योतिषादि सभी अपरा विद्या हैं। अर्थात् चारों वेद और छः वेदाङ्ग इन दस का नाम अपरा विद्या है। इनमें अधिकतया लौकिक साधनों का ही वर्णन है। स्वर्ग, नरक और लोकोपयोगी साधनों के ध्येय में सीमित ज्ञान का नाम 'अपरा' विद्या है। और जिसके द्वारा अविनाशी अक्षर ब्रह्म को तत्त्वतः जाना जा सके उसे 'परा' विद्या कहते हैं। उक्त परा, अपरा से भी विशेष महत्वपूर्ण एक तीसरी और विद्या है जिसे ब्रह्मविद्या कहते हैं। इसी ब्रह्मविद्या के द्वारा पूर्णात्पूर्ण सर्वातीत परब्रह्म परमात्मा जाना जाता है। परन्तु काल के प्रभाव से आज इसके ज्ञाता बहुत कम देखने में आते हैं।

"स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्या-प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ-पुत्राय प्राह।
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्" (मुंडक १—१)

"सृष्टि के आरम्भकाल में ब्रह्मा ने जेष्ठ पुत्र अथर्वा को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया था। अथर्वा ने उसको अङ्गी (अंगिर) ऋषि को दी। अङ्गी ने भरद्वाज को और भरद्वाज ने अंगिरा को प्रदान की, पराविद्या और ब्रह्मविद्या दोनों ही अध्यात्म तत्त्व को अवगत कराने वाली हैं। परा विद्या से अपर ब्रह्म (अक्षर तत्त्व) का ज्ञान होता है और ब्रह्मविद्या के द्वारा अपरब्रह्म (अक्षर) और परब्रह्म (अक्षरातीत) दोनों स्वरूपों का पूर्णतया ज्ञान होता है। एवं अपरा विद्या केवल स्वर्गादि साधन सापेक्ष ज्ञान को ही प्रतिपादन करती है। यही कारण है कि—वेद शास्त्र के विद्वान बहुधा अपरा में ही अपने को कृतार्थ मान बैठते हैं। जब परा और ब्रह्मविद्या को जान ही नहीं पाते तब उसके लाभ से वंचित रह जाना स्वाभाविक है। बस, यही त्रिविध भेद—रहस्य अपेक्षित ज्ञान है, जिसके द्वारा मनुष्य अति दुर्लभ उत्तम गति को प्राप्त कर सकता है।

ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप और उसकी महिमा को तत्त्वतः जानने के लिये हमें ब्रह्म के अन्तर्गत कितने सोपान पर्व हैं, उनकी क्या स्थिति है? यह भी जानना आवश्यक है और यह सब यथाक्रम तभी जाना जा सकता है जब तारतम्य ज्ञान (ब्रह्मविद्या) का पूर्णतया अनुभव हो चुका हो। परन्तु केवल तारतम्य ज्ञान से भी काम नहीं चलता, उसके लिये शास्त्रीय ज्ञान की भी आवश्यकता होती है। जब तक शास्त्र ज्ञान और ब्रह्मज्ञान (परा विद्या) के परस्पर अपेक्षित समन्वय का तारतम्य समझ मे न आये, शास्त्र का ज्ञान भी अधूरा ही बना रहता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

" उत्तमा तत्त्व—चिन्तैव मध्यमं शास्त्र—चिन्तनम्"

शास्त्र ज्ञान के द्वारा हमें वांच्छित वस्तु के दर्शन नहीं हो पाते, केवल पथानुशरण का संकेत प्राप्त होता है। वस्तु प्राप्ति तो केवल ब्रह्म विद्या के द्वारा होती है। परन्तु ब्रह्म विद्या को तत्त्वतः जानने के लिये तारतम्य ज्ञान की शरण गए विना छुटकारा नहीं। तारतम्य ज्ञान में ही यह शक्ति है कि—वह ब्रह्मतत्त्व को हस्तामलकवत् गम्य और अनुभव योग्य वना देता है।

श्री मन्निजानन्द सद्गुरु ने इस तारतम्य ज्ञान को पाकर सव कुछ प्रत्यक्ष कर बताया था। ब्रह्म के [1] स्वरूप को तथा ब्रह्म के सोपान पर्वों को यथार्थ पृथक्—पृथक् वर्णन कर मध्यम अधिकारी तक के लिये अनुभवगम्य बना दिया था। आज भी तारतम्य ज्ञान में अद्वितीय शक्ति भरी है, परन्तु उसे साक्षात्कार करने की आवश्यकता है।

अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरताम्।
आपातालनिमग्न—पीवरतनुः जानाति मन्थाचलः॥ (मुरारी कवि)

समुद्र को हनुमान आदि वानरों ने छलाँग मारकर पार किया था अवश्य, परन्तु उसकी गम्भीरता को—अगाधता को तो मन्थाचल ही कह सकता है, वानर नहीं। क्योंकि पाताल तलस्पर्शी अनुभव तो मन्थाचल ने ही प्राप्त किया था।

ब्रह्मवेत्ता ऋषियों ने भी ब्रह्मतत्त्व को अनुभव—गम्य वनाने के लिये यथेष्ट अन्वेषण—गवेषण से काम लिया, यथाशक्ति उसको मथा और मथितार्थ निकाल कर उपयोगी बनाने में कोई कमी उठा नहीं रखी। तथापि तारतम्य ज्ञान की प्राप्ति, जैसी कुछ और जिस रूप में, श्री मन्निजानन्द प्रभु ने की, औरों को नहीं हो सकी।

" तारतम ज्ञान हाथ कर लीन्हों, क्षीर नीरको निर्णय कीन्हों॥

ब्रह्म के स्वरूप को तथा ब्रह्म विभूति के अन्तर गुप्त भेदों को—उनके सोपान रूप पर्वों को—पृथक्—पृथक् निश्चित कर जैसा कुछ तारतम्य ज्ञान ने समझाया है, वह आज भी अद्वितीय और अपूर्व ही है। वस्तुतः सत्य-सत्य ही रहता है, वह कभी पुराना नहीं होता। आज भी मनुष्य के हृदय में तारतम का प्रकाश अपनी

---

[1] अथ कस्मादुच्यते परं ब्रह्म—यस्मात्परमपरं परायणं च वृहद् वृहत्या वृंहयति तस्मादुच्यतेपरं ब्रह्म। (अथर्वशिर उपनिषत्) जो पर, अपर और परायण तीनों को वृहद् और वृहती से निरन्तर वृंहण के प्रति उन्मुख रखता है इसीलिये, उसे ब्रह्म कहते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अद्वितीय शक्ति का प्रदर्शन किये बिना नहीं रहता। पर हमने इसके महत्त्व को यथेष्ट रूप में अंकित ही नहीं होने दिया। प्राणनाथ प्रभु का भी यही संकेत है।

"ये प्रकाश इन भांति का जो कदी निकसी किरन।
पसरसी एक पल में[1] चारों तरफों सब धरन॥"

इस तारतम्य ज्ञान में यही तो विशेषता है कि–वह पिण्ड ब्रह्माण्ड के भेद को पलमात्र में हृदयगम्य बना देता है। क्षणमात्र में आत्मस्वरूप के दर्शन कराकर मनुष्य को ब्रह्मरूप स्थिर कर देता है।

क्षर, अक्षर और अक्षरातीत ब्रह्म को जैसा कुछ तारतम्य के द्वारा पलमात्र में जाना जा सकता है, अन्य किसी के द्वारा नहीं। अतएव शास्त्र में लिखा है:—

---

[1] इस तारतम्यके प्रकाशको यदि फैलनेका अवसर प्राप्त हो जाता तो न जाने कबका सम्पूर्ण विश्वको इसने चेतन और जाग्रत बना दिया होता। पर जो इसकी प्रकाश किरणों को फूटकर निकलनेका सौभाग्य ही प्राप्त न हो तो, विश्व तो क्या किसी एक देशमें भी नहीं फैल सकतीं, यही तो इसके साथ प्रतिबन्ध लगा हुआ है, अतः न फैल सका।

"हीरा बहु मूल्य रत्न होता है, उसके मूल्यको रत्न पारखी ही यथार्थ निश्चय कर सकते हैं, सब मनुष्य नहीं, यह तो प्रसिद्ध बात है। पन्ना (श्रीपद्मावतीपुरी) बुन्देल खण्डमें हीरोंकी खान हैं, करोड़ों रुपयेके हीरे निकल चुके और आज भी निकलते चले जा रहे हैं। किन्तु फिर भी वहां पर सहस्रों मनुष्य दुर्भिक्ष पीड़ित हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि जिनके मकानोंके नीचे हीरों का भण्डार दबा पड़ा है, वे अन्न बिना इधर उधर तरस रहे हैं। कहने का अभिप्राय है,जबतक हीरा पृथ्वीमें दबे पड़े रहेंगे, उनका मूल्य प्राप्त नहीं हो सकता और लोग भूखसे मारे-मारे फिरते रहेंगे।"

बस, यही दशा आज तारतम्य ज्ञानकी है। श्रीनिजानन्द प्रभुने उसे हमें प्रदान किया और उसके स्वरूप को भी समझा दिया। विश्वमें फैलनेकी बात तो दूर रही, हम सब प्रणामी भाई स्वयं भी उसके लाभसे वंचित रह गए। अन्यथा चौरासी लाख योनिके बन्धनको क्षणमात्रमें मिटाने वाला तारतम्य ज्ञान जिसके पास हो, तारतम्यरूपी हीरोंका मंडार भरा पड़ा हो और वह नीदमें झोके खाता रहे।

"सोई सुहागिन धाममें, जो करसी इत रोशन।
तौल मोल दिल माफक, देसी सुख सबन॥" (तारतम वाणी)

ब्रह्मसृष्टि तो वही है जो असंख्य जीवोंको अपने आत्म स्वरूपको समझा कर जाग्रत बना दे। ब्रह्मसृष्टि का तौल और मोल व महत्त्व तो तभी अंकित होगा, जब वे जीवोंको भी अपने समान अखण्ड सुखका अधिकारी बना देवें।

Shri Prannath Ji Pustkalay

"तारतम्येन जानाति सच्चिदानन्द-लक्षणम्"

तारतम्य के द्वारा ही सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म के सोपान पर्वों को, उसकी चतुष्पाद विभूति के स्वरूपों को यथार्थ अनुभव में लिया जा सकता है।

देहान्ते[1] देवः परमं ब्रह्मतारकं व्याचष्टे (श्रुति)

तारतम्य के द्वारा ही सब तत्त्व का यथार्थ ज्ञान होता है। इस तथ्य को लक्ष्य में रखकर श्रुति में निर्देश किया गया है कि 'दिव्यशक्ति-सम्पन्न परमात्मा देह के अन्तफल-चरम पुरुषार्थ जो मोक्ष है, उसकी प्राप्ति कराने को ही परमोत्कृष्ट तारतम महामन्त्र का उपदेश करेगा।' अतएव अध्यात्म तत्त्वों को जानने के लिये तारतम्य ज्ञान आया है।

वाचकवृन्द ! इसलिये तारतम्य के द्वारा अध्यात्म तत्त्व को यथावत् जानने की आवश्यकता को न भूलना चाहिये। तारतम्य क्या वस्तु है, उसके द्वारा अध्यात्मतत्त्व को किस प्रकार जाना जा सकता है एवं अध्यात्मतत्त्व का क्षेत्र कितना विशाल है और उसको जानने से जीवनन में स्थायी सुख किस प्रकार उतरता है, इत्यादि विविध विषयों का यथावत् ज्ञान कराने के लिये ही उक्त प्रस्तुत ग्रन्थ आप के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है। जिसके वाचन से,मनन से आध्यात्मिक भूमिका के अन्तर्गत वर्तमान जो-जो तत्त्व हैं, उनका साक्षात्कार हो सकता है।

यों तो अध्यात्मतत्त्व गुरुगम्य है। केवल ग्रन्थ के मनन से पूर्णतया नहीं जाना जा सकता, तथापि इसके मनन से आपको एक आवश्यक तत्त्व का प्रत्यक्ष होगा जो आपको विशुद्ध हृदय में गुरु भावना को जाग्रत कर अन्त में परम शान्ति पद को प्राप्त कराने में भी सहायक सिद्ध होगा।

भौतिकवाद की असारता को समझने के लिये हमें प्रथम अविनाशी तत्त्व को समझना होगा। जब तक अविनाशी अक्षर तत्त्व समझ में नहीं आता भौतिकवाद का

---

[1] यहां पर 'देहान्ते' पदमें निमित्त अर्थमें सप्तमी विभक्ति है "निमित्तात्कर्मयोगे" इस सूत्रसे सप्तमी विभक्ति हो जाती है। जैसे— "केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः" इत्यादि में केशोंके निमित्त चमरी गायको मारता है, आदि प्रयोगोंमें सप्तमीका विधान है। उसी प्रकार देह के अन्त निमित्त—देहका अन्त क्या है, तो कहना पड़ेगा कि—मोक्ष। क्योंकि मोक्ष हो जाने पर ही पुनः देह धारण नहीं करना पड़ता, यह तो सब मानते हैं। बस देहका अन्तिम फल मिल जावे इसी निमित्त ब्रह्मतारक महामन्त्रका उदय होता है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि—जो महामन्त्र देहके मोक्ष देनेको लाया गया है वही मोक्ष दे सकेगा, अन्य मन्त्र नही।"

Shri Prannath Ji Pustkalay

मोह हट नहीं सकता। विश्वकी उत्पत्तिका क्रम अथवा स्वरूप समझमें आ जावे तो फिर भौतिक वादका मूल्य कुछ भी नहीं रहता। इसलिये भौतिक वादके तत्त्वोंके पीछे जिस आधार स्वरूप चेतनकी प्रेरणा चालू है, भौतिक तत्त्वों में जो ओत-प्रोत भरा है, उसे प्रथम समझ लेना होगा। अतएव सृष्टि क्रमकी समीक्षा और सृष्टिके मूलकारण को प्रथम लेते हैं। यद्यपि हमें प्रथम ब्रह्म के सोपन पर्वों को लेना चाहिये था। परन्तु सृष्टिवादकी स्थिरता निश्चिय करने के लिये ब्रह्मके सोपान पर्वोंको न लेकर सोपान पर्वोंके मूल कारणके स्वरूपका विचार करते हैं। कारण, सृष्टि केवल भौतिक जड़ है अथवा इसके पीछे कोई चेतन तत्त्व काम कर रहा है? इस बात को यथार्थ समझने के अनन्तर सोपान पर्वों को और भौतिक तत्त्वों को समझने में विशेष सुगमता होगी। अतएव प्रथम भौतिक तत्त्व (क्षर-पदार्थ) के मूल कारण अक्षर[1] तत्त्व की समीक्षा करते हैं।

अक्षर ब्रह्म

वेद शास्त्र पुराण तथा उपनिषदों का तत्त्वतः परिशीलन करने वाले एवं अध्यात्म तत्त्व के उच्चतर स्तर (पृष्ठ-भूमि) पर विचरने वाले मनीषी ब्रह्मविद् पुरुषों के विवेकोत्थ[2] विज्ञान के समक्ष यह तो परोक्ष नहीं है कि—असंख्य ब्रह्माण्डों का उदय लय अथवा आविर्भाव तिरोभाव किंवा उत्पत्ति विनाश—जो कुछ भी होता है—सबका कारण एकमात्र अविनाशी अक्षर ब्रह्म ही है।

---

[1] "द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृत।" (गीता १५-१६)

क्षर, अक्षर और उत्तम पुरुष परमात्मा—उक्त इन्हीं तीनों के पृथक्-पृथक् स्वरूप का निश्चय करना, इस ग्रन्थ का मुख्य ध्येय है।

[2] आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते।
शब्द ब्रह्मागममयं, परं ब्रह्म विवेकजम्॥ (विष्णु पुराण)

अर्थ-ज्ञान दो प्रकार का होता है—वेद शास्त्रजन्य और विवेकोत्थ। वेद शास्त्रों के परिशीलन निदिध्यासनसे प्राप्त ज्ञान को आगमोत्थ कहते हैं। ब्रह्म विद्या के द्वारा प्राप्त अनुभवात्मक ज्ञान को विवेकोत्थ मानते हैं। ब्रह्मविवेक से प्राप्त ज्ञान ही अध्यात्मतत्व का निश्चय कर सकता है। वही आत्मा में परमात्माके विश्वास को ला सकता है। क्योंकि वह यथार्थ स्वरूप का परिचायक होता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

जितने भी महर्षि महात्मा अथवा अध्यात्म-कोटिके महापुरुष हुए हैं सबने अक्षर ब्रह्म को जानने का महत्व प्रदर्शित किया है। वेदान्त शास्त्र का तो यह उच्च घोष है कि—अक्षर ब्रह्म को पूर्णतया जाने विना जो कुछ भी यज्ञ, जप किया जाता है, वह सब तुच्छ है। बृहदारण्यकोपनिषद् में इस विषय की एक कथा भी आती है। एक समय राजा जनक विदेह ने अक्षर ब्रह्म को यथार्थतया जानने के लिये एक अधिवेशन बुलाया था, जिसमें विश्व के बड़े-बड़े महर्षि उपस्थित हुए। उक्त अधिवेशन में ब्रह्म विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार होता रहा। अनेक प्रकार के प्रश्नोत्तर होते रहे, महर्षियों ने विविध प्रकार के समाधान भी प्रस्तुत किये। प्रसंग चल ही रहा था—ब्रह्मनिष्ठ गार्गी ने प्रश्न कर दिया यथा—

अथ हैनं गार्गी वाचन्कवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच—
यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते
बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति (बृहदा० उप० ३—ब्रा० ८)

ब्रह्मवादिनी गार्गी द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि 'हे गार्गी ! लाखों वर्ष पर्यन्त भले यज्ञ-याग (अग्निहोत्र होम, अश्वमेध गोमेध, नरमेधादि) जप, तप, भजन, पूजन, सेवा, साधन, सब करते रहो, परन्तु अक्षरब्रह्म के स्वरूप को जाने विना वे सब तुच्छ हो जाते हैं। उपरोक्त सबका फल अन्तवत्—नश्वर ही होता है और वे सब (यज्ञ, जप, तप, भजन-पूजन) पुनः पुनः जन्म मरण (आवागमन) के कारण बने रहते हैं।

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य
एतदक्षरं गार्गि ! विदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः(बृहदा० ३—ब्रा० ८)

हे गार्गि ! जो कोई पुरुष इस अविनाशी अक्षर-ब्रह्म के स्वरूप को जाने विना ही इस मृत्यु लोक से चला जाता है वह कृपण है अर्थात् उसका जीवन ही व्यर्थ गया और उसने कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाया। और जो तत्त्वदर्शी पुरुष इस अक्षर ब्रह्म के स्वरूप को यथार्थतया जानकर मृत्यु लोक से जाता है, वह ब्राह्मण है। अर्थात् वही ब्रह्मधाम को प्राप्त करता है एवं ज्ञानी होने के कारण उसी का जीवन सफल है। इतना ही नहीं प्रत्युतः—

भिद्यते हृदय-ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ (मुंडक २-२-८)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ–जो पुरुष परावर[1] "परात्पूर्णब्रह्म पुरुषाद्–अवरं न्यूनम् इति" परमात्मसे अवर–न्यून उस अक्षर ब्रह्म के स्वरूप को जान लेता है, उसके हृदय (अन्तःकरण) की गाँठ खुल जाती है। अर्थात् उसके हृदयान्धकार का नाश हो जाता है और उसके संपूर्ण संशयों का छेदन हो जाता है। एवं उसके सब–संचित और क्रियमाण रूप में उपस्थित होने वाले जो शुभाशुभ कर्म हैं,क्षीण हो जाते हैं और उसका जीवन सफल बन जाता है। इस प्रकार श्रुतियाँ अक्षर ब्रह्म के स्वरूप–ज्ञान को विशेष महत्त्वपूर्ण और मोक्षप्रद वर्णन करती हैं।

यद्यपि उपरोक्त श्रुति में अक्षर ब्रह्म को परमात्माकी अपेक्षा अवर–न्यून प्रतिपादन किया है तथापि इससे अक्षर ब्रह्म के स्वरूप को कुछ बाधा नहीं पहुंचती। कारण अङ्गीका जो कुछ भी धर्म है, वह साक्षात् अथवा परम्परया अंग स्वरूप में भी विद्यमान रहता ही है। सभी अङ्ग-प्रत्यंग मूलस्वरूप श्री राजश्यामा जी के स्वरूप के अन्तर्गत माने गए हैं। जब २५ पक्ष परमधाम का परमात्मा के स्वरूप में ही अन्तर्भाव होता है तब अक्षरब्रह्म को भी पृथक् नहीं कह सकते। श्रीप्राणनाथ प्रभु का भी यही निर्देश है। "स्वरूप एक है लीला दोय।"

---

[1] 'परावर' शब्दमें पञ्चमी तत्पुरुष समास है। अवर शब्द का प्रयोग श्रुतिने अक्षर ब्रह्मके लिये किया है। अतएव (परात्पूर्ण ब्रह्मस्वरूप–अक्षरातीतपुरुषात्–अवरं न्यूनं हीनमिति यावत्, तस्मिन्परावरे) पूर्णब्रह्म स्वरूप अक्षरातीत पुरुषोत्तमकी अपेक्षा जो अवर–अश्रेष्ठ है, वही 'परावर, कहने योग्य है।' "यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः" इत्यादि गीतामें भी अक्षर ब्रह्मको परात्पर पुरुषोत्तमकी अपेक्षा न्यून और अपर ही प्रतिपादन किया है। वस्तुतः अक्षर–ब्रह्म अक्षरातीत ब्रह्मका अंगस्वरूप होनेसे सापेक्ष है। जो सापेक्ष होगा, वह अवर अथवा न्यून तो होगा ही। अतः श्रुतियोंने अक्षर ब्रह्मको 'परावर' और पूर्णब्रह्मको पूर्णात्पूर्ण नामसे पुकारा है। यही अक्षर तथा अक्षरातीत ब्रह्मका भेद है। वस्तुतः अंगस्वरूप और अङ्गीका भेद होता ही, नहीं, यह तो लीलामात्र भेद है। यथा—

अक्षरः परमात्मा च पुरुषोत्तम–संज्ञकः।
उभावप्येक एवार्थो लीलाभेदेन सुन्दरि ! ॥
अक्षरे सृष्टि—कर्तृत्वान्न शृङ्गार—रसोदयः।
अमायत्वाद्रसात्मत्वान्न परः सृष्टिकृत्प्रिये। (माहेश्वरतन्त्र-पटल ७)

अक्षर ब्रह्म और अक्षरातीत ब्रह्म–दोनों अङ्गाङ्गी भेदसे एकस्वरूप हैं। जलके विन्दुको कभी समुद्रसे भिन्न नहीं कर सकते। इसी प्रकार अक्षर–ब्रह्म भी अक्षरातीत ब्रह्मकी सत्ता में अंशमात्र हैं। अक्षर ब्रह्मके स्वरूपमें असंख्य ब्रह्माण्डोंका उदय लय प्रतिक्षण होता है अतः ब्रह्मानन्द लीलारस उदय नहीं हो पाता। एवं अक्षरातीत ब्रह्म माया रहित और सच्चिदानन्द स्वरूप चिद्घन है, अतः उसके स्वरूप में सृष्टिका विजृम्भण (उदय) नहीं होता। अतएव, अवर-ब्रह्म (अक्षर) और परब्रह्म (अक्षरातीत) के स्वरूपोंका पृथक्-पृथक् प्रतिपादन किया गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

कहने का अभिप्राय यह है कि—जिस प्रकार से समुद्र में उठनें वाले जल–तरंगों को समुद्र से भिन्न नहीं कह सकते, प्रत्युत् जलस्वरूप ही माना जाता है, उसी प्रकार अक्षरब्रह्म भी अक्षरातीत परमात्मा के स्वरूप में एक विन्दु के समान अभिन्न रूप से विद्यमान हैं। यही कारण है कि अक्षर ब्रह्म को सर्वातीत परमात्मा का अङ्ग स्वरूप मानते हैं। इस रहस्य को यास्काचार्य ने अपने निरुक्त ग्रन्थ में वड़ी सुगमता के साथ स्पष्ट किया है। यथा—

एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति (निरुक्त अ० ७)

अर्थ—"एकस्य मुखस्य अद्वितीयस्येति यावत्। एके मुख्यान्य केवलाः इति कोशात्, एक शब्दोऽत्र सर्वातीत-पुरुष परः। 'अक्षरात्परतः परः' इति मुण्डक–श्रुतेः। 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृत' इति गीतोक्तेश्च। आत्मनः परस्य ब्रह्मणोऽन्ये इतरे देवा–दिव्यगुण–विशिष्टाः अवर ब्रह्म (अक्षर) सत्स्वरूप केवलब्रह्म सवल–ब्रह्मादयः प्रत्यङ्गानि अङ्ग–प्रत्यङ्ग–स्वरूपाणि भवन्ति अक्षरब्रह्मादीनां निरपेक्ष–सत्ताभावादपि तु नित्यं परब्रह्मसत्तासापेक्षत्वादङ्ग–प्रत्यङ्गोपपत्तेरिति।"

केवल सर्वातीत परमात्मा के द्वारा ही साक्षात् अथवा परम्परया सव कुछ होता है। अतएव सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा के आज्ञावश-वर्ती अक्षरब्रह्म, सत्स्वरूप, केवल, सवलिक, अव्याकृत (परविष्णु) आदि जितने भी ब्रह्मस्वरूप देव हैं, वे सव परात्पर परमात्मा के अङ्ग-प्रत्यङ्ग स्थानीय हैं। 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' मुख्य परमात्मा तो एक ही है और वह 'अक्षरात्परतः परः' (मुंडक) अक्षरब्रह्म से भी[1] परात्पर है। यास्काचार्य कहते हैं कि–अद्वितीय परमात्मा के अतिरिक्त जितने भी अपर ब्रह्म आदि हैं, वे सव परमात्मा के अङ्ग–प्रत्यङ्ग स्वरूप हैं और उनका अन्तर्भाव भी परमात्मा के स्वरूप में ही जानना चाहिये। क्योंकि—जव सच्चिदानन्द–स्वरूप अनन्ताद्वैत परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की स्वतन्त्र सत्ता है ही नहीं और अक्षर ब्रह्म

---

[1]सर्वस्य धातारमचिन्त्य–शक्ति सर्वागमान्तार्थ–विशेषवेद्यम्।
परात्परं परमं वेदितव्यं सर्वावसाने सकृद्वेदितव्यम्॥
कविं पुराणं पुरुषोत्तमोत्तमं सर्वेश्वरं सर्व–देवै–रुपास्यम्। [श्रुति]

सवको धारण पोषण करनेवाला, अचिन्त्य–शक्ति सम्पन्न, ब्रह्म–विद्याके द्वारा जानने योग्य, पर अक्षरसे भी परमोत्कृष्ट, पुरुषोत्तमसे भी उत्तम, सव ईश्वरोंका परमेश्वर, सव पतियों (वैकुण्ठपति, कैलासपति, प्रजापति, जगत्पति, गोलोकपति आदि यावत् लोकपति हैं,) सव का पति, विष्णु, शिव, नारायण आदि देवोंका भी उपास्य–इष्टदेव, अनादि, क्रान्तदर्शी, सवके अन्तमें केवल स्वयं ही दिव्यस्वरूपमें विराजमान परब्रह्म ही एक सनातन पूर्णब्रह्म है। इसी परात्पर पुरुषके स्वरूप में सवका अन्तर्भाव है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

आदि सभी विभूतिमय ऐश्वर्य उसी के स्वरूपान्तर्गत हैं, तव सवको परमात्मा का अ
प्रत्यङ्ग कहना ही उचित है।

वस्तुत: देखा जाय तो यास्काचार्य का निष्कर्ष वेद शास्त्र के समन्वय के और अनेक ब्रह्म होने का भ्रम उत्पन्न करने वाली जटिल समस्या के प्रश्नोंको सुनिश्चि रूप से सुगम बना देता है। इतना ही नहीं अपितु एक महत्वपूर्ण विषय को औ भी स्पष्ट कर देता है। वह यह है कि--अक्षर ब्रह्म को पूर्ण ब्रह्म का अङ्ग और अक्ष ब्रह्म की सत्ता में अवस्थित चतुष्पाद-विभूति (सत्स्वरूप, केवल, सवलिक, अव्याकृत) पुरुषों को प्रत्यङ्ग मान लेने से पूर्ण ब्रह्म के सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व, आनन्दत्व आदि धर्म परम्परया अङ्ग प्रत्यङ्गों को स्वत: प्राप्त हो जाते हैं। जिससे--शास्त्रों में चतुष्पाद विभूति और अक्षर ब्रह्म के लिये प्रयुक्त[1] पूर्णब्रह्म, नित्य, अविनाशी, सनातन ब्रह्म आदि शब्दों का समन्वय सुसंगत प्रतीत होने लगता है। क्योंकि--अङ्गी परमात्मा के सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमत्त्वादि गुण किंवा धर्म अङ्ग-प्रत्यंगों में अवश्यमेव किसी न किसी रूप में अथवा अमुक मात्रा में विद्यमान होंगे ही।" हां, अन्तर केवल इतना होगा कि अंग-प्रत्यंगों को आज्ञावशवर्ती होना पड़ता है। उनकी सत्ता और शक्ति सव परब्रह्म के सापेक्ष रहती है। परमात्मा की भांति सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नहीं।

अव प्रश्न यह उपस्थित हो जाता है--कि जव अक्षर ब्रह्म को परमात्मा की अपेक्षा अवर-अपर किंवा न्यून ही प्रतिपादन किया है तव अक्षर ब्रह्म के जानने के लिये श्रुतियां हमें इस प्रकार वाध्य क्यों करती हैं? अथ च उसे जान भी लिया जाय तथापि परमात्मा का जानना तो शेष ही रह जायेगा। एवं वेद शास्त्रों के अध्ययन का निष्कर्ष--निचोड़ यही है कि 'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति, (ऋग्वेद १-१६४-३६) जो पुरुष परब्रह्म को नहीं जानता, वह वेद मन्त्रों को लेकर क्या करेगा? अर्थात् परमात्मा तत्त्व को जानने के लिये ही वेद शास्त्रों की रचना है।

संक्षेप में इसका समाधान इतना ही पर्याप्त होगा कि--

(१) परमात्मा के स्वरूप को जानने की विशेष आवश्यकता है अवश्य, परन्तु जव तक अक्षर ब्रह्म के स्वरूप को यथार्थ न समझ लिया जाय तव तक अक्षरातीत परमात्मा के स्वरूप को भी नहीं समझ पाते। इन दोनों (अक्षरब्रह्म और परब्रह्म) स्वरूपोंका परस्पर ऐसा सामंजस्य है कि--एक के पूर्ण ज्ञान के विना दूसरे की सत्ता का पता नहीं चलता। वस्तुत: देखा जाय तो परमात्मा की अद्वैतपूर्ण सत्ता उक्त दोनों स्वरूपों को लेकर ही

---

[1]अक्षरं ध्रुवमेव प्रोक्तं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।
अनादिमध्य-निधनं निर्द्वन्द्व कर्तृ शाश्वतम्॥ (महाभारत)

Shri Prannath Ji Pustkalay

है। अक्षर ब्रह्मके स्वरूपको छोड़ दिया जाय तो व्यष्टि, समष्टि, समस्त अध्यस्त स्वरूपों की कार्य-कारण शृंखला ही टूट जाय और अध्यस्त स्वरूपों (महाविष्णु, ब्रह्मा, शिवादि) के उद्गम कारण का भी पता न चले। एवं अक्षरातीत ब्रह्म के स्वरूप को न माना जाय तो अक्षर ब्रह्म के स्वरूप की सत्ता का रूप ही समझ में न आये।

(ख) दूसरा कारण यह है कि—समस्त अध्यस्त देवों का अथवा असंख्य ब्रह्माण्डों का उदय-लय इस अक्षर ब्रह्म के द्वारा ही होता है एवं असंख्य मुक्तात्माओं का[1] जो मुक्ति स्थान है, वह भी इसी अक्षर-ब्रह्म की चतुष्पाद विभूति के अन्तर्गत है। अक्षरातीत ब्रह्म के परमधाम को तो कोई-कोई महान पुरुष-ब्रह्ममुनि ही प्राप्त कर पाते हैं। जो दिव्य परमधाम से यहां पर आये हैं, वे ही उस परमधाम को प्राप्त करेंगे। हां, उन महान् ब्रह्ममुनियों की कृपा जिस किसी पर हो जावे तो वह भी उस ब्रह्मानन्द को पा सकता है। अन्यथा विश्व के शेष जीवों की परमगति तो चतुष्पाद विभूति के अन्तर्गत ही है। "यो यदंशः स तं भजेत्-इति श्रुतेः" जो जिसका अंश है वह

---

[1] अचिन्त्यमक्षर य तु तुरीयं च सदा स्थितम्।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते नरास्तत्रैव तत्पदम्॥
अनेक सृष्टिरचनाः सन्ति तस्यैव लीलया।
(भविष्यपुराण प्रतिपर्व स० अ० २५-५२)

प्रकृतिसे पर अचिन्त्य अक्षर-अव्याकृतका तुर्य-महाकारण स्वरूप जो स्थान है, वह सदा नित्य वर्तमान है, वहीं पर जगतके अनन्त जीव मुक्ति प्राप्त करते हैं। अनेक सृष्टि रचना भी इस तुर्यकी लीलासे-इच्छा मात्रसे ही होती रहती है।

चाक्षुषः स्वप्नचारी च सुप्तः सुप्तात्परश्च यः।
भेदाश्चैतेऽस्य चत्वार स्तेभ्यस्तुर्यं महत्तरम्॥
(मैत्रायणीयोपनिषद्)

चाक्षुष-जाग्रत विराटस्वरूप, स्वप्नचारी-हिरण्यगर्भ, सुषुप्त-प्रणवब्रह्म और सुषुप्तसे पर साक्षीरूप प्रणव ब्रह्मका परात्म-अव्याकृत-ये चारों भेद इस अचिन्त्य पुरुषके ही हैं। परन्तु इस अचिन्त्य अव्याकृत पुरुषका तुर्य-महाकरण स्वरूप जो असंख्य जीवोंकी मुक्तिका स्थान है, इन पूर्वोक्त चारों स्थानोंसे महत्तर है और उक्त चारों स्वरूपों का नियन्ता भी है। यद्यपि शास्त्रोंमें अव्याकृतको विविध रूपसे वर्णन किया है तथापि वह अपने चारों स्वरूपों में स्थित है और प्रणवके द्वारा सृष्टि में भी चार ही प्रकार का रहता है, इसे सबने माना है यथा—

चतुर्विभागः संसृष्टो चतुर्धा संस्थितः स्थितौ।
प्रलयं च करोत्यन्ते चतुर्भेदो जनार्दनः॥ (विष्णु पु०)

Shri Prannath Ji Pustkalay

उसी को प्राप्त होता है। अपने मूलस्थान को अतिक्रमण (पार) करके परब्रह्म अखण्ड धाम को प्राप्त करना, यह तो महापुरुषों की अनुकम्पा पर ही निर्भर है।

(ग) तीसरा कारण यह भी है कि—शास्त्रों में 'अक्षर' शब्द अनेक अर्थ में अनेक रूप से प्रयुक्त हुआ है एवं उसका प्रयोग अनेक सन्दर्भों में भिन्न-भिन्न अर्थ भी पाया जाता है, जो अल्पज्ञ पुरुषों को सन्देह में डाल सकता है। कहीं पर 'अक्षर' शब्द प्रकृति के लिये आया है तो कहीं ओंकार को भी अक्षर शब्द से ही कहा गया है। कहीं अक्षर शब्द जीव के लिये आता है तो कतिपय स्थलों में अक्षर शब्द निरवयव पदार्थों का भी ग्रहण होता है। कहीं-कहीं निराकार, निरंजन, किंवा आदि पुरुष के लिये भी अक्षर शब्द का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार अनेक अर्थों में प्रयुक्त 'अक्षर' शब्द को जाने बिना मनुष्य अपने लक्ष्य से वंचित न रह जाय, इसलिये अक्षर ब्रह्म के स्वरूप को यथार्थतया जानने की आवश्यकता प्रदर्शित की है, जो महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य है। जो मनुष्य अक्षर ब्रह्म के स्वरूप को पूर्णतया जान लेगा, वह परब्रह्मके स्वरूपको भी अवगत कर सकता है। यही कारण है कि श्रुतियों ने अक्षर-ब्रह्म के स्वरूप को जानने की विशेष आवश्यकता प्रदर्शित की है।

उपरोक्त अवतरण पर से यह तो भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि—अक्षर ब्रह्म भी परमात्मा के अंगस्वरूप ही हैं और इन्हीं के द्वारा असंख्य ब्रह्माण्डों का उदय लय होता रहता है।

अण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटि—विस्तृतः ।
दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ॥
लक्ष्यन्तेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ।
तमाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारण—कारणम् ॥

(भागवत ३—११—३९—४०)

परस्पर एक दूसरे से दश-दश गुने अधिक आठ आवरणों से आवृत पचास करोड़ योजन के विस्तार वाला यह ब्रह्माण्ड जिस ब्रह्म के स्वरूप में परमाणु के समान प्रतीत होता है एवं इसके अतिरिक्त ऐसे करोड़ों ब्रह्माण्डों की राशि जिसके स्वरूप में लक्षित हो रही है, सब कारणों के कारण उसको अक्षर ब्रह्म कहते हैं।

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः। तथाऽक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति

(मुण्डक ३—१)

Shri Prannath Ji Pustkalay

महर्षि अंगिरा कहते हैं—हे प्रिय शौनक ! यह वस्तुतः सत्य है कि-जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि में से समान रूप वाले सहस्रों विस्फुल्लिङ्ग (चिनगारी) उठा करते हैं, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से विविध भाव (असंख्य विश्व) उत्पन्न होते हैं और फिर उसी में विलीन हो जाते हैं। प्रथम मुण्डक में भी अक्षर ब्रह्म से असंख्य विश्वों का उदय लय होना प्रतिपादन किया है। यथा:—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयो संभवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥

(मुण्डक १–७)

महर्षि अंगिरा शौनक से कहते हैं कि 'हे शौनक ! जिस प्रकार ऊर्णना—भी—मकड़ी जाली को बनाती है और उसे निगल जाती है। जिस भांति पृथ्वी—में नाना प्रकार की औषधियां उत्पन्न होती हैं एवं जिस प्रकार जीवित पुरुष के शरीर से केश और लोम-रोम उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से विश्वों का उदय होना समझो।

इस मन्त्र में तीन दृष्टान्तों द्वारा अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न होने वाले विश्वों के स्वरूप को समझाया गया है। जिस प्रकार मकड़ी अपने अन्दर निहित सूक्ष्म तन्तु को बाहर फैला भी देती है और समेट भी लेती है। उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म अपने स्वरूप में अवस्थित अव्याकृतस्वरूप (चतुर्थ विभूतिपाद) द्वारा अनन्त विश्वों को रच भी देता है और फिर अपने (अव्याकृत) स्वरूप में समेट भी लेता है।

पृथ्वी के दृष्टान्त द्वारा यह भाव दृढ़ किया गया है—पृथ्वी पर नाना भांति औषधियों का होना और मिटना यथाक्रम बना ही रहता है, परन्तु इससे पृथ्वी की गति में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती। उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म के स्वरूप में से असंख्य विश्वों का उदय लय यथाक्रम चालू है पर इससे उसके स्वरूप में किसी प्रकार का विकार नहीं लगता, वह सदा ही कूटस्थ वर्तमान है।

मनुष्य के दृष्टान्त द्वारा यह भाव सुदृढ़ किया गया है कि—जिस प्रकार मनुष्य के शरीर से बाल और रोआँ यथाक्रम उत्पन्न-विनाश को प्राप्त होते रहते हैं परन्तु उनसे मनुष्य का नित्य सम्बन्ध नहीं। बालों को मनुष्य का शरीर भी नहीं माना जाता और उन्हें शरीर से पृथक् भी नहीं कहते बनता। यदि बालों को शरीर का भाग कहें तो काटने पर दुःख होना चाहिये, पर ऐसा नहीं होता। पृथक् कहें तो यह भी कहते नहीं बनता। क्योंकि पृथक् होते तो शरीर के संयोग से बढ़ते नहीं। अतः यही मानना पड़ता है कि—बालों का उपादान और निमित्त कारण दोनों देह ही है, तथापि वे उभय विलक्षण हैं। उसी प्रकार सद् असत् आ-

Shri Prannath Ji Pustkalay

त्मक विश्व का उपादान और निमित्त दोनों कारण अक्षरब्रह्म ही है, तथापि यह दृश्य जगत अक्षर ब्रह्म से नितान्त भिन्नस्वरूप में अवस्थित है। यही कारण है कि—वेद शास्त्रों में इस विश्व के स्वरूप को स्वप्नवत् कहा है। यद्यपि विश्व के मूलस्वरूप अव्यक्त प्रकृति का कभी नाश नहीं होता परन्तु उसे अचेतन नहीं कह सकते। क्योंकि श्रुतियों में उसको चेतन कहा है यथा—

एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः (तैत्तिरीय ब्रह्मानन्दवल्ली)

इस आत्मस्वरूप ब्रह्म से ही आकाश आदि तत्त्वों का उत्पन्न होना लिखा है।

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत्।
स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति। स इमांल्लोकानसृजत॥

(ऐतरेयोपनिषद १—१)

अर्थ—सृष्टि के पूर्व एक आत्मा ही था। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी कोई (मिषत्) चेष्टा करने वाला नहीं था। उस आत्मस्वरूप ब्रह्मने (नु लोकान् सृजै इति) 'मैं निश्चय ही लोकोंकी रचना करूं[1] इस प्रकार (ईक्षत) विचार किया और उसने इन लोकोंको रचा।'

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्नासीत् प्रकेतः।
अनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्नापरः किञ्चनाऽऽस॥

(ऋग्वेद नासदीय सूक्त ८—७—१७)

सृष्टिके पूर्व असत् नहीं था और सत् भी नहीं था। परमाणु नहीं थे, परम सूक्ष्म आकाश भी नहीं था। अगाध और गहन जल नहीं था। तब किसके लिये कौन से सुख के लिये आवरण सा छा रहा था। उस समय मृत्यु नहीं थी, अमृत भी नहीं था। रात्रि और दिवस की संज्ञा भी नहीं थी। केवल अपनी शक्ति से-वायु के बिना ही श्वासोच्छ्वास लेता वही एक था उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं था।

---

[1] विचार करना चेतन का कार्य होता है। इस बातको सांख्यवादी भी मानते हैं कि—ईक्षण चेतनका धर्म है, जड़ प्रकृतिका नहीं। बस, अब स्वतः मान लेना पड़ेगा कि 'रचना चेतन के द्वारा हुई है' उसे चाहे प्रकृति नामसे पुकारें या पुरुष नामसे? ब्रह्म कहें अथवा ब्रह्मशक्ति, विश्व रचना का उद्गम चेतनके द्वारा होता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

इस प्रकार वेद शास्त्र पुराण सभी आर्ष ग्रन्थ चेतनके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थका अस्तित्त्व सृष्टि रचनाके पहिले नहीं मानते, प्रत्युत चेतनके द्वारा ही सृष्टिका होना सिद्ध करते हैं। जब निराकार साकार जड़ प्रकृति आदि कुछ था ही नहीं, तब तो युक्ति और प्रमाण दोनों प्रकारसे यह सिद्ध हो जाता है कि विश्व रचना अक्षर ब्रह्मके द्वारा ही होती है, प्रधान किंवा प्रकृतिके द्वारा नहीं। प्रकृति पुरुष ये दोनों तो अव्याकृतके स्वरूपसे ही प्रादुर्भाव पाया करते हैं।

सांख्यवादी और कुछ अन्यमतावलम्बी विद्वान प्रकृतिके अव्यक्त स्वरूपको अक्षर बताकर अचेतन प्रकृति को ही जगतका कारण सिद्ध किया करते हैं। इन का मत नीचे लिखे अनुसार है।

अशब्द–मस्पर्शमरूपमव्ययं तथा च नित्यं रसगन्ध-वर्जितम्
अनादिमध्यं महतः परं ध्रुवं प्रधानमेतत् प्रवदन्ति सूरयः ।

प्रकृति नित्य है। पाँचो इन्द्रियाँ उसको ग्रहण नहीं कर सकतीं। क्यों कि वह शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श रहित है। उसका आदि मध्य नहीं है[1] अतः अविनाशी है। महतत्त्व से भी वह पर है एवं ध्रुव—नित्य है, इसीको विद्वान लोग प्रधान कहते हैं।

परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् (सांख्य दर्शन १–७६)
प्रकृतेराद्योपादानता (सांख्यदर्शन ६—३२)

सांख्य के मत से प्रकृति एक अव्यक्त, अविनाशी और सर्वत्र फैला हुआ तत्त्व है। इसीलिये वह जगत का उपादान कारण है। सांख्य परिच्छिन्न पदार्थको जगत्का उपादान कारण नहीं मानता। प्रकृति अपरिच्छिन्न है अतएव सांख्य मत में प्रकृति को ही उपादानकी क्षमता प्रदान की गई है।

सूक्ष्ममलिङ्गमनादि निधनं तथा प्रसवधर्मि ।
निरवयव–मेकमेव हि साधारणमेतदव्यक्तम् ।। (सूत्रवृत्ति)

सांख्यके मतसे जो अव्यक्त प्रकृति है वह सूक्ष्म, अलिङ्ग, और अविनाशी है। निरवयव होते हुए भी वह एक ही सारे प्रपञ्चको उपादान कारण बन जाती है। यह दृश्य विश्व उसीका परिणाम स्वरूप है। प्रकृति प्रसवधर्मवाली होनेके कारण विश्वको रच देती है और अन्तमें पुनः अपने अव्यक्त स्वरूपमें ही अवशेष रह जाती है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
राज्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके[1] ।। (गीता ८—१८)

गीता में भगवान श्री कृष्णजी इस बात को पुष्ट करते हैं कि—सृष्टि के प्रारम्भ में अव्यक्त से व्यक्त विश्व का उदय होता है और अन्त में उसी अव्यक्त में जाकर इस दृश्य विश्व का लय भी होता है। क्योंकि—"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" "नासदुत्पद्यते न सद्विनश्यति।"

न तो असत् की उत्पत्ति हो सकती है और न सत् का कभी अभाव होता है। प्रत्युत सत् और असत् ये दोनों अवस्था प्रकृति में अन्तर्हित हैं। कभी सत् को प्रदर्शित कर देती तो कभी असत् को। यथा—

अव्यक्तं कारणं यच्चनित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ।।

जगत का जो अव्यक्त कारण है वह नित्य है, सत् है और असत् भी है, क्योंकि वह अनादि, अनन्त होते हुए भी विकारशील है। विद्वान लोग इसी को प्रधान, प्रकृति, अजा, अव्यक्त, कारण-आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। यही प्रकृति परिणामशील होकर जगतरूप में आ जाती है।

---

[1]भगवान को यहाँ पर 'अव्यक्त' पद से प्रकृति विवक्षित है अथवा अव्यक्त चेतन तत्त्व को कहा है ? यह विवादास्पद है। क्योंकि—

"अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा"
"मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय।"
'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव" (गी० ७—७)

इत्यादि गीता के वचनों की संगति प्रकृति को ही सब कुछ मान लेने पर नहीं हो सकती। एवं नीचे लिखे:—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
य प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।। (गी० ८—२१)

इस गीता के वचन से तो और भी सुतराम् स्पष्ट हो जाता है कि भगवान को यहां पर अव्यक्त पद से प्रकृति नहीं, किन्तु अक्षर ब्रह्म अभिप्रेत है। इससे तो सांख्यवाद का खण्डन हो जाता है, न कि मंडन। जड़ प्रकृति बिना चेतन के स्वतः सब कुछ कर लेती है, यह केवल प्रौढ़वाद मात्र है, जो युक्ति और प्रमाण दोनों के विरुद्ध और नितान्त असंगत प्रतीत होता है। वस्तुतः भगवान ने अचेतन प्रकृति के स्वरूप को भी स्पष्ट कर दिया है। यथा—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।। (गी० ७—४)

Shri Prannath Ji Pustkalay

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः । प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारः । अहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि[1] पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः ।। (सांख्य दर्शन १—६१)

सत्त्व रज और तम की साम्यावस्था को ही मूल प्रकृति कहते हैं। प्रकृति से महतत्त्व और महतत्त्वसे अहकार एवं अहंकारसे पांच तन्मात्रा और ११ इन्द्रियाँ। पंच तन्मात्रासे पंच महाभूत। इसप्रकार प्रकृति ही विकृत होकर विश्वको इस स्थूल रूपमें ला देती है। चेतन पुरुष तो इनके मतसे निष्क्रिय, निर्लेप और असंग है। उसको प्रकृति ही अपने रंगमें रंग लेती है। इस भांति ८ प्रकृति १६ विकार और एक पुरुष ये सब मिलकर २५ तत्त्व होते हैं। इनके यहां जो इन २५ तत्त्वों को जानकर वसना रहित बन जाता है, वह मुक्त कहा जाता है।

"पञ्चविंशति तत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
जटी मुंडी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः ।।

उक्त सांख्य मतको विकासवाद भी कहते हैं। क्योंकि प्रकृति का स्वभाव ही परिणामशील है। प्रकृतिके परिणामोंका रूपान्तर होते-होते यह स्थूल विश्व आज इस अवस्था में पहुंच चुका है और अभी भी विकास की ओर प्रगति कर रहा है। सांख्य मत प्रकृति के दो परिणाम मानता है। एक सदृश परिणाम और दूसरा विसदृश परिणाम। प्रकृति का परिणाम तो प्रलय काल में भी चालू रहता है। पर वह सदृश परिणाम होता है अतएव उस समय सृष्टि नहीं होती। जब विसदृश

---

[1]सांख्यके मतसे जगतका नाश नहीं होता किन्तु वह अपने कारण स्वरूप में विलीन हो जाता है। यह सांख्य मत पुरुषको सदा निर्लेप, विभु और कर्ता मानता है। केवल प्रकृति ही अपने सत्त्व, रज, तम गुणों के द्वारा सब कुछ किया करती है। प्रकृति से स-त्त्व, रज, तम गुण, बुद्धि अहंकार और मन—यह सब बन जाते हैं। इन्हीं के द्वारा इन्द्रिय और अन्तःकरण तथा उनके देव सब प्रकट होकर विराटको रच देते हैं, चेतन के योग से चेतन प्रतीत होता है। प्रकृति के विकार बुद्धि, अहंकार और मन पुरुष को अहंता-ममता उत्पन्न कर देते हैं। इसलिये पुरुष अपने को कर्ता मानने लग जाता है। वासना त्याग से ही पुरुष प्रकृति से छुटकारा पा जाता है। इनके मत में प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि पदार्थ हैं। सांख्यमत 'प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द' इस प्रकार तीन प्रमाण मानता है। जड़ और निराकार निरवयव होते हुए भी प्रकृति सब कुछ बन जाती है। निराकार से स्वतः साकार भी होकर विश्व को स्थूल रूप प्रदान कर देती है और विचार शून्य होने पर भी वह स्वतः ही इस जगत को अपने में लय कर लेती है। किसी कर्ता या नियन्ता की आवश्यकता नहीं। यही तो सांख्यका प्रौढ़वाद है कि चेतन कुछ नहीं करता, केवल जड़ प्रकृति ही सब कुछ सामर्थ्य रखती है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

परिणाम चालू रहता है तभी सृष्टि काल होता है। जब विकृति होती रहती है तब रूपान्तर से विकास प्रगति करता है। बस, यही विकासवाद का मूल है।

बहुत से पाश्चात्य विद्वान भी इस मत को युक्ति संगत मानते हैं। दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर लिखते हैं कि—प्रकृति (matter) की उत्पत्ति भी नहीं होती और विनाश भी नहीं होता। केवल रूपान्तर होता रहता है। इस अवस्थान्तर को ही अनेक संज्ञा प्रदान कर उसको जन्म-मरण, प्रादुर्भाव-तिरोभाव और उत्पत्ति-विनाश आदि नामों से पुकारते हैं।

सरविलियम क्रुक्स ने इस बात को और भी दृढ़ता के साथ सिद्ध किया है कि—मूलभूत तत्त्वों के परमाणु वास्तव में स्वतन्त्र या नित्य नहीं हैं। वे किसी एक ही प्रधान महाभूत से किंवा तत्त्वों के विशेष-विशेष संघातों से समुत्पन्न हुए विकार मात्र हैं। उन्होंने इस मूल तत्त्व का नाम "प्रोटाइल" (Protyle) रक्खा है। ये प्रोटाइल और प्रकृति को समकक्ष मानते हैं।

समीक्षा—प्रोटाइल में और प्रकृति में परस्पर बहुत साम्य हो सकता है परन्तु ये दोनों एक पदार्थ नहीं हो सकते। प्रोटाइल स्थूल जगत का मूल उपादान है। विज्ञान स्थूल जगत के अतिरिक्त अभी तक और कुछ मानता ही नहीं। इसलिये वैज्ञानिकों की दृष्टि में प्रोटाइल ही प्रकृति के समकक्ष पदार्थ प्रतीत हो, यह हो सकता है। परन्तु वास्तव में स्थूल जगत के पर सूक्ष्म जगत और सूक्ष्म जगत के पर कारण जगत एवं कारण जगत के भी पर महाकारण जगत अवस्थित है, जो वैज्ञानिकों की सूझ और समझ के बहुत परे की[1] बात हैं। अतएव स्थूल जगत का चरम उपादान जो प्रोटाइल है वह सूक्ष्म जगत के चरम उपादान की तुलना में कभी मूलभूत नहीं हो सकता। फिर सूक्ष्म जगत का जो चरम (अन्तिम) उपादान (कारण) है वह भी कारण जगत के सूक्ष्मातिसूक्ष्म उपादान के सामने मूलभूत (बराबरका) कारण नहीं हो सकता। इसी प्रकार कारण जगत का जो चरम उपादान है वह भी महाकारण जगत के सामने मूलभूत समकक्ष नहीं ठहरता। यही महाकारण है जिसको सांख्य वाले निर्विशेष, अव्यक्त, प्रकृति, महाकारण, प्रधान आदि नामों से पुकारते हैं।

---

[1] सत्य तो यह है कि—विज्ञान अभी अधूरा है। पूर्ण होने पर वह स्वतः इसी अध्यात्म मार्ग अपना लेगा। और सूक्ष्म, कारण आदिकी अध्यात्म बात कहने लगेगा।

Shri Prannath Ji Pustkalay

उपरोक्त परिगणन से सुतराम् स्पष्ट हो जाता है कि—पाश्चात्य[1] वैज्ञानिकों की शोधका चरम उपादान प्रोटाइल (Protyle) और अव्याकृत स्वरूप प्रकृति में बहुत अन्तर है। सत्य तो यह है कि—विज्ञान की अन्तिम शोध प्रोटाइल, महाकारण स्वरूप प्रकृति को स्पर्श भी नहीं कर पाता, फिर समकक्ष होने की बात तो बहुत दूर रही।

संक्षेप में सांख्यमत किसी चेतन परमात्मा की शक्ति द्वारा जगत की रचना को नहीं मानता। सांख्य मत में सूक्ष्मातिसूक्ष्म सर्वत्र फैले हुए नित्य, निरवयव एक ही अचेतन मूल तत्त्व से व्यक्त विश्व उत्पन्न होता है। आज के विज्ञान युग का विकासवाद और उत्क्रान्तिवाद भी साख्यमत का ही रूपान्तर है, जो विश्व पर अपना प्रभाव जमाता चला जा रहा है। कुछ अन्वेषकों ने तो यहाँ तक कह डाला है कि—प्रकृति के अन्दर एक बिलक्षण शक्ति है जो एक दूसरे प्राकृत पदार्थों के योग से सब निर्जीव और सजीव पदार्थ बनते चले जाते हैं। परन्तु ये अभी तक चेतन क्या पदार्थ है और जड़ पदार्थों के भीतर भी उसका अस्तित्व किस रूप में है? इस बात को साक्षात्कार नहीं कर सके।

सांख्यमत की भाँति जैनमत भी किसी चेतन अधिष्टान के द्वारा जगत की रचना किंवा व्यवस्था नहीं मानता। वैशेषिकों का परमाणुवाद और सांख्यका प्रकृतिवाद ही रूपान्तर से जैनमत का 'स्याद्वाद' बन जाता है। वस्तुतः जैनमत परमाणु और प्रकृति के परिणाम-प्रारम्भ की अवस्था तक ही बुद्धि बल से पहुंच सका है। अतएव उसने उसी को अन्तिम ध्येय ठहराया है।

परमाणु से पर प्रकृति की प्रारम्भ अवस्था है और प्रारम्भावस्था से भी पर प्रकृति का निर्विशेष अव्याकृत स्वरूप है एवं अव्याकृत से पर परमतत्त्व का प्रारम्भ है। जो विचारधारा ही परमाणु किंवा प्रकृति की प्रारम्भ अवस्था के आगे बढ़ने में अपने को असमर्थ पाती है, जो विचारधारा प्रकृति के मूलस्वरूप तक

---

[1]योरोपके प्रधान वैज्ञानिक लार्ड केलविन और वैज्ञानिक शिरोमणि निकोला टेसला (Nikola tesla) ने भी उक्त विकास वाद सिद्धान्तका समर्थन किया है। इनका भी कथन है कि जगतके सब जड़ पदार्थ एक ही अद्वितीय निर्विशेष चरम उपादानके विकारसे गठित हैं। इस परसे परमाणुवाद जो पहिले वैज्ञानिकों की चरम शोध थी वह भी निर्मूल बन जाता है। जिसके उपर वैशेषिक नैयायिक आदि बड़े बड़े वैज्ञानिक फिदा थे, वह परमाणुवाद भी आजके विज्ञान युगने मिथ्या सिद्ध कर दिया। परन्तु वेदान्तके चरम सिद्धन्तको अभी भी विज्ञान स्पर्श नहीं कर सका। महर्षियोंकी शोधकी यही तो अपूर्वता है कि वह सदा सत्य सनातन रूपमें ही अवस्थित रह कर अपने गौरवसे विश्वको प्रभावित करती रहे।

Shri Prannath Ji Pustkalay

पहुंचनें में ही कुंठित हो जाती है। उस विचारधारा से परमात्म-तत्त्वकी उपलब्धि तो स्वतः ही नहीं हो सकती। अतएव वे उस परम तत्त्वको नहीं मानते। जब जैनमत उस परम तत्त्व तक पहुंचता ही नहीं, तब उसका न मानना स्वाभाविक है। जैनमत में तर्ककी प्रधानता है और तर्कसे अतीन्द्रिय विषय अवगत होते ही नहीं, यह सब जानते हैं। फिर भी—

'अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्" अतीन्द्रिय विषयोंको तर्कसे समझना योग्य नहीं, ऐसा काहेको कहते ? कुछ भी क्यों न हो, वास्तवमें भौतिकवाद चेतन तत्त्व को समझने का साधन नहीं बन सकता, यह तो सभी मानते हैं।

उपरोक्त भौतिकवादियों के विरुद्ध भी बहुत से वैज्ञानिकों का एक दल है जो अध्यात्म तत्त्व को मान चुका है। और दिनों दिन अनेकों प्रयोगों द्वारा चेतन तत्त्व के चमत्कार को प्रत्यक्ष सिद्ध करता जा रहा है। उनका तो चेलेंज है कि—चेतन शक्ति प्रकृति का परिणाम नहीं, चेतन अनादि काल से चेतन ही रहा है और रहेगा।

"जड़ पदार्थों से ही बढ़ते-बढ़ते जीवात्मा और चेतनकी उत्पत्ति हो जाती है, इस प्रकार का "जड़ाद्वैत" वाद मूर्खतापूर्ण है। जड़ात्मवाद की मिथ्या धारणा विज्ञान की अधूरी खोज का परिणाम है[1] जो कुछ दिन के पश्चात् उनके दिमाग से स्वतः हट जायेगा और वे अध्यात्म सत्य के उपासक बनने लगेंगे। पाश्चात्य विज्ञानधारा का अभी शैशवकाल है। कुछ दिन बाद हमारे महर्षियों के अनुसन्धान के चरणों में नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सकती।

प्रकृति को परिणामशील और त्रिगुणात्मक हमारे पूर्व महर्षि भी मानते थे और महापुरुषों ने उसको अनुभव द्वारा भी देखा है परन्तु बिना अध्यक्ष के, बिना किसी चेतन नियामक के वह अपने आप स्वतः विचित्र रूप में परिणत नहीं हो सकती, यह भी निर्विवाद सत्य है।

---

[1] **यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद।**
यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥ (वृह० ३-७-३)
'यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्यो अन्तरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुः'
(वृह०-३-७-१५)

"जो चेतन पृथ्वी के अन्दर अपनी सत्ता से पृथिवीका नियन्त्रण कर रहा है उसे पृथ्वी नहीं जानती। परन्तु पृथ्वी उसका शरीर बनचुकीहै। जो चेतन सब पदार्थों के भीतर रह कर सबका नियमन करता है, उसे सब प्राणी नहीं जानते।" इत्यादि शतशः श्रुतियां प्रत्येक पदार्थके भीतर चेतन सत्ताका वर्णन करती है। चेतन वस्तु वैज्ञानिकोंके हृदयमें छिपी है और प्रतिक्षण प्रेरणा किया करती है तथापि वैज्ञानिक लोग उसे नहीं देख पाते। तब विश्वके विभिन्न पदार्थोंके अन्तर में

Shri Prannath Ji Pustkalay

मेज पर रखे हुए कागज और पेंसिल बिना कर्ता के किसी चित्र को नहीं बना पाते और न उसमें इच्छित रंगों के सौंदर्य को निहित कर पाते हैं। तब बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंकी समझमें न आनेवाली विश्वरचना को एवं विचित्र मानव देहको अचेतन प्रकृति किस प्रकार रच सकती है ? विश्वके सभी विचित्र और विलक्षण परिणाम बुद्धिपूर्वक किसी न किसी चेतनके द्वारा ही सम्पादित होते हैं, यह तो हमारा सबका नित्यका आत्मानुभव है। जब छोटे से छोटे कार्य भी अध्यक्ष की इच्छा पर ही निर्भर हैं, तब इतने बड़े विशाल और असंख्य विशेषताओं से युक्त इस विश्व को बिना चेतन शक्ति के जड़ प्रकृति स्वतः रच दे, यह कथन युक्ति, प्रमाण और बुद्धि तीनों पर एकदम असंगत और निराधार प्रतीत होता है। जब अचेतन द्रव्य में इच्छा, ज्ञान और विचार केन्द्र का सर्वथा अभाव है, तब अचेतन जड़ प्रकृति से स्वतः सृष्टि की रचना मानना, अपने को धोखे में डालना नहीं तो और क्या है ?

वस्तुतः सत्य तो यह है कि—पदार्थों के संयोग विशेष से जिन रचनाओं को हम प्रत्यक्ष देखते हैं, उनमें भी साक्षात् अथवा परम्परया किसी न किसी चेतन का सम्बन्ध अवश्य होता है। जिन वृक्षों को अथवा निर्जीव जड़ पदार्थों को हम स्वतः फूल फल तथा विचित्र पत्ते आदि प्रदान करते देखते हैं, उनके अन्तर्गत भी चेतन सत्ता काम करती और है[1] अन्दर चेतन तत्त्व भी विद्यमान है।

आज तो विज्ञान युग ने वृक्षों का बात-चीत करना, मृत आत्माओं को बुला देना आदि-आदि प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है। आगे चलकर जो कुछ बातें समझ में नहीं आतीं, वे भी प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाने के बाद समझ में आने लगेंगी। एवं महर्षियों

छिपे चेतन को वे किस प्रकार देख सकें। उस चेतन को तो चेतन तत्त्व के ज्ञाता ही देख पाते हैं, सब नहीं इस तथ्य को तो श्रुतियों ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है"यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद" (बृह० ३—७—२२) जो विज्ञान के अन्तर में होते हुए भी विज्ञान से छिपा है फिर उसे विज्ञान किस प्रकार पा सके। अतः यह तत्व विज्ञानी को न मिले, यह हो सकता है।

[1]जगतके वास्तविक स्वरूपको समझने के लिये स्वप्नका दृष्टान्त बहुत कुछ सहायक बन जाता है। स्वप्न द्रष्टा पुरुष अपने स्वप्नमें दृश्यमान असंख्य पदार्थोंका निर्माता, अधिष्ठाता, द्रष्टा, साक्षी सब कुछ स्वयं ही बन जाता है। स्वप्नमें दृष्टिगोचर होने वाले असंख्य पदार्थों का कारण निद्रा और संभ्रान्त मनके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं होता। स्वप्नकी समस्त कल्पना जड़-चेतन रूप एक ही कारणसे उदय पाती है और अन्तमें उसीमें लय हो जाती है। वहां पर कारण, उपादान आदि की कल्पना काम नहीं आती और न वहां पर तर्क को स्थान होता है। केवल द्रष्टा ही सब कुछ दृश्य के रूप में प्रतीत होता है। सबका साक्षी होते हुए भी सबके हृदय को अनुभव नहीं कर सकता किन्तु केवल अपने

Shri Prannath Ji Pustkalay

के अनुसन्धान को और अध्यात्मवाद को अक्षरशः सत्य मानने लगेंगे।

अभी तक विज्ञान जड़ पदार्थों में जीव नहीं मानता था। शरीर के विनाश के बाद किसी प्रकार के चेतन का अस्तित्व नहीं रहता—यही चिल्लाता था, किन्तु थोड़े ही समय में उक्त दोनों बातें उसने प्रत्यक्ष मान लीं। बस, इसी प्रकार अन्य शेष बातें भी बहुत थोड़े ही समय में उसके मस्तिष्क में समाने लगेंगी। हमारे पूर्वज महर्षियों ने और महापुरुषों ने तो अध्यात्मवाद को डंके की चोट पर साक्षात्कार करके बतला दिया है। अतएव आस्तिक जगत के मस्तिष्क में तो कभी वेद शास्त्रों के सिद्धान्तों की सत्यता पर शंका नहीं उठ सकती। क्योंकि वहाँ पर तो स्पष्ट शब्दों में लिखा है:—

को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्।
एष ह्येवानन्दयाति। (तैत्तिरीयोप० ब्रह्म० ७ अनुवाक)

यदि आकाश की भांति सर्वत्र प्राप्त आनन्दस्वरूप परमात्मा न होता तो कौन जीवित रह सकता और कौन कौन प्राणों की चेष्टा कर सकता। निश्चय यह आनन्दस्वरूप परमात्मा ही सबको आनन्द और प्राणशक्ति प्रदान करता है।

तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्राविश्य सच्च त्यच्चाभवत्।
निरुक्तं चानिरुक्तं च। (तैत्तिरीय ब्रह्म अनुवाक ६)

अर्थ—उस अविनाशी ब्रह्म ने इस जगत को रचकर स्वयं भी अन्तर्यामी रूप से प्रवेश किया। विश्व में प्रविष्ट हो सत्-मूर्त्त और त्यत्-अमूर्त्त रूप भी बन गया। जिसका वर्णन किया जा सकता है और जो वर्णन में भी नहीं आ सकता ऐसे दोनों स्वरूपों में विभक्त हो गया।

स्वरूप विशेष अनुभव करता है। इसी प्रकार अक्षरब्रह्म अपनी विक्षेपा और आवरणात्मिका शक्ति द्वारा इस जगतको अपने अन्तर्गत अधिष्ठान रूपमें कल्पित कर असंख्य रूपमें देख रहे हैं। "ज्यों जाग्रत में देखते थे स्वप्न में देखने लगे" जाग्रदवस्था की कल्पना ही कुछ रूपान्तरसे स्वप्न में भासित होने लगती है। अन्तर केवल इतना है कि—हमारा स्वप्न हमारे जड़ मनकी कल्पना होता है तथापि स्वप्नमें वह जड़ चेतन दोनों प्रकार का दृष्टिगोचर होता है। अक्षरब्रह्मका मन—मनस्थानीय मूल प्रकृति चेतन है फिरभी वह जड़ चेतन दोनों रूपोंमें उदय-लय पाता है। चेतनकी कल्पनामें द्रष्टा भी चेतन ही होता है अतएव शुभाशुभ कर्मोंकी शृंखला बंधती रहती है। जड़ मनकी कल्पना का द्रष्टा भी जड़ मन होता है। इसलिये स्वप्नके शुभाशुभ कर्मों का फल जन्म-मरण के बाद जीवों को नहीं भोगना पड़ता। लेकिन यह बात अक्षरके मनमें नहीं घटती। क्योंकि वह चेतन और अनन्त शक्ति सम्पन्न है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च ।
स्थितं च यच्च सच्च त्यं च (बृहदा २–३–१)

विश्वकारण रूप ब्रह्म के दो स्वरूप हैं—मूर्त्त और अमूर्त्त । मरने वाला और नहीं मरने वाला, स्थिर और चर, साकार और निराकार । श्रुतियों को देखें तो हमें निश्चयात्मक रूप से विदित होगा कि—विश्व में जो कुछ जड़, चेतन सगुण, निर्गुण, मूर्त्त-अमूर्त्त है, सब ब्रह्म से उदय पाकर ब्रह्म में ही अधिष्ठित नाना रूप से प्रतीत हो रहा है सबको ब्रह्म के द्वारा ही । जीवन, प्रेरणा और आनन्द का अनुभव होता है ।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ।।
(श्वेता० ६—११)

विश्व का कारण रूप ब्रह्म ही सर्वत्र सब भूतों में अन्तर्यामी रूप से अवस्थित सब का अध्यक्ष होते हुए भी सबका अधिष्ठान साक्षी सब कुछ ब्रह्म हीं है । जो सबसे अलिप्त रह कर केवल चेतन स्वरूप में विराजमान है ।

"एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति"

जो अकेला ही बहुत से निष्क्रिय—जड़ पदार्थों को वश में रखता है एवं जो एक ही प्रकृति रूपी बीज को अनेक रूप में भी परिणित कर देता है ।

उपरोक्त श्रुतियों में कितना स्पष्ट वर्णन है कि—जगत का कारण ब्रह्म ही है । वह अपनी शक्ति से प्रकृति रूपी बीज को अनेक रूपों में विभक्त कर अन्तर्यामी रूप से स्वयं भी विद्यमान है, और साक्षी रूप से सबसे अलग भी है । इसी हेतु से जगत का परिवर्तन आवर्तन भगवान् की इच्छानुसार होता रहता है ।

जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम् ।
यथा च पादपो मूलस्कन्ध शाखादि संयुतः ।।
(ब्रह्मपुराण २१—३२)

अर्थ–प्रकृति पुरुषात्मक यह सम्पूर्ण जगत उसी प्रकार परविष्णु(अव्याकृत) की शक्ति से उदय-लय पाता रहता है, जिस प्रकार वृक्ष, मूल, शाखा, पत्र, पुष्प आदि सब बीज की शक्ति से उसके स्वरूप में अवस्थित रहते हैं और वे शक्ति द्वारा सबके सब वृक्ष रूप में प्रकट हो जाते हैं । भगवान् श्री कृष्णजो ने भी अपनी इस शक्ति के दोनों स्वरूपों का उल्लेख किया है । यथा:—

Shri Prannath Ji Pustkalay

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं बिद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।। (गीता ९-४,५)

हे अर्जुन ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, और अहंका ये आठ प्रकार की मेरी भिन्ना प्रकृति है। इस अपरा भिन्ना प्रकृतिसे भी पर अन्य 'परा' नामकी प्रकृति है, जो जीव रूपसे इस विश्वको धारण किये है।

प्रथम श्रुतियोंने ब्रह्मके द्वारा जड़-चेतन, मूर्त्त-अमूर्त्त, सबका उदय-लय विश्व रूप वर्णन किया, उसीको भगवान्ने अपरा और परा प्रकृतिके नामसे वर्णन कर संक्षेप ही समझानेका प्रयास किया है। तत्त्व दोनों स्थानों पर एक ही है। यह त ग्रन्थों की और कथनकी शैली है कि–एक स्थान पर जिस विवक्षित अर्थमें किस शब्दका प्रयोग होता है, अन्यत्र उसी अर्थमें किसी अन्य शब्दका प्रयोग मिलत है। गीताके ९ अध्यायमें जीवको 'पराप्रकृति' के नाम से कह कर दूसरे स्थलप "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" में उसको भगवान् ने अपना अंश क दियां है। तात्पर्य दोनों का एक है।

कदाच कहो कि–जब परा प्रकृतिरूप जीवको अंश कहा है तो अपर प्रकृतिको भी अंश मानना पड़ेगा। क्योंकि वह भी तो भगवान् की ही प्रकृति है यदि अपरा–पृथिवी, जल, वायु, आदि सब भगवान्के अंश हैं तो अंशोंके मूलकेन्द्र भगवान्को भी जड़ मानना होगा। क्योंकि भगवान् का स्वरूप जड़ होगा तभी उनका अंश जड़ हो सकता है। अन्यथा चेतन स्वरूप भगवान्के अन्तर्गत जड़ पदार्थ पृथिवी जल आदिका होना किस प्रकार सम्भव माना जावे ?

समाधान—प्रथम तो विश्वकी रचनाको स्वप्नवत् माना है। जिस प्रकार स्वप्नमें एक ही मन चेतन और जड़ रूपमें नाना भाँतिसे प्रतीत होता है, उसी प्रकार भगवान् अपनी शक्तिसे जड़ चेतन दोनों स्वरूपोंमें विभक्त होकर नाना जगत् के रूपमें अवस्थित प्रतीत हों, तो आश्चर्य क्या ?

दूसरी बात—जब श्रीकृष्णजी ने ही अपरा (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु आदि) प्रकृतिको अपनेसे भिन्न प्रतिपादन किया है, तब भगवान्के स्वरूपमें जड़ तत्त्व होनेका दोष किस प्रकार हो सकता है ? और फिर शास्त्रोंमें अंशोंको दो प्रकारका भी तो माना है। यथा—

Shri Prannath Ji Pustkalay

स्वांशश्चाथो विभिन्नांश इति द्वेधांश इष्यते ।
अंशिनो यत्तं सामर्थ्यं यत्स्वरूपं यथा स्थिति ॥
तदेव नाणुमात्रोऽपि भेदः स्वांशांशिनोः क्वचित् ।
विभिन्नांशः स्वल्पशक्तिः किंचित्सामर्थ्यमात्रयुक् ॥ (महावाराहे)

'स्वांश और विभिन्नांश, भेद से अंश दो प्रकार होता है। स्वांश में तो अंशवान के साथ स्वरूप भेद नहीं होता, परन्तु विभिन्नांश में थोड़ी शक्ति, स्वल्प सामर्थ्य और स्वरूप भेद होता है।

इस प्रकार विचार करें तो भी भिन्ना प्रकृति भगवान् का अंश होते हुए भी वह तत्स्वरूप नहीं हो सकती और न जड़ चेतन का प्रश्न ही उपस्थित होता है। वस्तुतः जगत स्वप्नवत् व्यावहारिक है। उसकी सत्ता त्रिकालाबाध्य नित्य नहीं। जो अनित्य, मिथ्या प्रतीति मात्र है, उसके विषय में सभी कल्पनाएँ अपूर्ण हैं।

इस प्रकार देखा जावे तो—गीता और श्रुतियों के उपरोक्त मूर्त्त, अमूर्त्त किंवा जड़-चेतन, मर्त्य-अमृत आदि शब्दों का विवक्षित अर्थ एक ही है। और वे सब चेतन, अधिष्ठान जगत की ओर ही ले जा रहे हैं। यही तो ब्रह्म के सामर्थ्य की विशेषता है कि—वह जड़ चेतन आत्मक विश्व को अपनी लीला मात्र से रच कर अपने अधिष्ठान स्वरूप से वहिर्भूत नहीं होने देता। प्रत्युत उसी में अन्तः समष्टि व्यष्टि को दिखला कर पुनः समेट लिया करता है। ऐसे असंख्य विश्व उस ब्रह्म के अन्तर्गत उदय लय पाते रहते हैं फिर भी उसके स्वरूप में किसी प्रकार भार अथवा क्षोभ नहीं होता। यह जगत् किंवा जड़-चेतन–आत्मक यह क्षर ब्रह्माण्ड ब्रह्म के अन्तःकरण की समष्टि में एक परमाणु तुल्य अवस्थित हमें ही महान–सा प्रतीत होता है। वस्तुतः इस जगत् का अस्तित्व अक्षर ब्रह्म के स्वरूप में नाममात्र है।

यथा तरङ्गा जलधौ तथेमाः सृष्टयः परे ।
उत्पत्त्योत्पत्त्य लीयन्ते रजांसीव महानिले ॥
यथा सूर्योदये गेहे भ्रमन्ति त्रसरेणवः ।
तथेमे परमाकाशे ब्रह्माण्ड–त्रसरेणवः ॥

(योगवासिष्ठः उत्पत्ति प्रकरण २९)

जिस प्रकार जल में तरङ्ग उठा करते हैं और पुनः जल के जल में ही समा–जाते हैं। जिस प्रकार महा पवन में असंख्य रज कण उड़-उड़ कर समा जाते हैं, उसी प्रकार असंख्य ब्रह्माण्ड उठ कर अपने मूलस्वरूप कारण ब्रह्म में समाया करते हैं। सूर्योदय होने पर घर में त्रसरेणुओं की संख्या का पारावार नहीं रहता।

Shri Prannath Ji Pustkalay

उसी प्रकार विस्तृत ब्रह्म के स्वरूप में ब्रह्माण्ड रूप त्रसरेणुओं की संख्या नहीं है।

लक्ष्यन्तेऽन्तर्गताश्चान्ये[1] कोटिशो ह्यण्डराशयः ।
तमाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारण कारणम् ।। (भागवत ३–११)

धूलि के कणों को कदाचित् गिना जा सके परन्तु असंख्य ब्रह्माण्डोंके उद लय की संख्या नहीं हो सकती। जिसके स्वरूप में प्रतिक्षण करोड़ों ब्रह्माण्डों उदय-लय लक्षित होता है, सब कारणों के कारण उसको अक्षरब्रह्म कहते हैं। य कारण है कि—दृश्य जगत के स्वरूप का कभी हल नहीं हो पाता। हम विश्व के स्व को जानने के लिये तर्क, युक्ति और बुद्धिवाद का आश्रय लिया करते हैं। य साक्षात्कृतधर्मा महर्षियों के और महापुरुषों के तथ्य को जानने का थोड़ा सा भी प्रय करें तो सृष्टि का स्वरूप अवश्यमेव अवगत हो जाता है।

महापुरुषों ने और द्रष्टा महर्षियों ने जगत को अनेक प्रकार से प्रतिपादि किया है। क्योंकि विलक्षण और विचित्र वस्तु की उपमा और लक्षण तो हो ही नहीं। यदि उपमा और लक्षण में आती तब तो उसे विलक्षण और विचित्र कह ही क्यों? जो विलक्षण पदार्थ होता है, जो विचित्र होता है, उसे समझाने के लि अनेक प्रकार के वचन कहने पड़ते हैं।

यही कारण है कि—महापुरुषों ने जगत को विविध भांति समझाया है कभी स्वप्न का, कभी इन्द्र जाल का, मृगतृष्णा का, तो कभी शीप और चांदी का उदा हरण देकर समझाया है। एवं कभी अनिवचनीय, कभी माया, कभी मिथ्या, कभ द्वैत तो कभी अद्वैत, कभी विशिष्टाद्वैत[2] तो कभी केवलाद्वैत, कभी अनेक–धर्मा

---

[1]संख्या चेद्रजसामस्ति न विश्वानां कदाचन ।
ब्रह्म विष्णु शिवादीनां तथा संख्या न विद्यते ।। (देवीभाग० ८-३-७)

[2]सभी वैष्णवाचार्य विशिष्टाद्वैत के किसी न किसी सिद्धांत को मानते हैं। फिर चाहे शुद्धाद्वैत कहते हों, किंवा द्वैताद्वैत, अथवा अन्य किसी अद्वैत की कल्पना करने लगें। यह हो सकता है परन्तु यह दृश्य जगत वैष्णवोंके मतसे नित्य होते हुए परिवर्तनशील है। वे इसे मिथ्या किंवा अभाव नहीं मानते। विचारपूर्वक देखें तो 'सांख्यके प्रौढ़वादकी' थोड़ी सी झलक इन सबके अन्दर दृष्टिगोचर होगी। केवल अन्तर चेतन अध्यक्षका पड़ता है। कुछ वैष्णव आचार्य समस्त जीवोंको प्रभुका दास मानते हैं। उनके मत से विश्व के सभी पदार्थ भगवत सेवा के लिये हैं। कुछ वैष्णव तो हिंसक जीवों को भी प्रभु सेवा में संलग्न मानते हैं। उनका कथन है कि–प्रत्येक पदार्थ में न्यूनाधिक रूप में अमृत और विष के परमाणु होते हैं। विषैले जीव सदैव पदार्थों पर आच्छन्न विष रस को खींचने में तत्पर हैं। वे अयोग्य भाग को खाकर पदार्थों को प्रभु की सेवा के योग्य बना देते हैं। यदि ऐसा न होता तो भगवान सिंह आदि हिंसक जन्तुओं को रचते ही क्यों? यह सिद्धांत कहां तक सत्य है। इसको पाठकगण मनन करें।

Shri Prannath Ji Pustkalay

वच्छिन्न तो कभी विरुद्ध धर्मा–श्रय, कभी अनन्त धर्मा–श्रय तो कभी प्रतीति मात्र, कभी आवरणात्मक आदि नामों से पृथक्-पृथक स्वरूप में समझाने का प्रयास किया है तथापि वह जिस स्वरूप में अवस्थित है, जैसा का तैसा (यथातथ्यतः) कोई नहीं कह सका। जो ब्रह्म की लीलामात्र है, जो मन वाणी से पर है, तर्क और बुद्धिवाद से भी अग्राह्य, केवल तारतम्य–ज्ञानैकगम्य है; जो स्वप्नवत् भास रहा है, जो देखते ही देखते कुछ का कुछ मोह उत्पन्न कर देता है, उसे ये नाना मतवादी मतवाले क्या समझें ?

योगवासिष्ठ में इस रहस्य को वड़े ऊहापोह के साथ स्पष्ट किया है। उत्पत्ति प्रकरण में लिखा है कि—देश, काल,निमित्त आदि सव,जव उसी ब्रह्म में रहते हैं तो उसे न तो द्वैत कहते वनता है न अद्वैत। न जात कह सकते हैं न अजात। न सत् कहते वनता है न असत्। न क्षब्ध कह सकते हैं न प्रशान्त। सब द्वन्द्वों का समावेश तव ब्रह्म के अन्तर्गत ही होता है। समस्त विभिन्न और विचित्र पदार्थों का समन्वय जब ब्रह्म ही है वही तो अद्वैत है। जो अपने अतिरिक्त अन्य किसी सत्ता को निरपेक्ष अस्तित्व में रहने देता ही नहीं, उसे द्वैत विस प्रकार कहा जावे ? इसलिये अध्यात्मवाद का[1] आश्रय लेना ही उचित है।

---

[1] निष्पक्ष भावसे देखा जाय तो—अध्यात्मवाद विश्वकी सुन्दरतम विभूति है। सुख शान्तिका उद्गम, सामाजिक और धार्मिक जीवनका स्रोत, सदाचार और आदर्शकी कसौटी, जीवन का परमपुरुषार्थ–इसीके द्वारा प्राप्त होता है।

अध्यात्म दर्शनका क्षेत्र वहुत ही विस्तृत और गहन है। विश्वकी संपूर्ण समस्याओं का और समस्त विशुद्ध विचार–धाराओं का केन्द्र इसीको पायेंगे। नैरात्म्यवाद के साथ सर्वात्म-वाद का, अज्ञेयवाद के साथ विज्ञानवादका, शून्यवाद के साथ ब्रह्मवादका, अनेकेश्वरवाद के साथ एकेश्वर वादका, विकासवादके साथ विवर्तवादका सापेक्षवाद के वाद निरपेक्षवादका, कारणवाद के साथ अद्वैतवादका एवं भौतिकवाद के साथ अध्यात्मवादका सुन्दर समन्वय इस एक ही विचारधारा में पा सकेंगे। चूंकि बल्कि, ननु नच और किन्तु परन्तु की तर्क-वितर्कों का सन्तोषप्रद समाधान उक्त विचार-धारा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं हो सकता। आदर्श, त्याग, तप, शान्ति, सुख और सेवा के भावों को भी आप अध्यात्म–धारा में यथेष्ट पा सकेंगे, अन्यत्र नहीं। अनुसन्धान कर्ता महर्षियों ने विभिन्नवादों को पल्लवित करके देखा सुना, छानवीन की, अन्वेषण गवेषणमें करोड़ों वर्ष व्यतीत किये। अचिन्त्य विषयोंको भी लक्ष्यमें लिया। आत्मशक्ति के लोक परलोक के सभी दुष्प्राप्य मार्गोंका स्पर्श किया। सब कुछ अनुभव करनेके वाद अन्ततो गत्वा इसी (अध्यात्मवाद) विचारधारा में सवका समन्वय पाया। यही कारण है सभी महापुरुषों ने चाहे वे किसी देश अथवा जाति विशेष के क्यों न हों, अध्यात्मवाद को सवने एक स्वर से माना है। इसकी गहनता और विशेषता को लेकर ही आचार्यों ने आगे वढ़ने का श्रेय प्राप्त किया है। अध्यात्म दर्शन की विशेषता एवं

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्रतीति–मात्रमेवैतद् भाति विश्वं चराचरम् ।
ज्ञानज्ञेय प्रभेदेन यथा स्वप्नं प्रतीयते ।। (सिद्धान्त मुक्तावली)

प्रकाशानन्द लिखते हैं कि—स्थावर जंगमात्मक,–सद् असदात्मक, जगत् जो देखने में आ रहा है, केवल प्रतीतिमात्र है। जिस प्रकार स्वप्न द्रष्टा मन ही दृश्य द्रष्टा, ज्ञान ज्ञेय रूप में सब कुछ स्वयं ही बन जाता है और स्वयं देखता भी है। उसी प्रकार यह जगत अक्षर ब्रह्म के मनस्वरूप महा विष्णु का ही रूप है। वही देख रहा है उसी ने अपनी कल्पना से सब पदार्थों को खड़ा कर अनन्त विश्वरूप की रचना कर ली है।

यस्य चित्तमयी लीला जगदेतच्चराचरम् ।
मृगतृष्णा तरंगिण्यो यथा भास्करतेजसः ।। (सिद्धांत मु०)

जिस प्रकार मरीचिका (मृगतृष्णा का जल) सूर्य की किरण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, पर प्यासे मृग को वह जलरूप देखने में आती है। उसी प्रकार चराचर जगत अक्षर ब्रह्म के मनरूप महाविष्णु के चित्त की लीला मात्र है। आभास का प्रतिबिम्ब स्वप्न की भांति परिणमित होने के कारण अपने कल्पित स्वरूप को माया के जीव नहीं समझ पाते। स्वप्न की सृष्टि स्वप्न को समझने में अपने को असमर्थ पाती है, यही कारण है कि जगत का वास्तविक स्वरूप समझने में नहीं आता।

यद्यपि 'विश्व क्या पदार्थ है' यह कहते नहीं बनता, पर एक बात सुनिश्चित है कि—यह जगत् जैसा प्रतीत हो रहा है, वैसा है नहीं। बहुत सी बातें जिन्हें हम पहले कुछ की कुछ समझा करते हैं, परन्तु अनुभव के पश्चात् ज्ञान होता है कि हम भूले थे। अमुक बात को हमने कुछ समझा था, बाद को अन्य कुछ अनुभव में आया।

आज विज्ञान द्वारा जगत में जो परिणाम स्थिर किये जाते हैं, इस पर से भी हमारे उपरोक्त कथन की सत्यता शत प्रतिशत प्रमाणित होती चली जा रही है। विश्व चाहे कुछ भी हो—विवर्त हो, या विकास हो, परिणाम हो अथवा संघात हो, पर जैसा हम देख रहे हैं, समझ रहे हैं, वैसा नहीं है। आज से कुछ वर्ष पूर्वकाल में 'शब्द व्यापक और नित्य है' इस तथ्य को महर्षियों के अतिरिक्त अन्य जगत

परलोकवाद और ईश्वरवाद दोनों ही अध्यात्म तत्त्व के ऊपर निर्भर हैं। सुख और शान्ति का यथार्थ स्रोत इसी अध्यात्म तत्व को ठहराया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

मानने को तैयार नहीं था। न्यायदर्शन को भी नहीं सूझा। परन्तु आज विज्ञान इस तथ्य की पुष्टि करता चला जा रहा है। अमेरिका इग्लैण्ड के शब्द, भारत के भाषण समस्त विश्व में एक साथ असंख्य स्त्री पुरुषों द्वारा सुने जाते हैं।

महाभारत और रामायण के अग्निवाण, वायु अस्त्र, ब्रह्मास्त्र, पुराणों के मन्त्र प्रयोग, मय दैत्य की[1] रचना चातुरी को आस्तिक जनता के सिवा विश्व के सभी मनुष्य कोरी कल्पना कहते थे, परन्तु आज एटम(Atom) ने उन सबकी सत्यता की ओर वैज्ञानिकों को भी आकर्षित कर दिया है। आज के विमान युग ने त्रेता द्वापर के पुष्पविमान, कामग विमान आदि विमानों की रचना को भी सर्वांश में सत्य प्रमाणित कर दिखाया है।

चेतन तत्त्व के विषय में भी आज के युग ने बहुत कुछ प्रगति की है। मृत आत्माओं के साथ बातचीत कराना, बहुत सी गत समय की घटनाओं को प्रत्यक्ष करा देना, इन्द्रजाल विद्या के प्रयोगों द्वारा चेतन बुद्धि के समक्ष कुछ का कुछ दृश्य उपस्थित कर देना,यह सब अध्यात्मवाद के ज्वलन्त उदारण हैं।

जब मनुष्य सुलभ ज्ञान में इस प्रकार के अनेकों चमत्कार आज विद्यमान पाये जाते हैं तब ब्रह्म तो अलौकिक शक्ति सम्पन्न है। वह तो 'कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं' करना न करना अथवा कुछ का कुछ कर दिखाना–इस प्रकार की सभी शक्ति रखता है। इस दृश्य विश्व को चाहे जिस रूप में रच दे, चाहे बिना उपादान के बना दे अथवा स्वशक्ति से यों ही खड़ा कर दे–सब कुछ कर सकता है। इसलिए विश्व रचना के विषय के सभी वाद विवादमात्र हैं।

अध्यात्मवाद की विचार-धारा ही एक ऐसी भित्ति है कि उस पर सम्पूर्ण चित्रों को अंकित किया जा सकता है। केवल सत्यता ही सबकी कसौटी है। "अबाधिताज्ञ तज्ञापकत्वं हि प्रामाण्यम्" की दौड़ भी वेद, शास्त्र किंवा मन, वाणी

---

1 इन्द्रजाल विद्याका पुराणोंमें वार वार प्रसंग आता है। जो कुछका कुछ बतानेमें, बिना कारणके कार्यसम्पादन करनेमें ,समर्थ हो उसको इद्रजाल कहते हैं। इन्द्रियोंके सामने जाल फैला देना इन्द्रजाल कहा जाता है। जादूगर इसीके वलसे वड़े-वड़े चमत्कार बताया करते हैं। रावणने इसी विद्या के वलसे सीताजी को रामका कटा हुआ शिर और धनुष दिखा कर धोखा देने की चेष्टा की थी। शंकराचार्य ने भी इस विद्याका उल्लेख किया है। जिसके द्वारा वड़े-बड़े कार्य सिद्ध होते रहे हैं। चित्रलेखाने और प्रद्युम्नकी स्त्री मायावतीने अपनी मायाके बलपर ही सब कुछ प्राप्त किया था।

Shri Prannath Ji Pustkalay

तक सीमित है इसके आगे तो एक तारतम्य ज्ञान [1] ब्रह्मविद्या ही सुगम गुरु है।

"क्षीर नीरको करे निवेरा माया ब्रह्म चिन्हावे"

जो सत्य असत्यके भेदको पृथक् कर माया ब्रह्मके स्वरूपको तथ्यत अवगत करा देता है। अस्तु, प्रसंग बढ़ाना व्यर्थ है। जगत क्या पदार्थ है अभी त इसी ओर चलना चाहिये।

वस्तुतः विश्व स्वप्न की-सी कल्पना है अथवा और कुछ? इसके उत्तर अद्वैतवादके विद्वानों ने एक स्वरसे विश्वको स्वप्न तुल्य ही कहा है। शङ्कराचार्य के दादा गुरु गौड़पाद मांडूक्य उपनिषद् पर कारिका लिखते हैं। यथा:—

---

[1] **येनाऽक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्** (मुंडक १-२-१३)

अर्थ—जिससे अक्षर ब्रह्मको भली भांति जान सके उस ब्रह्मविद्याको तत्त्वतः कहा। आज ब्रह्मविद्या का लोप-सा हो गया हो, बात ऐसी नहीं है। किन्तु उसके अधिकारी बहुत थोड़ी संख्यामें मिलते हैं। अतः उसका प्रचार कम देखनेमें आता है। जो वस्तु अधिक मूल्यवाली होगी उसका अनुपात सदा ही न्यून देखनेमें आयेगा। पत्थरकी अपेक्षा हीरा सदा न्यून ही होगा। लोहे की अपेक्षा सुवर्ण भी न्यून होगा। जो धातु जितनी कीमती होगी उतनी ही कम होगी। जो तत्त्व जितना महत्त्व-पूर्ण होगा, उतने ही प्रमाणमें दुष्प्राप्य भी होगा।

इसी प्रकार ब्रह्मविद्या भी बहुत उत्तम वस्तु है, उसको उत्तम संस्कारवाले उत्तम जीव ही ले सकते हैं, सब नहीं—यही कारण है कि उसके लेनेवालों की संख्या कम है। क्या ब्रह्मविद्या वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद आदि ग्रन्थोंसे कहीं पृथक् है, अथवा इन्हीं में है?

समाधान—

यद्यपि उपनिषदोंमें भी ब्रह्म विषयकी चर्चा मिलती है परन्तु मुख्यतः ब्रह्मविद्या पदसे तारतम्य ज्ञानका ग्रहण होता है। यों तो वेदों में तथा वेदाङ्गों में भी अक्षर, अक्षरातीतका वर्णन आता है परन्तु मुख्यतया यज्ञ, स्वर्ग आदि का प्रतिपादन होनेसे इन्हें अपरामें गिना गया है। उसी प्रकार उपनिषदों में अक्षर ब्रह्मका मुख्यतः प्रतिपादन होने से उन्हें 'परा' विद्याके नामसे पुकारा जाता है।

अथ खल्वियं ब्रह्मविद्या सर्वोपनिषद् विद्या वा—
राजन्नस्माकं भगवता मैत्रेयेण व्याख्याता।। (मैत्रायण्युप०)

देखो—ब्रह्मविद्या और सब उपनिषद् दोनोंका इनमें पृथक्-पृथक् ग्रहण है। 'वा' पदको देखकर कुछ विद्वान विकल्प मान लेते हैं परन्तु वस्तुतः यहां पर 'वा' शब्द च अर्थमें आया है। जिसका अर्थ होता है तथा या और। देखो पृष्ट (१) में वा शब्दका अर्थ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अद्वयं च द्वयाभासं मनः स्वप्ने न संशयः ।
अद्वयं च द्वयाभासं तथा जाग्रन् न संशयः ॥
मनो दृश्यमिदं द्वैतं यत् किञ्चत् सचराचरम् ।
मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥

(मांडूक्य प्र० ४ का ३०—३१)

जिस भांति एक ही मन स्वप्न में नाना प्रकार के स्वरूपों को खड़ा कर लेता है, परन्तु जब वह निद्रा से उपरत हो जाता है तो उसकी कल्पना स्वतः मिट जाती है। उसी प्रकार यह जाग्रत् अभिमानी देव नाना स्वरूप से भासित हो रहा है। जब विराट और हिरण्यगर्भ दोनों अपने मूलस्वरूप—कारण में समा जावेंगे इस विश्व के स्थूल सूक्ष्म दोनों प्रकार के स्वरूप भी अपने कारण में लीन हो जावेंगे और फिर द्वैत की प्रतीति न होगी। परन्तु इस पर से यह नहीं कहा जा सकता कि-यह विश्व सर्वांश में हमारे स्वप्न के अनुरूप है। हमारे स्वप्न की सृष्टि में और अक्षर ब्रह्म के स्वप्न की सृष्टि में बहुत कुछ अन्तर है।

हमारा स्वप्न केवल माया मात्र है, उसमें जो कुछ भी प्रतीत होता है वह केवल तैजस अभिमानी का परिणाम है। अतएव अपने ब्रह्मसूत्र में व्यासजी लिखते हैं कि—"माया मात्रन्तु कात्स्न्र्येनानभिव्यक्त स्वरूपत्वात् (ब्रह्मसू० ३-२-३) स्वप्न में जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता है वह मायिक है, कल्पित हैं, कर्मफलाश्रित नहीं। उसमें सत्यता का लेश भी नहीं है, केवल चेतन के आश्रित मन को कह सकते हैं। परन्तु यह दृश्य विश्व तो अक्षर ब्रह्म के चेतन मन की कल्पना है। अक्षर ब्रह्म का मन नित्य चेतन विभूति स्वरूप है और उसका अधिष्ठान भी चतुष्पाद विभूति है एवं जहां पर प्रकृति जड़ चेतन दोनों स्वरूपों में कारण रूप से अवस्थित है। अतएव अक्षर ब्रह्म की सृष्टि हमारी स्वप्न-सृष्टि से विलक्षण और कर्मानुबन्धिनी है। उसमें चेतन का गौरव है। जो कुछ होता है चेतन की प्रेरणा के बल पर ही होता है।

हमारे स्वप्न का द्रष्टा सम्भ्रान्त[1] जड़ मन है। कल्पना भी जड़ मन की है जीव तो केवल साक्षी मात्र है। मनुष्य के स्वप्न में जड़ चेतन दोनों प्रकार

[1]मन के स्वरूपको समझना यही तो रहस्य है। मन केवल कल्पनाओं से ओतप्रोत कल्पना स्वरूप है। 'संकल्पकं मनोरूपं' संकल्प के पुंजों का नाम मन है। पर यह भी जड़ होने से स्वतः कल्पना नहीं कर सकता। कल्पना की प्रेरणा तो चिदाभास से प्राप्त होती है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

की कल्पना मूल 'मैटर' जड़ मन है। चिदाभास जीवका सहयोग भी साक्षात् नहीं, किन्तु परम्परया होनेके कारण स्वप्न उसका परिणाम नहीं हो सकता। कल्पना केवल जड़ मनकी ही रह जाती है, अतः केवल माया मात्र रहता है।

परन्तु अक्षर ब्रह्मके मनकी कल्पनाका क्षेत्र चेतन है। वह विभूतिपाद में अधिष्ठान बनाए हुए है। उसकी कल्पना में जड़ चेतनका सारा विस्तार चेतन मनका है। हमारा मन केवल अन्तः करणकी वृत्तिमात्र है, अक्षर ब्रह्मका मन चतुष्पाद विभूतिमें स्वतंत्र रूपसे अपना अस्तित्व रखता है।

हमारे स्वप्नकी कल्पना निद्रा और सम्भ्रम के कारण प्रतीत होती है और अक्षर ब्रह्मके मनकी कल्पना आवरण और विक्षेपा दो शक्तियोंके विलक्षण सामर्थ्यका परिणाम है।

बस, यही कारण है कि—अक्षर ब्रह्मके मनकी कल्पना का उदय लय यथाक्रम होता। अक्षर ब्रह्मका मन अपने अव्याकृत पादमें आवरण और विक्षेपा नामकी [1] शक्तियोंका आश्रय लेकर ही कल्पना करता है अतएव सृष्टिके समस्त

तभी तो स्वप्नमें वह अनन्तरूप धारण कर लेता है। यदि चेतनकी प्रेरणा न होती तो केवल जड़ मन द्रष्टा दृश्य सब कुछ कैसे बन जाता! स्वप्नको मन ही रचता है, किन्तु वहाँ भी दिव्य-शक्तिकी प्रेरणा रहती है, तथाति स्थूलका संपर्क न होनेसे वह बन्धन कारक नहीं बनता। स्वप्नके सभी धर्म इस विश्वमें विद्यमान नहीं हैं, किन्तु कुछ साधर्म्यों को लेकर स्वप्नवत् कहा है। स्वप्नमें किये गये शुभाशुभ कर्म बन्धन कर्त्ता नहीं होते। परन्तु विश्व के प्राणी दोनों प्रकार के हैं। लाखों योनियोंके शुभाशुभ कर्म बन्धन कारक नहीं बनते, तथापि वे सब कर्मफलके रूपमें प्राप्त हुए हैं, यह तो शास्त्र सम्मत होनेसे मान लेना पड़ता है। मनुष्य शरीरको कर्मोंके शुभाशुभ फलका जनक माना गया है, परन्तु स्वप्नमें यह बात नहीं पाई जाती। इसी लिये वेदान्त दर्शनमें व्यासजीने—

"वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्" इस सूत्रमें स्वप्नके साथ विश्वका सर्वांशमें साधर्म्य नहीं माना। प्रत्युत् स्वप्नसे विलक्षण होनेके कारण इसे अनिर्वचनीय प्रतिपादित किया है।

[1] एवं कूटस्थ—पुरुषमावृत्यावरणात्मिका। ततो विक्षेपरूपेण विश्वमात्मन्य-दर्शयत्॥ विक्षेपाऽऽवृतिरूपे द्वे मायायाः कथिते बुधैः। आवृतिशक्तिर्निद्राख्या विक्षेपा स्वप्नरूपिणी॥

विक्षेपा और आवरणरूपा मायाकी दो शक्ति हैं। आवरण रूपा निद्राको बढ़ाती है तो विक्षेपा स्वप्नको खड़ा कर देती है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

पदार्थ आवरण और विक्षेप से उपहित (ढके हुए) प्रतीत होते हैं। बस, ये दोनों ढक्कन (आवरण) ही चेतन जीव को अपने मूलस्वरूप तक नहीं पहुंचने देते। मनुष्य के सामने से अज्ञान का आवरण और अश्रद्धा का विक्षेप दूर हो जाये तो फिर इसे अपने लक्ष्य तक पहुंचते देर नहीं लगती। परन्तु आवरण और विक्षेप के कारण अपने विशुद्ध स्वरूप को नहीं जान पाता।

कुटस्थस्य हृदाकाशात् प्रादुर्भूता सुमङ्गला ।
निद्रामुत्पादयामास महामोहमयीं दृढाम् ॥
तस्मिन्विमोह जलधावशेत पुरुषो महान् ।
तस्मादेव समुत्तस्थौ भूत्वा नारायणः स्वयम् ॥
पञ्चावयवसंयुक्तः स एव प्रणवाभिधः ।
पञ्चावयव संस्थाना ब्रह्माद्याः पंच देवताः ॥ (पुराण संहिता)

कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदयाकाश से सुमंगला नाम की शक्ति ने प्रकट होकर महामोह रूप निद्रा को प्रकट किया। इस निद्रा रूप महामोह में पुरुष का मन संकल्प विकल्प के द्वारा नारायण के रूप में प्रकट होता है। यह नारायण ही पांच पुरुषों का मूल पंचावयव प्रणव कहलाता है। इसी से शदाशिव, ईश्वर, विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—इन पांचों देवों का प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार पुराण संहिता में भी विश्व को स्वप्न रूप ही माना है। और प्रणव—ओंकार पर्यन्त समस्त प्रपंच कल्पित तथा मिथ्या है, ऐसा लिखा है। भागवत में भी—

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं
दृष्टं विनष्टमति लोलमलात—चक्रम् ।
विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया
स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥ (भागवत ११-१३-३४)

भगवान् श्री कृष्णजी स्वयं इस बात को उद्धवजी के प्रति समझा रहे हैं कि हे उद्धव ! यह विभ्रम स्वरूप जो कुछ भी विश्व प्रतीत हो रहा है, वह सब मनका विलास मात्र है। जिस प्रकार चंचल अलात चक्र (लुकाठो या आतिश बाजी की चक्री) देखते ही देखते नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार यह एक विज्ञान—स्वप्न है, जो माया से मिथ्या द्वैत के कारण नाना रूप में प्रतीत हो रहा है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

त्रिगुणात्मक यह समस्त विसर्ग-विस्तार स्वप्न रूप में कल्पित है और देखते ही दे नाश को भी प्राप्त हो जायगा। यथा—

यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा ॥ ५४
स्वप्न-दृष्टाश्च दाशार्ह ! तथा संसार आत्मनः ।
अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ५५ ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ।

(भागवत ११—२२—५४ व ५

'हे उद्धवजी' ! जिस प्रकार स्वप्न में स्वप्न-दृष्टा मनोरथ-बुद्धि से अने प्रकार विषयों का मिथ्या ही अनुभव करता है। उसी प्रकार इस विश्व की कल्प अक्षर ब्रह्म के मन द्वारा हुआ करती है। केवल कल्पनामात्र है, ब्रह्म के अन्तर्गत इस वास्तविक रूप ऐसा नहीं है, यह तो प्रतीति मात्र है। यद्यपि स्वप्न में शब्द, स्पर्श, रू रस, गन्ध आदि[1] इन्द्रिय ग्राह्य स्थूल पदार्थों का सर्वथा अभाव है, तथापि जब तक म लगा है उसके द्वारा सूक्ष्म संसृति बढ़ती ही जाती है। जब तक स्वप्न है, स्वप्नरूप पदार्थ का उदय लय विद्यमान है, केवल ध्यान मात्र से ही अनर्थों की परम्परा दृष्टिगोचर होत रहती है। उसी प्रकार इस स्वप्नरूप विश्व में भी जब तक मन लगा है विषयों क परम्परा नहीं मिटती।' इस प्रकार स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जी भी विश्व को कल्पि मायामात्र प्रतिपादन करते हुए स्वप्नवत् वर्णन कर रहे हैं।

देखो, जब वेद, शास्त्र, पुराण सभी एक स्वर से विश्व को स्वप्न की-सी कल्पना, प्रतीति मात्र, क्षणभंगुर प्रतिपादन कर रहे हैं, तब इसके विषय में नाना प्रकार के वादों का आश्रय लेकर विवादों में समय नष्ट करना उचित नहीं।

---

[1]मन कल्पनाओं का पुञ्ज अवश्य है परन्तु मन की कल्पना भी सिनेमा के चित्र की भांति एकदम मिथ्या नहीं है। स्वप्न में सब प्रकार के दुःख सुख का अनुभव होता है। ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के द्वारा विषयों का अनुभव होता है। सिनेमा के मोदक, पेड़ा अथवा नारंगी सन्तरा आदि फलों को हम खा नहीं सकते। उनके स्वाद का अनुभव नहीं कर सकते। क्योंकि वे सब मिथ्या हैं, परन्तु स्वप्न में सब बातों का अनुभव यथार्थ होता है। अन्तर केवल स्थूल और सूक्ष्म का है। जाग्रत में जो अनुभव होता है वह स्थूल का है, स्वप्न में जो अनुभव होता है वह सूक्ष्म अवस्था का है। इसी कारण हम उसे जाग्रदवस्था में ज्यों का त्यों नहीं ला पाते।

Shri Prannath Ji Pustkalay

यह विश्व स्वप्नवत् मिथ्या है, कल्पना मात्र है। परन्तु जिस प्रकार का स्वप्न हम नित्य प्रति देखा करते हैं उस प्रकार का नहीं।

इन्द्रियाणां लये जाते मनसो न लयो यदा।
तदा तद्भावनारूपः स्वप्नस्तैजस एव हि ॥ (भागवत ११)

हम तो इन्द्रियों का लय हो जाने पर मन के द्वारा जाग्रदवस्था के भावों का उदय लय देखते हैं। जब इन्द्रियों का लय रहता है और मन का लय नहीं रहता तब स्वप्न की कल्पना खड़ी होने लगती है। तैजस अभिमानी देव के अन्तर्गत तैजस विश्व दृष्टिगोचर होता है, परन्तु अक्षर ब्रह्म के स्वप्न में यह बात नहीं। अक्षर ब्रह्म तो अपनी आवरणात्मिका और विक्षेपरूपा दोनों शक्तियों के द्वारा अपने मन को उपहित कर विश्व की रचना में स्वयं ही विश्व रूप दृष्टिगोचर होने लगता है। अक्षर ब्रह्म का मन चेतन, विभूति स्वरूप और चतुष्पाद विभूति का अधिष्ठाता है अतः वह मोहरूप निद्रा अव्यक्त से व्यक्त विश्व को रच देता हैं। और उसका नियमन भी चेतन[1] आभास के द्वारा ही होता रहता है, अतः उसकी कल्पना कर्मानुबन्ध वाली होती है।

जगन्मोहात्मकं प्राहुरव्यक्ताद् व्यक्तसंज्ञकम् (महाभा० शा० पर्व ३०२—३६)

इस मोहात्मक जगत में जो कुछ भी प्रतीत होता है अव्यक्त से व्यक्त हुआ है। वास्तविक तो कुछ भी नहीं। मोहात्मक होने के कारण ही विश्व के अन्तर्गत मोहका विस्तार हो रहा है। जिधर देखिये उधर ही मोहग्रस्त विश्व नाना प्रकार के दुःखों का अनुभव करता प्रतीत होता है।

यथा तदुद्भवैश्छन्नं शैवालैः सलिलं भवेत्।
स्वमायया तथा छन्नमक्षरं ब्रह्म केवलम् ॥
स्वमायावरण छन्नः स्वस्मिन्स्वप्नं प्रपश्यति (माहेश्वर तन्त्र)

जिस प्रकार जल अपने से उत्पन्न शैवाल—काई से ही ढँक जाता है। उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म का मन अपने मोहावरण से ही ढँक जाता है और फिर अपने ही अन्दर विश्व को देखने लगता है।

---

[1]मनुष्य का स्वप्न सूक्ष्मावस्था में केवल जड़ मन की कल्पना मात्र होता है, वहां चेतन का आभास स्वतः नहीं है अतः नियन्ता का अभाव है। जहां चेतन का साक्षात् सम्बन्ध नहीं रहता, वहां कर्मानुबन्ध नहीं बनता, ऐसा नियम है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

जिस प्रकार इन्द्रजालिक (जादूगर) अपनी विद्याके वलसे सव कुछ दिख कर उसे अपने सामर्थ्यसे पुनः समेट लेता है। योगी पुरुप अपनी योगशक्ति से सव कुछ विना उपादानके ही रच लेते हैं, वे साधन सापेक्ष नहीं रहते। वे अपनी रचनामें स्वतंत्र होते हैं। उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म अपनी आवरण और विक्षेपरूपा नामकी शक्तिसे इस प्रपञ्चको क्षणमात्रमें रचकर पुनः अपनेमें ही लय भी कर लेते हैं। अन्तमें न तो सांख्यमत की प्रकृति स्वतन्त्र रहती है और न पुरुप। प्रकृति और जीवात्मा दोनों ही परतंत्र हैं। जव सृष्टिकी रचना होती है प्रकृति भी दृश्य होने लगती है और पुरुप भी विश्व-भर में भरपूर हो जाते हैं। जव लय होता है तो अपने मूल कारणमें सवके सव समा जाते हैं।

लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा
शक्तयः सम्मलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः

(भाग० १२-४-२२)

जव प्राकृत पदार्थोंका लय होता है तो पुरुप और अव्यक्त—कारण रूप प्रकृति दोनों अपनी-अपनी शक्ति सहित लयको प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् उस समय पुरुष प्रकृति अथवा उनकी शक्ति कुछ भी शेप नहीं रह जाता।

अव्यक्तमक्षरे लीयते अक्षरं तमसि लीयते।
तमः परे देवे एको भवति ॥ (सुवालोपनिषद्)

अव्यक्त—कारण प्रकृति अक्षर—प्रणव ब्रह्ममें लय हो जाती है तथा प्रणव ब्रह्म अपने मूलप्रकृति स्वरूप में और मूलप्रकृति अपने परस्वरूप–अक्षर ब्रह्ममें अन्तर्हित होकर अन्तमें सव एकका एक ही रह जाता है।

"य एतं देवमेकवृतं वेद" "सर्वे अस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति"

(अथर्ववेद कां १३ अ. ४ सूक्त ३)

इस परमदेवमें ही सव देव अन्त में जाकर एकवृत होते हैं। यही परमदेव–अक्षर ब्रह्म पूर्वोक्त सव देवोंका अधिष्ठान है। यहीं से सवका प्रादुर्भाव होता है और यहीं पर आकर सवका लय। यही सवका कारण समष्टि है। इसलिये अक्षर ब्रह्मको सव कारणों का कारण—'सर्व कारण–कारण' कहते हैं।

इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड और ऐसे और भी असंख्य विश्व अक्षर ब्रह्म की चतुष्पाद विभूतिमें उदय लय पाते रहते हैं। प्रकृति पुरुप किंवा नारायण, हिरण्यगर्भ, प्रणव, ओंकार, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ईश्वर, सदाशिव आदि अनेक नामों

Shri Prannath Ji Pustkalay

से प्रसिद्ध जितने भी काल कर्म स्वभाव के अधीन कार्यब्रह्म किंवा विभूति पुरुष हैं, वे सब अपने-अपने काल स्वभाव और अधिकार का उपभोग कर अन्त में पुनः इसी चतुष्पाद विभूति में—अक्षर ब्रह्म के अन्तःकरण स्वरूप अधिष्ठान में लय को प्राप्त हो जाते हैं। वेदान्त दर्शन में भी चेतन अक्षर ब्रह्म को ही सबका अधिष्ठाता माना है।

अक्षरमम्बरान्त धृतेः (ब्रह्मसूत्र-१-३-१०)

व्यासजी नें अपने इस सूत्र में उपरोक्त तथ्य को बड़ी सुगमता के साथ सुनिश्चित किया है कि—'अक्षर' शब्द से न तो 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' ओंकार प्रणव को ले सकते हैं और न जड़ प्रकृति को। क्योंकि आकाश पर्यन्त असंख्य ब्रह्माण्डों को न तो ओंकार वर्ण ही धारण कर सकता है और न अचेतन जड़ प्रकृति ही धारण करने में समर्थ हो सकती है। धारण करना यह तो किसी चेतन पुरुष का ही सामर्थ्य हो सकता है जो निखिल ब्रह्माण्डों को धारण किये है। इसलिये अक्षर शब्द से अक्षर ब्रह्म को ही ग्रहण करना चाहिये। और फिर—

सा च प्रशासनात् (ब्रह्मसूत्र-१-३-११)

श्रुतियों में अक्षर का शासन भी सुना जाता है। शासन करना चेतन का ही कार्य हो सकता है, किसी अकारादि वर्ण का अथवा अचेतन जड़ प्रकृति का नहीं। इसलिये श्रुतियों में वर्णित 'अक्षर' शब्द से अक्षर ब्रह्म को ग्रहण करना युक्ति तथा प्रमाण संगत है। इस प्रकार व्यासजी ने भी सबका मूल तथा कारणों का कारण अक्षर ब्रह्म को ही बतलाया है। श्रुतियों में यथा—

एतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि ! सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः।

(बृह० ३-८-९)

याज्ञवल्क्य महर्षि अपनी स्त्री से कहते हैं कि 'हे गार्गी ! इसी अक्षर ब्रह्म के शासन में सूर्य, चन्द्र, तारा, ग्रह आदि स्थित हैं। कठोपनिषद् में भी अक्षर ब्रह्म के शासन की प्रबलता का वर्णन है। यथा—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥ (कठोप० २-३)

इस प्रकार श्रुतियों में ब्रह्मके शासनका स्पष्ट उल्लेख है। 'एकोऽहं बहु स्याम' तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति (छा० ६-२-३) इत्यादि शतशः श्रुतियोंमें ईक्षण भी सुना जाता है। विचार करना, शासन करना ये सब चेतनके धर्म हैं, जड़के नहीं। इसलिये विश्व रचनाके विषयमें सांख्यमतको एक विवादमात्र कहा जा सकता है, सिद्धांत नहीं। वस्तुतः विश्व रचना अक्षर ब्रह्मके द्वारा होती है, यही सर्व

Shri Prannath Ji Pustkalay

सम्मत और शास्त्र सिद्ध प्रतीत होता है ।

संध्ये सृष्टि राह हि (ब्रह्मसूत्र ३-२-१)
सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानम् (वृहदा० ४-३-९)
स्वाप्निकं सर्वमेतच्च ह्यज्ञानेन विकल्पितम् (पुराण सं०)
आब्रह्मतृर्ण–पर्यन्तं मायया कल्पितं जगत् (स्मृति)
स्वप्नमाया स्वरूपेति सृष्टिरन्यै–र्विकल्पिता (माण्डूक्य कारिका)

यह स्वप्न स्वरूप नश्वर विश्व अक्षर ब्रह्मके द्वारा किस प्रकार और किस अधिष्ठान में प्रतीत होता है, यह जानने योग्य है। उपरोक्त श्रुति और व्याससूत्र इस विश्वको स्वप्नवत् बताकर सन्ध्यस्थानमें प्रतिपादन करते हैं, जाग्रत और सुषुप्तिके संध्यस्थानमें स्वप्न को माना है, इसलिए स्वप्न तृतीय हो जाता है। यही कारण है कि वृहदारण्यक श्रुति स्वप्नको तीसरा संध्यस्थानवाला वर्णन करती है । शंकराचार्य "सन्ध्यमिति स्वप्नस्थानमाचष्टे" 'सन्ध्य' शब्दका अर्थ स्वप्नस्थान करते हैं और उपरोक्त वृह० श्रुतिके वचन को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हैं। उन का कहना है कि जब श्रुति स्वयं ही प्रतिपादन करती है कि "सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानम्" सन्ध्य तीसरे स्वप्न स्थान का नाम है, तब हमें मनमानी कल्पना करने की क्या आवश्यकता है ?

अन्य प्रमाण भी इस बातको पुष्ट करते चले आ रहें हैं कि—विश्व रचना केवल माया मात्र है। जो स्वप्नवत् प्रतीत होती है और अक्षर ब्रह्म ने इसे स्वप्न जैसा ही रचा है । शंकराचार्य के दादा गुरु श्रीगौड़पाद भी अनेक वार विश्वको स्वप्नवत् प्रतिपादन करते चले जा रहे हैं तब हमें सर्व सम्मत पक्षको मानने में आपत्ति क्या है ?

माना कि विश्व रचना स्वप्नवत् है, मिथ्या है, कल्पित है, क्षणिक है फिर भी किसी अधिष्ठान को लेकर की भासित हो सकती है। मनुष्य भी स्वप्न देखता है तो उसे भी 'कण्ठे स्वप्नमादिशेत' कंठस्थानमें स्वप्नके अधिष्ठानकी कल्पना करनी पड़ती है। इसी प्रकार इस विश्वको अक्षर ब्रह्म किस स्थानमें व्यक्त करता है यह जिज्ञासा होती है। इसका उत्तर यजुर्वेद निम्नरूप में देता है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । (यजुर्वेद ३१–२)

अर्थ—(इदम्) यह जो वर्तमान जगत है (यद् भूतम्) जो अतीत कालमें था (च) और (यद् भाव्यम्) जो भविष्यमें होने वाला विश्व है (सर्वम्) वह सब (पुरुषः) पुरुष स्वरूप (एव) ही है । अतीत, अनागत और वर्तमान तीनों काल में

Shri Prannath Ji Pustkalay

होने वाले असंख्य विश्व सबके सब पुरुष ही स्वरूप हैं। अर्थात् जिस प्रकार स्वप्न में दृष्टिगोचर होने वाली समस्त कल्पना स्वप्न-द्रष्टा से ही व्यक्त होती है। द्रष्टा के अतिरिक्त अन्य किसी साधन सापेक्ष नहीं होती। स्वप्न द्रष्टा सब कुछ बनकर स्वाप्निक जगत का व्यवहार सम्पन्न करता है। उसी प्रकार यह दृश्य जगत भी आदि पुरुष की कल्पना मात्र है। जड़- चेतन, सद्- असद चराचर जो कुछ भी प्रतीत होता है, सब स्वप्नरूप कल्पना है।

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ (यजुर्वेद ३१–३)

अथ—(एतावान्) भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में यावत् विश्वों का उदय लय है (अस्य) इस द्रष्टा पुरुष की (महिमा) सामर्थ्य विशेष विभूति स्वरूप है, वास्तविक स्वरूप नहीं। (च) और (पूरुषः) पुरुष तो (अतः) इस महिमा से (ज्यायान्) कहीं अतिशय अधिक है। (अस्य) इस पुरुष की महिमा का (पादः) चतुष्पाद विभूति का चौथा पाद–अर्थात् चतुर्थ पाद में (विश्वा)सम्पूर्ण विश्व और (भूतानि)प्राणीमात्र का उदय-लय है। इस पुरुष के अवशिष्ट(त्रिपाद)तीनों पाद-अर्थात् त्रिपाद विभूति(अमृतम्) अमृत स्वरूप अखंडनाश रहित(दिवि) प्रकाशात्मक दिव्य रूप में नित्य अवस्थित हैं।

त्रिपादूर्ध्वमुदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाऽभवत्पुनः (यजु–३१–४)

अर्थ—(पुरुषः) यह पुरुष अपने तीनों पादों से (उर्ध्वः) इस विश्वरूप कार्य से ऊपर (उदैत्) नित्य उदीयमान हो रहा है। (अस्य) इसका (पादः) चतुर्थ पाद (इह) माया में (पुनः) वारम्वार (अभवत्) होता है। अर्थात् अक्षरब्रह्मकी चतुष्पाद विभूति के तीन पाद (सत्स्वरूप–केवल और सबलिक) तो विभूति स्वरूप नित्य दिव्य स्वरूपमें अखंड वर्तमान है, और चौथा पाद जो अव्याकृत है उसी के अन्तर्गत असंख्य विश्वों का उदय-लय पुनः पुनः हुआ करता है। यद्यपि 'नित्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' की कोई इयत्ता नहीं हो सकती। फिर भी अक्षर ब्रह्मकी महिमा चतुष्पाद विभूति के स्वरूप को समझने के लिये वेद ने पादशः वर्णन करके चारों पादों की ओर मनुष्य के लक्ष्य को आकर्षित किया है, जो पृथक्-पृथक् मनन करने योग्य है।

यथा च पादपो मूलस्कन्ध शाखादि संयुतः॥
आद्य बीजात्प्रभवति बीजान्यन्यानि वै ततः।
प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्यन्ये परे द्रुमाः॥
एवमव्याकृतापूर्वं जायन्तेमहदादयः। (ब्रह्मपु० अ० २१—३३—३४)

Shri Prannath Ji Pustkalay

जिस प्रकार वृक्ष, शाखा और डाल-पात, फूल-फल, सब एक छोटे से बीज के अन्तर्गत तिरोहित रहते हैं और वृद्धि को प्राप्त होकर वे सब अपने-अपने रूप में व्यक्त हो जाया करते हैं। उसी प्रकार यह विश्व तथा ऐसे दूसरे असंख्य विश्व परम्परया अव्याकृत के द्वारा उदय लय पाया करते हैं। अव्याकृत का अर्थ होता है अव्यक्त विश्वों का समूह अथवा अव्यक्त विश्वों के उद्गम का आदि स्रोत। जहां से असंख्य विश्वों की रचना निरन्तर होती ही रहती है।

तद्धेदं तर्ह्यव्याकृत मासीत्तन्नाम रूपाभ्यामेव व्याक्रियते

(वृहदारण्यक उप १—४—७)

यह विश्व रचना के पूर्व अथवा कारणावस्था में आने के पूर्व अव्याकृत था वही नाम रूप से व्यक्त होकर दृश्य जगत के रूप में प्रतीत हो रहा है। जिस प्रकार स्वप्न सृष्टिके पूर्वमें स्वप्न अपने कारण स्वरूपमें तिरोहित रहता है किन्तु वही द्रष्टाकी इच्छानुसार व्यक्त होता है। उसे द्रष्टाका प्रतिविम्ब कहिये या कल्पना कहिये किंवा रचना कहिये किसी भी नामसे पुकारिये उसका अभिप्राय एक है। उसी प्रकार सृष्टिके पूर्व यह विश्व अव्याकृतमें तिरोहित रहता है। अव्याकृतमें चिदाभास का प्रतिबिम्बित होना ही क्षोभका कारण बन जाता है। बस, क्षोभके उदय होते ही विश्वकी कल्पना का विस्तार होने लगता है। यथा—

अव्याकृतगुण—क्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः।
भूत मात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥ (भागवत १२-७-११)

अव्याकृत में अक्षर ब्रह्मकी प्रेरणासे शवलिक प्रतिविम्बित होकर क्षुब्ध भावको प्राप्त हो जाता है। क्षुब्ध भावसे वैषम्य आया और महत्तत्त्व व्यक्त हो गया। महत्तत्त्व से अहंकार एवं अहंकारसे पांच तन्मात्रा, सूक्ष्म इन्द्रिय और उनके देवों की उत्पति, इस प्रकार सृष्टि रचनाका प्रवाह चल पड़ता है।

अक्षर ब्रह्मकी जो चतुष्पाद विभूति है उसके पादों में पुनः चतुष्पादकी कल्पना मनन करने योग्य है। एक पादके अन्तर्गत ही दूसरे पादका क्रम प्रारम्भ हो जाता है। इस कारण, पादोंकी कल्पना परस्पर एक दूसरेके साथ सम्बंधित है। जिस प्रकार चतुष्पाद कल्पना है उसी प्रकार उससे उत्पन्न होने वाले ब्रह्माण्डमें भी षोडश कलाओं का वर्णन मिलता है।

संक्षेप में अव्याकृतके चारों पादों का क्रमोल्लेख निम्न प्रकारसे है।

प्रणवात्मकं ब्रह्म। प्रणवात्मकत्वेनोक्तं ब्रह्म।
प्रणवाद्यखिल मंत्रात्मकं ब्रह्म। पादचतुष्टयात्मकं ब्रह्म।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अविद्यापादः । सुविद्यापादश्चानन्द पादस्तुरीयपादश्चेति तुरीयपादस्तुरीयतुरीयं तुरीयातीतं च (त्रिपादविभूति महा० उप०)

महाविष्णु ब्रह्माजी को अविद्यापाद का उपदेश देते हैं। प्रणवात्मक ब्रह्म होता है। प्रणव आत्मा है जिसका ऐसे शब्द ब्रह्म को भी ब्रह्म कहते हैं। प्रणव से लेकर अखिल वेद मन्त्रों की जो राशि है, ब्रह्म कही जाती है। चारों पादों की विभूतिका अध्यक्ष भी ब्रह्म होता है। तुरन्त ब्रह्मा को जिज्ञासु हुई कि ब्रह्म के चार पाद क्या होते हैं और चार पाद युक्त ब्रह्म क्या होता है ? उसके स्वरूप को महाविष्णु बताते हैं ; हे ब्रह्मा जी ! अविद्यापाद, सुविद्यापाद, आनन्दपाद और तुरीय पाद-इस प्रकार ब्रह्म के चार पाद हैं। तुरीयपाद के तुरीयतुरीय और तुरियातीत इस भांति दो भेद होते हैं। ये दोनों भेद वही हैं जिन्हें प्रणालिका में महाकारण और निर्मल चैतन्य (तुरीयातीत) कहते हैं।

मूलाविद्या प्रथमपादे नान्यत्र । विद्यानन्द तुरीयांशाः सर्वेषु पादेषु व्याप्य तिष्ठन्ति । एवं तर्हि विद्यादीनां भेदः कथमिति । तत्तत्प्राधान्येन तत्तद् व्यपदेशः । वस्तुतस्त्वभेद एव (त्रिपाद वि० उप०)

मूल अविद्या प्रथम पाद(अव्याकृत)में ही है, अन्य पादों में नहीं। विद्यापाद, आनन्दपाद और चतुर्थपाद-ये तीनों सब पादों में व्याप्त रहते हैं। यदि ऐसा है तो फिर विद्या आदि पृथक-पृथक पादों के नाम क्यों रखे गये ? तो कहते हैं कि प्राधान्य भाव को लेकर सबके नाम अलग-अलग हैं। वस्तुतः देखा जाय तो अक्षर के अन्तर्गत होने से सब एक ही स्वरूप हैं। यह वर्णन अव्याकृत में तो पूरा घटता ही है, आगे भी पूरा घट जाता है। इस कारण अविद्यापाद से जब अव्याकृत को लेते हैं तब तो उसके ऊपर के तीनों (शबलिक, केवल, सत्स्वरूप) माया रहित हो जाते हैं एवं जब अविद्यापाद से प्रणव ब्रह्म को लेते हैं तब अव्याकृत के शेष तीनों पाद माया से पर हो जाते हैं। यह चतुष्पाद विभूति का क्रम सर्वत्र पादों में होने से यह विशेषता हो जाती है कि अव्याकृत के चतुर्थपाद प्रणव ब्रह्म में भी उपरोक्त क्रमानुसार पांच स्थान सिद्ध हो जाते हैं। यथा—

एकमात्रो द्विमात्रश्च त्रिमात्रश्चैव भेदतः ।
अर्धमात्रा परा ज्ञेया तत ऊर्ध्वं परात्परम् ॥

अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा तथा विन्दु—इस प्रकार अपनी पांचों मात्रा सहित ओंकार का यही मूल स्थान है। इन्हीं मात्राओं का विस्तार नारायण आदि देव हैं जो विराट को लेकर शोभायमान हैं। यहीं से महत्तत्त्व

Shri Prannath Ji Pustkalay

आदि का उदय होकर सृष्टि क्रम चलता है। 'ओंकार एवेदं सर्वम्' यह जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, सब ओंकार का ही विस्तार है।

विद्यापादः—

विश्व में यावत् विज्ञान और विद्याओं को हम देख रहे हैं, उन सबका मूल यह विद्यापाद है। इस पाद में निरंजन (काल पुरुष), दश महाविद्या तथा अध्यात्म, अधिभूत आदि तीनों स्वभाव तथा ७२ सहस्र अन्य शक्तियों के सहित उनके गुण, इस निरंजन पुरुष को महाप्रबल बनाये रहते हैं। यह निरंजन पुरुष असंख्य जीवों को अपने में मिला लेता है। असंख्य जीव इसी को ब्रह्म मानकर भजते हैं। यही उनकी समष्टि बन जाता है। इसके आगे आनन्दपाद है, जो असंख्य जीवों[1] का 'मोक्ष' धाम है। उस आनन्दपाद के आगे तुरीयपाद है जिसमें चार द्वीप हैं। श्वेत द्वीप में पुरुष का वास है। रामोपासक इसी को साकेत, कबीर मतवाले सतलोक, वैष्णवजन परविष्णु का धाम किंवा 'व्यापी वैकुंठ' कहते हैं। इसके आगे तुरीयातीत—निर्मल चैतन्य में प्रातिभासिकी ब्रजलीला और रासलीला का स्थान है, जिसे गोलोक कहते हैं। इस प्रकार अव्याकृत में भी चार पाद हैं। इसके आगे शबल ब्रह्म, केवल ब्रह्म आदि का वर्णन है जो आगे चलकर यथाक्रम बतलाया जायेगा। इसका विस्तृत विवेचन विभूति ब्रह्म के वर्णन में देखें क्योंकि विभूतिपादों का यथेष्ट वर्णन सोपान पर्वों के निरूपण में ही किया जा सकता है।

इतिश्री सद्धर्मसिद्धान्त वागीश श्रीकृष्णदत्तशर्मशास्त्रिविरचिते विराटपट-दर्शने अक्षरब्रह्मवर्णनं नाम द्वितीयं पर्व परिसमाप्तं जातम्।

---

[1] अव्याकृत के इस आनन्दपाद को महाशून्य किंवा अलख ब्रह्म, निर्विशेषब्रह्म एवं व्यापक ब्रह्म आदि विविध नामों से भी पुकारते हैं।

पूर्णशत सहस्रन्तु तिष्ठन्त्यव्यक्त चिन्तकाः।
पुरुषं निर्गुणं प्राप्य कालसंख्या न विद्यते॥ (वायु पु०)

इस महाशून्य किंवा निर्विशेष अव्यक्त ब्रह्मका ध्यान करनेवाले निष्काम मनुष्य पूरे सौ सहस्र मन्वन्तर पर्यन्त इस शून्य मण्डलमें अव्यक्त आनन्दका अनुभव करते हैं। इसके आगे जो निर्गुण अर्थात् परविष्णु पुरुष है, जिसे अलख पुरुष, अमरपुरुष, सत्पुरुष आदि नामों से पुकारते हैं, उस पुरुष का धाम है। इस पुरुष के धामको प्राप्त होनेवाले कितने काल पर्यन्त वहांपर निवास करते हैं, उसकी कोई संख्या नहीं मिलती॥

इतिश्री विराटपटदर्शने द्वितीयपर्वणि ग्रन्थकारकृता सन्दर्भबोधिनी टिप्पणी समाप्ता।

Shri Prannath Ji Pustkalay

क्षर पुरुष

गत प्रकरणमें अक्षर पुरुषका वर्णन संक्षेप में किया। अब इस प्रकरणमें क्षर पुरुष–विश्व किंवा ब्रह्माण्डका वर्णन करना है। विश्व रचना और उसके स्वरूपका यर्थार्थ वर्णन करना तो तत्त्वदर्शी पुरुषोंके सामर्थ्य की बात है तथापि मनुष्य सुलभ बुद्धि और प्रभु कृपाके बलपर जो कुछ भी बन सके उसे पूर्ण करना पुरुषार्थ है।

जिस विश्वको हम एक महान विस्तृत रूपमें देख रहे हैं, उसे वेद, शास्त्र पुराण तथा महान पुरुषोंने अनेक प्रकारसे वर्णन किया है। विविध ग्रन्थोंमें सृष्टि, विराट, विश्व जगत्, ब्रह्माण्ड, संसार, अण्ड, अण्डकटाह, दुनियां, क्षर पुरुष, क्षणभंगुर, विनश्वर आदि अनेक नामोंसे इसको लिखा है। तथापि ब्रह्माण्ड, विराट, सृष्टि, जगत्, और विश्व–ये पांच नाम अधिक प्रचलित पाये जाते हैं। आदि पुरुषको वेद, शास्त्र, पुराणोंमें ब्रह्म [1] कह कर वर्णन किया है, अतएव आदि पुरुषसे प्रकट होनेवाला यह विश्व ब्रह्माण्डके नामसे अधिक पुकारा जाता है।

निः प्रवेशे निरालोके सर्वतस्तमसावृते ।
ब्रह्माण्डमभूदेक–मक्षरस्य कारणं परम् ।।

जब सृष्टि नहीं थी, आलोक नहीं था। सर्वत्र तमस् छाया हुआ था। अक्षर ब्रह्मके मन द्वारा विश्वके परम कारणरूप–अव्याकृतमें एक तेजोमय अंडा व्यक्त होकर जगतका कारण बना। भागवतमें भी—

वर्षपूग–सहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम् ।
कालकर्मस्वभावस्थो जीवोऽजीवमजीवयत् ।।
स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः। (भागवत २-५-३४-३५)

---

[1] वेदोंको इस ब्रह्म पुरुषके श्वासरूप कहा है। वेद, शास्त्र, पुराण आदि का ज्ञान भी परम्परया इसी आदि पुरुष के द्वारा विश्वमें आता है। इसलिये नाद (शब्द) और विन्दु दोनोंका जनक ब्रह्म कहा जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सहस्र युग वर्ष पर्यन्त वह अण्डाकार जल में शयन करता रहा। काल, कर्म और स्वभाव के अनुसार उसे आदि पुरुष ने चेतन प्राणशक्ति युक्त बना दिया। अनन्तर उस अण्डे को फोड़ कर अन्दर से एक पुरुष प्रकट हुआ, जो विराट पुरुष कहलाया। यथा:-

हिरण्य-गर्भस्समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकासीत्
स दधार पृथिवीं उत द्यां (यजुर्वेद अ० १३ मन्त्र ४)

सृष्टि के पूर्व—विश्व का परम कारण रूप अक्षर ब्रह्म का मन जो "एकोऽहं बहुः स्याम" मैं एक ही बहुत रूप हो जाऊँ" इस प्रकार की इच्छा से प्रेरित होकर हिरण्मय अंडेमें गर्भरूप से प्रच्छन्न अवस्थित था। उसमें से प्रकट होकर प्राणीमात्र का पालनकर्ता हुआ। जिसने अपनी शक्ति से इस पृथ्वी को और आकाश को धारण किया है।

इस प्रकार सभी आर्षग्रन्थ तेजोमय अंडे से समुत्पन्न पुरुष द्वारा पृथ्वी आकाशादि को धारण किया गया वर्णन करते हैं। तेजोमय अण्डा ब्रह्म के द्वारा हुआ, अतएव उससे समुत्पन्न जगत को 'ब्रह्माण्ड' यह अन्वर्थक नाम मिला।

"ज्योतिर्वै हिरण्यम्" (शतपथ ब्राह्मण)

तेज, प्रकाश, ज्योति, हिरण्य ये सब समानार्थक शब्द हैं; ज्योति को ही हिरण्य भी कहते हैं। प्रकाशमय अण्डे के गर्भ में रहने के कारण उसको हिरण्यगर्भ भी कहने लगे। इस हिरण्यगर्भ ने चिरकाल तक जल में निवास किया, इसलिए 'नारायण' भी कहलाया। यथा—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

(मनुस्मृति अ० १—४)

नर रूप ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण जल को नार कहते हैं। आदि पुरुष हिरण्यगर्भ का प्रथम नार-जल में अयन स्थान हुआ, इससे उसको नारायण भी कहा गया। उस हिरण्य गर्भ अंडे को फोड़ कर प्रकट होने वाला पुरुष विराट कहा गया [1] और विराट पुरुष के पृथक्-पृथक् अगों में चतुर्दश लोकों की

---

[1] तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशु-समप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥ (मनु० १-६)
उस सूर्य के समान प्रकाश पुंज अण्डे से सब लोकोंके आदि पिता ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

कल्पना का वर्णन आता है। यथा:—

यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति मनीषिणः ।
कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥
(भाग० २-५-३६)

उपरोक्त विराट पुरुष के कटि भागके नीचे सात पाताल लोक और कमरके ऊपर के भागमें सात स्वर्ग लोकों की रचनाका वर्णन है। इस प्रकार यह विराट पुरुष अण्ड कटाहके मध्य १४ लोकोंको लेकर स्थित है।

"तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्त्रान्तर आस्ते या वै कला
भगवतस्तामसी समाख्याताऽनन्त इति... ... ..."
"यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्त्तेः सहस्त्रशिरस एकस्मिन्नेव
शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते" (भाग० ५-२५-२)

इस विराट पुरुष के पादतलके अधो भागमें गर्भोद जल है, जिस जलमें एक कच्छप (कछुवा) अवस्थित है। उसके ऊपर शेषनाग है। इसी शेषको शय्या बनाकर शेषशायी नारायण विराजमान हैं, पासमें कमला सेवामें तत्पर हैं। यह विश्वको अपने आकर्षणसे निरन्तर धारण किये हैं, अतएव इनको संकर्षण भगवान भी कहते हैं। यद्यपि यह भगवानकी तामसी कला है, किन्तु भक्तोंके ऊपर दया करके सत्त्वमूर्ति धारण किये है। प्रलय कालमें विश्वके संहार कार्यको भी रुद्र रूपसे यही पूरा करती है, इसलिए भगवान रुद्रको भी इन्हींका अंश कहा जाता है। अनन्त कार्य इसीके द्वारा सम्पन्न होते रहते हैं; अतएव इसको अनन्त भी कहते हैं। इसअ नन्तमूर्ति शेष भगवानके शिर पर यह पृथ्वी मंडल सरसोंके दाना जैसा सूक्ष्म प्रतीत होता है। गर्भोदक समुद्रको श्वेत वर्ण बतलाते हैं। ब्रह्माण्डके गर्भमें अष्टावरणके भीतर सबसे प्रथम यही है अतएव इसको 'गर्भोदक' कहा गया है। इस गर्भोदक जलमें शयन किये हुए शेषशायी नारायण विराजे हैं। यह आदि नारायण के [1] प्रतिनिधि स्वरूप कहे जाते हैं। इन्हींकी नाभिसे कमल निकल कर

[1] नारायण महा विष्णुके चार (संकर्षण, वासुदेव,, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) व्यूह हैं, जो स्थिति, संहार, रक्षण आदि कार्यों में नियुक्त हैं। संकर्षण व्यूह पातालमें शेषशायी होकर स्थिति संहारका कार्य सम्पादन करते हैं। वासुदेव व्यूह विष्णुरूप होकर रक्षामें तत्पर हैं। यथा—

"वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ।
अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्ति-व्यूहोऽभिधीयते ॥
स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरोय इति वृत्तिभिः।" (भा० १२-११-२१)

Shri Prannath Ji Pustkalay

ऊपर जा खिला है जिसके कमल नाल से ब्रह्मादि देवों की उत्पत्ति और विश्व रचना का क्रम लिखा है।

१—पाताल—

यह १४ लोकों में सबसे नीचे का लोक है। शेषनारायण से ३० सहस्र योजन ऊपर इसकी स्थिति है। इसमें नाग जाति के प्राणियों की वस्ती है। मणियों के प्रकाश और स्वर्गीय आनन्दों से भरपूर यह लोक भी परम सुन्दर है।

२—रसातल—

यह पाताल से दस हजार योजन ऊपर स्थित है।

"रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिनः"

(भाग ५—२४—३०)

यहां पर दैत्य, दानव, असुर, पणि नाम वाले निवात, कवच, कालेय आदि रहते हैं। यहां पर भी नाना प्रकार के भोग, ऐश्वर्य आनन्द स्वर्ग से भी अधिक मात्रा में विद्यमान हैं। मणियों के प्रकाश से पूर्ण सर्वत्र सुन्दर मन्दिर स्थान बने हैं।

"यस्मिंश्च सर्वभूतानि प्रलयं यान्ति संक्षयम् ॥
स मनः सर्वभूतानां प्रद्युम्नः परिपठ्यते ।
तस्मात्प्रसूतो यः कर्ता कारणं कार्यमेव च ॥
तस्मात्सर्वं सम्भवति जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
सोऽनिरुद्धः स ईशानो व्यक्तः स सर्वकर्मसु ॥"

(महाभार० शान्तिपर्व मोक्षधर्म अ० ३३९—३७—३९)

जिस स्वरूपमें प्रलय कालमें सब भूतोंका लय होता है, उसे प्रद्युम्न कहते हैं। जो सबके अन्तःकरणमें मनरूपसे भी विराजमान है और जिससे सब कार्य कारणका विस्तार होता है एवं स्थावर जङ्गम सबको प्रकट कर धारण किये है, भगवानके उस व्यूहको अनिरुद्ध कहते हैं। जो तैजस विश्वका द्रष्टा होकर सर्वत्र निवास कर रहा है और सबका आधार भी है, उसे वासुदेव कहा जाता है। यथा—

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
अतोऽसौ वासुदेवाख्यो विद्वद्भिः परिगीयते ॥ (विष्णु पु०)

इस प्रकार महाविष्णुके चार स्वरूप माने गये हैं जो रूपान्तरसे विश्वकार्य में लगे हैं।

स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः।
चतुर्धा संस्थितो ब्रह्मन् सगुणो निर्गुणस्तथा ॥
एकामूर्तिरनिर्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः ।
ज्वालामालोपरुद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिनां परा ॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

३—महातल

"महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः।"

(भाग ५—२४—२६)

यह रसातल से दस सहस्र योजन ऊपर है। यहां पर कद्रु के पुत्र सर्प जाति के स्त्री-पुरुष रहते हैं। यह तामसी योनि के प्रधान गुण वाले हैं, अतः गरुड़ के साथ बद्धवैर थे। परन्तु यहां पर गरुड़ कभी नहीं आ पाते, अतः निर्भय होकर यहां निवास करते हैं। यहां भी मणियों का प्रकाश है।

दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा।
वासुदेवाभिधानाऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते ।। ४६
द्वितीया पृथिवीं मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः।
तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं च समाश्रिता।। ४८
तृतीया कर्म कुरुते प्रजापालन तत्परा।
सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थापनकारिणी ४९
चतुर्थी जल मध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा।
रजस्तस्या गुणः सर्ग सा करोति सदैव हि।। ५०

(मार्कण्डेय पु० अ० ५)

नारायणकी वासुदेव नामकी यह प्रथम निर्गुण मूर्त्ति जो दूर समीप सर्वत्र व्यापक है। इसी व्यापक स्वरूपका योगी ध्यान किया करते हैं। दूसरी—मूर्त्ति संकर्षण नामकी पाताल में है, जो तामसी कही जाती है। उसीका एक अंश भगवान शंकरजी कहे जाते हैं। तीसरी—धर्मकी स्थापना में और प्रजापालन में व्यस्त है, इसे विष्णु नामसे पुकारते हैं। चौथी—आदिपुरुष वासुदेव नाम से प्रसिद्ध है एवं मोहरूपी समुद्रमें व्यापक रूपसे विराजमान है। इसका मुख्य गुण 'रज' है अतः सदाकाल सृष्टि रचना के कार्य को सम्पादन करती है। इसी के प्रतीक स्वरूप ब्रह्माजी हैं, इस प्रकार भगवान के चारों व्यूहों का वर्णन। इसे मूल रूप में समझना हो तो संकर्षण के अंशभूत शिवजी। वासुदेव के अंशभूत विष्णु वैकुण्ठनाथ। नारायण के अंशभूत सृष्टिकर्ता ब्रह्मा। और अनिरुद्धके अंशरूप ईश्वर जो सर्वत्र व्यापक होकर कार्य करते हैं। ये चारों (विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय) स्वरूपों की समष्टि का नाम ही महाविष्णु, प्रणव, ओङ्कार आदि है, यही चारों व्यूह मनुष्य के शरीर में मन, बुद्धि चित्त, और अहंकार नाम से कहे जाते हैं।

संकर्षणाच्च प्रद्युम्नो मनोभूतः स उच्यते।
प्रद्युम्नाद्योऽनिरुद्धस्तु सोऽहङ्कारः स ईश्वरः।।

(महा भा० शांतिपर्व मोक्षधर्म अ० ३३६)

Shri Prannath Ji Pustkalay

४–तलातल–

यह नीचेके लोक (महातल) से दश सहस्र योजन ऊपर है। यहां पर महादेव जी से सुरक्षित, सुदर्शन चक्रके भयसे मुक्त हो कर 'मय' नाम का दानव सानन्द निवास करता है। यहां पर और भी दैत्य, दानव, आदि अनेक स्त्री पुरुष निवास करते हैं। राजा बलि का आधिपत्य और नाना सुखों का उपभोग है। एवं मणियों का प्रकाश है।

५–सुतल लोक–

यह भी यथा क्रम नीचेके लोक (तलातल) से दश सहस्र योजन ऊपर स्थित है। यहां पर दैत्य,दानवों का निवास है। यहीं पर राजा बलि राजधानी बनाकर निवास करता है। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी यथाक्रम चार-चार मास द्वार पर रह कर राजा बलिके दर्शन देते हैं। यहां किसी प्रकारके रोग दोष आधि व्याधि नहीं सताते। विश्वकर्मा ने इसे इतना सुन्दर रचा है कि-यहांपर श्रम,तन्द्रा आदि दोष भी नहीं सताते। यथा—

तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम्।
यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रापराभवः॥ (भाग ८-२२-३२)

भगवान विष्णु ने बलिको छलनेके बाद सुतल लोकमें निवास करने की आज्ञा देते हुए स्पष्ट कर दिया है कि हे राजन ! वहांपर आधि, व्याधि, क्लम और तन्द्रा नहीं सतायेंगे और न तुम्हारा कभी पराभव होगा। तुम निश्चित होकर सुतल लोक में निवास करो। अन्य चार लोकोंमें राजावलिका शासन है पर निवास तो सुतल लोकमें ही है ऐसा उल्लेख मिलता है।

६–वितल–

यह लोक सुतल लोकसे दश हजार योजन ऊपर है। यहाँ पर अपार सुखोपभोगके साधन हैं। दानव, दैत्य, राक्षस आदि अनेक जातिके प्राणी निवास करते हैं। यहीं पर हाटकेश्वर महादेवजी भवानी सहित विराजमान हैं। अपने गणों सहित शिवजी के निवास से यहां के प्राणी अधिक सुखी हैं। यहां हाटक नामका रस पुरुषोंको दश हजार हाथी का बलप्रदान कर भोगों को भोगनेमें असीम आनन्द देता है।

७–अतल–

यह लोक वितलसे दश सहस्र योजन ऊपर है। मय दानवके पुत्र बल का आधिपत्य है जिसके मुखसे स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली स्त्रियोंके गण के गण केवल जमुहाई लेतेमें प्रगट हो गये थे, बड़ा चतुर मायावी है। नाना प्रकारके वनोद्यान, महल, मंदिरों को मायासे रचकर स्वर्गको भी तुच्छ कर दिया है। हाटक नाम के रस को

Shri Prannath Ji Pustkalay

बनाकर सब दैत्य, दानवों को पान कराकर दस हजार हाथी की शक्ति सबको प्रदान कर देता है। जिससे यहां के निवासी सब प्रकार के सुखों को अधिक मात्रामें ले सकें। और इसके नीचे के वितल लोकमें तो हाटक रस की नदी ही बहती है। चाहे जितना हाटक रस पान कर सकते हैं। इस प्रकार ये सातों लोक स्वर्ग से भी अधिक ऐश्वर्यपूर्ण है। यथा—

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दविभूतिभिः
सुसमृद्ध वनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानव काद्रवेया ... ...
ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति (भाग ५–२४–८)

नीचे के सात लोकों को विलस्वर्ग भी कहते हैं। भूविवर भी इनका नाम है। कारण ये सब पृथ्वी के भीतर विलके सदृश हैं। इनका विस्तार स्वर्गकी भांति महान नहीं है। किन्तु सौ सौ योजन के लम्बे चौड़े हैं। ऊंचाई में दस-दस सहस्र योजन एक दूसरे के ऊपर नीचे हैं। जो सब ऋतु में सुखदायक और सर्व सुख पूर्ण हैं। यथा—

एकैकशो योजनायामोच्छ्रायतः पुनः। अयुतान्तर विख्याताः सर्वर्तु सुखदायकाः॥
अतलं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीय वितलं तथा।तृतीयं सुतलं प्रोक्तं चतुर्थं वै तलातलम्॥
महातलं पंचमं च षष्ठं प्रोक्तं रसातलं। सप्तमं विप्र पातालं सप्तैते विवराः स्मृताः॥
(देवीभागवत ८–१८–१५–१६)

ऊपरसे नीचेकी की ओर गिनें तो प्रथम अतल, द्वितीय वितल, तृतीय सुतल चतुथ तलातल, पञ्चम महातल, छठा रसातल और सातवां पाताल, इस प्रकार ये सातों लोक दस-दस सहस्र योजनके अन्तर से हैं। श्रीमद्भागवत में इन्हें विराट के अंग विशेष में माना है। यथा—

तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः।
जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जंघाभ्यां तु तलातलम्॥
महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम्।
पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान्॥ (भा० २–५–४०,४१)

कमरमें अतल, ऊरुमें वितल, जानु में सुतल, जांघों में तलातल, गुल्फों में महातल, पग के दाँड़े के नीचे भाग में रसातल और पादतल में पाताल है। इस प्रकार

Shri Prannath Ji Pustkalay

विराट ही लोकमय है। इन सात पातालों (बिलस्वर्गों) में स्वर्ग से भी अधिक काम-नाओं के भोग, ऐश्वर्य, आनन्द विभूति आदि विद्यमान हैं। वहां पर निवास करने-वाले स्त्री पुरुष ईश्वर से भी अप्रतिहत काम हैं अर्थात् उनके सुखोपभोगों को ईश्वर भी कम नहीं कर सकता। ये सब तामसी [1]उपासनावालों को प्राप्त होते हैं। कभी-कभी आवेश और महत्वाकांक्षा के कारण तमोगुण प्रधान पुरुष सात्विक भावना वालों से भी आगे बढ़कर तप, त्याग, दान, पुण्य, यज्ञ, जप आदि करने लग जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें इन लोकों का सुखोपभोग प्राप्त होता है।

मृत्यु अथवा भूलोक—

नीचे के अतल लोक से दस हजार योजन ऊपर यह मृत्युलोक है। यह नीचे पाताल से आठवाँ लोक है। यह विराट पुरुष के उदर भाग में है। जिस-प्रकार उदर में किया गया भोजन सम्पूर्ण शरीर को सुखरूप सिद्ध होता है। उसी प्रकार यह मृत्युलोक सब लोकों के सुख का साधन स्वरूप केन्द्र है।

'चौद लोक कमायुं खाइ अहीनुं' (श्री तारतम वाणी)

हमारे शरीरका पोषण एकमात्र पेटके भोजनसे ही होता है, उसी प्रकार चौदह लोकोंमें जो कुछ सुखका अनुभव होता है, वह सब मृत्युलोकके प्रतापसे। इसलिये वेद शास्त्रों में मृत्यु-लोकको विशेष महत्व प्राप्त है। अध्यात्म शास्त्रके अवलोकन से एवं प्राकृत पदार्थोंके तत्त्वोंका परिशीलन करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि मृत्युलोक की प्राप्ति और मृत्युलोकमें भी मनुष्य तनकी प्राप्ति, यह बड़े सौभाग्य की बात है।

यह मृत्युलोक देव युग में एक ही शासन में[2] था, किन्तु मानव युग के

---

[1]किसी भी देव की उपासना क्यों न हो, वह यदि तामसी होगी तो अधो लोकों में उसके अनुसार फल प्राप्त होगा। दान पुण्य, शुभ कर्म, भजन, पूजन आदि में तामसी भावना रहने से उसका फल तो मिलता है किन्तु सातों पाताल लोकों में उत्तम, मध्यम स्वरूप से जैसा कर्तव्य होता है उसी प्रकार का फल मिलता है "अधो गच्छन्ति तामसाः" इत्यादि गीता में भी भगवान ने तामसी भावना वालों को अधोलोक के ऐश्वर्यों का प्राप्त होना ही लिखा है।

[2] यावत्सूर्य उदेतिस्म यावच्च प्रतितिष्ठति।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्र मुच्यते॥ (विष्णु पुठ ४-३)

अर्थ—जहांतक सूर्यका प्रकाश उदय पाता है और जहां तक प्रकाश होता है वह सब

Shri Prannath Ji Pustkalay

लिये यह सम्भव न रहा। क्योंकि देव युग की अप्रतिहत शक्ति, अपूर्व सामर्थ्य और अन्य अपेक्षित बातें मानव युग में यथावत् नहीं रह सकती थीं, अतएव महाराजा प्रियव्रत ने इसे सात द्वीपों में विभक्त कर दिया। जो बहुत काल तक उनके पुत्रों के आधीन रहा। किन्तु अन्य द्वीपों के दिव्यगुण और दिव्य साधन देवों के अनुकूल थे, अतः वे सब धीरे-धीरे देवों के आधीन होते चले गए। इसका वर्णन भागवत के पंचम स्कन्ध में बड़े विस्तार के साथ किया है। उससे भी अधिक स्पष्ट और संक्षिप्त वर्णन देखना हो तो विष्णु पुराण में मिलता है। यथा:—

मैत्रेय ! श्रूयतामेतत्संक्षेपाद्गदतो मम ।
नास्य वर्षशतेनापि वक्तुं शक्योऽतिविस्तरः ॥ ४ ॥
जम्बूप्लक्षादयो द्वीपाः शाल्मलिश्चापरो द्विज ।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥ ५ ॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त-सप्तभिरावृताः ।
लवणेक्षु सुरासर्पिर्दधि-दुग्धजलैः समम् ॥ ६ ॥
(विष्णु पु० २-२)

क्षेत्र युवनाश्वके पुत्र मान्धाताका राज्य कहा जाता था। विश्व रचना के समय जो सबसे प्रथम देवयुग आता है, उसीका यह वर्णन है। प्रत्येक मन्वन्तर में अथवा प्रत्येक सत् युगमें इन बातोंको मिलाने लगें तो नहीं घट सकती। कारण, प्रथम देवयुग ही ऐसा था जिसमें युगादिकी प्रजामें ऐसे-ऐसे महान पुरुष हुआ करते थे, जो देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक बलवान और शक्ति सम्पन्न होते थे। इस बातको वर्तमान युगके इतिहासकार नहीं समझ सकते। क्योंकि इनकी दृष्टिमें तो आदि युग जंगली मनुष्योंका था। कतिपय विद्वान तो यहांतक सिद्ध करने लगे हैं कि—प्रथम मनुष्य जैसी सूरति शक्लके पुरुष थे ही नहीं। ये तो सब धीरे-धीरे सुधरते-सुधरते बन्दरोंमें से मनुष्यरूपमें आ गए हैं। इनकी दुम-पूंछ अदृश्य हो गई है। अतः यह एक नई जाति बन गई है। परमात्मा न करे कि— अबकी नाक काँन भी कहीं गायब हो जावें, नहीं तो अबकी बार तो 'नकटा' ही कहलायेंगे। हमें इनकी बुद्धिपर दया आती है, जिन्हें यह भी पता नहीं कि दुनियांमें जाति नहीं बदला करती। पर हमारे इन महाशय मित्रों को किताबें कौन पढ़ाने लगा होगा? क्योंकि बन्दरकी सन्तान ये विचारे पढ़ना किस प्रकार सीख गये।

Shri Prannath Ji Pustkalay

महर्षि पराशरजी भू मण्डलके आयाम-विस्तारका वर्णन करते हुए मैत्रेय-जीके प्रति कहते हैं कि 'हे द्विज ! विस्तार पूर्वक तो सैकड़ों वर्षों में भी इसके संस्थानोंका वर्णन नहीं हो सकता, इसलिये संक्षेपमें कहता हूं, वह सुनो ! पृथ्वी लोककी सीमा बहुत विस्तृत है। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, क्रौंच, शाक और पुष्कर ये सातों द्वीपोंका अन्तर्भाव भी पृथ्वी लोकमें ही होता है । इन सातों द्वीपोंके आस पास चारों ओर सात समुद्र भी हैं, जो द्वीपोंको घेरे हैं। वे सातों समुद्र लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दही, दूध, और दिव्य जलसे भरे हुए हैं । ये सातों समुद्र और उपरोक्त सातों द्वीप एक दूसरेकी अपेक्षा द्विगुण (दूने)होते चले गए हैं। जैसे-जैसे द्वीपोंका विस्तार बढ़ता चला गया है, उसी प्रकार समुद्र भी एक दूसरेसे दुगुणे होते चले गए हैं। इन सबके मध्य-भागमें जम्बूद्वीप की स्थिति है । यथाः—

जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः ।
तस्यापि मेरुर्मैत्रेय ! मध्ये कनक पर्वतः ॥
चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छ्रयः ।(विष्णु पु० २-२-७)

सब द्वीपों और सातों समुद्रोंके मध्यमें जम्बूद्वीप है। अन्य द्वीप ब्रह्माण्डके अंडकटाह की ओर चक्रावृत्त— [1]चारों ओर से ऊपर को बढ़ते हुए चले गए हैं, जो स्वर्ग के साथ जा मिले हैं। वर्तमान युग का अधूरा विज्ञान अभी उन्हें नहीं ढूंढ़ सका। जम्बूद्वीप का विस्तार एक लक्ष योजन का है। मध्य में सुमेरु नाम का सुवर्ण पर्वत खड़ा है, जो एक लक्ष योजन ऊँचा है। सोलह सहस्र योजन पृथवी के भीतर प्रविष्ट (घुसा) है, और चौरासी सहस्र योजन पृथ्वी के ऊपर है। जम्बूद्वीप के मध्य भाग में सुमेरु है और सुमेरु के चारों ओर नौ खंड हैं। यथा—

---

[1]विश्व विभाग में मृत्यु लोक को विराट का उदर माना है। और समुद्रों की कल्पना विराट के कुक्षि भाग में की गई है।

"कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थीनि (देवी भागवत ७–३३–३१)

कुक्षिभाग स्वाभाविक ही उदर से कुछ ऊपर को आता है। बस, इस रहस्य को समझ लेवें तो सातों द्वीपों के चारों ओर के समुद्रों को हम पृथ्वी के नीचे की ओर न ढूंढ़ते फिरें। सातों द्वीप और सातों समुद्र चक्रावृत ऊपर की ओर चढ़ते चले गए हैं जो हमारे इन समुद्रों से नितान्त भिन्न और अगम्य हैं। ये दृश्यमान समुद्र तो केवल भरतखंड के नौ विभागों को पृथक् पृथक् बनाने के लिये उपसमुद्र स्वरूप हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम् ।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरो दक्षिणतो द्विज ! ॥
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तथैव तु हिरण्मयम् ।
उत्तराः कुरवश्चैव तथा वै भरतं तथा ॥
नव साहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तम ! ।

(विष्णु पु० अंश २–२–१३-१५)

सुमेरु पर्वतके दक्षिणमें हरिवर्ष, किंपुरुष वर्ष और भारतवर्ष–इस प्रकार तीन खंड हैं। सुमेरुसे भारत सब से अधिक दूर हैं। सुमेरुके चारों तरफ इलावृत खण्ड नौ-नौ सहस्र योजन फैला हुआ है उसके बाद हरिवर्ष फिर किंपुरुष और उसके बाद भरत खण्ड नौ-नौ हजार योजनके हैं। प्रत्येक वर्ष में एक-एक महान पर्वत है। भरत खण्डका प्रारम्भ उत्तर ध्रुवसे दक्षिण की ओर को होता है जो नौ सहस्र योजनका है। जिस भारत प्रदेश में हम बैठे हैं यह तो भरत खण्डका केवल नवम भूभाग है।

मेरोः पूर्वेण भद्राश्वं केतुमालं च पश्चिमे ।
वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठ तयोर्मध्यमिलावृतः ॥ (विष्णु पु० २-२-२४)

सुमेरुके पूर्वमें भद्राश्व खण्ड, पश्चिममें केतुमाल खण्ड और इन दोनों के मध्य में इलावृत खण्ड है। इलावृत खंडके मध्यमें सुमेरु स्थित है जो ८४ लाख योजन ऊँचा चला गया है। इस सुमेरु के चारों ओर मंदर और मेरुमंदर,पार्श्व और कुमुद नामके चार बड़े-बड़े विशाल पर्वत हैं, जो मेरुके कर्णिका रूपसे अवस्थित हैं। बीचमें कंचनका गिरि सुमेरु खड़ा है। सुमेरु के उत्तरमें रम्यक वर्ष, हिरण्यवर्ष और कुरुवर्ष इस प्रकार तीन खण्ड हैं।

धनुर्वत्संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।
दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्रमिलावृतम् ॥

सुमेरुके उत्तरमें कुरुखंड और दक्षिणमें भरत खण्ड ये दो वर्ष तो धनुष की भांति तीन कोण वाले हैं। दो उत्तरके और दो दक्षिणके चार खंड बड़े हैं। इलावृत खण्ड चौरस[1] गोल है। केतुमाल खण्ड और भद्राश्व खण्ड दोनों अधिक विशाल हैं। भारतवर्ष सुमेरु से

[1] आजके युगका विज्ञान २५ हजार मीलकी परिधिवाली पृथिवीसे आगे नहीं बढ़ सका। किन्तु समय आयेगा कि विश्वका विज्ञान भी इन सब बातोंको प्रत्यक्ष मान लेगा। कुछ दिन पूर्व का

Shri Prannath Ji Pustkalay

लगभग २८ हजार योजन की दूरी पर है। प्रत्येक खंडकी मर्यादा महान् पर्वतोंसे बाँधी गई है। नौ खंडों में भगवानके नौ अवतारोंकी प्रतिष्ठा है। यथा–इलावृत खण्डमें भगवान की चौथी व्यूह मूर्ति संकर्षणकी प्रतिष्ठा है। यहांपर सहस्रों अरब शक्तियोंके सहित भवानीपति शिवजी इसी संकर्षण भगवानकी उपासना करते हैं। इस खण्ड में कोई पुरुष नहीं रह सकता। इसलिये इस खण्ड को कामिनी खण्ड भी कहते हैं। यहां पर सभी प्राणी स्त्री जाति के होकर निवास करते हैं। भद्राश्व खण्ड में हयग्रीव भगवान की प्रतिष्ठा हैं। वहां के निवासी हयग्रीव को उपासना करते हैं। केतुमाल खण्ड में भगवान कामदेवकी प्रतिष्ठा है। रम्यक खण्ड में मत्स्यावतार की प्रतिष्ठा है। हिरण्यक खण्ड में कच्छप अवतार की प्रतिष्ठा है। हरिवर्ष खण्ड में नृसिंह भगवान की प्रतिष्ठा हैं। किंपुरुष खण्ड में भगवान राम की[1] प्रतिष्ठा है। राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान आदि

विज्ञान दुनियाको लाखों वर्षकी भी नहीं मानता था। आज का विज्ञान ६० करोड़ वर्ष तक पुरानी मानने लगा है। आगे चलकर वेद शस्त्रानुसार मानने लगेगा। भरत खण्ड गोल है, उसके चारों तरफ जल है। बस, उसी जलमें जहाज घूम कर अपनी जगह आ जाते हैं। इसलिये उन्हें जगत उतना ही नजर आता है। परन्तु हमारे अन्य द्वीप और खण्ड ऊपरकी ओर चक्रावृत चले गये हैं जिससे एक खण्ड से दूसरे खण्डके बीचमें जल आ जाता है। बस, जलके चारों ओर घूमने वाला अपनी जगह आयेगा ही क्योंकि समुद्र और पृथिवी गोल हैं। इस कारण सातों द्वीपोंको प्राप्त नहीं कर पाते। इस जम्बूद्वीप में सात समुद्र हैं जो इन समुद्रों की अपेक्षा छोटे हैं और प्राचीन कालमें उपसमुद्रोंके नामसे प्रसिद्ध थे। इस समय सूक्ष्म लोकोंके द्रष्टा नहीं रह गये, अतएव स्वर्गीय साधन सम्पन्न अन्य द्वीपों के ऐश्वर्यको हम नहीं समझ पाते। क्योंकि वे सब सूक्ष्म, स्थूल दोनों स्वरूप में अवस्थित हैं। जिस लोकमें जो निवास करता है वह उसीके अनुकूल बन जाता है। उसका बुद्धिबल, ऐश्वर्य आदि भी उसी माफक हो जाता है। आज योगविद्या और देवभावना के नष्ट हो जानेसे उक्त बातें आश्चर्यजनक लगती हैं।

[1] भगवान रामचन्द्रजी की प्रतिष्ठा भारतमें न होनेके कारण भारतवासी रामोपासक कैवल्य मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। प्रथम तो भारतके अतिरिक्त अन्य खण्डोंमें प्रतिष्ठित अवतार मोक्ष देनेका अधिकार ही नहीं रखते। क्योंकि—

इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्मभूमौ विधीयते॥ (विष्णु पु०)

विष्णु पुराण तथा भागवतादि अष्टादश पुराण इस तथ्य को एकस्वरसे मानते हैं कि–

Shri Prannath Ji Pustkalay

यहां निरन्तर सबके सेव्य हैं। यही कारण है भारत में राम की उपासना गौण है। कुरु खण्ड में वराह भगवान की प्रतिष्ठा है। भारत में नर नारायण की प्रतिष्ठा है। श्री कृष्णजी के प्रादुर्भाव के अनन्तर नर नारायण भी श्रीकृष्ण जी में

भारतवर्षसे ही फल प्राप्ति होती है, अन्यत्र कर्मफल देनेवाली भूमि नहीं मानी गई। स्वर्ग, मोक्ष आदिको प्राप्त करनेके लिये भी भारतमें ही जन्म लेना पड़ता है।

दूसरी बात—द्वापरके अन्तमें श्री कृष्ण परमात्माके प्रादुर्भावने जगतमें स्थित देवों के अधिकार भी छीन लिये हैं। अब तो रामकी अथवा शिव, गणेश अदिकी उपासना करने वालोंको भी फलप्राप्त करनेके लिये पूर्णब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण जी शरणमें आना होगा। कारण—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
"अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्" (गी० ७–२१)
येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधि–पूर्वकम् ॥
अहं सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ (गीता० ९:२३-२४)

हे अर्जुन! जो-जो भक्त जिस किसी राम, शिव, गणेश, गौरी आदिकी उपासना करते हैं, उन भक्तोंकी उन-उन देवोंमें मैं ही अचल श्रद्धा उत्पन्न कर देता हूं। कारण, जो भक्त अन्य देवोंकी उपासना करने में लगे हैं वे भी एक प्रकारसे भजते तो मुझे ही हैं। क्योंकि मैं ही तो सब यज्ञोंका, सब देवोंका भोक्ता हूं। मैं ही सबका स्वामी हूं,इसलिये मिलता तो वह सब मुझे ही है परन्तु वह अविधि–पूर्वक होनेसे उन्हें पूरा फल नहीं देता एवं उन्हें जो फल मिलता है वह भी नश्वर होता है। क्योंकि उन्होने मेरे स्वरूपको यथार्थ नहीं समझा और मुझे छोड़कर अन्य देवोंकी उपासना करने लगे अतः वह अविधि–पूर्वक हो जाता है। अब तो सबका अधिष्ठाता मैं हूं, अतः जो मेरी अनन्य–भक्ति करेंगे, वे ही मोक्षको प्राप्त होंगे और उन्हींकी भक्ति यथार्थ मानी जायेगी। इसलिये–

"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"

कितना सुन्दर समन्वय–युक्त समाधान है कि केवल श्री कृष्णके अतिरिक्त अन्य उपासना सब त्याज्य हैं इसलिये—

'कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्"

अब तो श्री कृष्ण प्रभुके नाम द्वारा मोक्षकी आशा रखना उचित है। जो ऐसा नहीं मानते, वे सब तमोगुणी भावनाके वश होनेके कारण अधोलोक को प्राप्त करते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अन्तर्हित हो गये हैं, अतएव अब तो श्रीकृष्ण जी की उपासना ही[1] मुख्य है। इस प्रकार देवयुग के बाद सात द्वीपों में विभक्त मृत्युलोक आगे चलकर और भी खण्डों में विभक्त होता गया, एवं जम्बूद्वीप को नौ खण्डों में विभक्त किया गया।

त्रयाणामपि लोकानां तीर्थमर्त्यमुदाहृतम् ।
तत्रापि जाम्बवं द्वीपं तीर्थं बहुगुणोत्तमम् ॥
जाम्बवे भारतं वर्षं तीर्थञ्च श्रुतिविश्रुतम् ।
कर्मभूमिर्यतः पुत्र ! तस्मात्तीर्थमुदाहृतम् ॥
(ब्रह्मपुराणे गौतमीय खंड अध्या० २)

---

[1] यस्मिन्सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि
तं वदन्ति परे साक्षात्परिपूर्णतमं स्वयम्
परिपूर्णतमः साक्षात्-श्री कृष्णो नान्य एव हि। (गर्ग सं०)

जिस स्वरूप में सम्पूर्ण तेज राशियों का विलय होता है वही सबका आश्रयरूप परिपूर्णतम कहा जाता है। श्री कृष्ण के स्वरूप में सम्पूर्ण देव, विभूति पुरुष और अवतारों का समावेश पाया जाता है, अतः इन्हीं की उपासना मुख्य है।

पूर्णब्रह्म स्वरूपोऽयं शिशुस्ते मायया महीम् ।
आगत्य भारहरणं कर्ता धात्रा च सेवितः ॥
गोलोकनाथो भगवान्–श्रीकृष्णो राधिकापतिः ।
नारायणो यो वैकुण्ठे कमलाकान्त एव च ॥
श्वेतद्वीप निवासी यः पिता विष्णुश्च सोप्यजः ।
कपिलोऽन्ये तदंशाश्च नरनारायणावृषी ॥
सर्वेषां तेजसां राशि मूर्तिमानागतः किमु ।
(ब्रह्मवैवर्त्त पु० कृष्ण खं० अ० १६)

गर्गमुनि यशोदा माता से कहते हैं कि 'हे यशोदा यह श्री कृष्णरूप जो शिशु है साक्षात् पूर्णब्रह्म स्वरूप है एवं इसके स्वरूप में गोलोकीनाथ राधाकृष्ण तथा लक्ष्मीपति नारायण भगवान तथा श्वेतद्वीप निवासी अविनाशी विष्णु, कपिल तथा अन्य सब अवतारों का अन्तर्भाव है, अतः अब तो यही सबके उपास्य देव हैं। इसी कारण पुराणों में लिखा है कि—

मधुर मधुरगीतं मङ्गलं मङ्गलानां सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम् ।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ॥

हे नारद ! सब मङ्गलों का मङ्गल स्वरूप वेद शास्त्रों का सनातन फल, चिद्घन स्वरूप 'श्री कृष्ण' यह नाम मनुष्य मात्रको भवसागर से तार कर पार कर देता है। चाहे प्रेम से लिया हो अथवा किसी निमित्त से—मुख से निकला हो, मुक्ति प्रदान कर देता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

त्रिलोकी नाथके तीनों (पाताल, स्वर्ग, वैकुण्ठ) लोकोंमें मृत्युलोक और मृत्युलोकमें जम्बूद्वीप एवं जम्बूद्वीपमें भी भारत वर्ष उत्तरोत्तर महत्त्वपूर्ण तीर्थ रूपमें अवस्थित है। कर्मभूमि होने के कारण भारतवर्षका गौरव सबसे अधिक माना गया है।

अहो अमीषां किमकारिशोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः
यैर्जन्मलब्धं नृषु भारताजिरे मुकुंद सैवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥
(भागवत ५-२०-२१)

अहो ! इस भारतमें जन्मलेने वालोंने क्या शुभकर्म किये थे जिनपर सदा ही परमात्माकी प्रसन्नता का प्रसाद वरसता है। वड़े-बड़े देवता और ऋषिमुनि जिन श्री कृष्ण के चरणोंको तरसते हैं, वे श्रीकृष्णजी भी स्वयंही भारतके जीवनधन वनकर लीला विहार कर रहे हैं।

कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥
(भागवत ५-२०-२३)

जहांपर रहनेसे बारम्वार जन्म मरणका वन्धन नहीं छूटता, ऐसे द्वीपोंमें चाहे सहस्रों कल्प पर्यन्त जीवन मिले फिर भी वह तुच्छ है। जिस भारतवर्ष से मनस्वी विद्वान् क्षणमात्रमें वासना त्यागसे अविनाशी पदको प्राप्त कर लेते हैं। वहांपर यदि क्षणमात्रके लिये भी आयु मिल जावे तो वह कल्पायु वालोंसे उत्तम है। परन्तुभारत–वर्षमें मनुष्यतन मिल जाना, यही तो अत्यन्त दुर्लभ है।

अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम ! ।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्मभूमौ विधीयते ॥ (वि० पु० २–३)

भारतवर्षमें लाखों बार जन्म व्यतीत होने के वाद कहीं पूर्व जन्म के पुण्यसे अथवा सुकृतों के उदय होनेपर प्राणीको मनुष्य जन्म मिलता है। एक भारत वर्ष

Shri Prannath Ji Pustkalay

ही उत्तम कर्म[1] भूमि है, जहां से स्वर्ग, वैकुण्ठ, अव्याकृत, विभूति ब्रह्म और मो प्राप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं से कर्म फल प्राप्त नहीं होता

सर्वेष्वपि च खंडेषु ह्यवतारा: प्रकल्पिता: ।
विष्णना लोकरक्षार्थं खण्डे खण्डे मुनीश्वरा: ॥

(शिव पु० अध्याय ४६-१४)

यद्यपि भगवान विष्णु ने प्रत्येक खण्ड में उनको रक्षा के लिये अवतारों व प्रतिष्ठा दी है अवश्य, परन्तु मोक्ष-अपवर्ग आदि की प्राप्ति तो केवल भारतवर्ष से ह होती है अन्य खण्डों से नहीं, ऐसा विधान है। अत: भारतवर्ष को सर्वोत्तम माना है इस प्रकार से अनेक गुण सम्पन्न भारत को आजकल कालगति ने तुच्छ बना दिया है इसका गौरव भी नष्ट किया गया। इसके स्वरूप को भी छिन्न भिन्न कर दीन हीन बन डाला। भारत जितना आज है उतना ही नहीं, किन्तु बहुत विस्तृत देश था, जो न भागों में बसा हुआ था। यथा—

भारतस्यास्य[2] वर्षस्य नव भेदन्निशामय ।
इन्द्रद्वीप: कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ॥

---

[1] न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते। (मार्कण्डेय पु० ५४—३)

केवल इस भरतखण्डके क्षेत्रको ही कर्मभूमि माना गया है। इसलिये स्वर्ग, मोक्ष अथवा मध्य लोकोंमें जहां कहीं भी जाना हो, यहांसे ही जा सकते हैं। इस कारण अन्य द्वीपों की और अन्य भूखण्डोंकी अपेक्षा इस भारतवर्षका वेद शास्त्रों में विशेष महत्त्व वर्णन किया गया है। उसमें भी फिर मनुष्य योनि और सद्गुरु कृपाका भी सौभाग्य मिलना यह तो और भी विशेष अहोभाग्य ! इन सब संयोगोंको पाकर भी मनुष्य यदि जन्म मरणके बन्धनसे मुक्ति न प्राप्त कर सके तो उसे आत्महत्यारा कहा गया है। यथा भा० ११ स्कन्धे—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥

दुर्लभ मनुष्यतन, भवपार करने वाला समर्थ गुरु और मेरी भक्ति पाकर भी जो संसार रूपी समुद्र से पार नहीं हो पाता, उसे आत्मघाती जानो।

[2] **भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निबोध मे ।**
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्या: परस्परम् ॥ (मार्कण्ड पु० ५४-५)

भारतवर्षके अन्तर्गत अन्य नौ भूभागोंका भी समावेश था। जो भूभाग केवल नाम

Shri Prannath Ji Pustkalay

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः ।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागर संवृतः ॥

(विष्णु पु० अंश २ अध्याय ३:६—७)

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत नौखण्ड पीछे लिखे जा चुके हैं। उनमें से भारतवर्ष जो नौवाँ खण्ड है वह भी पुनः नौ खण्डों में निम्न प्रकार से विभक्त था। यथा-इन्द्र द्वीप, कशेरुमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिान, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप, वारुण और यह वर्तमान हिन्दुस्तान। इस प्रकार से देखा जाय तो आजकल जितने भी देश रूस, चीन, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि विदेशियों के आधीन हैं, वे सब भारतवर्ष के ही अन्तर्गत थे और भारतवर्ष के ही अंग माने जाते थे। जो देश भारतवर्ष के नाम से आज पुकारा जाता है, वह तो भारतवर्ष का नौवाँ भूभाग था, जो सागरों से आवृत्त भारतीयों की विशुद्ध[1] भूमि माना जाता था। यथा—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमोद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र संसृतिः ॥

(विष्णु पु० २—३—१)

मात्र ही नहीं थे। किन्तु एक दूसरे समुद्रसे घिरे हुये इतने दूर पड़ते थे कि—एकभागसे दूसरे भाग में पहुंचना कठिन था। इसलिये 'परस्पर अगम्या' लिखा है। यदि शीलोन, सुमात्रा आदि टापुओं को कहने लगें तो यह भी संगत नहीं। क्योंकि उनके नाम भी अन्वर्थक लिखे हैं। एक बात और भी ध्यानमें रखने योग्य है। वह यह कि भारतकी सीमाका वर्णन नौ हजार योजन कोशका लिखा है जो वर्तमान भारतमें नहीं घटता। तीसरी बात—भारतके नवमें भागके आस पास ही समुद्र और हिमालयका वर्णन इस बातको और भी सिद्ध कर देता है कि प्राचीन भारत इससे बहत बड़ा था।

[1] एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सकलमानवाः ॥ (मनु २—२०)

यह भूमि 'ज्ञान-ध्यान, जप-योग और तप त्यागमें' इतनी आदर्श मानी जाती थी कि—संसारके सभी देशोंके मनुष्य अपने लिये कर्तव्यकी शिक्षा दीक्षा लेनेको यहीं पर आया करते थे। जिस प्रकार आज भारतीय नवयुवक विज्ञान की शिक्षाके लिये योरोप आदि देशोंमें जाते हैं, उसी प्रकार विश्वके विज्ञानी यहां शिक्षा प्राप्त करनेके लिये आया करते थे। यहांसे केवल शिक्षा ही नहीं किन्तु यथार्थ अनुभव प्राप्त करके विश्वके आदर्श पुरुषोंमें अंकित हुआ करते थे। यह देश इतना उच्च आदर्शयुक्त और सर्व शिरोमणि था।

Shri Prannath Ji Pustkalay

दक्षिण सागर से उत्तर की ओर हिमालय पर्यन्त जो भूभाग है एवं पूर्व में चीन-सागर से और पश्चिम में अरब सागर से आवृत सारा प्रदेश भारतवर्ष में हो था, जो भारतवर्ष का नौवाँ भूभाग माना जाता था। इस प्रकार से देखा जावे तो आज वर्तमान युग का आधा विश्व भारतवर्ष के नौ भागों में ही समा जाता है। और वर्तमान में प्रसिद्ध भारत तो भारतवर्ष का नौवाँ भाग मात्र है, पूरा भारतवर्ष नहीं। पूरे भारतवर्ष की सीमा भी वर्तमान भारत में नहीं समाती। यथा—"नवयोजन साहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने ! (वि० पु० २–३–२)"

नव हजार योजन की लम्बी चौड़ी सीमा भी सब देशों को भारतवर्ष के अन्तर्गत मान लेने पर ही पूरी घट सकती है। प्राचीनकाल में एशिया के पूर्व तथा दक्षिण में फैले हुए छोटे-छोटे द्वीप अथवा टापूओं को भारत की सीमा अपने इसी नौवें भाग में मिलाती थी। महाभारत के युद्ध में सब देशों के राजाओं का आना लिखा है। वे सब यही देश थे जो आज रूस, चीन, अफ्रीका, योरोप आदि के नाम से प्रसिद्ध हैं क्योंकि जम्बूद्वीप के अन्य जो आठ खण्ड हैं वे तो पहले से ही भारतवर्ष की संस्कृति और मानव जाति से भिन्न देव विशेषों के अधीन हैं यथा—

यानि किंपुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ[1] महामुने ।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम् ॥ ५२ ॥
सुस्थाः प्रजा निरान्तकाः सर्वदुःख–विवर्जिताः ।
दशद्वादश वर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः ॥ ५३ ॥
न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै ।
कृत त्रेतादिका नैव तेषु स्थानेषु कल्पना ॥ ५४ ॥
(विष्णु पु० अंश २–अध्या २–५२–५३–५४)

[1] तत्रापि भारतमेव वर्ष कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति
(भाग० ५-१७-११)

जम्बूद्वीप के नौ खण्डोंमें केवल भारतवर्ष ही कर्मभूमि है, अन्य आठ खण्ड तो स्वर्गवासी पुरुषोंके स्वर्ग भोगसे बचे हुए शेष पुण्योंके फल भोगने के उत्तम स्थान हैं। जो एक प्रकारके मृत्यु लोक के स्वर्ग कहे जाते हैं। वहांपर "शतायुर्वै पुरुषः" सौ वर्षकी आयुवाले मनुष्य नहीं बसते। किन्तु देव जातिके पुरुष विशेष निवास करते हैं। वहांका राजनैतिक अथवा पारस्परिक व्यवहार भी भारतवासी पुरुषों के साथ संगत प्रतीत नहीं होता।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—किंपुरुष वर्ष, हरिवर्ष, केतुमाल, भद्राश्वखंड, कुरुखंड, रम्यखंड, हिरण्यखंड आदि जो आठ खंड हैं उनमें भूख-प्यास, शोक-भय, श्रम आदि का डर नहीं होता। सब प्रकार के दुःखों से रहित, अकाल मृत्यु से मुक्त, वहां की प्रजा दस-दस हजार वर्ष, द्वादश-द्वादश हजार वर्ष की आयु को भोगती है। न वहां वर्षा ऋतु है, न सत्ययुग-त्रेता आदि युग की कल्पना है, किन्तु निर्भय दीर्घायु का उपभोग करने वाले प्राणी निवास करते हैं। प्रस्तुत विवेचन पर से सुतरां स्पष्ट हो जाता है कि—एक भारतवर्ष ही ऐसा खण्ड है, जिसके भिन्न-भिन्न संस्थानों में मनुष्य रहते आये हैं और जहां पर चारों युगों की व्यवस्था चालू है। एवं जहां के राजा महाराजा एक दूसरे के साथ प्रत्येक प्रकार का सम्बन्ध रखते रहे हैं। इसी कारण भारतवर्ष को कर्मभूमि और सर्वोत्तम पवित्र देश माना गया।

भारतवर्ष सदा से अहिंसा, सत्य, तप, त्याग, दया, धर्म, दान, पुण्य, योग, जप, विवेक, विज्ञान, विद्या, बुद्धि, आदि अनेक आदर्शों का पवित्र क्षेत्र रहा है, अतएव इसे आर्यावर्त भी कहते हैं। आर्यों-उत्तम पुरुषों द्वारा बारम्बार इसे निवास स्थान बनाया गया है, अतएव आर्यावर्त इसका अन्वर्थक नाम भी है। अनेकों ऋषि महर्षि अवतार[1] तीर्थंकर[2] आदि महापुरुषों ने भी अपने जन्म कर्म से इसी

---

[1] २४ अवतारोंके नाम:—वाराह, यज्ञ, कपिल, सनकादिक, नरनारायण, व्यास, नारद, पृथु ऋषभदेव, दत्तात्रेय, हयग्रीव, कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, हरि (गजेन्द्रमोक्षे), हंस, वामन, धन्वतरि, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि।

[2] चौवीस तीर्थंकरोंके नाम:—ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पदमप्रभु, चन्द्रप्रभु, सुपार्श्वनाथ, विधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्यस्वामी, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिवृतनाथ, नेमिनाथ, नेमनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर स्वामी।

तीर्थभेद—दैवतीर्थ, आसुरतीर्थ और मानुषतीर्थ-इस प्रकारसे तीर्थोंके चतुर्विध भेद होते हैं।

ब्रह्मा विष्णु महेशाद्यै र्निमितं दैवमुच्यते

(ब्रह्म पु० गौतमी १-८)

ब्रह्मपुराणके गौतमीय खंडमें तीर्थोंका विवरण बड़े महत्त्वका और जानने योग्य है। वहांपर लिखा है कि—ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवोंके द्वारा जो तीर्थ बनाये गये हैं, उन्हें दैव तीर्थ कहते हैं। असुरों के द्वारा निर्मित तीर्थ आसुर कहे जाते हैं। ऋषियों द्वारा बने तीर्थ

Shri Prannath Ji Pustkalay

भूमि को पवित्र किया है। लाखों योगी, यति, त्यागी, तपस्वी, भी भरत खण्ड के अंचल में ही सफल हुए हैं। दैवतीर्थ, आर्षतीर्थ मानव तीर्थ आदि यावत् तीर्थों को जगतीतल में स्थित माना है, वे सब इसी भरत खण्ड में हैं। विश्व में जितने भी अध्यात्म जगत के महापुरुष हुए हैं, वे भी सब इसी भूमि के उत्संग में फूले फले हैं। यहां तक कि 'श्री पूर्णब्रह्म परमात्मा ने भी इसी भारत भूमि को ब्राह्मी सृष्टि के लिये चुना।' श्रीकृष्ण स्वरूप से, सद्गुरु श्री निजानन्द स्वरूप से तथा श्रीजी स्वरूप से प्रकट होने का सौभाग्य भी इसी भरत खण्ड को मिला।

लोक ढूंढ़ें अपने खिलकों मांहि तामें तो साहेब आया नांहि। (तारतम वाणी)

दुनिया के पीर पैगम्बर प्रभु को अपनी-अपनी खिलकत में ढूंढ़ते फिरते हैं, परन्तु परमात्मा को तो अपना पवित्र 'भारत' प्यारा है।

आर्ष कहे जाते है। जैसे नैमिषारण्य। मनुष्योंके रूपमें होकर महापुरुषोंने किंवा अवतारों ने जिन स्थलोंको पवित्र किया है वे सब मानुषतीर्थ कहे जाते हैं। जैसे मथुरा, गोकुल, जामनगर, पन्ना।

दैवं कृतयुगे तीर्थं, त्रेतायामासुरं विदुः।
आर्षं च द्वापरे प्रोक्तं कलौ मानुषमुच्यते॥
(ब्रह्म पु० गौतमीये १०५–३१)

सत्ययुगमें दैवतीर्थ विशेष फल देते हैं। काशी प्रयाग हरिद्वार आदि दैवतीर्थ कहे जाते हैं। त्रेतामें आसुर तीर्थोंका विशेष महत्व माना गया है। तभी तो भगवान राम ऋषियों के आश्रमों में दण्डकारण्य, चित्रकूट, ब्रह्मावर्त (बिठूर), नासिक, पंचवटी आदि आसुर क्षेत्रोंमें ही विचरते रहे। द्वापरमें विशेष रूपसे आर्षतीर्थ पवित्र माने गये हैं। कलियुग में तो मानुष तीर्थोंका विशेष फल माना गया है। कृष्ण अथवा ब्रह्म मुनियोंने जिन-जिन स्थलोंको पवित्र बनाया है। गोपियोंने जहांपर निवास किया है, उन सबकी महिमा विशेष है। तभी तो ब्रह्मादि देव इनकी चरणधूलको तरस रहते हैं। ब्रह्ममुनि–ब्रह्मसृष्टिरूप परहंसोंके पीछे तो—विष्णुके १६ कलापूर्ण अवतार श्री कृष्णजी भी पवित्र होनेको घूमते हैं। यथा—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः॥
(भाग० ११—१४—१६)

द्वारकावासी कृष्ण और गोकुलवासी कृष्णके स्वरूपमें तत्त्वभेद हैं। अतः विष्णुरूप कृष्ण, ब्रह्मस्वरूप मुनियों की चरणरज ढूंढ़ें तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। तभी तो लिखा है कि-

Shri Prannath Ji Pustkalay

गङ्गा यमुनादि पवित्र जल धाराएं भी भारत के आँगन को ही प्रक्षालित करने में लगी हैं। इस प्रकार भारत भूमि को जितना भी कहें सबसे महत्वपूर्ण और दिव्य भावना भूषित सिद्ध होगी। यही कारण है कि भारत को पवित्रतम भूमिका वर्णन किया है। और मृत्युलोक का गौरव भी भारतवर्ष के कारण ही माना गया है। यदि मृत्युलोक में भारत न होता तो मृत्युलोक के गीत देवता न गाते।

इस प्रकार यह मृत्युलोक अन्य लोकों से अधिक महत्वपूर्ण है। चौरासी लाख योनि के जीव यहां पर निवास करते हैं। प्रत्येक जीव अपने-अपने शुभाशुभ कर्मानुसार पृथक्-पृथक् योनि के स्वरूपों को प्राप्त किया करते हैं। जो उत्तम कर्म, दया, दान, धर्म, पुण्य, सत्य, अहिंसा, आदि के महत्व को समझने वाले शुभ कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं, वे तो तत्तत् कर्मानुसार स्वर्ग, वैकुंठ आदि ऊपर के लोकों को प्राप्त होते हैं। जो सगुणोपासना में रत हैं, वे अपने-अपने इष्ट के सगुण धामों को पाते हैं। योगी, यति, सन्यासी आदि निर्गुण की उपासना करते हैं, वे निर्गुण, निराकार, निरंजन आदि स्थानों को भी यहीं से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यह मृत्युलोक उत्तम, अधम और मोक्ष आदि सभी प्रकार की गति का केन्द्र स्थान है, जो जिस योनि को या जिस लोक को जाना चाहे, यहां से जा सकता है।

ब्रह्मसृष्टि को चरण रज, ढूंढ़ थके त्रिगुन।
कई विध करी तपस्या, यों कहे वेद वचन॥

(श्री मुख वाणी)

इस प्रकार मानुष-तीर्थ और उनमें भी ब्रह्ममुनियोंके निवाससे पवित्र बने स्थलोंकी महिमाके लिये क्या पूछना है, पर विश्वास हो तब ! तभी तो लिखा है "मानुषाणि त्रिषु लोकेषुविख्यातानि सुरादिभिः" त्रिलोकी के मध्यमें मानुषतीर्थ ही विशेष फल देनेमें प्रसिद्ध है।

त्रिभ्यो यदेकं जायेत तस्मान्नातः परं विदुः।

जो तीर्थ दैव, आर्ष और मानव तीनोंसे मिलकर बना हो वह और भी महत्त्वपूर्ण होता है। जैसे—गोकुल धाम। परन्तु यह सब विश्वास और पवित्र मनसे ही प्राप्त हो सकता है।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥

जिस मनुष्यके हाथ, पग, मन, बुद्धि, तप और कीर्ति—ये सब पवित्र होवें उसीको तीर्थ का यथार्थ फल मिलता है, अन्यको नहीं। यही कारण है कि तीर्थों में जन्मभर रहनेपर भी लाखों मनुष्य तीर्थोंके फल से वंचित रह जाते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

भुवर्लोक—

मृत्युलोक से सौ योजन ऊपर भुवर्लोक है, जहां पर अर्यमा आदि पितृगण, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, भूत, प्रेत, पिशाच आदि अनेक योनि के जीव निवास करते हैं। इसे पितृलोक भी कहते हैं। पितरलोककी उत्तम गति यहीं पर मिलती है। जहां तक पृथ्वी लोक के प्राणी, पक्षी, विमान आदि जा सकते हैं, वह सब मृत्यु लोक में सुमार है। उसके आगे सूक्ष्म पवन है[1] जिससे सूक्ष्म-शरीर वाले भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, किन्नर आदि को जीवन-शक्ति प्राप्त होती है। स्थूल शरीर वालों को वहां का पवन अनुकूल नहीं पड़ता। इस प्रकार से यह भुवर्लोक बहुत विशाल लोक है। इसको अन्तरिक्ष लोक, द्युलोक आदि नामों से भी पुकारते हैं।

स्वर्गलोक—

यह मृत्युलोक से तीसरा लोक है। भुवर्लोक के ऊपर के भाग को जो सुमेरु के शिखर पर विस्तृत रूप से शोभायमान है—स्वर्ग कहते हैं। यह स्वर्ग आठ पुरी युक्त है। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि देवों की आठों दिशा में आठ पुरी हैं। यहां पर सबसे प्रधान इन्द्रदेव है। तेतीस कोटि देव तथा उनकी देवाङ्गनाएं यहाँ पर स्वर्ग सुख को स्वच्छन्द विचर के भोगते रहते हैं। कल्पवृक्ष, पारिजातक आदि वृक्ष वहां के देवों को यथेष्ट फूल, फल और विविध स्वर्गीय पदार्थों को कल्पना मात्र से उपस्थित किया करते हैं। जो मनुष्य दान, पुण्य, यज्ञ, योगादि सकाम कर्म विशेष रूप से किया करते हैं, वे भी यहीं पर आकर स्वर्ग सुख को भोगते हैं। जो लोग कर्म के बल से अमुक समय के लिये स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, वे पुण्य का क्षय होने पर पुनः मृत्युलोक में जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा करते हैं। इष्टा-पूर्त्त कर्म करने वाले भी देव योनि को प्राप्त होते हैं। मनुस्मृति के परिशिष्ट में लिखा है:—

'इष्टे यज्ञे यद्दीयते दक्षिणादि तदैष्टिकम् ।
बहिर्वेद्यां च यद्दानं दीयते तद्धि पौर्त्तिकम् ।'
वापी कूप तड़ागादि खन्यते परतुष्टये ।
आरोपश्चैव वृक्षाणां पौर्त्तिकं तत्प्रचक्षते ।।

---

[1] जिस प्रदेशका जैसा वायु होता है। उसी प्रकारके प्राणी भी होते हैं। मृत्युलोक का स्थूल पवन है अतएव यह स्थूल शरीर वालोंके लिये विशेष अनुकूल पड़ता है। भुवर्लोकका सूक्ष्म पवन सूक्ष्मप्राण वाले यक्ष, किन्नर, भूत, प्रेत आदि योनिके जीवोंको विशेष अनुकूल पड़ता है, उन्हें उससे ही जीवन शक्ति मिलती है। हम लोग उस पवनमें अधिक देर जीवित नहीं रह सकते। यदि हम अपने शरीरके पवनको योगाभ्यास द्वारा उतना ही सूक्ष्म बनालें तो सूक्ष्म पवन वाले लोकों में जा सकते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—वेद शास्त्रानुसार यज्ञ, यागादिमें जो कुछ दक्षिणा रूपमें दिया जाता है उसे 'ऐष्टिक' कहा जाता है। लोकोपकार के लिये वापी, कूप, तालाब, पौशालाकी व्यवस्था कर देनेको एवं जनताके लाभार्थ वाग वगीचा, सदाव्रत–क्षेत्र, धर्मशाला, पाठशाला आदिकी स्थापना करनेको 'पौर्त्त' कर्म कहते हैं। 'ऐष्टिक' और पौर्त्त कर्म का शुभ फल भी स्वर्गमें मिलता है। सौ अश्वमेध यज्ञसे तो इन्द्रका पद भी प्राप्त हो जाता है। परन्तु यह सब भी स्थायी नहीं, थोड़े समय के पश्चात् पुनः चौरासी लाख योनि के चक्कर में पड़ना पड़ता है। जन्म-मरण का भय नहीं मिटता।

इस स्वर्गलोक के आस-पास जो विस्तृत अन्तरिक्ष है, वह भी स्वर्ग गिना जाता है। जितने तारागण, चांद, सूर्य हैं, वे सब अन्तरिक्ष में ही विचरते हैं। एक शिशुमार नामक [1] चक्र है, जो स्वर्ग से ध्रुव पर्यन्त स्थित है। उसी में सब

---

[1] भचक्रं ध्रुवयो र्बद्ध–माक्षिप्तं प्रवाहानिलैः।
पर्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम्॥
(सिद्धान्त प्रकाश)

यह शिशुमार चक्र ध्रुव स्थानके साथ सम्बद्ध है, वायुकी गतिके साथ निरन्तर घूमता रहता है। इसीके साथ ग्रह तथा तारागण अपने-अपने कक्षावृत–धुरी पर अपनी-अपनी गतिके अनुसार घूमा करते हैं। पृथिवीसे अधिक दूर होने के कारण सब एक समान दूरी पर लगे मालूम पड़ते हैं, परन्तु यह सब एक दूसरेसे लाखों कोश ऊंचे नीचे भचक्र में पृथक्-पृथक् लगे हुए हैं। यथा सिद्धांत प्रकाशे—

सर्वत्र महीगोले स्वस्वस्थानमुपरिस्थितम्।
मन्यन्ते खेयतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्ववाप्यधः॥
अल्पकायतया लोकाः स्वस्वस्थात्सर्वतो मुखम्।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम्॥

हस सब छोटे शरीर वाले हैं अतएव पृथ्वी गोल होने पर भी हमें पृथिवी चाकके समान चपटी मालूम पड़ती है। वस्तुतः यह पृथिवी गेंद के समान गोल है। उपरोक्त शिशुमार चक्र जिसे भचक्र भी कहते हैं। यह देवताओंके निकट सव्य–वायीं तरफसे और असुरोंके निकट दक्षिण ओर से एवं निरक्ष देशमें बसनेवाले मनुष्योंके ऊपर भागमें सदा भ्रमण करता है। इसलिये जब देवोंकी तरफ जाता है तब असुरों की रात्रि हो जाती है। जब असुरोंके लोकोंकी ओर फिरता है तब देवोंकी रात्रि मानते हैं। निरक्ष देशमें रात्री दिवस समान रूपसे तीस-तीस घड़ीके होते हैं, परन्तु अक्ष देश में रात्रि दिवसकी संख्या छ मास तककी हो जाती है।'

Shri Prannath Ji Pustkalay

तारागण और ग्रहगण अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण किया करते हैं। एक ग्रह दूसरे ग्रहसे लाखों योजन ऊंचे नीचे स्थित है। सूर्य अपने रेखावृत पर घूमा करता है। रेखावृतके १२ स्थान हैं, तदनुसार गति भी घटती वढ़ती रहती है, जो सुमेरु को घेर कर घूमता रहता है। जव उत्तरायण को चलता है तव दिवस वड़ा होने लगता है, जव दक्षिणायन हो जाता है तो सूर्यकी गति घट जाती है और दिवस छोटा होने लगता है। इसी प्रकार सव ग्रह अपनी-अपनी कक्ष में अपनी-अपनी गति अनुसार चला करते हैं।[1] नक्षत्र, तारा-मंडल, सप्तर्षि आदि जितने

---

[1] नक्षत्र शव्दका अर्थ भिन्न-भिन्न प्रकारसे मिलता है। 'न क्षरति इति नक्षत्रम्' अर्थात् जिसकी गति स्थिर हो, जो चलता फिरता न हो, उसे नक्षत्र कहते हैं। ऋग्वेद में नक्षत्र शव्द आया है। वहांपर उसकी व्याख्या करते हुए लिखा है" न विद्यते क्षात्रं—तेजो यस्मिन् तन्नक्षत्रम्" जिसमें स्वतः प्रकाश किंवा तेज न हो, उसे नक्षत्र कहते हैं। इसका कारण यह वताया गया है कि— सूर्यने सव नक्षत्रों का तेज ले लिया। आकाशमें सूर्य जिस चक्रमें घूमता है उसको २७ भागोंमें विभक्त किया गया है। उन्हीं २७ भागोंकी अश्विनी, भरणी आदि संज्ञा है। इन्हीं नक्षत्रोंसे १२ राशियां भी वनती हैं, जो सूर्यगतिके लिये एक प्रकारके केन्द्र स्थान हैं।

'निरुक्त ग्रन्थमें जो वेदका एक प्रधान अंग माना जाता है, नक्षत्रोंको छोटे-छोटे पृथक् लोक भी माना है। और दूसरे पक्षसे इनको अमुक आत्माओं के प्रतिष्ठा स्थान भी कहा है। पुराणोंको देखनेसे पता चलता हैं कि जितने नक्षत्र हैं,वे सव एक जातिके नहीं हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकारके पुरुप विशेप किंवा देव विशेप हैं। कुछ विद्वानोंका मत है कि जितने ग्रह किसीके नामसे प्रसिद्ध हैं, वे उनकी अध्यक्षताके स्थान विशेप हैं। जिनके नाम हम नहीं जानते वे अज्ञात हैं उनके भी कुछ न कुछ स्वरूप, स्वामी और स्थान भिन्न-भिन्न अवश्य हैं। नक्षत्र और ग्रहोंके स्वरूप तथा नामका उल्लेख ज्योतिप शास्त्रमें भी विशद रूपसे मिलता है। पुराणोंमें तो खगोल और उन नक्षत्रों की सीमा और परस्पर का अन्तर भी लिखा है। अश्विनी नामका नक्षत्र भी है और देव विशेप भी है। वृहस्पति नामके देवगुरु भी हैं और एक तारा भी वृहस्पति नामका देखनेमें आता है। इस परसे यह तो भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि अमुक देव और अमुक ऋषि जैसे सप्तर्षि मंडल आदि चेतन ही नक्षत्रोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो ग्रह जिस नामसे प्रसिद्ध है उसी देव या महर्पिके अधीन है और वे उनके स्थान विशेप हो सकते हैं। उनकी व्यवस्था भी अध्यक्षके अधीन हो सकती है। इस वातकी पुष्टि श्रुतियोंके वर्णनसे भी होती है। श्रुतियोंमें वृहस्पतिके आनन्दको इन्द्रके आनन्दसे भी सौ गुणा अधिक माना है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

ही हैं,वे सब यथाक्रम अपनी-अपनी कक्षामें गति किया करते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ये सब अन्तरिक्ष में अधर हैं। जो पदार्थ अधर होता है वह गति किये बिना अधर में कभी रुक नहीं सकता। अतः प्रभु ने उसके साथ गति लगा दी है, जिससे वह कभी गिरे नहीं और अपने पद पर सदा स्थित बना रहे, यह भी एक विज्ञान है। इस प्रकार देखा जाय तो स्वर्ग लोक बहुत विशाल और स्वर्गीय उपभोगों से भरपूर स्थान है। जहां पर असंख्य देवता और पुण्यात्मा पुरुष जाकर बसते हैं।

महर्लोक—

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः ।
एकयोजन–कोटिस्तु महर्लोकोऽभिधीयते ॥

(विष्णु पु० २—७—१२)

इस ध्रुवस्थान से (जो स्वर्ग लोक की ऊपरी सीमा है) ऊपर महर्लोक है जो एक करोड़ योजन के विस्तार वाला है। यहां भृगु, अंगिरा, भरद्वाज, आदि तपस्वी निवास करते हैं। यह महर्लोक कल्पों तक स्थायी है। यहां के सुख की परमावधि कल्पों तक है। ध्रुव से ऊपर कहने का अभिप्राय यह है कि—स्वर्ग लोक की ऊपरी सीमा ध्रुव तक है। ध्रुव को वैकुण्ठ के द्वार पर ध्रुव पद दिया गया है। यह ध्रुव पद कल्पों तक स्थायी है। और स्वर्ग सुख तो अधिक से अधिक नैमित्तिक[1] प्रलय तक ही रह सकता है। नैमित्तिक प्रलय ब्रह्मा के एक दिवस में होता है। इतने समय में १४ इन्द्र और १४ मनु बदल जाते हैं। अतः कल्पों तक स्थायी सुख की अपेक्षा स्वर्ग सुख तुच्छ होता है। स्वर्ग सुख से अधिक

इससे स्पष्ट होता है कि वृहस्पति के पास इन्द्र के स्वर्ग से भी कोई उत्तम स्थान होगा। ये नक्षत्र भले ही सूर्य के प्रकाश से चमकते हों या तेजहीन हों, पर ये सब हैं स्वर्गीय वैभव के पृथक्-पृथक् स्थान ही। त्रिशंकु नाम का तारा भी चमकता है जो विश्वामित्र द्वारा एक नया स्वर्ग रच दिया गया था, यह तो प्रसिद्ध है। इस प्रकार से देखें तो निरुक्तकार का मत और पुराणों का उल्लेख एक ही भाव का पोषक बन जाता हैं। ज्योतिष तो पुराणों का समर्थन करता ही है। श्रीजी भी नक्षत्रों की प्रतिष्ठा पृथक् मानते हैं और चन्द्र सूर्य की भांति उनका भी पतन कल्पान्त में बताते हैं। अतः स्पष्ट हो जाता है कि—ये सब कल्पान्त स्थायी सुख के स्थान हैं जो कर्म विशेष के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं।

[1] प्रलय चार प्रकार के होते हैं। नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृत, प्रलय और आत्यन्तिक महाप्रलय। नित्य प्रलय के विषय में (भाग० १२-४-३५) में लिखा है। यथा—

Shri Prannath Ji Pustkalay

सुख प्राप्त करने के अधिकारी पुरुष स्वर्ग से ऊपर के लोकों को प्राप्त होते हैं। 'क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं हीनतरं वा विशन्ति' जो पुण्य के समाप्त हो जाने पर पुनः मृत्युलोक या उससे भी हीनतर लोक नरक आदि स्थानों को प्राप्त होते हैं।

धर्मेण सह चैवास्ते समकाल युजा ध्रुवः ।
बहुमानं दक्षिणतः कुर्वद्भिः प्रेक्षकैः सदा ।।
आजीव्यः कल्पजीविनामुपास्ते भगवत्पदम् ।

(देवीभाग० ८-१७-३, ४)

यहीं पर धर्मराज के साथ बड़े मान के साथ ध्रुवजी भगवत्पद का चिन्तन करते हुए निवास करते हैं। इसी को धर्मराज का लोक भी कहते हैं।

"यमादयो गणाः सर्वे महर्लोक निवासिनः" (वायवीये)

यहां पर महादेवजी की पुरी का वर्णन है। धर्मराज अपने असंख्य गणों के सहित यहीं पर पाप पुण्य का निर्णय करते हैं। जब पापियों को दण्ड देते हैं तब इन्हीं की संज्ञा यमराज हो जाती है। ये भगवान रुद्र की कला के ही स्वरूप हैं। यहां पर दो प्रकार के गण निवास करते हैं। एक तो धर्मात्मा पुरुषों को ले जाते हैं। दूसरे पापी पुरुषों को लेने को जो आते हैं, उन्हें यमदूत कहते हैं। यहां पर असंख्य गण निवास करते हैं। इसके ऊपर के तीनों लोक अकृत,

---

नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परंतप ।
उत्पत्ति प्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ।।

ब्रह्मादि देवोंके रूपमें तथा प्राणियोंके स्वरूपमें जो नित्य क्षीणता होती है उसे नित्य-प्रलय कहते हैं। जिस प्रकार चन्द्र सूर्य चलते हैं, नदीका प्रवाह न्यूनाधिक रूपमें चलता है, परन्तु वे सबको एक ही समान प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मादिसे लेकर छोटे प्राणी तक सभीके स्वरूपमें नित्य ह्रास वृद्धिका क्रम चालू है, उसे सूक्ष्म तत्त्ववेत्ता ही पूर्णतया समझते हैं, सब नहीं जान पाते। बस, यह जो नित्य ह्रास होता है उसीका नाम नित्य प्रलय है। कुछ महात्मा नित्य के मरनेको ही नित्य प्रलय कहते हैं। उनका कहना है कि—नित्य प्रलय और आत्यन्तिक प्रलय ये दोनों व्यष्टि प्रलय हैं। नैमित्तिक और प्राकृत प्रलय समष्टि प्रलयका नाम है। कुछ महात्माओंका मत है कि—अवस्थान्तरका नाम प्रलय है। चार ही अवस्था हैं, चार ही प्रलय हैं। जीव भी चारों अवस्था भोगता है और ईश्वर भी चारों अवस्था भोगता

Shri Prannath Ji Pustkalay

अपुनर्मारका, अपवर्ग, वैकुंठ आदि के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इसलिये इस महर्लोक को वैकुण्ठका द्वार भी कहते हैं। यही कारण है कि महर्लोक में स्थित ध्रुव को वैकुण्ठ के द्वार पर विराजमान बताते हैं। जब नीचे के लोकों का लय हो जाता हैं और धर्मराज का काम पाप-पुण्य का निर्णय करना स्थगित हो जाता है, तब इस लोक के अध्यक्ष—धर्मराज अपने गणों सहित ऊपर के लोक को चले जाते हैं। जब पुनः नैमित्तिक प्रलय के बाद सर्ग विसर्ग बढ़ता है और सृष्टि होती है तब ये पुनः अपने इस लोक में चले आते हैं। तमाम तारा मंडल इसी लोक तक सीमित हैं। यह लोक भी स्वतः प्रकाश युक्त है।

जनलोकः—

द्वे कोटि तु जनलोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः।
सनन्दनाद्याः कथिता मैत्रेयामल-चेतसः ॥

(विष्णु पु० अंश २—७—१३)

महर्लोक से दो करोड़ योजन ऊपर विस्तृत यह जन लोक है। जहां पर ब्रह्मा जी के मानसी पुत्र—सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार तथा भृगु मरीचि अंगिरा, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु, दक्ष, नारद आदि निवास करते हैं।

है। जब जब जीवात्मा जाग्रदवस्था से स्वप्नावस्था में जाता है तभी नित्य प्रलय होता है। चारों अवस्था के चार ही अभिमानी (अध्यक्ष) देव हैं, विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय। बस, जीवात्मा के विश्व का नाश हो जाना ही नित्य प्रलय होना है। मनुष्य जब सो जाता है तब उसकी दुनिया मिट जाती है। जागने पर स्वप्न मिट जाता है। जाग्रत् जगत का थोड़ी देर को नाश हो जाना अर्थात् स्वप्नावस्था तक न रहने का नाम ही नित्य प्रलय है।'

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक्।
शेतेऽनन्तासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥

(भागवत १२—४—४)

एक हजार चतुर्युगीका नाम ब्रह्मा का एक दिवस। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चारों युगोंकी एक चतुर्युगी कही जाती है, जिसके ४३२०००० वर्ष होते हैं। इस प्रकारकी एक हजार चतुर्युगी व्यतीत हो जावें तब ब्रह्माका एक दिवस होता है। इतने ही समय की रात्रि होती है। बस इसी रात्रि का नाम नैमित्तिक प्रलय है उस समय ब्रह्माजी और शेषशायी नारायण सबको समेट कर शयन करते हैं, अतएव त्रिलोकी का नाश हो जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

विश्व में मानसी भावना को विशुद्ध रख कर अहिंसा, सत्य, क्षमा आदि को आदर्श धारण करने वाले महापुरुष भी इसी जनलोक को प्राप्त होते हैं। जो जनता जनार्दन के सच्चे सेवक बनकर परोपकार में जीवन व्यतीत करते हैं, वे भी सब इस जनलोक की उत्तम गति को प्राप्त करते हैं। यह जनलोक अकृत लोक है। यहां पर स्वयं प्रकाश है एवं प्रजापति के अनन्त वैभवों का आनन्द प्राप्त होता है। यहां का आनन्द स्वर्ग के आनन्द की अपेक्षा लाखों गुना विशेष माना गया है। यहां का आनन्द कल्पों स्थायी है और स्वर्ग का आनन्द "आभूतसंप्लवस्थानममृतत्वं विभाव्यते" (वि०पु० २-८-९३) आभूत संप्लव अर्थात् नैमित्तिक प्रलय पर्यन्त ही रहता है। परन्तु जनलोक का आनन्द प्राकृत प्रलय तक स्थायी है, जो स्वर्ग की अपेक्षा लाखों गुना अधिक महत्वपूर्ण है।

इसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। इस प्रलय में स्वर्ग तक जल भर जाता है। महर्लोक के कुछ भाग में भी जल भर जाता है, कुछ भाग रह जाता है। इस प्रकार महर्लोक भी बच जाता है। जन, तप, सत्य तीनों तो अमर कहे जाते हैं।

प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्रादृष्टा वसुन्धरा ।
जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।।

(देवी भा० ९-८-७२)

द्विपरार्द्धे त्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै ।।
एष प्राकृतिको राजन् प्रलयो यत्र लीयते ।
अण्डकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ।।

(भाग० १२-४-५,६)

ब्रह्मा अपने वर्ष से जब ५० वर्ष के हो जाते हैं तो एक परार्द्ध कहा जाता है। दो परार्द्ध बीतने पर सौ वर्ष पूरे हो जाते हैं और उस समय प्राकृत प्रलय हो जाता है। पाँच तन्मात्रा, अहंकार और महत्तत्त्व की व्यष्टिका नाश हो जाता है। इस प्रकार यह स्थूल विराट और ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष आदि यावत् विराट के देव हैं, अपने मूल में लय हो जाते हैं। इसका नाम प्राकृत प्रलय है। यह कभी-कभी अकालिक भी हो जाता है।

यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहंकरणात्म-बन्धनम् ।
छित्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहु रात्यंतिकमंग ! संप्लवम् ।।

(भाग० १२-४-३३)

Shri Prannath Ji Pustkalay

तपोलोक—

पूर्वोक्त जनलोक से आठ करोड़ योजन ऊपर यह महान् तपोलोक है जहां पर वैराजा—विशिष्ट दिव्यस्वरूप पुरुष निवास करते हैं। यह भी स्वयं प्रकाश युक्त और प्रकृत लोक है। यहाँ पर इच्छा मात्रसे सब मनोरथ पूर्ण होते हैं।

श्री कृष्णजी उद्धवजी के प्रति कहते हैं कि—हे उद्धव ! महर्लोक, तपलोक और सत्यलोक, ये सब लोक योगी, तपस्वी, सन्यासी एवं महात्मा पुरुषों को उनके तप के प्रभाव से प्राप्त होते हैं। जो जितना विशिष्ट तपस्वी होता है, उतना ही आगे के लोक को प्राप्त करता है। महर्लोक की अपेक्षा जनलोक और जनलोक की अपेक्षा तपोलोक एवं तपोलोक की अपेक्षा सत्यलोक उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण हैं। अतः अपने-अपने तपोबल के अनुसार इन्हें प्राप्त करते हैं। परन्तु जो मनुष्य मेरी भक्ति करते हैं, वे तो मेरे धाम को प्राप्त होते हैं।

अर्थः—मोहात्मक बन्धन आत्मज्ञानके द्वारा जब छूट जाता है और जीवात्मा श्री कृष्ण परमात्मा के अखंड स्वरूप का अनुभव करने लगता है तो उसका आवागमन मिट जाता है। जीवात्मा के जन्म-मरण के बन्धन का छूट जाना और सदा के लिये अखण्ड पद को प्राप्त कर लेने का नाम ही 'हे परीक्षित ! आत्यन्तिक महाप्रलय है। महत्तत्व की समष्टि का नाश हो जाना, स्थूल, सूक्ष्म, कारण का महाकारण में लय हो जाना, यही महाप्रलय का गर्भित अर्थ है। जिस प्रकार व्यष्टि (एक जीवात्मा) के स्थूल, सूक्ष्मादि शरीर के नाश को महाप्रलय कहते हैं, उसी प्रकार समष्टि (जीवों को उत्पन्न करने वाले आदिनारायण किंवा महाविष्णु और महामाया) के विलीन होने को भी महाप्रलय कहते हैं, जिस प्रलय में महाविष्णु, महामाया, निराकार, सत्, असत्—तब सबके अपने मूल स्वरूपमें विलीन हो जावें, उसे महाप्रलय कहते हैं। यथा—

नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगुणान् बहून्।
महद्विष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः॥
महाविष्णुः प्रकृत्यां च सा चैवं परमात्मनि।

(ब्रह्म वै० कृष्णजन्म खंड)

नारायण, शंभु आदि जितने विभव देव हैं, वे सब अपने-अपने लोकों को समेट कर महाविष्णु में और महाविष्णु प्रकृति में विलीन होते हैं और प्रकृति—महामाया—अपने मूलस्वरूप ब्रह्म में विलीन हो जाती है। इस प्रकार महाप्रलय में व्यष्टि समष्टि का संपूर्ण लय हो जाता है।

कुछ ग्रन्थों के मत से तो प्राकृत प्रलय में ही सब प्राकृत तत्वों का लय हो जाता है, आत्यन्तिक प्रलय तो केवल जीवात्मा को मोक्ष मिलने का नाम है। यथा—

Shri Prannath Ji Pustkalay

जितने भी बड़े-बड़े तपस्वी, योगी, सिद्ध, महात्मा तपोबल से सिद्धि प्राप्त करते हैं, वे सब इसी तपोलोक को प्राप्त होते हैं। जप, तप के द्वारा उत्तम गति की इच्छा रखने वाले एवं गायत्री आदि के अनुष्ठान द्वारा जो परमपद की इच्छा रखते हैं, वे सब अपने तप के प्रभाव से इसी लोक को प्राप्त करते हैं। ये सब सकाम उपासना, सकाम जप करके उपासकों के लिये कल्पान्त सुख प्राप्त करने के लोक हैं। जो तपस्वी महात्मा तपोबल से यहाँ आते हैं, उन्हें यहां एक प्रकार की मुक्ति का आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु वह कल्प के अन्त तक ही स्थायी रहता है। उसके बाद वह आनन्द समाप्त हो जाता है और पुनः जन्म लेना पड़ता है।

सत्य–लोक—

षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको विराजते ।
अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः ।।

(विष्णु पु० अंश २–७–१५)

पूर्व कथित तपोलोक से बारह करोड़ योजन ऊपर यह सत्यलोक शोभायमान है, जिसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं। यहां पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवो की तीन पुरी हैं। अपनी-अपनी पुरी के तीनों अध्यक्ष हैं। यहां पर नाना प्रकार के पारिजातक, कल्पवृक्ष, मंदार, अम्बुज, नाग, पन्नाग, उत्पल आदि वृक्षों से शोभित निश्रेयस नाम का वन हैं। जहां के कामनापूर्ण करने वाले वृक्षों के अपार आनन्दों को वहां के पवित्रात्मा भोगते हैं। यहां पर मध्य में[1] वैकुण्ठ धाम स्थित है। दाहिनी

ज्ञानादात्यंतिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि । (वि.पु. १-७-४०)
लयः प्राकृतिको ह्येषः पुरुषाव्यक्तयोर्यदा ।।
शक्तयः संप्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ।

(भाग० १२–४–२१)

परन्तु बहुत ग्रन्थ महाविष्णुसे ही अनेक विश्वों का उदय लय मानते हैं। और महाविष्णु भी अविनाशी नहीं हैं, अतएव महाविष्णु और कारण जगतका लय किसी अन्य प्रलयमें ही हो सकता है। बस, जिस प्रलयमें परमाकाशमें उदय-लय पानेवाले सम्पूर्ण विश्वों का उदय-लय नाशको प्राप्त हो जावे, उसीको महाप्रलय कहना युक्ति तथा प्रमाण सङ्गत है।

[1] कुछ वैष्णव कहते हैं कि वैकुण्ठ इस सत्यलोकमें नहीं, किन्तु ब्रह्माण्डसे पर निराधार है, जो गोलोक धामसे पचाश करोड़ योजन नीचे आता है। यथा—

Shri Prannath Ji Pustkalay

तरफ कैलाश पुरी है एवं बाईं तरफ ब्रह्माजी की 'ब्रह्मपुरी' है। तीनों देवों के धामों में उनके भक्तों को सालोक्य, सामीप्य,सारूप्य और सायुज्य, नामक चार प्रकार की मुक्ति प्राप्त होती है।

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्त्तयः (भाग० ३—१५—१४)

जहां पर दिव्य स्वरूपधारी सभी वैकुण्ठमूर्त्ति पुरुष निवास करते हैं। वैकुण्ठमूर्त्ति का अर्थ होता है अपने-अपने पदानुरूप स्वरूप। जो जिस देवका भक्त है और जिस प्रकार की मुक्ति को प्राप्त हुआ है, उसे उसी प्रकार का स्वरूप मिलेगा, जो विकुंठ होगा। नाश, जरा, व्याधि,परिवर्तन आदि से रहित और दिव्य स्वरूप हो, उसे विकुण्ठ कहते हैं।

मोक्षश्चतुर्विधो विप्र ! सालोक्यं तपसोद्भवम् ।
सामीप्यं भक्तितो जातं सारूप्यं ध्यानसम्भवम् ॥
सायुज्यं ज्ञानतो ज्ञेयं तेषां स्वामी परः पुमान् ।

(भविष्य पु० प्रतिपर्वसर्ग अ० ७—२६,२७)

सर्वे प्राकृता लोका गोलोको निर्गुणः स्वयम् ।
तेषामुपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद् द्विज ! ।
त्रिकोटि योजनायामविस्तीर्णं मण्डलाकृतिम् ॥
तदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।
वैकुण्ठं शिवलोकं तु तत्समं सुमनोहरम् ॥
कोटि–योजनविस्तीर्णं वैकुण्ठं मण्डलाकृतिः ।
लये शून्यं च सृष्टौ च लक्ष्मीनारायणान्वितम् ॥

(ब्रह्म वै० ब्रह्म खण्ड अ० २)

हे शौनक ! सम्पूर्ण लोक, वैकुण्ठ, कैलास आदि जितने भी मुक्तिधाम हैं, वे सब प्राकृत हैं अर्थात् प्रकृतिसे बने होनेके कारण नश्वर हैं। केवल गोलोक ही नित्य है जो उक्त प्राकृत लोकोंके ऊपर स्वयं निर्गुण स्थित है एवं तीन करोड़ योजन लम्बा चौड़ा विस्तार वाला है उस गोलोकसे पचाश करोड़ योजन नीचे दक्षिणमें वैकुण्ठ और बाईं तरफ शिवलोक है। ये दोनों परम सुन्दर एक-एक कोटि योजनके विस्तृत मण्डलाकार गोल हैं। जो प्रलय कालमें शून्यको प्राप्त हो जाते हैं और सृष्टिकी रचना होने पर पुनः लक्ष्मीनारायण तथा शिवसे युक्त हो जाते हैं, ऐसा मानते हैं। यथा—

Shri Prannath Ji Pustkalay

अपने-अपने आराध्य देव के धाम को प्राप्त हो जाने को मुक्ति कहते हैं, जो चार[1] प्रकार की होती है। विशेष 'तप' के प्रताप से सालोक्य मुक्ति प्राप्त होती है। ध्यान की विशेषता से सारूप्य, भक्ति की विशेषता से सामीप्य और ज्ञान की विशेषता से सायुज्य नाम की मुक्ति मिलती है।

वैकुण्ठे त्वं महालक्ष्मी रहं तत्र चतुर्भुजः।
स च विश्वाद्बहिश्चोर्ध्वं यथा गोलोक एव च ॥
(ब्रह्मवैवर्त कृष्णजन्म खंड अ० ९७)

भगवान कहते हैं कि 'हे लक्ष्मी ! जिस वैकुण्ठ में तुम महालक्ष्मी हो और मैं चतुर्भुज हूं' वह वैकुण्ठ विश्व से पृथक् ऊपर स्थित है। जिस प्रकार गोलोक ऊपर है, उसी प्रकार वैकुण्ठ भी ऊपर है। इस प्रकार गोलोक के साथ वैकुण्ठ कैलास आदि को भी विश्व से ऊपर प्रतिपादन करते हैं, परन्तु यह उनकी भूल है। यह वैकुण्ठ का वर्णन इस वैकुण्ठ का नहीं है, किन्तु अन्य वैकुण्ठ का है जो गोलोक के नीचे है। गोलोक के नीचे तो महाविष्णु के महाकारण में और अव्याकृत के महाकारण में वैकुण्ठ का वर्णन आता हैं। इस सत्यलोक में स्थित देवों की तीनों पुरी तो विश्व के भीतर और नश्वर हैं। क्योंकि—

वैकुण्ठः कल्पितो येन लोकालोकनमस्कृतः।
रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥
(भाग० ८-५-५)

रमा के प्रार्थना करने पर उनकी कामना को पूर्ण करने के लिये सब देवों से नमस्कृत वैकुण्ठ लोक को रचा गया है। ऐसा भागवत में लिखा है। इस परसे स्पष्ट हो जाता है कि—जहां पर केवल वैकुण्ठ को गोलोक के नीचे बताया है और नित्य वर्णन किया है, उसे तो अव्याकृत के आनन्द पाद में समझना एवं जहां पर वैकुण्ठ का वर्णन कैलास के साथ आता है और 'प्राकृता' लिखा है, वह वैकुण्ठ अखण्ड नहीं, किन्तु अनित्य है। मृत्यु और जरा वर्जित लिखने का अर्थ यह है कि—देवलोक के ऊपर जितने भी लोक हैं, वे सब मृत्यु और वृद्धावस्था से रहित तो हैं ही। जरा और मृत्यु का भय तो केवल मृत्युलोक में है, अन्यत्र नहीं।

[1] भागवत के अनुसार पांच प्रकार की वुद्धि कही है। परन्तु शास्त्रों में सगुण भक्ति को प्रसिद्धतया चार ही प्रकार की माना है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

जो भगवान विष्णु के समीप में रहते हैं, एवं जो भगवानके समान चतुर्भुज स्वरूप प्राप्त कर चुके हैं, उन्हें वैकुण्ठ के समान ही आनन्द प्राप्त होगा। इसी प्रकार जो कैलास की चतुर्धा मुक्ति को प्राप्त होते हैं, उन्हें शिवजी के अनुरूप स्वरूप और कैलास के विशेष आनन्द का अनुभव होता है। भगवान के पास भगवत्स्वरूप ही पार्षद होंगे एवं शिवजी के समीप शिवजी के अनुरूप पार्षद किंवा गण होंगे। ब्रह्माजीके पास ब्रह्माजीके अनुरूप स्वरूप और सब सुविधायें प्राप्त कर उनके लोक का कल्पों तक आनन्द भोगेंगे, ऐसा लिखा है।

कहने का तात्पर्य यह कि—हम चाहे सत्यलोक के किसी भी विशिष्ट पद को प्राप्त करें। जब तक वहाँ पर निवास है किसी प्रकार की चिन्ता नहीं। न मृत्यु भय है, न जरा-व्याधि का डर है, न आनन्दोपभोग के साधनों की कमी है। हां, जब हमारा तपोबल घट जायगा अथवा ध्यान भजनका फल समाप्त हो जायगा, हमें पुनः जन्म लेना पड़ेगा। कदाच हमारा ध्यान, भजन अखूट है तो भी प्राकृत प्रलय–कल्पान्त में तो उसे छोड़कर पुनः पुनः आवागमन में आना ही पड़ेगा। यथा—

"वैकुण्ठादिषु लोकेषु गमनागमनं प्रभो !"
तत्सृष्टौ बहवो जीवाः केचिद्विष्णोरुपासकाः।
केचिच्च प्रकृतौ लीना जडास्ते नष्टचेतनाः॥
केचिद्रुद्रे रवौ केचित् रौद्रे शक्तौ तथा परे।
अन्यकर्मरता जीवा भ्रमन्ति च मुहुर्मुहुः॥ (सनत्कुमार संहिता)

वैकुण्ठ, कैलास आदि लोकों को प्राप्त करने से आवागमन नहीं मिटता। इस विश्व में अनन्त जीवों की सृष्टि है। कितने ही विष्णु की उपासना में लगे हैं तो कितने ही प्रकृति-माया में लीन हैं जो सब प्रकार से नष्ट चेतन हो चुके हैं। कुछ मनुष्य शिवजी की उपासना में तत्पर हैं तो कुछ सूर्योपासना में ही मस्त हैं। कुछ पुरुष गौरी गणेश को ही परमात्मा मानकर उन्हीं के ध्यान पूजन में तल्लीन हो रहे हैं। कुछ मनुष्य कर्मकाण्ड को ही श्रेय पथ मानकर उसी में निमग्न हो गये हैं। इस प्रकार नाना मत–मार्गों में पड़े हुए मनुष्य बारम्बार जन्म–मरण को प्राप्त होते हैं। शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों की नवधा भक्ति के द्वारा सगुणोपासना करने वाले शैव, वैष्णव भक्तगण अपने-अपने इष्ट देवों के धामों में इस प्रकार चार विध की मुक्ति प्राप्त करते हैं। इन्हीं धामों से उन-उन देवों के अवतार भी हुआ करते हैं। विष्णु के चौबीस अवतार यहीं से होते हैं। यह सत्य लोक ही पूर्वोक्त सब लोकों का मूर्धन्य है। इस प्रकार से विराट पुरुष के विश्वरूप में ये १४ लोक शोभायमान हैं, जो अंड-कटाह के मध्य में स्थित हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।
हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥
ग्रीवायां जनलोकोऽस्य तपोलोकस्तनद्वयात् ।
मूर्द्धाभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥

(भाग० २-५-३८, ३९)

भूलोकसे लेकर ये सातों लोक विराटके स्वरूपमें ऊर्ध्व भागमें स्थित हैं, अतः इन्हें उत्तम लोक कहा जाता है। इन सबको नियंत्रणमें रखनेवाला, सब को पोषण करने वाला विष्णुका सत्य लोक है। जिसके मध्य भागमें वैकुंठ दोनों ओर कैलास और ब्रह्मा का लोक है, जिसे कार्य ब्रह्मलोक भी कहते हैं ।

वैकुण्ठः कल्पितो येन लोकालोक नमस्कृतः ।
रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ (भाग ८-५-५)
एवमेतत्पदं विष्णो-स्तृतीयममलात्मकम् ।
आधारभूतं लोकानां त्रयाणां वृद्धिकारणम् ॥

(विष्णु पु० अंश २-८-१०८)

पूर्वोक्त प्रकार से पाताल से लेकर सत्यलोक—वैकुण्ठ, कैलास, ब्रह्मलोक पर्यन्त विराट स्वरूप को बताया गया, तथा शुभकर्म, सद्भावना और सात्त्विक विचारोंके फलका दिग्दर्शन भी कराया गया ।

जिस प्रकार शुभकर्म, उदात्त भावना और शुद्ध विचारों द्वारा उत्तमोत्तम गति प्राप्त होती है, उसी प्रकार—अशुभ कर्म, असद्भावना और निकृष्ट विचारों से अधम गति—नरकादि प्राप्त होते हैं। जितने अधिक अशुभ कर्म और निकृष्ट विचार होते हैं, उतने ही अधिक नरकोंके दुखों का भोग अधिक प्रमाण में प्राप्त होता है। अतः प्रसंग प्राप्त नरकोंका वर्णन भी आवश्यक है। क्योंकि जिस प्रकारसे स्वर्ग विराटका अंग है, उसी प्रकार से नरक भी विराट के अंग में निहित हैं। नरक विराटके अंग में हैं, अतः विराट दर्शनमें उनका भी दिग्दर्शन परमावश्यक है। यद्यपि नरकों के विषय में विविध प्रकारके उल्लेख मिलते हैं, परन्तु यहांपर तो हमें सूक्ष्म रूपसे और संक्षेप में ही विचार करना है ।'

Shri Prannath Ji Pustkalay

नरक–स्थान

किसी जघन्य अपराध के बदले में जो ईश्वरीय दण्ड मिलता है, उसे दुःख कहते हैं। वह दुःख दो प्रकार का होता है। ऐहिक और नारकीय। जो दुःख स्थूल शरीर द्वारा नहीं भोगा जा सकता अथवा जिस भयंकर दुःख को यह स्थूल शरीर नहीं सहन कर सकता, उसे नरक स्थान में सूक्ष्म शरीर द्वारा नाना प्रकार से भोगना पड़ता है।

ऐहिक दुःख—चौरासी[1] लाख योनियों में भोगा जा सकता है। मनुष्य का शरीर भी चौरासी लाख जीव योनियों के अन्तर्गत है, परन्तु इसे उभयात्मक माना है। यह शुभाशुभ फल भोगते हुए भविष्य के लिये पुनः शुभ अशुभ कर्मों का सम्पादन कर सकता है। एवं मोक्ष–मुक्ति, निःश्रेयस आदि सब कुछ प्राप्त कर सकता है। यह सौभाग्य अन्य योनि के जीवों को नहीं प्राप्त है। जिन योनियों में दुःख भोगे जा सकते हैं प्रायः वे सभी नरक कोटि में आ सकती हैं। परन्तु 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' जहां पर दुःखों की प्रधानता है, उन्हीं को 'नरक' नाम से पुकारते हैं। यही कारण है कि वेदों में, पुराणों में नरक के लिये 'अन्ध, तमस' असूर्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। यथा—

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(यजुर्वेद अ० ४० मं ३)

---

[1] शास्त्रों में चौरासी लाख योनि की संख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलती है। यथा—

जलजा–नवलक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः।
कृमयो रुद्र लक्षाणि पक्षिणां दशलक्षकाः॥
त्रिंशल्लक्षाणि पशवश्चतुर्लक्षाणि मानवाः।

जल के जीव ९ लाख योनि के हैं। स्थावरों की बीस लाख योनि हैं। कृमि,कीटों की ग्यारह लाख योनियाँ हैं। पक्षीगण की १० लाख योनि हैं। पशुओं की योनि ३० लाख मानी गई है। मनुष्यों की योनि ४ लाख है। किसी किसी के मत से—

नवलाख जलके जीव बखाना, पक्षीगण दशलक्ष प्रमाना।
किरमि कीट एकादश लाखा, तेईश लाख चतुष्पद भाषा॥
सत्ताईस लाख स्थावर जानो, चार लाख मानुष तन मानो।
अन्य योनि निश्चय नहीं गावा, मुक्ति द्वार मानुषतन पावा॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—(असूर्याः)[1] असुरों के आसुरी अथवा 'असूर्या' नाम के नरक-रूप (नाम) जो प्रसिद्ध (लोकाः) लोक अथवा योनियां हैं। "लोकस्तु भुवने जने इति कोशात्" लोक शब्द का अर्थ भुवन और जन दोनों होता है। (ते) वे नरक रूप लोक या योनियां (अन्धेन तमसा) घोर अन्धकार से अथवा घोर दुःखों से (आवृताः) आवृत्त हैं-भरे पड़े हैं। (ये के च) जो कोई भी पुरुष (आत्महनः) आत्म हत्यारे हैं, मोहवश काम्य और निषिद्ध कर्मों में तत्पर होकर अमर आत्मा को ब्रह्मानन्द से विमुख बनाते हैं (ते जनाः) वे मनुष्य (प्रेत्य) मर कर (तान्) उन्हीं घोर नरकों को (अभिगच्छन्ति) पुनः पुनः प्राप्त होते हैं। कुछ थोड़े से शब्दान्तर के साथ यही बात निम्नोक्त श्रुति में भी लिखी है। यथाः—

अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्त्यविद्वांसोऽबुधोजनाः ।। (बृह० ४-४-११)

महागरुड़ पुराणमें ८४ लाख योनियों को चारों खानिके जीवोंमें बराबर-बराबर वर्णन किया है। यथा—

"चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदाश्च जन्तवः ।
अण्डजा स्वेदजाश्चैव उद्भिदाश्च जरायुजाः ।। २ ।।
एकविंशति लक्षाणि अण्डजाः परिकीर्तिताः ।
स्वेदजास्तथा प्रोक्ता उद्भिजाश्च क्रमेण तु ।। ३ ।।
जरायुजास्तथा प्रोक्ता मनुष्याश्च तथापरे ।
सर्वेषामेव जन्तूनां मानुषत्वं हि दुर्लभम् ।।" ४ ।।

(महागरुड पु० प्रेतखंड धर्मकाण्ड अ० १२)

प्राणियों के ८४ लाख भेद माने गये हैं, जिनमें से २१ लाख योनि अण्डजों की हैं, २१ लाख योनि स्वेदजों की तथा २१ लाख योनि उद्भिजों की हैं एवं २१ लाख जरायुज योनि के जीव हैं। इस प्रकार गणना करें तो प्रथम वर्णन की हुई पद्धति नहीं घट सकती। इस प्रकार चौरासी लाख योनियों का हिसाब भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलता है। कुछ पुराणों में इससे भी भिन्न प्रकार से लिखा है।

[1] पं० ज्वाला प्रसाद मिश्रजी ने अपने वेदभाष्य में देवोंको भी 'असूर्या' लोकों में गिन लिया है। यथा—'जहां पर आत्मा के यथार्थ दर्शन की योग्यता नहीं है, ऐसे अदर्शनात्मक देवतादि शरीररूपी लोक भी असूर्या नाम हैं। उनमें ज्ञानरूप प्रकाश नहीं है। देवादि से स्थावर पर्यन्त असूर्य लोक हैं। जिन्होंने परमात्मा को आत्मत्व करके न जाना, वही आत्मा का

Shri Prannath Ji Pustkalay

यहां पर 'असुर्या' के स्थान में 'अनन्दा' है 'आत्महन' के स्थान में अविद्वान आदि हैं। शेष 'सब के सब' मंत्रके ही शब्द हैं। जो बात वेदमंत्रने कही, वही श्रुतिने दुहरा दी है। असुर्या के स्थान में 'अनन्दा' शब्द महतत्त्वपूर्ण है। श्रुति ने स्पष्ट कर दिया है कि उन अन्धकार पूर्ण लोकों में आनन्द का तो नाम नहीं, केवल घोर दुखों से ही परिपूर्ण है।

वर्तमान युगके विश्वमें पांच संप्रदाय किंवा मत अधिक संख्या में हैं (१) हिन्दू (२) बौद्ध (३) ईसाई (४) मुसलमान (५) नास्तिक। इनके अन्दर-अन्दर सैकड़ों अवान्तर भेद भी विद्यमान हैं। सभी छोटे बड़े धर्म फिरका अथवा आस्तिक वर्ग में नरकों की मान्यता प्रायः मिलती है। नरक लोकके दुखोंको प्राय सबने भयंकर ही माना है। नरक के दुखोंके भोगने की मान्यता भी प्रायः एकसी है। सबने एक प्रकारके स्थान को ही नरक नाम से लिखा है।

अधिकतर लोगों ने नरक स्थान को दक्षिण दिशामें ही माना है। निरूपणकी परिभाषा परस्पर भिन्न होनेके कारण मत-मतान्तरों में थोड़ा बहुत अन्तर हो जाना स्वभाविक है, परन्तु मूलतत्त्व सर्वत्र एक ही भास रहा है। केवल शब्दों की शैली और रचना ही भेदके प्रतिपादक प्रतीत होते हैं, पदार्थ सर्वत्र एक है।

हनन है' 'असुर्य' लोक कहनेसे देवलोकका भी ग्रहण है। देवलोकका अर्थ यह है कि देवताओंके लोक अर्थात् जहांपर कर्मके फलको देवताएं भोगते हैं वह शरीर। छांदोग्य वृहदारण्यकमें इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंको असुर नामसे लिखा है। इससे देवलोक भी आत्माका प्रकाश न होनेसे अज्ञानरूपी अन्धकारसे आवृत है। क्योंकि—देवताओंमें भी विषयोंकी लालसा रहती है। इससे चाहिये कि आत्महत्यारा न बनकर आत्मज्ञान द्वारा आत्माकी रक्षा करे।

(यजुर्वेद मिश्रभाष्य पृष्ठ १३८८)

हमें उपरोक्त मिश्रभाष्यके अर्थ के साथ सहमत होते नितान्त संकोच होता है। असुर्यलोकसे देवलोक किंवा देवोंके शरीरको ग्रहण करना साहस मात्र है। देवलोकमें उत्तम कर्म करनेवाले ही जाते हैं एवं अधोगतिको तो अधम कर्म करनेवाले ही जा सकते हैं। यथा—

उर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्य-गुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।

(गीता १४-१८)

निषिद्धाचरण करनेवाले पापी ही नरकको जाते हैं, अन्य नहीं। अत एव देवलोकको

Shri Prannath Ji Pustkalay

यह दूसरी बात है कि—एक आचार्य या धर्म गुरु आत्मीय चेतना के बल पर अपराध की परिभाषा कुछ बनाता है तो अन्य धर्माचार्य अपराधों के स्वरूपों को गौरव लाघवपूर्वक अन्य रूप में सुनिश्चित करता है। अपराधों के स्वरूप को स्थिर करने में परस्पर मतभेद हो सकता है, जो देश, काल तथा जाति और सम्प्रदाय के अनुसार स्वाभाविक है। परन्तु जिस महापुरुष ने जिस कर्म को अपराध ठहराया है, उसके लिये किसी न किसी दण्ड का भी विधान किया है।

विश्व के दण्ड विधान में भी अपराधों की परिभाषा देश, काल और सम्प्रदाय के अनुसार पृथक्-पृथक् दृष्टिगोचर होती है। मुसलमान अल्ला का नाम लेकर जीव बध को पाप नहीं मानते। याज्ञिक पुरुष यज्ञहिंसा को हिंसा नहीं गिनते। सिख लोग झटका को पसन्द करते हैं।

यह सब बुद्धि का दोष हो सकता है। किसके वध से कितना पाप लगता है या किस दशा में पाप नहीं लगता। अथवा सभी रूप में जीवहिंसा तो हिंसा ही है। ये सब प्रश्न जुदे-जुदे हैं। यहां पर तो हमें केवल यही बतलाना है कि—विश्व के सभी सम्प्रदाय अथवा धर्म, मजहब—किसी न किसी रूप में महान पापों के बदले में नरक, दोजक आदि स्थानों में उसके फल को भोगने के लिये व्यवस्था बताते हैं। गीता में भगवान् श्री कृष्णजी सभी तामसी भावना वालों के लिये नरकोंका निर्देश करते हैं। यथा—

अनेकचित्त-विभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।

(गीता १६—१६)

अर्थ—मैं सम्पन्न हूं, कुलीन हूं, मेरे समान दूसरा कौन हो सकता है? मैं यज्ञ करूंगा, दान करूंगा, मैं यथेष्ट सुख भोग रहा हूं और भी भोगूंगा, इस प्रकार अज्ञान से फूलने वाले एवं नाना प्रकार की कल्पना के भ्रम में पड़े हुए, मोह जाल में फँसे हुए, सांसारिक सुख और भोग विलासों में तत्पर रहने वाले मनुष्य

असूर्य लोक कहना असंगत है। श्रुतियों में इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवको असुर कहा है, वह यौगिक अर्थ है। 'असु' नाम प्राणका है उसकी रक्षा करने के कारण देवता असुर कहे जा सकते हैं। असुर शब्दका अर्थ वेदमें परमात्मा भी किया है। तो क्या ब्रह्मधामको या ब्रह्म को भी असूर्यलोक कहकर नरक बता देवें? । उक्त वेदमंत्रमें 'असूर्या' शब्द—नरक के लिये आया है। आत्महत्यारे नरक में ही जाते हैं, स्वर्गमें नहीं; यह तो प्रसिद्ध है। (ग्रन्थकर्ता)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अशुचि नाम के नरक में पतित होते हैं। जहां पर उन्हें विविध प्रकारके दुखोंका अनुभव करना पड़ता है। इस प्रकार गीतामें भी नरकोंके नाम आते हैं।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नाम यज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव [1] योनिषु ॥
(गीता अ० १६–१७,१८,१९)

अर्थ—अपनी प्रशंसा चाहने वाले एवं महत्त्वाकांक्षा के मोहमें पड़ने वाले, शानके साथ रहनेवाले, तथा धन और मदसे युक्त मनमें फूलने वाले, नाम मात्रके लिये यज्ञ, पूजा, दान, पुण्य, दिखावटी सत्संग करनेके प्रेमी, दम्भ और प्रशंसाका प्रदर्शन कराने वाले, शास्त्र आज्ञाके विमुख हो कर मनमाने महात्मा, ज्ञानी, दानी अथवा भक्तिका स्वांग भरनेवाले काम, क्रोध, ऐश्वर्य, घमंड, अहंकार में चूर रहने वाले एवं असमर्थ प्राणियोंके साथ द्वेष करनेवाले अपनी आत्माको ही अज्ञान वश नरक में डालने वाले, परनिन्दक क्रूरकर्म में रत, ऐसे पुरुषों को 'हे अर्जुन ! मैं आसुरी योनिमें बारम्बार फेंकता रहता हूं ।

इस प्रकार भगवान श्री कृष्णजी अशुभ कर्म और निकृष्ट भावना के बदलेमें आसुरी योनि और नरक प्राप्ति दोनों प्रकार के दुखों का उल्लेख करते हैं।

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् ।
शरीरं यातनार्थीय–मन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥

---

[1] आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ! ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥
(गी० अ० १६–२०)

हे कुन्तीके पुत्र ! आसुरी योनिको प्राप्त होकर जन्म–जन्मान्तर में भी मुझे प्राप्त नहीं हो पाते। किन्तु उत्तरोत्तर अधम–गतिको ही प्राप्त होते जाते हैं। इस प्रकार गीतामें भी नरक और आसुरी योनिको भिन्न-भिन्न माना है। एवं आडम्बर और महत्त्वाकांक्षा को पापों में गिना है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

तेनानुभूय ता यामीः शरीरेणेह यातनाः ।
तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ।।

(मनुस्मृति अ० १२–१६,१७)

अर्थ—अधर्म कर्म करने वाले मनुष्योंको इस पांचभौतिक स्थूल शरीरके त्याग के वाद एक प्रकार का यातना देह प्राप्त होता है । यातना देह केवल नरकों के दुखोंको भोगने के लिये मिलता है, जो नाना प्रकारके ताप, दाह, मार, दुख, पीड़ा आदिको सहन करनेमें समर्थ होता है । इसे शास्त्र पुराणों में यातना देह, सूक्ष्म शरीर, लिंगशरीर आदि नामोंसे लिखा है । नरकों के दुखोंका अनुभव करनेके वाद यह शरीर पुनः अपने मूलभूतों में लय हो जाता है और जीव अपने शेष कर्मानुसार जन्मादि धारण करता है । इस प्रकार मनुजीने नरक यातना भोगने के लिये एक प्रकार के विशेष शरीरका उल्लेख तो किया है परन्तु यह नहीं वतलाया कि 'नरक हैं कहां पर' । भागवत के पंचमस्कन्ध में नरकों का विस्तरशः वर्णन है । परीक्षित ने प्रश्न किया है कि-भगवन् ! यह तो वतलाइये कि ये नरक हैं कहां पर ? इसके उत्तरमें शुकदेव जी समाधान करते हैं किः—

अन्तराल एवं त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद् भूमेरुपरिष्ठाच्च जलात्...यत्र ह वाव भगवान् पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु संपरेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लंघित भगवच्छासनः सगणो दमं धारयति । तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति (भाग० ५–२६–५,६)

हे राजन् ! त्रिलोकी के अन्तराल [1] भीतर ही दक्षिण दिशा की ओर जलके ऊपर और पृथिवीके अधोभाग में नरकोंके स्थान हैं । जहांपर विवस्वान के पुत्र भगवान् यमराज निज गणों के सहित निवास करते हैं, जो भगवान् शिवजी की आज्ञानुसार मृतात्माओंको उनके अशुभ कर्मानुसार दण्ड विधानका कार्य सम्पादन करते हैं । यमराज के लोकों का तथा उनकी सत्ताका वर्णन वेदोंमें भी वड़े विस्तार के साथ मिलता है । कहीं-कहीं तो पितृलोक और मृतात्माओंकी व्यवस्था का अधिकार भी यमराजकी सत्ता के अन्तर्गत ही मिलता है । यथा—

लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु (अथर्व कां० १८ सूक्त २–२५)

---

[1] **अभ्यन्तरं त्वन्तरालम्** (अमरकोशे १ कांडे दिग् वर्गे १–१६) अन्तरालका अर्थ 'अभ्यन्तर, अन्दर, भीतर, अन्तर्गत, आदि होता है । जव नरक दक्षिण दिशामें यमराजकी पुरी तक ऊपरको चले गये हैं, तव उन्हें अधर में कहना उचित ही है ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सायणभाष्य– हे प्रेत त्वं यमराजसु यमो राजा ईश्वरो येषां यमराजानः तथाविधेषु पितृषु पितृदेवतासु लोकं स्थानं वित्त्वा लब्ध्वा एधस्व ।

(क) 'हे प्रेत ! तुम यमराज के पितृलोकोंमें स्थान प्राप्त कर वृद्धिको प्राप्त करो ।'

"नमो यमास नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ये नयन्ति"

(अथर्व० कां ५ सूक्त ३०–१२)

(ख) इस मंत्रमें यमराज तथा मृत्युके लिये एवं पितरोंके लिये भी नमस्कार किया है, जिससे ये लेजाने वाले मृतात्माको कष्ट न देवें ।'

"वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान्"

(अथर्व० कां ८ सूक्त २–११)

(ग) यमराज के द्वारा यमदूत भेजे जाते हैं और वे इधर उधर घूमते भी हैं, जिन्हें रोकने के लिये इस मंत्रको कहा गया है ।,

"नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत"

(अथर्व० कां ८ सूक्त ८–११)

(घ) इस मंत्रमें भी यमदूतों से कहा गया है कि–अमुक मृतात्माओं को ले जाओ । इत्यादि शतशः वेदमंत्र भी यमराज के विषयमें विविध प्रकार का स्पष्ट प्रकाश डालते हैं । उपरोक्त प्रमाणों से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि मृत्युलोक से दक्षिण दिशामें यमराज की पुरी है । यमदूत मृत पुरुषों को लेने आते हैं । उन्हें रोका भी जा सकता है ।

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ।।

(अथर्व० कां १० सूक्त ४–३६)

इस प्रकार वेद मंत्रमें नरक लोकका वर्णन भी आता है, जिससे पुराणोक्त बातें सिद्ध हो जाती हैं । 'अधोभाग' शब्दसे कुछ शंका रह जाती है और उसीके आधार पर कुछ सज्जनों ने नरकों को पृथिवी के नीचे की कौन कहे, पाताल के नीचे भी जा लिखा है । परन्तु बात ऐसी नहीं है, बल्कि इसके विपरीत है । यथा—

त्रिजगत्या अन्तराले दक्षिणस्यां दिशीह वै ।
भूमेरधस्तादुपरित्वतलस्य च नारद ! ।। (देवीभागवत ८–२१)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—भगवान नारायणजी नरकों का वर्णन करते हुए नारद से कहते हैं कि 'हे नारद ! नरक स्थान त्रिलोकी के भीतर दक्षिण[1] में यहीं पर है। जो हमारी इस पृथ्वी से कुछ नीचा पड़ता है और अतल लोक से उर्ध्व भाग पड़ता है। शिवतन्त्र में भी लिखा है कि—

सप्तसागर मानश्च गर्त्तोदस्तदनन्तरम् ।
एतेषामधो ये नरकास्तान्–श्रृणु:—इत्यादि

अर्थ—सातों समुद्रों के वाद गर्त्तोदक जल आता है और गर्त्तोदक के अनन्तर नरकों को वतलाया है जो गर्त्तोदक से कुछ निम्न भाग में हैं।

सुमेरु के चारों तरफ एक से दूसरा दो गुना और दूसरे से तीसरा दो गुना, तीसरे से चौथा दो गुना। इसी प्रकार दो–दो गुने क्रम से सातों द्वीप और सातों समुद्र सुमेरु पर्वत के दोनों तरफ ५ करोड़ ७ लाख योजन में फैल जाते हैं। इन पाँच करोड़ ७ लाख योजन से दो गुनी कांचन भूमि पड़ती है जहां पर वस्ती अथवा प्राणी नहीं हैं। वह तप्तकंचन के समान पृथ्वी है जिसमें गिरी हुई वस्तु फिर नहीं ढूंढ़े मिलती। इस कांचन भूमि के बाद लोकालोक पर्वत है जो बारह करोड़ पचास लाख योजन ऊँचा है एवं दस हजार योजन तक पृथ्वी में फैला है। इस लोकालोक पर्वत को विश्व की मर्यादा (परकोटा) भी कहते हैं। यह स्वर्ग तक ऊँचा होने से सूर्य का प्रकाश इसके दूसरी ओर नहीं पहुंचता। यह पर्वत भी चारों तरफ फिरता चला गया है। इस लोकालोक के अनन्तर तमोभूमि पड़ती है जो लोकालोक की अपेक्षा स्वाभाविक नीची है। वस, इसी तमोभूमि के विस्तार में दक्षिण दिशा में नरकों की रचना है। यद्यपि लोकालोक पर्वत के चारों तरफ सर्वत्र

---

[1] 'ऐन्द्रपुर्यां रवेः प्रोक्त उदयो ब्रह्मवादिभिः ।
सयमन्यां च मध्याह्ने निम्लोचन्थां विमोलनम् ॥
(देवी भा० ८-१५-१८)

इन्द्रपुरीमें सूर्यका उदय होता है। संयमनी में मध्यान्ह और पश्चिममें अस्त होता है। जब सूर्यका मध्यान्ह समय संयमनी पुरीमें होता है, तव तो स्पष्ट हो गया—कि यमपुरी दक्षिण दिशामें है और वह भी इन्द्रपुरी, वरुणपुरी, कुवेरपुरी आदि पुरीयोंके समकक्ष है। जव यमपुरी मृत्युलोकसे उर्ध्व भागमें है तव तो नरक लोकोंकी रचना भी उसी पुरीसे सम्वंधित है, जो उसके पास ही होनी चाहिये। है भी यही वात–यमपुरीसे लेकर नीचेकी ओरको नरकोंका आरम्भ हो जाता है जो मृत्युलोक तक यथाक्रम चले आते हैं। हो सकता है कि कुछ नरक

Shri Prannath Ji Pustkalay

तमोभूमि[1] है, परन्तु नरकों की रचना तो केवल दक्षिण दिशा में ही मानी गई है।

बस, इसी कारण नरकों को वेद शास्त्रों में अन्धकार से आवृत्त माना है। अन्य लोकों में तो मणियों का प्रकाश रहता है, परन्तु नरकों की रचना सूर्य के प्रकाश से रहित तमोभूमि में है। ये नरकलोक नीचे से लेकर ऊपर को करोड़ों योजन तक चले गए हैं, ये यमपुरी तक ऊंचे भी हैं।

लक्ष योजन विस्तीर्णे कृमिकुण्डे भयंकरे ।
कृमिरूपं समासाद्य भक्ष्यमाणश्च तैः स्वयम् ॥

(देवीभाग ८-२२-३१)

जो लोभवश अन्यके भोजनको अथवा अन्यके भोजन के भागको उसे दिये विना स्वयं ही हड़प जाता है, वह पापी जीव, 'कृमिकुंड' नाम के लाख योजन विस्तार वाले नरक में पड़ता है। वहां उसे वे सब कीड़े बनकर काटते हैं। उसके लिये अनेक कीड़े काटने को प्रतिक्षण उपस्थित रहते हैं। देखिये ! जब इस प्रकार एक दो नहीं किन्तु लाखों की संख्या में नरक विद्यमान हैं, तब तो उनका क्षेत्र (एरिया) करोड़ों योजन में होना भी उचित ही है।

पृथिवीके समतल भागसे और कुछ नीचे भागमें पड़ते हों। क्योंकि तमोभूमिका कुछ भाग नीचा अवश्य पड़ता है। अतएव "गूंगे कहे जालिम हुकम, वे सबके तले ना ले सके दम" श्रीजीका निर्देश अधिक संगत प्रतीत होता है। जो जुल्मी हुक्म करनेवाले हैं, उन्हें सबसे नीचेके नरकमें डाला जायगा। जहां उन्हें श्वास लेनेकी भी सुविधा न होगी।

बृहदारण्यकमें शाकल्यने 'दक्षिण दिशाका देवता कौन है ?' इस प्रकार याज्ञवल्क्य से पूछा हैं, इसके उत्तरमें 'यमराज' ही नाम बताया गया। इस परसे भी स्पष्ट हो जाता है कि नरकलोक और यमपुरी दक्षिण दिशामें ही हैं। एवं यमराज भी देव विशेष हैं अतः उनका स्थान भी देवोंके समकक्ष ही हो सकता है। तभी तो उन्हें यज्ञ में भाग मिलता है। यथा—

"यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा"

(यजुर्वेद ३९-मंत्र १३)

अर्थ—यमके निमित्त सुन्दर आहुति हो, अन्तक निमित सुन्दर आहुति हो, एवं मृत्युके लिये स्वाहा-सुन्दर आहति हो।' (मिश्रभाष्य)

[1] तमोभूमिका विस्तार २४६४८०००० है। बस, इसी तमोभूमिमें नरकों की रचना है। जो नीचेसे लेकर ऊपर को यथाक्रम धर्मराजपुरी के समकक्ष चले गए हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

ये नरक नीचे तमोभूमि में विस्तृत हैं तथापि बहुत ऊंचे तक चले गए हैं तभी तो देवता नरकवालों को और नरकवाले देवताओं को परस्पर देखा करते हैं। जो स्थान आमने सामने पड़ते हों, वे ही देखे जा सकते हैं। यथा—

पश्यन्ति नारकान्देवा ह्यधोवक्त्रान्सुदारुणान्।
नारकाश्चापि ते देवान् सर्वान्पश्यन्ति ऊर्ध्वगान्॥

(महागरुड़ पु० प्रेतखंड धर्म कां अ० ३)

अधः शिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः।
देवाश्चाधो मुखान्सर्वानधः पश्यन्ति नारकान्॥

(विष्णु पु० २-६-३१)

अर्थ—नीचेको उलटे लटके हुये अधोमुख नरकके जीव ऊपरको मुख उठा कर देवताओं को देख लेते हैं। देवता भी नीचेको शिर लटके हुए नरकवासी जीवों को देखा करते हैं। इस परसे तो यह और भी विशेष स्पष्ट हो गया कि—नरकों की रचना पातालमें बतानेवाले भूलते हैं।

"लाखन कोस पलक में जावे, कतहुं न करत मुकाम"

योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः।
त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः॥

(भाग० ३-३०-२४)

यमदूत जीवात्माको ले जाते हैं तो दो तीन घड़ीमें ही उसे ९९ सहस्र योजन मार्ग पूरा कराकर ले जाते हैं। जिससे उसे मार्ग में बड़ा कष्ट होता है। घसीटते, खींचते जल्दीसे ले जानेमें कष्ट होना स्वाभाविक है. फिर वहांपर किसी दूतको दया तो होती नहीं कि—विश्राम पानेका अवसर मिल सके। है भी ठीक! यमदूतोंके साथ आराम या विश्राम कैसा? इससे इतना तो और भी स्पष्ट हो जाता है कि—यहां से ९९ सहस्र योजन के अन्तर पर नरक स्थान हैं। अन्य पुराण में भी। यथा—

रौद्रे तु पुष्करद्वीपे नरकाः सन्ति तान्छृणु।
रौरवः सूकरो रोधस्तालो विनशनस्तथा॥
पापिनस्तेषु पच्यन्ते विषशस्त्राग्निदायिनः।
उपर्युपरि वै लोका रुद्र! भूतादयः स्थिताः॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

वारि वह्न्यनिलाकाशैर्वृतं भूतादिना च यत् ।
तदण्डं महता रुद्र प्रधानेन च वेष्टितम् ॥
(महागरुड़ पु० पूर्व खंड आ० कां० अ० ५७)

गरुड पुराण 'पुष्कर' नाम के द्वीपमें नरकों का प्रतिपादन करता है। पुष्कर द्वीपकी स्थिति भी उपरोक्त कथन से मिलती है। पुष्कर द्वीपके ऊपर-ऊपर भूतादिकों के स्थान हैं एवं पानी, अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि से वेष्टित है। इससे तो और भी स्पष्ट हो जाता है कि नरकों के अनन्तर जल, अग्नि, पवन, आकाश के आवरण हैं, अत एव नरकों की रचना अण्डकटाह के अन्दर भाग में ही है। अण्डकटाह नीचेसे लेकर ऊपर तक चला गया है और यमराज की पुरी के समकक्ष तक स्थित है। नाचिकेतोपाख्यान में भी धर्मराज—यमराज की पुरीका और पापी जीवों की गति का सरल वर्णन है। हम यहां पर उदाहरण मात्र उपस्थित करते हैं। यथा—

शतानि दश विस्तीर्णा योजनानां प्रमाणतः ।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं नाना रत्नोपशोभितम् ॥
धर्मराजपुरं दिव्यं सप्त प्राकारवेष्टितम् ।
(नाचिकेतोपाख्यान अ० ७—१७,१८)

एक सहस्र योजन लम्बी चौड़ी, चौकोर नाना रत्नोंसे सुशोभित जिसके चारों तरफ चार द्वार हैं ऐसी परम सुन्दर सात परकोटोंसे वेष्टित—घिरी हुई महाराज धर्मराज की पुरी है। जिसके पूर्वद्वार [1] पश्चिमद्वार, [2] और उत्तर द्वारसे शुभकर्म करनेवाले,

---

[1] दानधर्मरताश्चैव क्रोधलोभविवर्जिताः ।
पितृभक्तिरता ये च गुरुपूजारताः सदा
पूर्वद्वारेण ते सर्वे प्रविशन्ति द्विजोत्तमाः ।
(नाचिकेतोपाख्यान ७—२४,२५)

दान धर्म तथा परोपकार करनेवाले, काम, क्रोध, लोभ आदिसे रहित, माता-पिता तथा गुरु के भक्त कहलाने वाले पुरुष तो पूर्वके द्वारसे धर्मराजके पास जाते हैं।

[2] अतिथि पूजक तथा देव, गुरु और ब्राह्मणोंके भक्त, सदाचारी, पवित्रात्मा, तीर्थोंमें मरनेवाले उत्तम प्रकारके प्रभु परायण जीव उत्तर दिशा के द्वारसे ले जाये जाते हैं। एवं—

Shri Prannath Ji Pustkalay

ध्यान पूजन करनेवाले संत पुरुषोंको तथा दान, पुण्य, दया, अहिंसा, सत्य, धर्म आदि पालने वालोंको ले जाया जाता हैं और दक्षिण के द्वारसे अधर्म कर्म करनेवाले पापी जीवों को घसीटते हुए प्रवेश कराते हैं। उनके साथ दयाका व्यवहार नहीं होता। यथा-

"यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम्"
'मर्त्यलोके तु पापिष्ठाः पापाचारयुता नराः।'
(महागरुड़ पु० प्रेत खंड)

देहं त्यक्त्वा पुनर्लब्ध्वा यातना–देहमेव च ॥
दूतैः कृष्टाः पुरीं यान्ति गृहीता इव मर्कटाः।
वैवस्वतस्य भो विप्राः सभायां संस्थितस्य च ॥
(नासिकेतोपा० अ० ९–१,२)

अर्थ—लोकमें पापाचरण में लगे हुए जीवोंको स्थूल शरीर त्यागके बाद एक प्रकार का 'यातना देह' प्राप्त होता है। उसी देह को यमदूत दुःख देते हुए यमपुरी को ले जाते हैं। जिस प्रकार पराधीन बन्दर लकड़ी के बलसे घसीटता हुआ चला जाता है। उसी प्रकार यमदूतोंके मारके भयसे जीवात्मा भी विवश चला जाता है। और अपने किये हुए अशुभ–कर्मों के फलको नाना प्रकार से नरकों में भोगता हुआ दुखी होता है।

सत्यव्रतधरा ये च नित्यं धर्मपरायणाः।
परद्रव्येच्छाविहीनाः परनिन्दा पराङ्मुखाः ॥
नित्यं धर्मकथासक्ताः परहिंसा विवर्जिताः।
एते वै पश्चिमे द्वारे प्रविशन्ति सुखान्विताः ॥
(नासिकेतोपा० ७–२७,२२)

सत्यव्रत धारण करनेवाले 'सत्यं लोक हितं प्रोक्तं' प्राणीमात्र के हित को सम्पादन करने का नाम सत्य है। केवल सत्य बोलना सत्य नहीं होता। धर्ममें निष्ठा रखनेवाले, परद्रव्यको लूटनेकी इच्छा न करने वाले, परनिन्दा न करनेवाले, हिंसासे विमुख, एवं धर्मकथामें विश्वास करने वाले प्राणी पश्चिमके द्वारसे ले जाये जाते हैं। जिन्हें मार्गमें किसी प्रकारका दुःख नहीं होता।

"अन्ये च दक्षिणे द्वारे प्रविशन्ति नराधमाः" (नासिके०)

Shri Prannath Ji Pustkalay

कतिपय विद्वान् चौरासी लाख योनियों को ही नरक के दुःख भोगने का स्थान बताते हैं और कहते हैं कि 'पाप पुण्य का फल यहीं मिलता है, इसके अतिरिक्त अन्य कहीं नरक नहीं हैं।' हो सकता है कि उन्हें ऐसा ही भासता हो, परन्तु यथार्थ कुछ और है। ऋषि महर्षियों ने कुछ शेष नहीं छोड़ा, सर्वत्र कुछ न कुछ स्फोट किया है। वेद शास्त्रों की शैली ऐसी है कि—उसे अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत—तीनों का समन्वय लेकर चलना महत्वपूर्ण लगता है। अनेकों शब्दों को श्लेषार्थके साथ गर्भित आशय द्वारा स्पष्ट किया है तो अनेकों को दोनों पक्षों में लगा दिया है। इससे कभी-कभी अल्पश्रुत विद्वानों को किंवा अधूरे विचारवाले पुरुषों को शंका हो जाती है।

नरकों के लिये बारम्बार 'अन्धकार' तमस, अनन्दा, असुर्या आदि अनेक शब्दों का ही प्रयोग आता है। जिनका अर्थ नरक-परक और नरक भोगने के बाद प्राप्त नाना योनियों के लिये भी समान रूपसे घट जाता है। क्योंकि पशु, पक्षी, वृक्ष आदि योनियों में ज्ञानका प्रकाश नहीं है, अतः वे तमसे आवृत हैं और उधर नरक लोक तो अन्धकार से पूर्ण हैं ही। वहांपर तो प्रकाश होता ही नहीं। अन्धतामिस्र, महान्धतामिस्र, तामिस्र आदि नाम भी अधिकतया अन्धकार को ही स्पष्ट करते हैं। तथापि श्रुतियों में नरक और नरक दुःखोंसे पूर्ण योनि दोनों का पृथक्-पृथक् निरूपण किया है, जिस परसे शंकाको स्थान ही नहीं रह जाता। यथा—

अर्थ—जो अधर्म कर्म करनेवाले हैं, अधम विचारोंमें तल्लीन रहते हैं, अमद्भावनाका सेवन किया करते हैं, ऐसे दुष्ट कर्मवाले पापी जीवों को मारते पीटते हुए यमदूत दक्षिणके द्वारसे यमपुरीमें ले जाते हैं। धर्मराजपुरी और यमराजपुरी ये दोनों नाम एक ही पुरीके हैं। जब पाप कर्मोंका फल भुगवाते हैं तब उनकी संज्ञा यमराज हो जाती है। जब शुभ कर्मोंका शुभ फल प्रदान करते हैं तब उन्हें धर्मराज कहा जाता है। अथवा यों समझें कि जब नरक क्षेत्र में कार्योंका निरीक्षण करते हैं, वहां के लिये जीवोंकी व्यवस्था करते हैं तब ये यमराज और जब अन्य कोटिके जीवोंको शुभ फल की व्यवस्था करते हैं तब ये ही धर्मराज पद पा जाते हैं। जिस प्रकार जिलाधीश डिस्ट्रिक्ट मजिस्टेट और कलेक्टर दोनों पदोंको भोगता है। उसी प्रकार यमराज और धर्मराज ये दोनों उपाधि हैं। यही कारण है कि—धर्मराज को महर्लोकमें स्थान मिला है। महर्लोक से दक्षिण तरफ नीचेको 'तमोभूमि' क्षेत्रमें नरकोंकी रचना है, जो दक्षिणके द्वारसे सम्बन्धित है। वहीसे जीवोंको नरकोंमें भेज दिया जाता है। शेष तीन द्वार स्वर्ग, अन्तरिक्ष और वैकुण्ठादिमें जानेवाले जीवोंके लिये नियत हैं। इस परसे भी यही स्पष्ट होता है कि नरक-स्थान सात पातालोंके नीचे नहीं, किन्तु दक्षिण दिशामें ही हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

कौपीन-युगलं कन्था दण्डमेकं परिग्रहः ।
यतेः परमहंसस्य नाधिकं तु विधीयते ॥
यदि वा कुरुते रागादधिकस्य परिग्रहः ।
रौरवं नरकं गत्वा तिर्यग्योनिषु जायते ॥

(नारदपरिव्राजकोपनिषद्)

अर्थ–दो लंगोटी, कथरी और एक दण्ड (लाठी जैसा पतला डण्डा) बस, परमहंस यतियों के लिये–इतना ही विहित है। कदाच मोह–रागवश इतने से अधिक रखता है अथवा संग्रह करता है तो वह यतिपरमहंस नहीं रहता, किन्तु पापी बन जाता है। जिसके फलस्वरूप उसे 'रौरव' नाम के नरक की यातना भोगना पड़ता है। इतना ही नहीं किन्तु नरक यातना भोगने के बाद उसे पक्षियों की योनि में जन्म लेना पड़ता है। इस श्रुति में नरक और मृत्युलोक की हीन योनि, दोनों को पृथक्-पृथक् लिखा है। और दोनों स्थानों के दुःख भोगने का पात्र परमहंस को ठहराया गया है। और भी देखिये—

काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ।
तितिक्षा–ज्ञान–वैराग्य–शमादि–गुणवर्जितः ॥
भिक्षामात्रेण यो जीवेत् स पापी यतिवृत्तिहा ।
स याति नरकान्घोरान्महारौरव–संज्ञकान् ॥

(परमहंसोपनिषद्)

ज्ञान से हीन केवल भोजन के लिये ही संन्यास वेष धारण कर सर्वत्र खाता फिरता है। तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य, शम, दम, उपरति, जिसने नहीं प्राप्त किया वह भीख मांगकर जीवन बिताने वाला पापी है—उसे महात्मा न मानो। क्योंकि वह अन्य यति–परमहंस की वृति को हरता फिरता है, अत एव उसे महारौरव नाम के[1] नरक में जाना पड़ेगा। इस श्रुति में भी महारौरव नरक को गिनाया है।

[1] काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ।
स याति नरकान्घोरान्महारौरव संज्ञकान् ॥

(उपनिषद्)

अर्थ–ज्ञानहीन संन्यासी बनकर सबका अन्न भक्षण करनेवाला महारौरव नरकों के घोर दुःखों को प्राप्त होता हैं। इस श्रुति में भी महारौरव नरक का नाम आता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरव रौरवौ ।
नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥
संजीवन महावीचिं तपनं संप्रतापनम् ।
संघातं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥
लोह शंकुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम् ।
असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च ॥ (वृद्ध मनु)

इस प्रकार विविध शास्त्रों से[1] २१ नरकों को पृथक्-पृथक् गिनाया है। पुराणों में तो विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता ही है। हां कहीं-कहीं नामों में अन्तर है। उसका कारण नरकों के दुःखों का स्वरूप है। एक-एक नरक में नाना प्रकार के कष्ट मिलते हैं। किसी ने पूतिगन्ध लिखा तो दूसरे ने पूयगन्ध लिख दिया। किसी ने तप्तकुंड लिखा तो किसी ने तप्तलौह लिख दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि भिन्न-भिन्न बातोंको लेकर नाम भिन्न-भिन्न रख दिये हैं। दूसरी एक बात और है वह यह कि—नरक असंख्य हैं, किसी ने किसी नरकका नाम लिख दिया तो किसी ने और किसी नरक का नाम जा लिखा। इससे नामों में तो अन्तर अवश्य हो सकता है, जो स्वाभाविक है। अतएव भागवत में शुकदेवजी लिखते हैं:—

---

[1] यद्यपि नरक लाखों हैं परन्तु संक्षेपमें किसी पुराण में २१ नरकोंके नाम लिखे हैं तो किसी में २८ नरकों का उल्लेख किया है। यथा—

नरकानेकविंशत्या संख्यया वर्णयन्ति हि ।
अष्टाविंशमितान्केचित्ताननुक्रमतो ब्रुवे ॥
(देवी भा० ८—२१—२१)

यमराजकी पुरीमें यमदूत विविध प्रकारकी भयंकर यातना—पीड़ा देते हैं। इसका वर्णन पुराण में तो विस्तरशः मिलता ही है वेदों में भी बड़े विस्तारके साथ किया हैं। यथा—

लोमान्यस्य संछिन्धि त्वचमस्य विवेष्टय ।
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य संवृह ॥
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ।
सर्वास्याङ्गा पर्वाणि विश्रथय ॥
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ।
प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥
(अथर्व कां० १२ सूक्त ११)

Shri Prannath Ji Pustkalay

एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चाव— निपते ! पर्यायेण विशन्ति (भागवत ५—२६—३७)

हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार के यमपुरी में सैकड़ों नरक हैं। जिन सब में अधर्माचरण करनेवाले जीवों को यथाक्रम–एक नरक से छुटकारा पाकर दूसरे में और दूसरे से पीछा छूटा तो तीसरे नरकमें ढकेल दिया जाता है। यह नियम नहीं कि प्रत्येक पापी पुरुष को सभी नरक भोगने पड़े। परन्तु जिस का जैसा अपराध होता है तदनुसार दो चार छः अथवा दशबीश भी भोगने पड़ते हैं। कोई तो एकाद को ही भोग कर छुटकारा पा जाता है।

बहून्वर्षगणान्घोरान् नरकान् प्राप्य तत्क्षयात्।
संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ॥

इस पापी दुष्ट के बाल उखाड़ डालो। इसकी त्वचा खींच डालो। इसके मांसों को काट-काट कर छाँट दो, इसकी स्नायुओंको अलग करो, इसकी हड्डियोंको पीडा पहुंचाओ अर्थात् हाड़ोंको तोड़ डालो। इसकी मज्जाको निकालो। इसके सम्पूर्ण अङ्गोंके पर्वोंको—अङ्ग प्रत्यङ्गोंको पृथक्–पृथक् कर दो। सौ धारवाले वज्रसे जो अति तीक्ष्ण क्षुराके समान है इसके स्कन्धों से शिर को अलग करो। इस प्रकार एक दो नहीं, किन्तु अनेक प्रकारकी यातना वेदों में भी लिखी हैं। समाजी भाई विशेष ध्यान दें ! क्योंकी उनकी बुद्धिमें नरक स्वर्ग सब कोरी कल्पना है। यहांपर तो केवल वेद मंत्रोंसे ही यह सिद्ध हो जाता है कि–नरकोंके दुःख बड़े भयंकर हैं और वे केवल अधम योनियां नहीं हैं, किन्तु यमराजके लोकों में ही प्राप्त होते हैं। पुराणों में तो पूछना ही क्या है। यथा—

"शीर्यते भिद्यतेऽन्यत्र चूर्ण्यते क्लिद्यतेऽन्यतः।
क्वथ्यते दीप्यतेऽन्यत्र तथा वातहतोऽन्यतः॥
एकं दिनं वर्षशतप्रमाणं नरके भवेत्।"

(महागरुड पु० पूर्वखंड धर्मकाण्ड अ० ३)

अर्थ–नरकमें दुष्ट पापियोंको टुकड़े-टुकड़े किया जाता है, चूर्ण जैसा बनाते हैं। कहीं वशा, मूत्र, पीव आदि के कुंडों में डालते हैं तो कहीं पकाया जाता है। कहीं जलाया जाता है। कहीं पवनके झोकों में दुखी करते हैं। इस प्रकार नरक यातनाका वर्णन है। नरक में सौ वर्षके समय को एक दिन मानते हैं। जो दुख भोगने में अधिक दुखद प्रतीत होता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा ।
क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ।।
(मनु १२—५४,५३)

अर्थ—यह जीव बहुतसे वर्ष पर्यन्त उन उन घोर नरकों की यातनाको प्राप्त होता है। वहांके भोगने योग्य पापोंका क्षय होनेपर जब थोड़े पाप रह जाते हैं' तब उसे संसार की चौरासी लाख योनियों में जन्म मिलता है। यथाक्रम उन पापों का फल भोगने के पश्चात् यह दुर्लभ मनुष्यतन प्राप्त होता है, जिसे प्राणी व्यर्थ ही गवा दिया करता है।

मानसं मनसैवायमुपभुंक्ते शुभाशुभम् ।
शारीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ।।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैस्त्वन्त्यजातिताम् (मनु १२—९)

अर्थ—नरक भोगने के पश्चात् भी यदि मानसिक पाप शेष रह गये तब तो उसे निकृष्ट मनुष्यों में जन्म मिलता है। जहां पर प्रतिक्षण मानसिक कष्ट का अनुभव करना पड़ता है। कदाच शारीरिक पापों का क्षय शेष है तो उसे स्थावर वृक्ष, द्रुम औषधि आदि योनियों में जन्म मिलता है। यदि वचन के पाप अधिक प्रमाण में शेष रह गये तो पक्षी, मृग आदि योनियों में जन्म लेकर अवशेष पापों को भोगना पड़ता है। मनुजो ने पापों को दस प्रकार का वर्णन किया है। यथा—

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम् ।
वितथाऽभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ।। (मनु० १२—५)

अर्थ—पराये द्रव्य को लेने की लालसा, मन से दूसरों का अनिष्ट (खराब) चिन्तन करना और मिथ्या विचारों का सेवन एवं नास्तिकता आदि—ये तीनों मानसिक पाप माने गये हैं।

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ।।
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ।। (मनु १२—६,७)

अर्थ—कठोर क्रूर वचन बोलना, असत्य बोलना, अन्य की चुगली—व्यर्थ छिद्रान्वेषण करके दुःख पहुंचाना एवं बिना मतलब अंट-संट बका करना—ये चार

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्रकार का वाणी का पाप है । विना दिये ही उठा लेना, दूसरे के द्रव्यको हर लेना, चोरी आदि कर्म, एवं शास्त्र विरुद्ध हिंसा करना । (आततायी को सामने आते देखते ही मार दो ऐसी शास्त्र की आज्ञा है । इस प्रकार आतयायी, अग्नि, लगाकर भागनेवाले, डाकू आदिको मारना हिंसा नहीं है) इसलिये शास्त्र के विना विधान के मारने को हिंसा वताया है । अन्यकी स्त्री पर अपना सत्त्व जमा लेना, उसके साथ व्यभिचार कर्म करना आदि ये तीन प्रकार का शारीरिक पाप माना गया है । ये ही दश पाप [1] छोटें वड़े होनेसे अनेक हो जाते हैं । मूलमें पाप दश ही प्रकार के हैं । इन्हीं दश पापोंको अधिक प्रमाण में ग्रहण किया तो महापातक हो जाते हैं उनके अवान्तर भेद लाखों की संख्या में वन जाते हैं । वस, पापों की संख्याका अधिक होना ही नरकों की संख्या को अधिक वढ़ा देता है । जब पाप 'असंख्य' हैं तो उनके भोगनेके लिने नरक कुण्ड भी

---

[1] मुसलमानोंके यहां धर्म-ग्रन्थों में दश विधकी जो दोजक (नरक) लिखी है, उसका आधार मनुजीके कहे गए यही उपरोक्त दश विध पाप हैं । इन पापोंके बदले वहांपर दश दोजक और धर्मशास्त्रो में नरक लिखे गए हैं । शास्त्रों में अति-सूक्ष्म पद्धतिको अपनाया है, अतएव गौरव लाघवका विचार करके अपराधानुसार हजारों नरकों का विधान है । कुरान व हदीशों में अधिक सूक्ष्म विचार नहीं किया । कारण—

"जब तो था देश बेहरुल हैवान, तब तो तिनमें था फुरमान"
"जो महम्मदकी उम्मति कही, दश विध तिनको दोजक लही"

(तारतम सागर)

जब कुरान के द्वारा अरवस्तान आदि देशों को 'सरा' में लिया गया था, तव वहांके देश वासी एकदम जंगली थे । हैवानी सूरत अख्त्यार किये थे । हैवानोंके से आचरण करते थे । अत एव उनके लिये अधिक विचार करके सजा देनेसे दवाव नहीं पड़ता था । यही कारण है कि उनको सीधा सख्त फरमान कर दिया गया कि अये ! मुसलमानो ! जो तुम मनुष्यता को नहीं पकड़ोगे, फुरमाये पर नहीं अमल करोगे तो अन्त समय (क्यामतके रोज) तुम्हें खुदाताला सदा के लिये दोजकमें डाल देगा । दुवारा फिर कभी तुमारे पापों पर विचार नहीं किया जायगा । परन्तु फिर भी आप देखते हैं कि उनके फैल हाल किस कदर ऊल—जलूल हुआ करते हैं । यदि वे फुरमानको मानते ही तो रसूल स्वयं अपनी उम्मत को दोजकमें क्यों डालते ? कभी गुरुजी अपने चेलोंको नरकमें भेजते हैं ? परन्तु रसूल साहेव ने तो एक दोको ही नहीं, अपने वहत्तरों फिरकों को ही दोजकी वता दिया ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

संख्य हो सकते हैं। परन्तु पुराणों में दिग्दर्शन मात्र कराया है, सबके नाम पूर्ण रूप से नहीं लिखे जा सके। यही बात ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी आती है। यथा—

नरकानां च कुण्डानि सन्ति नानाविधानि च।
नाना पुराणभेदेन नामभेदानि तानि च ॥
विस्तृतानि गभीराणि क्लेशदानि च जीविनाम्।
भयंकराणि घोराणि हे वत्से! कुत्सितानि च ॥
षडशीतिश्च कुण्डानि संयमन्यां च सन्ति वै।
निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति ॥
अन्यादि चाप्रसिद्धानि तत्र क्षुद्राणि सन्ति च। (ब्रह्मवैवर्त पु०)

इस भांति नाना प्रकार के नरकों के कुण्डों का विधान है। नाना पुराण भेद से नाम भेद हो गए हैं। पुराणों में बड़े-बड़े विस्तार वाले, गहरे, भयंकर, घोर अन्धकार से पूर्ण जीवों को नाना प्रकार के कष्ट पहुंचाने की व्यवस्थावाले ८४ से ८६ संख्या [1] तक कुण्डों का उल्लेख किया है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि इतने ही हैं। ये तो पुराणों में प्रसिद्ध हैं। शेष असंख्य अप्रसिद्ध नरक और हैं जो छोटे बड़े सभी प्रकार के हैं।

भागवत में सहस्रों नरकों को बतला कर केवल २१ नरकों का उल्लेख किया है, शेष यों ही छोड़ दिये गये हैं। परीक्षित राजा से बड़ी कठिनता के साथ २१ तक ही सुने गए बाद उसने कहा बस, महाराज! अब नहीं सुने जाते। इसलिये शेषों का वर्णन नहीं हो पाया। पर उन २१ नरकों का वर्णन भी इतना भयंकर है कि सुनते ही शरीर में रोमांच होने लगता है।

---

[1] ८६ 'कुण्डोंके नाम—वह्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, क्षारकुण्ड, विटकुण्ड, मूत्रकुण्ड, श्लेष्मकुण्ड, गरकुण्ड, वसाकुण्ड, दूषिकाकुण्ड, शुक्रकुण्ड, असृक्कुण्ड, अश्रुकुण्ड, गात्रमलकुण्ड, कर्णविटकुण्ड, मज्जाकुण्ड, मांसकुण्ड, नखकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, अस्थिकुण्ड, ताम्रकुण्ड; लौहकुण्ड, विषकुण्ड, तीक्ष्णकंटककुण्ड, धर्मकुण्ड, तप्तसुराकुण्ड, तप्ततैलकुण्ड, कुन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड, पूयकुण्ड, सर्पकुण्ड, मशकुण्ड, दंशकुण्ड, गरलकुण्ड, वज्रदंष्ट्रकुण्ड, वृश्चिककुण्ड, शरकुण्ड, शूलकुण्ड, खड्गकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, कानकुण्ड, संचानकुण्ड, वाजकुण्ड, वज्रकुण्ड, तप्त पाषाणकुण्ड, तीक्ष्ण पाषाणकुण्ड, लालाकुण्ड, मसीकुण्ड, चूर्णकुण्ड, ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, चक्रकुण्ड, वक्रकुण्ड, दग्धकुण्ड, तप्तशूर्म्मीकुण्ड, असिपत्रकुण्ड, क्षुरधारकुण्ड,

Shri Prannath Ji Pustkalay

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ।
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातयाः (मनु १२-२१)

अथ—जो मनुष्य अधर्मका सेवन अधिक करते हैं और धर्माचरण थोड़ा बनता है, उन्हें मरनेके बाद नरक में जाना पड़ता है । इस पंच भौतिक शरीरके स्थानमें उन्हें एक प्रकार की 'यातना देह' प्राप्त होती है । जिस यातना देह के द्वारा यमपुरी के कष्टों को भोगता है और पाप क्षय होनेपर शेष कर्मानुसार उसे पुनः मृत्युलोक में किसी योनिमें जन्म लेना पड़ता है ।

जब संचित कर्मको भोगते-भोगते मनुष्य देह प्राप्त होता है तब कहीं पुनः कुछ शुभकर्म करने का अवसर प्राप्त होता है । मनुष्य देहसे कुछ न बन सका तो वही नरकोंका भोग और चौरासी लाख योनिका चक्कर सामने पुनः आ पहुंचता है । अतएव श्री जी निर्देश करते हैं कि " जो भूली राह बतावही ताहि होसो बड़ो सबाब" ।

जो कोई सत्पुरुष पुनः पुनः चौराशी लाख योनि में जानेवाले मनुष्योंको उसके चक्करसे बचा कर सन्मार्ग पर पहुंचा देता हैं, परम पदका पथ सुझा देता है, उसे महान अक्षय-(कभी भी क्षीण न होनेवाला) पुण्य प्राप्त होता है । जो विश्वमें किसीको फाँसी आदिकी सजासे अथवा मृत्युभयसे बचाकर जीवन प्रदान करता है उसे अभयदान कहते हैं और उसका अक्षय पुण्य माना गया है । जो चौरासी लाख योनिके बारम्बार के बंधनसे बचाकर सदाके लिये अखण्ड सुखमें पहुंचा दे उसके पुण्यकी महत्ताका क्या पार ? वह तो कितने ही अक्षय पुण्योंकी अपेक्षा अनन्त गुणा अक्षय पुण्य क्या, मोक्ष पुण्य है । अतएव 'प्राणनाथ प्रभुजी' कहते हैं कि उसे महान पुण्य प्राप्त होता ।

सूचीमुखकुण्ड, गोधामुखकुण्ड, नक्रमुखकुण्ड, गजदंशकुण्ड, गोमुखकुण्ड, कुभीपाककुण्ड, कालसूत्रकुण्ड, अवटोदकुण्ड, अरुन्तुदकुण्ड, पांसुभोजनकुण्ड, पाशवेष्टनकुण्ड, शूलप्रोतकुण्ड, प्रकम्पनकुण्ड, उल्कामुखकुण्ड, अन्धकूपकुण्ड, वेधनकुण्ड, दण्डताड़नकुण्ड, जालवद्धकुण्ड, देहचूर्णकुण्ड, दलनकुण्ड, शोषणकुण्ड, कषायकुण्ड, शूर्पकुण्ड, ज्वालामुखकुण्ड, जिह्मकुण्ड, धूमान्धकुण्ड, नागवेष्टनकुण्ड, कूर्मकुण्ड, ये ८६ कुण्ड हैं । जो जैसा पाप करता है, उसे इन कुण्डों में डाला जाता है । जहांपर असह्य वेदना होती है । इनके सिवा नरक अन्य भी हैं । वैतरणी नदी आदि की यातना भिन्न-भिन्न है । जो इन कुण्डोंसे भी भयंकर और घोर होती है । जहांपर करोड़ों वर्षों तक यम यातना-पीड़ा भोगना पड़ता है । हम विस्तार भयसे यह नहीं दिखा सके कि प्राणी को किस-किस पापसे कौन-कौन कुण्डों में कौन-कौन कष्ट भोगना पड़ता है ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सोई सुहागिन धाममें जो करसी इत रोशन ।
तौल मोल[1] दिल माफक, देसी सुख सबन ।। (तारतम वाणी)

जो चौरासी लाख योनियों के चक्कर में पड़े हुए मोहवश, अज्ञानवश चेतन वस्तु को भूले हैं अथवा मिथ्या सुखों को अपना मान के विश्व के वैभव में निमग्न होकर अपने अधिकार से वंचित हो चुके हैं, ऐसे दीन हीन भूले हुए मनुष्यों को योग्य अधिकारी बनाकर उनके हृदय में ब्रह्मतत्त्व के चेतन प्रकाश को प्रदान करता है। वह अचेतन हृदयों में चेतन का संचार कर उन्हें सदा के लिये अखंड सुख को प्रदान कर देता है। वह स्वयं कब अधोगति में रह सकता है ? अतएव 'श्रीजी' उसे परमधाम की ब्रह्मसृष्टि का पद प्रदान करते हैं। वह चाहे भले जीवसृष्टि ही क्यों न हो, परन्तु जो सबको अखंड सुख का मार्ग बता कर निजघर-ब्रह्मधाम में पहुंचा दे, उसकी-तौल,मोल और दिल की महत्ता की इयत्ता क्या हो सकती है उसके महत्त्व का मूल्याङ्कन कौन कर सकता है ? वह तो अखंड का, अद्वैत का मालिक बन बैठा और अब तो दूसरों को भी अखंड निध लुटा रहा है, सुन्दरसाथजी ! एक दो की कौन कहे सारा विश्व ही नरकों के चक्कर में पड़ा है इसलिये अपने कर्त्तव्य को न भूल कर विश्व में चेतन का संचार करो।

हां, तो हम जरा दूसरी तरफ चले गये। मृत्युलोक के अन्दर सबसे अधिक चिन्ता का विषय है तो वह नरकों से बचने का उपाय है। हम जहां तक असत्कर्म, असद्भावना और निकृष्ट विचारों को नहीं छोड़ते, हजारों उपाय करने पर भी हमें नरकों के दूत नहीं छोड़ सकते। "लांचे त्यां नव छूटिये सगा न ओलखाए होय" हमें वहां पर किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल पाती।

महापातकजान्घोरोन्नरकान्प्राप्य दारुणान् ।
कर्म क्षयात्प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह ।।

नरक की यातना को भोगते-भोगते कहीं करोड़ों वर्षों के बाद पुनः चौरासी लाख

---

[1] मोल—'मोल नहीं इन मोती को' साथजी ! आप तो अनमोल मोती हैं। आपकी महिमाका मूल्यांकन कौन कर सकता है ? जो सारे विश्वको अखंड सुख देनेका व्रत धारण करले, जो मिथ्या चेतनको-सच्चा चेतन बनाकर ब्रह्म पदमें बैठा दे, उसका मोल क्या ?

"ब्रह्मसृष्टिको ऐसो नूर जो दुनियायी विना अंकूर।
ताए नये अंकूर जो कर, किये निहचल नूर नजर ।।"

जो विश्वकी, स्वप्नस्वरूप जगतको, अखंड कर दे, उसके मूल्यकी इयत्ता क्या ? तभी

Shri Prannath Ji Pustkalay

योनियों में जन्म मिलता है। ये चौरासी लाख योनियां भी इतनी अन्धकारपूर्ण हैं कि कहीं ढूंढ़े भी मार्ग नहीं मिलता। एक मनुष्य-योनि में सन्मार्ग का सौभाग्य है भी तो काम, क्रोध, लोभ, मोह-इतने सुन्दर ढंग से घेरे हैं कि—स्वप्न में भी उन्हें छोड़ने को मन नहीं होता। स्वयं भी इस प्रकार लिपटा है कि छूटना चाहे तो भी बड़ी कठिनता के साथ कहीं जरा सा बन्धन ढीला हो पाता है।

इस प्रकार से यम यातना और यमपुरी का भयंकर पंजा हमारे सिर पर प्रतिक्षण भय बता रहे हैं। जिस विराट का हम पीछे वर्णन कर चुके हैं उसमें

तो "ब्रह्मसृष्टिकी चरणरज ढूंढ़ थके त्रिगुन" आपके चरणोंकी रजको ब्रह्मादि वांच्छा रखते थे पर न मिल सकी। जिनके चरणकी धूलको ब्रह्मादि देव तरसें उनका मूल्य कितना होगा? तौल तो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण:—"सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते (मनु)" सब दानों से अधिक महत्वपूर्ण ब्रह्मदान है जिसके पुण्य का कभी क्षय नहीं होता। जो सारे विश्व को परात्पर धाम में पहुंचा दे, जो मिथ्या जीवों को भी अखंड बना दे, इतना ऊंचा पहुंचा दे, उसकी तौल को कौन कहे? तराजू (तुला) का नियम होता है जिस पलड़ा में वजन रहता है, वह तो जमीन पर डटा रहता है और दूसरी तरफ के पलड़ा को ऊंचा उठा देता है। जब एक तरफ विशेष भार होगा तभी तो दूसरी ओर की डांडी ऊंची उठ सकेगी। जो सम्पूर्ण विश्व को अखंड धाम तक ऊंचा पहुंचावे उसकी तरफ कितना भार होगा। अब उस भार की तौल कौन करें? दिल तो साथजी! आपका इनसे भी बड़ा! उसके माफक तो कुछ था ही नहीं। जिनके दिल में ब्रह्मधाम भरा हो, जिन्होंने पूर्णब्रह्म को अपने दिल में इस खूबी के साथ छिपा लिया हो कि वे निकलना चाहें तो निकल के जा नहीं सकते और आप इन पूर्णब्रह्म को, उनके अखंड सुख को विश्व के प्राणियों को लुटाते रहें। अखंड सुख छलकता फिरे, विश्व की गली-गली और गांव-गांव में बिना मूल्य और बिना अधिकार के भी जो चाहे वही उसे अपना ले। रंक भी अखंड धाम के मालिक बन बैठें। यह सब किसकी बदौलत! आपके (साथके) दिल की कृपा की बदौलत।

"दिया तुम्हारा पावही दुनिया चौदह तबक"

अब तो तुम्हारे दिल की दया से चौदह लोक अखंड धन का मालिक बन बैठा!! बोलिये! जो दिल इतनी बकसीस करे, जो सारे विश्व को तृप्त कर दे, अखंड सुख पिला दे, अमर बना दे, उस दिल की बराबरी किसका दिल कर सकता है? यह सब साथजी आपके दिल का ही गौरव है। जिसे भुलाकर आज तो मकान, मन्दिर और सामान को इकट्ठा करने में हमारा दिल लगा है। अब इसकी कीमत क्या होगी, यह तो श्री राजजी जानें।

Shri Prannath Ji Pustkalay

नरकों का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग है। विश्व रचना में सबसे विशेष सहयोग धर्म-राज किंवा यमराज का है। चौरासी लाख योनियों से विश्व को भरपूर बनाये रखना यह यमराज की शक्ति का ही काम है। उसके विधान में न उत्क्रान्ति है, न संशोधन है। न परिवर्तन है, न बहुमत का जोर है। वह तो सदा अटल और अटूट है।

इस प्रकार विराट के अंगों का तथा स्वर्ग, नरक का सूक्ष्मतया वर्णन किया गया। पूर्वोक्त इन नरक स्थानों के आगे अंडकटाह की सीमा है जो इस विराट को अपने में लीन किये हुए ब्रह्माण्ड नाम से प्रसिद्ध है।

ततः तमः समावृत्य शैलं सर्वतः स्थितम्।
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात्परिवेष्टितम्॥
पञ्चाशत्कोटि विस्तारा सेयमुर्वी महामुने।
सहैवाण्डकटाहेन सप्तद्वीपाब्धि महीधरा॥

(विष्णु पु. अंश २ अ० ४—९६,९७)

मृत्युलोक के संस्थानों का क्रम यह है कि—सबके मध्य में सुमेरु है। सुमेरु के चारों ओर सातों द्वीप अपने-अपने विस्तार प्रमाण में बसे हुए हैं। जो प्रथम प्रथम की अपेक्षा एक दूसरे से दो-दो गुने विस्तार में बढ़ते हुए चले गये हैं। जिस प्रकार सातों द्वीप एक दूसरे से यथाक्रम दोगुने हैं उसी प्रकार सातों समुद्र भी एक दूसरे की अपेक्षा दो-दो गुने बढ़ते चले गये हैं। सातों द्वीपों वाली इस वसुन्धरा से[1] आगे चारों ओर को फ़ैली हुई इन सबकी अपेक्षा दूनी कांचन भूमि पड़ती है, जो प्राणी और मनुष्यों से शून्य हैं। इस कांचन भूमि से आगे इसके चारों ओर लोकालोक पर्वत की माला है, जो सूर्य मण्डल से भी ऊँची है एवं दस-दस सहस्र योजन चारों ओर फ़ैली हुई है। इसके आगे सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंचता। इसे तमोभूमि कहते हैं। यह चारों तरफ है परन्तु इसी भूमिका में दक्षिण दिशा में नरक लोकों की रचना है, जो यमराज की पुरी तक है पूर्वोक्त तमोभूमि को घेरकर अण्डकटाह है, जो विश्व की सीमा कहा जाता है। इस प्रकार

[1] यह पृथिवी गोल है, पानीके साथ सदा वर्तमान है। इसके आगे अन्य द्वीप अगम्य हैं उन्हें हम प्राप्त नहीं कर पाते। जिस प्रकार तारा मण्डल हमसे अगम्य हैं उन्हें हम प्राप्त नहीं कर पाते, उसी प्रकार अन्य द्वीपोंसे हमारा सम्बन्ध नहीं है, कारण वे दिव्य हैं। जो दिव्य होगा वह सूक्ष्म होगा। जो सूक्ष्म होगा, वह सूक्ष्म इन्द्रियोंसे देखा जा सकता है। प्राचीन कालमें अन्य द्वीपोंके साथ हमारा सम्बन्ध था क्योंकि हम योगशक्ति वाले थे।

Shri Prannath Ji Pustkalay

५० करोड़ योजन पृथ्वी का विस्तार माना गया है। जिस प्रकार पृथ्वी चारों ओर को विस्तृत है, उसी प्रकार ऊपर को भी मृत्युलोक से २५ करोड़ योजन ऊँचे तक मानी गई है। इन्हीं २५ करोड़ों के अन्तर्गत स्वर्ग, नरक, वैकुण्ठ, कैलाश आदि सब देवों के लोक हैं, जो अपने-अपने अधिकार अनुसार सुरक्षित और समृद्ध हैं। पाताल से लेकर सत्यलोक (वैकुण्ठ, कैलाश) पर्यन्त यह सब रचना विराट स्वरूप भगवान् के स्वरूप में निहित है। इसीलिये इस विश्व को विराट कहते हैं। यह प्रथम अण्डाकार था, इसलिये इसको आज भी ब्रह्माण्ड के नाम से पुकारा जाता है।

भूमेः समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राणा परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥

(सूर्यसिद्धान्त)

अर्थ—यह सम्पूर्ण विराट ब्रह्म की धारणात्मिका शक्ति से महाकाश में स्थित है। जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, तारा-मंडल आदि सब इस विश्व के आकाश में अधर स्थित हैं और गिरते नहीं, उसी प्रकार यह समस्त ब्रह्माण्ड ब्रह्म की शक्ति से महाकाश में निराधार अवस्थित है। इस विश्व के चारों तरफ सब ओर पृथ्वी आदि आठ आवरण हैं, जो एक-एक से दस गुने अधिक हैं, और सब ओर को बढ़ते-चढ़ते चले गए हैं, जिनका वर्णन पञ्चम पर्व में देखें।

इतिश्री सद्धर्मसिद्धान्तवागीश श्रीकृष्णदत्तशर्मशास्त्रि विरचिते
विराटपटदर्शने क्षरपुरुषे नरक-संस्थान वर्णनं नाम
चतुर्थं पर्व परिसमाप्तं जातम्॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

एतदंडकटाहेन[1] तिर्यक् चोर्ध्वमधस्तथा ।
कपित्थस्य यथाबीजं सर्वतो वै समावृतम् ॥ २२ ॥
दशोत्तरेण पयसा मैत्रेयाण्डं च तद् धृतम् ।
सर्वोऽम्बुपरिवारोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहिः ॥ २३ ॥
वह्निश्च वायुना वायुर्मैत्रेय ! नभसाऽऽवृतः ।
भूतादिनाः नभः सोऽपि महता परिवेष्टितः ॥ २४ ॥
दशोत्तराण्यशेषाणि मैत्रेयैतानि सप्त वै ।
महान्तं च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम् ॥ २५ ॥

(विष्णु पु० अंश २ अध्याय ७)

अर्थ–महर्षि पराशर जी कहते हैं–हे मैत्रेयजी ! जिस प्रकार कैथेका फल अपने चारों ओर एक प्रकार की खोपड़ी ले घिरा है, उसी प्रकार यह चौदह लोकात्मक विश्व नीचे शेष भगवान से लेकर ऊपर को वैकुण्ठ पर्यन्त सब तरफ से अण्ड–कटाह से (पृथिवी के गोलकसे) घिरा है। जिसका विस्तार पचाश करोड़ योजन गोल माना गया है। इस अण्ड कटाह–पृथिवी गोलकको घेर कर सब ओर दश गुना जल का आवरण है।

जल तत्त्व के आवरण में—

शब्द, स्पर्श, रूप, रस-ये चार गुण हैं। इसका वर्ण श्वेत और देवता विष्णु को[2] माना गया है। जलकी स्वच्छताके कारण इस आवरण में सहस्रों सूर्यों का प्रकाश सूक्ष्मरूपसे विद्यमान है।

---

[1] एतदण्डं विशेषाख्य क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः ।
तोयादिभिः परिवृतं प्रधानेनाऽऽवृतैर्बहिः ।
यत्रलोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः ॥

(भागवत ३-२६-५२)

अर्थ—यह ब्रह्माण्ड–विराट अंडकटाह की पचाश करोड़ योजन सीमारूप भीत्ति से आवृत है। इसके देवता ब्रह्माजी हैं। एवं चौरस इसका आकार है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध–ये पांच गुण हैं। इसमें अनन्त करोड़ जीवोंकी सृष्टि है।

[2] ब्रह्माणं पृथिवीभागे विष्णुं तोयांशके तथा ।
अग्न्यंशे च महेशानमीश्वरं चानिलांशके ॥
आकाशांशे महाप्राज्ञः धारयेत्तु सदाशिवम् ।

(श्री जावालदर्शनोपनिषत् ८—६)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अग्नि तत्त्व का आवरण—

पूर्वोक्त जल के आवरण से दश गुना अधिक विस्तार वाला है। शब्द, स्पर्श और रूप–ये तीन गुण हैं। रक्त वर्ण और शिवजी इसके देवता हैं। अग्नि तो प्रकाश स्वरूप ही ठहरा अतएव इसका प्रकाश और भी महत्त्वपूर्ण है।

वायु तत्त्व का आवरण—

अग्निके आवरणके आगे दश गुना सब ओर वायुका ही आवरण है जो अग्नितत्त्वको घेरे है। शब्द करना और शीतल स्पर्श, ये वायुके दो गुण हैं। हरा रंग और ईश्वर देवता है। यह अग्निसे भी दश गुण होने के

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश्वर, सदाशिव–ये पाँचों तत्त्वों के अध्यक्ष देव हैं। जो जिस तत्त्वका अध्यक्ष होता है उसकी उपासनाके लिये वही तत्त्व सुविधाजनक और शीघ्र फल प्रद हुआ करता है। इस कारणसे उपरोक्त श्रुतिमें निर्देश है कि ब्रह्माकी पृथिवीमें, विष्णुकी जलमें, शिवजीकी अग्नितत्त्वमें, ईश्वरकी वायुतत्त्वमें, और सदाशिवकी आकशंतत्त्वमें, धारणा करनेसे शीघ्र ही इष्टकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो जिस तत्त्वका अध्यक्ष देव होता है उस देवकी अन्य बातें भी उसमें स्वाभाविक होती हैं। जैसे जलमें शीतल गुण हैं तो उसके देव भी सत्त्वगुणभूयिष्ठ हैं। शिवजी तमोगुणके अध्यक्ष हैं तो अग्निमें भी तमोगुण भावनाके भाव भरे पड़े हैं। ब्रह्माजी सृष्टिके कर्ता हैं तो पार्थिव पदार्थोंमें भी रचना कार्य विशेषरूपसे पाया जाता है, ये सब बातें वैज्ञानिक ढंग पर हैं। प्रत्येक तत्त्वका रूप, रंग, गुण और सामर्थ्य आदि सभी विशेषताएं अपने-अपने अध्यक्षके अनुकूल और अनुरूप ही मिला करती हैं।

चतुरस्रं धरण्यादौ ब्रह्मा तत्राधिदेवता।
अर्धचन्द्राकृति जलं विष्णु स्तस्याधिदेवता॥
त्रिकोणमण्डलं वह्नौ रुद्रस्तस्याधिदेवता।
वायोर्बिम्बं तु षट्कोणमीश्वरोऽस्याधिदेवता॥
आकाशमंडलं वृत्तं देवतास्य सदाशिवः॥

(योगशिखोप०श्लोक १७६–१७८)

पृथिवी तत्त्वको चौरस माना है, एवं ब्रह्माजी अध्यक्ष देव हैं। जल तत्त्वकों शुक्लवर्ण और तिर्यक् माना है विष्णुजी अधिदेव हैं। अग्निको त्रिकोण माना है एवं रुद्र भगवान देव हैं। वायुको षटकोण माना है ईश्वर अधिदेव हैं। आकाशको गोल माना हैं एवं सदाशिव जिसके देव हैं। इस प्रकार तत्त्वोंके अन्दर विज्ञान है जो मनन करने योग्य है। ये सब बातें योगियोंके लिये विशेष उपयोगी होती हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

कारण पांच खर्व योजन के विस्तार वाला यह एक प्रकार का वायुलोक बन गया है। इसके मध्य ईश्वर देवता अपने ऐश्वर्य और शक्ति सहित विद्यमान है। करोड़ों चन्द्र सूर्य के प्रकाश से परिपूर्ण यह ईश्वर का धाम भी कहा जाता है।

आकाश तत्त्व का आवरण—

वायु तत्त्व से दस गुना अधिक व्यापक क्षेत्रवाला, यह आकाश तत्त्व भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। पचास खर्व योजन का विस्तृत और शब्द गुण से परिपूर्ण अपनी श्याम आभाके साथ शोभित है। सदाशिव इसके अधिष्ठाता देव हैं। जो अपने अनेक विशेषण और शक्ति सामर्थ्य एवं स्वरूप साहित्य सहित शोभायमान हैं। सदाशिव की उपासना करनेवाले एवं शून्य समाधि लगानेवाले अनेक योगी जनों के प्राप्त होने का स्थान भी यही तत्त्व है। घटाकाश, मठाकाश के सिद्धान्त को मानकर सदाशिव का ध्यान करने वाले यहीं पर कल्पान्त निवास करते हैं। जब इस तत्त्व का लय हो जाता है तब अपने अध्यक्ष के साथ महाशून्य को प्राप्त हो जाते हैं एवं जीवोपाधि मिटकर महाशून्य में एकरूपता को पा जाते हैं।

मन का आवरण—

आकाश तत्त्वसे दश गुना मनतत्त्व अर्थात् तामस अहंकारका आवरण है। आकाश तत्त्व की अपेक्षा तामस अहंकार दश गुना है तभी तो अहंकार और मनके संकल्प विकल्पों का कहीं पार सुमार नहीं मिलता। प्रतिक्षण कल्पनाओं का पुंज उठा ही करता है। "मनो ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि श्रुतियों में मनोमय आवरण का ही महत्त्व प्रतिपादन किया है। इस मन के आवरण में भी अनेक प्रकार की कल्पना है। इसके अनन्त रंग हैं एवं अनन्त लीलाओं की कल्पना उठा ही करती है। इसके अज्ञानरूप, इच्छाशक्ति, महाघोर, तमरूप अनेक नाम हैं। यहां अनन्त सूर्यों का प्रकाश है परन्तु अन्तर में घोर अन्धकार ही अन्धकार है। अनेक पुरुष इसको भी ईश्वर मानकर भजन करते हैं।

बुद्धि का आवरण—

मनरूप तामस अहंकार के ऊपर इस बुद्धिरूप राजस अहंकार का दस गुना विस्तार है। यह पचास नील योजन विस्तृत है। इस बुद्धिरूप आवरण में अनेक चित्र विचित्र माया के चरित्र प्रतिक्षण उठा करते हैं। अनेक मत मतान्तर इसी को ब्रह्म मानकर भी भजते हैं। इसमें अनेक विचित्र रचनाओं का आभास जैसा प्रतीत होता है। कुछ योगी पुरुष इसी के रूप, रंग में ध्यान लगाया करते हैं। यह बुद्धि का भंडार क्षेत्र भी है। इसकी विचित्र सिद्धियों के विषय में जो कुछ लिखा जाय थोड़ा है।

यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानं शरीरम् (बृहदारण्यकोप० ३—७—२२)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—जिसका 'विशेष ज्ञान-विज्ञानरूप ही शरीर है जो बुद्धि के इस महान विस्तृत क्षेत्र में रहकर भी विज्ञान-बुद्धि के आवरण के अन्दर रहने वाले प्रेरक चेतन को नहीं समझ पाता कि—इसमें इतनी विचित्र प्रेरणा कहां से आती है। जब बुद्धि के आवरण में बुद्धि से सब प्रकार पूर्ण और विज्ञान स्वरूप ही इस विज्ञान के विचित्र चमत्कारों को नहीं जान पाते कि—उन्हें कौन प्रेरणा देता है, यह सब कुछ कहां से आता है ? तब हम सब तो इस विज्ञान स्वरूप राजस अहंकार अथवा बुद्धि के आवरण के महत्त्व को पूर्णतया किस प्रकार जान सकें। सारा बौद्ध जगत इसी के पीछे पड़ा है। आज विश्व में जो नये-नये आविष्कार और चमत्कार देखने में आते हैं, उन सबका मूल यही विज्ञानक्षेत्र बुद्धि का आवरण है। इसी को राजस अहंकार भी कहते हैं।

"प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म"

अर्थ—सम्पूर्ण विश्व बुद्धि से काम लेता है, बुद्धि की ही प्रतिष्ठा है; यही बुद्धि ब्रह्म है ऐसा भी कुछ लोग मानते हैं। उनके लिये यही परमात्मा है।

अहंकार का आवरण—राजस अहंकार को घेर कर सर्वत्र फैला हुआ पूर्वोक्त बुद्धि के आवरण से दस गुना अधिक विस्तृत पांच पदम योजन के विस्तार वाला यह अहंकार का आवरण है। शेष नारायण, लक्ष्मीजी तथा विष्णु भगवान-इसी के प्रतीक रूप हैं। इसी को सात्विक अहंकार भी कहते हैं। इसका धूम्र वर्ण है और शुद्ध सत्त्व गुण को धारण किये है। इसके अन्तर्गत भी अनेक चित्र विचित्र रचनाओं की सृष्टि है। अनेक सूक्ष्म दृश्य इसमें प्रतीत होते हैं। "असंख्याता मया दृष्टाः सृष्टिस्तत्त्वेषु पार्थिव !" इस भांति तत्त्वों के अन्तर्गत भी अनेक रचनाओं का उल्लेख है। परन्तु वे सब रचना आपकी इस लौकिक रचना से विलक्षण और सूक्ष्म तत्त्वों से उदित हैं, जिनका साक्षात्कार योगी पुरुषों को हुआ करता है। बस, यही कारण है कि इसको सब नहीं देख सकते।

यद्यपि पूर्वोक्त विष्णु पुराण के अवतरण में आवरण सात ही माने हैं, जो सांख्य दर्शन का क्रम लेकर लिखे गये हैं। सांख्य मत से "प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारः" प्रकृति से महान और महान से अहंकार और अहंकार से पांच तन्मात्रा, ये ही सात गण होते हैं। इसलिये इन्हीं उपरोक्त सातों के सात आवरण मानते हैं। प्रकृति तो इनके मत में नित्य है वही सबको अपने में लिये है अतएव उसे तो आवरणों में गिन नहीं सकते। बाकी-पाँच तन्मात्रा और अहंकार तथा महान-ये ही सात रह जाते हैं, अतएव आवरणों की संख्या सात कहते हैं। परन्तु सर्व शास्त्र सम्मत आवरणों की संख्या आठ ही है। यथा-

Shri Prannath Ji Pustkalay

भूमि रापोऽनलो वायुः खं मनो[1] बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ (गीता ७—४)

भगवान श्रीकृष्णजी कहते हैं 'हे अर्जुन ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार—ये आठ प्रकार की मेरी भिन्ना (अपरा) प्रकृति है।' यहां पर भगवान ने सबके नाम भी अलग-अलग गिना दिये हैं। ये ही आठों आवरण होकर इस विश्व को धारण किये हैं। यथा—

मनो बुद्धिरहंकारः खानिलाग्निजलानि भूः ।
एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराः षोडशापरे ॥
(शारीरकोपनिषद्)

इस श्रुति ने तो और भी स्पष्ट कर दिया कि—मन, बुद्धि, अहंकार और पांचों तत्वों की पांच तन्मात्रा, ये आठों प्रकृति हैं और शेष १६ विकार हैं। इस प्रकार सब मिलकर ये चौवीस और एक चेतन-ये ही २५ के संगठन को विराट कहते हैं। षोडश विकार और आठ प्रकार की प्रकृति—ये विश्व की संख्या का क्रम सर्व सम्मत है। अतएव शुकदेवजी कहते हैं।

एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया ।
महयादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥
(भाग० २—१०—३३)

---

[1] मनसः खं ततो वायुरग्निरापो धरा क्रमात् ।
गुणैकवृध्द्या पंचैव महाभूतानि जज्ञिरे ॥
(सिद्धान्त प्रकाश)

सूर्यसिद्धान्त के गोलाध्यायमें भी भूतोंकी उत्पत्तिका क्रम प्रस्तुत सिद्धान्त के अनुसार ही लिखा है। इसमें सुतराम् स्पष्ट कर दिया है कि—मनसे आकाशकी उत्पति है और फिर वायु, अग्नि, जल, पृथिवी यथाक्रम एक-एक गुण अधिकवाले उत्पन्न हुए हैं। आकाशमें केवल शब्द एक ही गुण है तो वायुमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं। अग्निमें शब्द और स्पर्श दो गुण तो वायुसे आते हैं और एकरूप गुण अपना, इस प्रकार तीन गुण हो गये। जलमें तीन-गुण शब्द स्पर्श, रूप-तो अग्निसे आये और एक रस अपना वढ़ गया इस प्रकार चार हो गये। इसी प्रकार पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, और रस-ये चार गुण तो जल से आये और एक गन्ध गुण

Shri Prannath Ji Pustkalay

हे परीक्षित ! भगवान के चौदह लोक-युक्त जिस स्थूल स्वरूपको मैंने वर्णन कर सुनाया है, वह पृथिवी आदि आठ आवरणोंसे आवृत (घिरा हुआ) है। इस प्रकार विविध शास्त्रों का अनुसन्धान एकत्रित किया जाय तो आवरणों की संख्या आठ ही सर्व सम्मत प्रतीत होती है। पूर्वोक्त चौदह लोक और आठ आवरण, ये सब मिल कर भगवानका स्थूल शरीर कहा जाता है। इस भांति चौदह लोकों के जीवोंकी समष्टि-यह विराट आठों आवरणों सहित आदि नारायण-महाविष्णु के स्थूल स्वरूप का विन्दु स्वभाव माना जाता है। इसी प्रकार के दूसरे-अन्य असंख्य [1] ब्रह्माण्ड महाविष्णु के व्यापक परस्वरूप अर्थात् परमाकाश में निमेषमात्र में उदय हो-हो कर लय पाया करते है, इस भांति विराट का वर्णन है।

अपना वढ़ा, इस प्रकार एक-एक गुण वढ़कर पांचों तत्त्व हुए। इसमें मनको आवरण मान लिया है और पांचों तत्त्वोंका उत्पादक होनेसे प्रकृति भी है। इस प्रकार आठ आवरण ही सर्व सम्मत हैं। महाभारतमें भी इन्हीं आठोंको गिनाया गया है। यथा:—

पवनाच्च महद् व्योम तस्म त्परतरं मन:।
मनसो महतो बुद्धि:-बुद्धे: कालो महान्स्मृत:॥
कालात्स भगवान् विष्णु र्यस्य सर्वमिद जगत्।
(महाभा० शांतिपर्व अ० २०

अर्थ—पृथिवीसे उत्तरोत्तर महान कौन है। इस भांति गिनाते हुए भीष्मजी कहते हैं कि—स्थूल पृथिवी, जल तथा अग्निसे पवन महान है। पवनसे आकाश महान है। आकाशसे मन और मनसे बुद्धि एवं बुद्धिसे अहंकार स्वरूप काल अधिक महान है। कालसे महान भगवान विष्णु हैं जिनके स्वरूपमें ये सब विद्यमान हैं। इस प्रकार शास्त्रोंमें सर्वत्र आपको आवरणों की संख्या आठ ही प्राप्त होगी।

[1] अस्य ब्रह्माण्डस्य समन्तत: स्थितान्येतादृशान्यनन्तकोटि ब्रह्माण्डानि सावरणानि ज्वलन्ति। चतुर्मुख—पंचमुख—षण्मुख सप्तमुखाष्टमुखादि संख्याक्रमेण सहस्रावधिमुखान्तैर्नारायणांशै रजोगुणप्रधानैरेकैक सृष्टिकर्तृभिरधिष्ठितानि विष्णु महेश्वराख्यैर्नारायणांशै:···जलयंत्रस्थ घटमालिकाजालवन्महाविष्णोरेकैकरोमकूपान्तरेष्वनन्तकोटि ब्रह्माण्डानि सावरणानि भ्रमन्ति।
(त्रिपादविभूति महानारायणोप० अ० ६)

अर्थ—इस चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्डके सब ओर इसी प्रकार के अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड अपने-अपने आवरणों सहित परमाकाशरूप महाविष्णु के स्वरूपमें उदय-लय पा रहें हैं। जिनमें

Shri Prannath Ji Pustkalay

ज्योतिःस्वरूप

ब्रह्म संज्ञकमभूदेकं ज्योतिर्वै सर्वकारणम् ।
नित्यं निरञ्जनं शान्तं निर्मलं नित्यनिर्मलम् ।।
(पद्मपु० प्रकृति खंड अ० २३)

अर्थ—आठों आवरणों से युक्त पूर्वोक्त ब्रह्माण्ड के ऊपर व्यष्टि प्रणव का स्थान है, जिसे ज्योति स्वरूप कहा जाता है। यद्यपि वास्तविक 'ज्योति स्वरूप' का स्थान तो आदि नारायण से भी पर है एवं गायत्री का वास्तविक स्वरूप भी वहीं पर है। क्योंकि वहीं पर असंख्य ब्रह्माण्डों की ज्योति-समस्त जीवों की चेतन समष्टि का उद्गम स्रोत-जड़ चेतन की गांठ का मूल कारण है। वहीं से जीवों के सहित असंख्य विश्वों का उदय-लय होता है। तथापि प्रत्येक ब्रह्माण्ड

चतुर्मुख, पंचमुख, षट्मुख, सातमुख, आठ मुख से लेकर सहस्र मुख तक के रजोगुण प्रधान कोटिन ब्रह्मा हैं। कहीं पांच मुख के ब्रह्मा हैं तो कहीं पर सात मुख के ब्रह्मा विराजे हैं। इसी प्रकार अनेक प्रकार के मुख वाले अनेकों ब्रह्माण्डों के अन्तर्गत ब्रह्मा हैं। अनेकों विष्णु अनेकों शिव अपने-अपने स्थिति संहार—रूप कार्य में प्रवृत्त उन-उन ब्रह्माण्डों में निवास करते हैं। जल यन्त्र की घटमाला के चक्र के समान आवरणों सहित ये असंख्य ब्रह्माण्ड व्यापक महाविष्णु के परमाकाश स्वरूप में भ्रमण पा रहे हैं।

संख्या चेद्रजसामस्ति न विश्वानां कदाचन।
ब्रह्माविष्णु शिवादीनां तथा संख्या न विद्यते ।। (देवीभाग० ८-३-७)
उक्ताः सावरणाः सर्वे नाशशीला भवन्ति ते।
प्राकृतास्ते समाख्याता लालारूपा रमापतेः ।। (पंचरात्र)

अर्थ—जिस प्रकार धूल के कणों की संख्या करना भी कठिन है, उसी प्रकार ब्रह्माण्डों की संख्या करना भी अति कठिन है। कदाच रजकणों की संख्या हो भी सके, परन्तु विश्वों की तथा विश्व के अन्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवों की संख्या नहीं हो सकती। ये सबके सब असंख्य ब्रह्माण्ड आवरणों सहित विनाशशील हैं। केवल देखने भरके लिये हैं। प्राकृत होने के कारण सब प्रकृति में जाकर समा जाते हैं। यह तो रमापति—महाविष्णु की लीला मात्र है, वास्तविक नहीं। इस प्रकार जितने भी ब्रह्माण्ड हैं, वे सब नश्वर हैं। एवं जिनके साथ लगे हुए आवरण तथा व्यवस्थापक देव, वे भी सबके सब अपने-अपने कार्य के बाद लय को प्राप्त हो जाते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

के लिये जितने जीवों को[1] भेजा जाता है, वे सब अपने-अपने ब्रह्माण्ड के लिये अपने-अपने ब्रह्मांड के साथ संगठित इस व्यष्टि ज्योतिस्वरूप ब्रह्म के द्वारा ही आया करते हैं, अतएव इसे भी ज्योतिस्वरूप के नाम से पुकारते हैं।

जिस प्रकार कोई एक बड़ा बिजली घर अपने पृथक्-पृथक् शहरों के लिये एक-एक पावर हाऊस बना देता है, जो उस क्षेत्र में विद्युत शक्ति-बिजली की शक्ति को पूर्ण किये रहता है, मुख्य रूप से तो बिजली की शक्ति अपने प्रधान केन्द्र स्थान से ही प्राप्त होती है, परन्तु प्रादेशिक पावर-हाऊस उसी शक्ति को सम्पन्न करके आगे बढ़ाता रहता है। इसी प्रकार मुख्य ज्योतिस्वरूप का स्थान तो आदि नारायण से पर है, जिसे मूल प्रणव ब्रह्म भी कहते हैं। वहीं से असंख्य जीवों की उत्पत्ति[2] निष्पत्ति होती है। परन्तु अपने-अपने भिन्न विराटों के लिये जीवों को चेतना शक्ति प्रदान किये रहना, यह व्यष्टि ज्योतिस्वरूप का कार्य है। इस कारण प्रत्येक ब्रह्माण्ड के साथ एक-एक व्यष्टि ज्योतिस्वरूप संगठित है।

---

[1] गीतामें भगवानने परा, अपरा नामकी जो दो शक्ति बताकर अपरासे जड़ प्रकृति अष्टावरण युक्त विराट और परासे जीवोंके चेतन केन्द्रको बताया है। यही जीवभूता है। यहींसे जीवोंका विस्तार इस विश्वमें होता रहता है। 'नादरूपा पराशक्तिर्ललाटस्य तु' इत्यादि श्रुतिमें इसी परा शक्तिका वर्णन है। जो नाद नामसे प्रसिद्ध ज्योतिरूप होकर बिन्दुरूप विराट के ऊपर स्थित है, जिसे विश्वका बीज कहते हैं। यथा—

स बिन्दुः सोऽपि पुरुषः शिवसूर्येन्दुरूपवान्।
ज्योतिस्तस्य शिखारूपं नादः स प्रकृतिर्मतः॥
बिन्दुनादात्मकं बीजं वह्नि सोम कलात्मकम्।

(ईशावास्यादिरामर० उप०)

[2] **असंख्या मूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः।**
उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः॥

(मनुस्मृति १२—१५)

अर्थ—इस प्रणव ब्रह्म ओंकारके स्वरूपसे देवोंकी तथा जीवोंकी असंख्य सृष्टि निष्पन्न होती हैं, जो छोटे बड़े प्राणियोंको चेष्टा कराया करती हैं। जीवोंके विविध भेदोंको समझे बिना यह तत्त्व समझमें नहीं आता कि जीव नित्य है किंवा अनित्य। वस्तुतः जीवोंकी कोटियां भिन्न-भिन्न हैं। कुछ आत्मा तो मुक्त दशासे इस विश्वमें आये हैं (मुक्ता अपि लीलया विग्रहं भजन्ते इति महाभाष्यकाराः) महर्षि पतंजलिने भाष्यमें इस तथ्यको माना है कि—मुक्तात्मा भी

Shri Prannath Ji Pustkalay

मूल ज्योतिस्वरूप से पृथक् समझने के लिये इसे नादस्वभाव ज्योति कहते हैं:—

अकारश्चाप्युकारश्च मकारो बिन्दुनादकौ ।
पञ्चाक्षराण्यमून्याहुः प्रणवस्थानि पण्डिताः ।। (तंत्रोक्त)

अर्थ—अकार से विष्णु, उकार से ब्रह्मा, मकार से शिव, बिन्दु से अष्टावरण युक्त विराट, नाद से प्रणवाक्षर–नाद स्वभाव ज्योतिस्वरूप–इस प्रकार ये पाँचों प्रणव के स्वरूप में ही माने गये हैं। इस विश्व के जीवों के हृदय में जो चेतन शक्ति है, उस पर इसका शासन होने से इसे ईश्वर भी कहते हैं। यथा—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ।। (गी० १८–६१)

अर्थ—यही ज्योति सबके हृदय में व्यापक होकर जीव को शक्ति प्रदान करता है। अतएव इसे ईश्वर कहना युक्तियुक्त है। यद्यपि वास्तविक ईश्वर तो नारायण–महाविष्णु का ही नाम है। क्योंकि जीव ईश्वर की उपाधि वहीं से माया के द्वारा उत्पन्न होती है और मुख्यतया जीवों को प्रेरणा भी उसी से प्राप्त होती है, परन्तु उपरोक्त गुण अमुक प्रमाण में इसमें भी उसी प्रकार विद्यमान हैं,अतः इसे भी ईश्वर कहा गया है। इसको विविध ग्रन्थों में विविध नामों से लिखा है। अहंकार, पंचमुखी शिव, ज्योतिर्लिङ्ग, शब्दब्रह्म, प्रणवाक्षर, मृत्युञ्जय शिव, घटघट वासी, रमत इति राम, व्यापक ब्रह्म, ईश्वर, ज्योतिस्वरूप, रोधिनी शक्ति आदि अनेक नामों से उल्लेख मिलता है, जो विस्तार भय से नहीं लिखा।

'एतस्मिन्नन्तरे तच्च रूपमद्भूत सुन्दरम् ।
पञ्चवक्त्रं दशभुजं कर्पूरं गौरकं मुने !'

लीला मात्रके लिये तनधारण कर विश्वमें विचरने आते हैं। जो विश्वके जीवोंको मोक्ष देनेको आते हैं एवं एक ईश्वरकोटिकी सृष्टि भी है, जो प्रातिभासिकी सृष्टि कही जाती है। ये दोनों तो नित्य कहे जा सकते हैं। क्योंकि प्रतिविम्बित चेतन भी परम्परया ईश्वरांश है। अतएव वह भी नित्यत्त्वको प्राप्त हो सकता है। जीवोंका एक तीसरा वर्ग भी है जो व्यावहारिकी किंवा प्रतीतिमात्र सृष्टि कही जाती है। इनको बद्ध, विषयी, मायिक, स्वाप्निकी, मिथ्या, अनित्य आदि नामोंसे लिखा गया है, जो अनित्य हैं और नित्य जीवोंके अनुपातसे भी बाहर हैं। इसका विशेष विवरण इसी ग्रन्थके मोक्षपर्व में देखिये, जो मनन करने योग्य है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

नानाकान्ति—समायुक्तं नाना—भूषणसंयुतम् ।
महोदरं महावीर्यं महापुरुष—लक्षणम् ॥

(शिवपुराण अ० ३-१८,१९)

अर्थ—शिव पुराण में ज्योतिस्वरूप का वर्णन करते हुए सूतजी ऋषियों के प्रति कहते हैं कि—भगवान नारद ने मुझे इसके स्वरूपका अद्भुत वर्णन किया था, वही मैं तुम से कहता हूं। नारद ने कहा हे मुने ! वह ज्योति स्वरूप-प्रणव ओंकार अद्भुत सुन्दर पाँचमुख करके युक्त, कपूर के समान स्वच्छ और गौर वर्ण,दश भुजा धारण किये अवस्थित है । नाना प्रकार की शोभा युक्त नाना प्रकार के आभूषणों से शोभित चन्द्रमा के समान क्रान्ति धारण किये यह महापुरुष शोभित है ।

यह विराट मूल, जड़ चेतन के समन्वयको धारण किये हुए—इंधिदीपा चंमोचक, ऊर्ध्वगा, मध्यमा, और परमा, नामकी पांचों शक्तिसे युक्त है । उक्त पांचों शक्तियों के साथ अन्य विविध प्रकार की अनन्त शक्ति हैं । सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों का विकाश यहीं से विस्तार पाता है । इसकी जाग्रदवस्था है । यह नाद स्वभाव [1] ज्योति स्वरूप और पूर्वोक्त बिंदुस्वरूप स्थूल विराट—ये दोनों नारायण—महाविष्णु के चतुर्थपांद—स्थूल में स्थित हैं । अर्थात् विन्दु स्वरूप विराट और नादस्वरूप व्यष्टि ज्योति ओंकार, ये दोनों मिल कर महाविष्णु का चौथा पाद स्थूल स्वरूप कहा जाता है ।

---

[1] नादरूपा पराशक्तिर्ललाटस्य तु मध्यमे ॥ ४८
भागे बिन्दुमयीशक्तिर्ललाटस्यापरांशके ।
बिन्दुमध्ये च जीवात्मा सूक्ष्मरूपेण वर्तते ॥ ४९

(योगशिखोप०)

अर्थ—आगमोक्त ३६ तत्त्व महामायासे लेकर पाताल तक वताये गऐ हैं । इन्ही ३६ तत्त्वों के स्थानमें योगियोंने छत्तीस मंजिल ध्यानके लिये मान ली हैं । जो आदि पुरुषके चारों पादों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण—साक्षीरूप) में अवस्थित हैं । ऊपर जिस ज्योतिस्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, उसका स्थान ललाटमें माना गया है । नादरूपा पराशक्ति, गायत्री शक्तियुक्त शिवको कहा जाता है और विन्दुरूपा अपरा शक्ति विन्दु स्वभावको कहा है एवं मध्यमें नादबिन्दुकी गांठरूप ज्योतिस्वरूपको जीवात्मा कहा है, जो सूक्ष्मरूपसे सब जीवोंको शक्ति प्रदान करता है । यह विषय योगियोंके जानने योग्य हैं । इस ज्योतिस्वरूप का दर्शन

Shri Prannath Ji Pustkalay

इस व्यष्टि ज्योतिस्वरूप के मंडल का विस्तार एक अरब योजन का माना है। जिसमें दश लक्ष योजनमें तो अपनी रोधिनी नामक शक्ति युक्त यह शिवलिङ्गाकार[1] ज्योतिस्वरूप स्वयं अवस्थित है। अन्यत्र अनेक शक्तियां निवास करती हैं। पचास करोड़ योजन के अन्तर पर गायत्री नामकी शक्ति का धाम है, जो वेदों के निर्मल ज्ञानकी माता कही जाती है।

गायत्री शक्ति :—

इस गायत्री नामक शक्ति का स्थान व्यष्टि ज्योतिस्वरूप मंडल के निर्मल चेतन में है। ज्योतिस्वरूपको 'जड़ चेतन' की गांठ कहने का अभिप्राय यह है कि—जीवरूप चेतन तथा व्यापक चेतन यहीं से जड़ के साथ समन्वित होकर

इस मानव शरीर में भी होता है। विराट के आधार से ब्रह्माण्ड में भी देखा जा सकता है। ये तीनों (परा—गायत्री, अपरा विन्दु और जीवतत्त्व) मिल करके ज्योतिस्वरूप का मंडल कहा जाता है। इसी को नादविन्दु की गांठ भी कहते हैं।

"एकादश्यां तपोलोकं द्वादश्यां ब्रह्म शाश्वतम्।
ततः परतरं शुद्धं व्यापकं निर्मलं शिवम्॥
सदोदितं परं ब्रह्म ज्योतिषामुदयो यतः।"

(नादविन्दूपनिषद्)

अर्थ—घोषिणी, विद्या, पतङ्गिनी, वायुवेगिनी, नामधेया, ऐन्द्री, वैष्णवी; शांकरी, महती, धृति, नारी और ब्राह्मी—ये स्थूल ओंकार की १२ मात्रा हैं। इनमें ध्यान करने का विधान है। कदाच ध्यान करते में ही किसी योगी किंवा ध्याता का प्राण छूट जावे तो उसके लिये विराट के स्वरूप में महत्त्वपूर्ण स्थानों की प्राप्ति का क्रम लिखा हैं। एकादशवीं मात्रामें प्राणवियोग हो तो वह तपलोक को प्राप्त होता है। द्वादशवीं मात्रा में मृत्यु हो जावे तो शाश्वत ब्रह्म—वैकुण्ठ को प्राप्त होता है। इसके आगे परात्पर शिवलिङ्गाकार व्यापक ब्रह्म—ज्योतिस्वरूप शिवका धाम है। जहां पर विशुद्ध निर्मल स्वरूप नादशिव—प्रणव ओंकारस्वरूप शिव विराजमान हैं। इसी ज्योति-स्वरूप ब्रह्म के द्वारा अनेक जीवरूप ज्योतियों का अथवा देवरूप ज्योतियों का उदय होता रहता है। इस प्रकार ज्योतिस्वरूपके विषयमें विस्तृत विवेचन है, पर विस्तार भय से नहीं लिखा।

[1] लिङ्गानां च क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुतद्विजाः।
तेदव लिङ्ग प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम्॥

(शिव० पु०)

Shri Prannath Ji Pustkalay

विश्व में उतरता है। इस कारण इसको जड़ चेतन की गाँठ कहते हैं। ज्योति स्वरूप से तो सारा विश्व ही नादरूप से बिन्दुरूप में आता है। इसलिये सत्त्व, रज, तम तीनों गुण सदा काल ही विकासोन्मुख रहें, यह तो स्वाभाविक ही है। परन्तु गायत्री शक्तिका क्षेत्र इस गुणात्मक प्रणवसे पर और निर्मल है। क्योंकि गायत्री के द्वारा केवल वेदोंका ज्ञान उतरता है गुणात्मक विश्व नहीं। अतएव उसे निर्मल चेतन कहते हैं।

गायत्री का वाहन मोर है किसी के मत से हंस है। इसके धाम, मन्दिर, छत्र सिंहासन, स्वरूप, आभूषण, शोभा, शृंगार यावत् सामग्री कपूर के समान श्वेत गौर वर्ण है। अनन्त शोभा और अनन्त ज्ञान का धाम यह गायत्री शक्ति भी अनेक जीवोंके सुख का भंडार है। इसके अन्तर में व्रज गोकुल की तथा रास को लीला का प्रतिभास अव्याकृतस्थ गोलोक की लीला द्वारा पड़ता है। जिसे प्रातिभासिकी लीला को अनेक ग्रन्थों में गोलोक की लीला करके ही लिखा है। यथा—

पातालाद् ब्रह्मलोकान्तं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्।
तत ऊर्ध्वं च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद् बहिरेव सः॥
तदूर्ध्वं चैव गोलोकः पंचाशत्कोटियोजनात्।
नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथाकृष्णस्तथाप्ययम्॥

(ब्रह्मवैवर्तप्रकृतिखंड अ० ३)

अर्थ—इस विश्व के अधोभाग में स्थित शेषशायी नारायण है। पाताल से लेकर सत्यलोक पर्यन्त तो ब्रह्माण्ड कहा जाता है। ब्रह्माण्ड से बाहर अष्टावरण के ऊपर वैकुण्ठ धाम है। उस वैकुण्ठ से पचास कोटि योजन के ऊपर गोलोक है। जिस प्रकार नित्य और सत्य स्वरूप श्रीकृष्णजी हैं, उसी प्रकार इसे भी समझें। अर्थात् जिस भांति नित्य स्वरूप श्रीकृष्ण की लीला है, उसी भांति नंदयशोदा व्रज रास की लीला आदि का प्रातिभासिक आनन्द यहां भी है।

ब्रह्माण्ड के बाहर जो ज्योतिस्वरूप का धाम है, ब्रह्म के अनेक गुणों से पूर्ण होने के कारण इसको भी वैकुण्ठ रूप से वर्णन कर दिया है। इसके ऊपर पचास कोटि योजन पर जो गायत्री का धाम है उसके अन्तर में व्रजलीला तथा रासलीला का प्रतिभास एवं नंद यशोदाजी के स्वरूपों को पाकर उसे गोलोक[1] कहा गया है। यदि वास्तविक गोलोक यही होता तो 'यथा कृष्णस्तथाप्ययम्' श्री

[1] मायातीतं निरुपमं निष्कलं निरुपप्लवम्।
निर्द्वन्द्वं केवलं तत्त्वं बाह्याभ्यन्तरवर्जितम्॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

कृष्णके साथ उपमा न देते। क्योंकि उपमा उपमेय भाव उससे भिन्न होते हुए तत्समान होनेपर ही घट सकता है। इस प्रकार कहीं-कहीं इन दोनों स्वरूपोंको वैकुण्ठ और गोलोक के[1] नाम से भी परिचय दिया है। चारों वेदोंका ज्ञान इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत इसी गायत्री शक्ति द्वारा आता है। क्योंकि यह गायत्री भी समष्टि गायत्री का ही व्यष्टि रूप है। 'अनन्ता वै वेदाः' श्रुतियों में ज्ञान राशि के भंडार वेदों को अनन्त माना है। वे सब यथा-समय विश्वमें महापुरुषों के द्वारा प्रकट होते हैं। उनके परा, अपरा, ये ही दोनों स्वरूप कल्याण प्रदर्शन किया करते हैं। कभी-कभी वेदोंका तीसरा अध्यात्म स्वरूप (ब्रह्मविद्या) भी किसी-किसी महापुरुषके द्वारा प्राकट्य पा जाता है। इस प्रकार गायत्री अपने तीनों स्वरूपोंके द्वारा वैदिक बोध प्रदान किया करती है। इसके साथ में अन्य अनन्त शक्तियां भी विद्यमान हैं।

इस भांति विन्दु-स्वरूप विराट तथा नादस्वरूप प्रणव ज्योति और गायत्री, ये सब मिलकर नारायणके स्थूल-चतुर्थ पादका निरूपण हुआ। अब इसके आगे महाविष्णुके (सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण रूप) का संक्षिप्त विवेचन है।

आदि मध्यान्तरहित-मानन्दस्यापि कारणम्।
सत्यमानन्द-मनन्तं परं ब्रह्मपरायणम्॥ (शिव पु० ३-१४,१५)

अर्थ—मायासे पर निष्कल-ज्योतिस्वरूप, बाहय भीतर एकसा आदि मध्य रहित अनेक आनन्दोंका कारण स्वरूप, नाश रहित, ये सनातन विद्यमान है। इस प्रकार ब्रह्मके जैसे गुण भी इसके वर्णन किये हैं।

[1] यह प्रातिभासिक गोलोक का वर्णन है, वास्तविक गोलोक तो मायासे पर है, परन्तु इस विश्वमें जितनी महान लीलायें हुआ करती हैं उनके उतरनेके स्थानोंको भी उसी नामसे पुकारते हैं। बिजली हाऊसके केन्द्रस्थानसे तो विजली चलती ही है परन्तु जहांसे उसे जोरदार बनाया जाता है, उसकी पृथक्-पृथक् व्यवस्था की जाती है, उसे भी विजलीघर कहने लगते हैं। वह चाहे भले छोटा ही बिजलीघर क्यो न हो, परन्तु है विजलीघर। इसी प्रकार नित्य-गोलोकसे, जिन-जिन स्थानोंमें होकर कृष्णलीला आती है; वे भी गोलोकके नामसे ख्याति पा जाते हैं। जिस प्रकार विश्वके चेतनको उतारनेका कार्य व्यष्टि ज्योतिस्वरूपका है, उसी प्रकार अन्य महान विभूतियोंको उतारने का स्थान भी ज्योतिस्वरूपमें होना चाहिये। महान विभूतियां सदाकाल निर्मल स्वरूप होती हैं, अतएव उन्हें उतारनेका स्थान भी निर्मल ही होना चाहिये। बस, यही कारण है कि—व्यष्टि ज्योतिस्वरूपका निर्मल चैतन्य जो उसकी ज्ञानशक्ति गायत्री है, उसीमें होकर गोलोकलीला व्रजमें उतरा करती है, अतः उसे भी गोलोक कह दिया गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

महत्तत्त्वः—

(आदिपुरुष के सूक्ष्म शरीर को महतत्त्व कहते हैं)

अतः परं सूक्ष्मतम—मव्यक्तं निर्विशेषणम् ।
अनादिमध्यनिधनं [1] नित्यं वाङ्मनसः परम् ।।

(भागवत २-१०-३४)

अर्थ—आदि नारायण के कार्य शरीरका वर्णन हो चुका, अब आगे त्रिपाद शरीरयुक्त सूक्ष्म, कारण और महाकारण स्वरूप है, जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है अतः उसे मन और वाणी अपनी कल्पनामें नहीं ला सकते । त्रिपाद् शरीरके सूक्ष्मतम पाद को महतत्त्व कहते हैं। विराट पुरुष 'कार्य शरीर' सगुण साकार है और त्रिपाद् कारण शरीर निर्गुन निराकार है। इन दोनों स्वरूपों का बहुत अन्तर है। बस, यही भेद समझ में आ जावे तो विश्वके मूल कारणका ज्ञान सुलभ हो जाता है। यद्यपि अनेक प्रकाशों के केन्द्रों को प्रकाश देनेवाला यह स्वतः प्रकाशरूप है एवं इसका अभिमानी देव भी तैजस है। क्योंकि स्वप्नावस्था में तैजस तत्त्वोंका ही विकास होता है तथापि यह अपने अन्तकरणों से महाघोर अन्धकार स्वरूप है एवं अज्ञानको बढ़ानेका यह पावर हाउस है अतः इसको नीदरूप माया भी कहते है।

अव्याकृत के सूक्ष्म–विद्यापाद में जो काल [2] निरंजन पुरुष का स्थान है वही प्रतिबिम्बित हो कर यहां पर अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव रूपसे त्रिविध हो जाता है। महतत्त्व में जितना भी कुछ लीला वैचित्र्य है, वह सब उसी काल निरजन पुरुष का प्रतिबिम्बित रूपान्तर है। यथा—

अधिदैवमथाध्यात्ममधिभूतमिति प्रभुः ।
अथैकं पौरुषं वीर्यं त्रिधाभिद्यत तच्छृणु ।। (भाग० २-१०-१४)

---

[1] यह महत्तत्व आदि मध्य में नाश को नहीं प्राप्त होता किन्तु निद्रारूप होने से अन्त में—जाग्रदवस्था में ही लय को प्राप्त होता है। अतएव अनादिमध्य-निधनं कहा है। 'न आदौ मध्ये च निधनं नाशो यस्य तत्' नहीं है आदि और मध्य में निधन जिसका। अर्थ यह है कि—सूक्ष्मरूप अन्त में ही नाश को प्राप्त होता है। कुछ लोग 'अनादि' पद देखकर इसे भी अनादि कह देते हैं पर वस्तुतः ये अनादि नहीं है। किन्तु आदिमध्यनिधनान्त पद के साथ नञ् समास है। अतः आदि मध्य में नहीं मिटता, यही अर्थ होगा जो विशेष ध्यान में रखने योग्य है।

[2] इस काल पुरुष को निरंजन पुरुष, काल निरंजन, निरंजन शक्ति, काल भगवान अनेक नामों से लिखा गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—एक ही काल पुरुष ने अपने सामर्थ्य से, अपने पौरुष को त्रिविध बनाकर उसको सूक्ष्म रूपमे परिणत कर दिया। जो अपने-अपने साथ अनेक शक्ति और स्वभावों को धारण किये हुए महद्ब्रह्म के रूप में प्रतीत होने लगा। जिसका विस्तार निम्न प्रकार से समझिये।

१–अधिभूत—

इसके असत्, जड़ और दुःख–ये तीन स्वभाव हैं। ज्ञानशक्ति और क्रिया शक्ति नाम की दो अन्य शक्ति भी इसके साथ हैं। क्रिया शक्ति को ब्रह्माणी शक्ति भी कहते हैं जो अधिभूत की अर्धाङ्गिनी कही जाती है। ज्ञान शक्ति को गायत्री शक्ति भी कहते हैं। दश महाविद्या चौवीस सहस्र अन्य शक्ति इसके साथ हैं। वस्तुतः इसी अधिभूत का नाम महत्तत्त्व है। इसमें दो पुरुष और हैं। एक अध्यात्म दूसरा अधिदैव। यथा—

२–अध्यात्म—

इसके इच्छा, ज्ञान और क्रिया[1] ये तीन स्वभाव हैं। सुमना नाम की शक्ति है जिसके साथ चौवीस सहस्र अन्य शक्ति हैं, जो संकेत मात्र से अनेक कार्य सम्पादन करने में विचक्षण हैं।

३–अधिदैव—

इसके-काल' विशेष और आवरण ये तीन स्वभाव हैं और विज्ञान नाम की शक्ति है, जिसे ब्रह्म विद्या भी कहते हैं। इसके साथ भी चौवीस सहस्र शक्तियों का समूह है। यह विज्ञान शक्ति बड़ी प्रवल और विलक्षण है। इन्हीं तीनों पुरुषों की बहत्तर सहस्र शक्तियां स्थूल में जाकर नाड़ीरूप और नदीरूप हो जाती हैं। इस महत्तत्त्व को विविध ग्रन्थों में विविध नामों से लिखा है। यथा–अचिन्त्य

---

[1] अधिभूत अध्यात्म अधिदैव के स्वरूप को समझने में कठिनाई इसलिये पड़ती है कि—एक ही नाम को दो जगह जोड़ दिया है। एक स्थान में इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्ति हैं तो दूसरे स्थान में उन्हें स्वभाव कह दिया है। गायत्री का वर्णन पीछे हो चुका है और यहां पर गायत्री नाम आ गया है। ये नाम सभी स्थानों में आवेंगे। कारण जो वस्तु स्थूल में स्थूलरूप से है वही सूक्ष्म में सूक्ष्मरूप से विद्यमान है। कारणरूप से वही अन्यत्र भी हो सकती है। शास्त्रों की यह शैली है कि अधिकतर यौगिक शब्दों का ही प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं अर्थों का योग आ मिलता है तो कहीं नाम भी एकसा आ जाता है। हमने यथाशक्ति विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया है फिर भी यह नारायण की अन्तःसमष्टि को समझना कठिन तो है ही। क्योंकि ये विषय योगियों के साक्षात्कार करने का है, जो पिंड और ब्रह्माण्ड के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों को अनुभव द्वारा अपने अन्दर देखा करते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

पुरुष, नींद स्वरूप[1] महद्ब्रह्म, महानाद, ब्रह्मशिव, महातम, निर्विशेष, निरंजन, मोहतत्त्व, शून्य, निर्गुण, निराकार आदि अनेक नाम लिखे गये हैं। स्थूल विराट में जो जो वस्तु स्थूलरूप से विद्यमान है, वे सब इस महत्तत्त्व में सूक्ष्म रूप से अवस्थित हैं। इसी महतत्त्व से पर आदिपुरुष का कारण स्वरूप है, जिसको इच्छाशक्ति भी कहते हैं।

आदि पुरुष का कारण स्वरूपः—सात शून्य

पूर्वोक्त महत्तत्त्व से पर आदिपुरुष का यह कारण शरीर है, जो इच्छा शक्ति के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस कारण स्वरूप में सात महाशून्य प्रतिबिम्बित हैं जो एक-खर्व योजन के विस्तार वाले हैं। इन शून्यों से अनन्त राग, तान, मीठे स्वर उठा करते हैं, इनकी अधिष्ठात्री-वास्तवी, अनिर्वचनी, तुच्छा, शिवकल्याणी और उन्मुनी ये पांच प्रबल शक्ति हैं। इनमें उन्मुनी अत्यन्त प्रचंड शक्ति है। यह महात्मा लोगों को भी वश में किये रहती है। यही सबका मूलकारण भी है। ये स्वयं आदिनारायण की सत्ता का उपभोग करती है।

उक्त सातों शून्य अनन्त दिव्य लीलाओं के धाम भी हैं। जैन बौद्ध आदि अनेक मतवाले पुरुष इसी शून्य में समाधि भी लगाते हैं। अनेक योगी पुरुष इन्हीं शून्यों का ध्यान किया करते हैं। इन शून्यों में योगियों को अनेक प्रकार की अनहद[2] (अनाहत) ध्वनियों का आनन्द भी प्राप्त होता है। शून्य समाधि लगाने वाले योगी[3] यहां पर अमुक समय पर्यन्त साक्षात्कार प्राप्त करते हैं।

---

[1] पांच तत्त्व तीन गुण से जो कुछ बना है, वह सब इसके अन्दर है और, उसकी व्यवस्था करना इस नींदरूप मायाशक्ति का काम है।

[2] यद्यपि अनाहत ध्वनि विराट के अन्तर्गत ही मानी गई हैं परन्तु विराट में जो स्थूल रूप में हैं वे सब इस इच्छाशक्तिरूप कारणस्वरूप में स्वतः विद्यमान हैं। ओंकार—प्रणव ब्रह्म के धाम तक ध्वनियों का कोई न कोई स्वरूप तो रहेगा ही। उसके ऊपर जो महाशून्य है वहां पर शब्दों का लय होने से ध्वनि नहीं होती, किन्तु अनुभव होता है। जिसे पाकर योगी कृतकृत्य हो जाता हैं। 'शंखदुन्दुभिनादं च न शृणोति कदाचन' वहां ध्वनि नहीं होती।

[3] दशमन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रिय-चिन्तकाः ।
भौतिकास्तु शतं पूर्णं सहस्रन्त्वाभिमानिकाः ।
बौद्धा दश-सहस्राणितिष्ठन्ति विगतज्वराः ।
पूर्णं शत-सहस्रं तु तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः ।।
(वायुपुराण)

Shri Prannath Ji Pustkalay

इस प्रकार ये सातों शून्य विविध आनन्द के भी धाम हैं और अज्ञानरूप तो हैं ही। इन्हीं शून्यों के द्वारा सात स्वरूप–ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गायत्री, ज्योति-स्वरूप, इन्द्र और धर्मराज को सब कुछ प्राप्त होता है। इन्हीं शून्यों से सात स्वर सात राग और सात रंग, उठा करते हैं। यद्यपि रंगों का साक्षात् सम्बन्ध

अर्थ–इस शून्य मंडलमें इन्द्रियों के द्वारा ध्यान लगाने वाले दश मन्वन्तर पर्यन्त निवास पाते हैं। भौतिक अभिमानी देवोंको ध्यान कर समाधि लगानेवाले सौ मन्वन्तर तक यहां ठहरते हैं। परन्तु अभिमानी देव ज्योतिस्वरूप अहंकारकी समाधिमें चिन्ता करनेवाले सहस्र मन्वन्तर पर्यन्त यहां निवास करते हैं। जैन, बौद्ध आदि जितने भी योगी हैं, वे दश सहस्र मन्वन्तर तक शून्य शिलापर निवास करते हैं। अव्यक्तका ध्यान करने वाले इस शून्य मंडल में पूरे सौ हजार मन्वन्तर पर्यन्त निवास पाते हैं। उपासना और ध्यान समाधिका विषय बड़ा गहन हैं। भक्तिमार्ग में तो यह सुविधा है कि जो जिसकी उपासना करे उसीके धामको जावे। परन्तु ध्यानयोग इससे विलक्षण है। वहां ध्यान चाहे किसीका करो परन्तु फल ध्यानकोटि के अनुसार होगा न कि ध्येयके अनुरूप। अतः गीतामें कहते हैं 'क्लेशस्त्वधिकतरो तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम्' अव्यक्तमें आसक्त पुरुषोंको क्लेश ही अधिकतर मिलता है, फल नहीं। देखिये :—

षष्ट्यामिन्द्रस्य सायुज्यं सप्तम्यां वैष्णवं पदम्।
अष्टम्यां व्रजते रुद्रं पशूनां च पतिं तथा ॥ १५॥
नवम्यां तु महर्लोकं दशम्यां तु जनं व्रजेत्।
एकादश्यां तपोलोकं द्वादश्यां ब्रह्मशाश्वतम् ॥ १६॥ (नादबिन्दूप०)

अर्थ–ओंकारकी धारणा ध्यान द्वारा करनेका विधान है। धारणाकी १२ मात्रा बांध दी गई हैं। ध्येय केवल एक ही ओम् का है पर फल पृथक्-पृथक् हो जाता है। किस प्रमाणमें ध्यान किया? ध्यान की अवस्था कौन है? ध्याता स्वयं किस कोटिका है? ध्येयको कोई पूछता ही नहीं। कोई इन्द्रलोकमें जा पहुंचा, कोई विष्णुलोकमें। कोई महर्लोकमें जाता है तो किसी को तपोलोक जा मिला। इष्ट सबका एक होते हुए भी फल–सिद्धि भिन्न-भिन्न रूपसे हो जाती है। बस, वही दशा शून्य समाधिकी भी है। न्यूनाधिक प्रमाणमें फल कहीं का कहीं जा मिलता है। समुद्रमें तैरिये, कोई कहीं जा लगेगा कोई कहीं। यह मजा तो भक्तिमें ही है कि 'खेत परे पर जामि है उलटो सूधो बीज" चाहे सोते-सोते नाम जपो, चाहे चलते-चलते, वह सब सीधा है। खेतमें बीज चाहे जिस प्रकार पड़े वह जमेगा सीधा ही। इस प्रकार प्रेमलक्षणा भक्तिका महत्त्व सर्वोत्तम और सुगम एवं सबके लिये समान है। "सुखी मीन जह नीर अगाधा। तिमि प्रभु चरनन एक न बाधा।"

Shri Prannath Ji Pustkalay

तो सूर्य से है परन्तु रंगों का वास्तविक कारण शून्य ही है। शून्यमंडल की अवस्था सुषुप्ति है जो आनन्दमय मानी जाती है। प्राज्ञ अभिमानी देव है। इसमें नित्यगोलोक की लीला के प्रतिभास का भी आनन्द है। व्रजलीला और रासलीला का प्रातिभासिक आनन्द भी वर्तमान है। इस इच्छाशक्ति (कारणस्वरुप) के दो स्वरूप माने गये हैं। एक ईहरूप, दूसरा[1] अनीहरूप, ईह-इच्छा-चेष्टा को कहते हैं। जहां पर इच्छा है, चेष्टा है, वहीं क्रिया है। अतएव इसे माया कहते हैं। जो अनीह है, किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करता, जहां चेष्टा, क्रिया का अभाव है, वही ब्रह्मभाव है। इस अनीहरूप से मकड़ी के तारके समान एक सूत्रधारा ऊपर को चली गई है जो ऊपरके लोकोंको मिलाती है। इसके आगे जाने वाले मुक्त जीवों के लिये वही सोपान डोरी बन जाती है। इस इच्छा शक्ति के स्वरूप में हंसों का सरोवर है। व्रज रास की लीला आदि के प्रतिभास भी हैं। अनेक जीवों के मुक्त होने का भी यही स्थान है, पर ये सब अनित्य हैं।

शून्यं तत्प्रकृतिर्माया ब्रह्मविज्ञानमित्यपि। (महोपनिषद)

इसको शास्त्रों में शून्य, प्रकृति, माया ब्रह्म, प्रकाश स्वरूप, विज्ञानस्वरूप पुरुष, ईश्वर, आत्मा इच्छाशक्ति, विश्वकारण, आदि विविध नामों से लिखा गया है। इससे भी पर आदि पुरुष का महाकारण स्वरूप है।

आदिपुरुष का महाकारण स्वरूप :—

चाक्षुषः स्वप्नचारी च सुप्तः सुप्तात्परश्च यः।
भेदाश्चैतेऽस्य चत्वारस्तेभ्यस्तुर्यं महत्तरम्॥ (श्रुति)

---

[1] ये लगे दोऊ सून्यकों निराकार स.मिल।
निरंजन या निर्गुन सो भी रहे इन मिल॥
एकै साइत पैदा हुए और फना होसी एक वेर।
सो क्यों पावें अद्वैतकों, जो ढूंढें माहें अंधेर॥ (तारतम सागर)

अर्थ— श्री जी भी यही निर्देश करते हैं कि दोनों—(ईह, अनीह) रूप शून्य के साथ लगे हैं, जब शून्य का नाश होगा तो ये दोनों भी नाश को प्राप्त हो जायेंगे। निरंजन निराकार सगुण निर्गुण ये सब माया से एक ही साथ उत्पन्न हुए हैं और एक ही साथ मिट जावेंगे। माया की उपाधि में ब्रह्म को ढूढने वाले बेचारे अद्वैत ब्रह्मतत्त्व को किस प्रकार प्राप्त कर सकें! जो तत्त्व ही माया से पर है, उसे फिर माया में ढूढ़ना यहीं तो अज्ञान है:

Shri Prannath Ji Pustkalay

આ ચિત્ર પરા-અપરાપ્રકૃતિના કાર્યક્ષેત્રનું છે, જેમાં પાતાલથી પેરું સુધી તથા જ્યોતિસ્વરૂપ આદિપુરુષ મહાશૂન્યનો સમાવેશ છે.

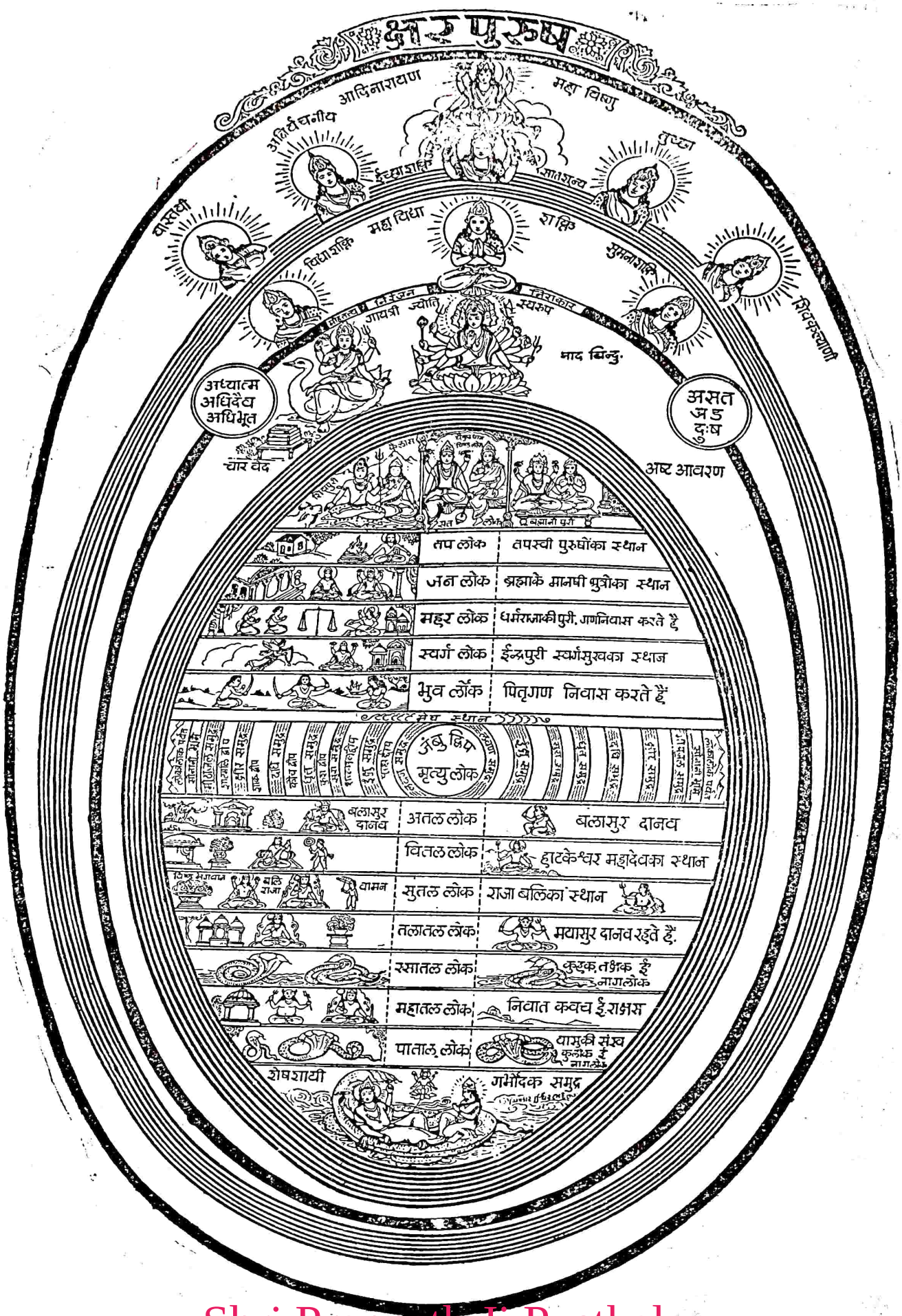

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—महाविष्णु–आदिपुरुष की चारों अवस्था, चारों स्वरूपों में विभक्त हैं। जाग्रदवस्था में विराट तथा ज्योतिस्वरूप का वर्णन हो चुका। स्वप्नावस्था (सूक्ष्म) में महत्तत्त्व को भी कहा गया। इच्छाशक्ति को सुषुप्ति अवस्था को भी बताया गया। इन तीनों से पर यह तुरीय स्वरूप है जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

महाविष्णु के चारों स्वरूपों में अव्याकृत के चारों स्वरूपों का प्रतिबिम्ब पड़ा है। अतः वे सब लीलाएं और अव्याकृत की विशेषताएं इन स्वरूपों में विद्यमान हैं। हां, यह प्रतिबिम्ब स्वप्न द्वारा है, अतएव कुछ रूपान्तर हो जाना स्वाभाविक है। जिस प्रकार मनुष्य अपने स्वप्न में पूर्व–दृष्ट[1] पदार्थों को ही देखा करता है, उसी प्रकार यह सब है। स्वप्न में बिल्कुल मिथ्या सृष्टि होती है, परन्तु इसमें आवरण और विक्षेप की सृष्टि है। अतएव अन्तर केवल इतना है कि—अव्याकृत में जो कुछ है वह सब नित्य है एवं इस विश्व से लेकर आदिपुरुष पर्यन्त जो कुछ है, वह सब अनित्य है और अंशांश करके है। यथा—

यस्यैकनिःश्वसितकालमथावलम्ब्य जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(ब्राह्मसंहिता)

अर्थ—जिस महाविष्णु के एक निःश्वास काल में जगदण्डनाथ–ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि नाना देव जीवन पाते हैं और पुनः लोमकूप में समा जाते हैं, वह महाविष्णु भी गोविन्द—श्री कृष्णजी की एक कला मात्र है। इसप्रकार अव्याकृत में वर्तमान जो श्रीकृष्ण लीला है, उन श्रीकृष्णजी के–ये महाविष्णु आदि पुरुष एक कला के स्वरूप हैं। उसी कला के द्वारा अव्याकृत के महाकरण में जो

---

[1] **यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा।**
स्वप्नदृष्टा च दाशार्ह! तथा संसार आत्मनः॥

(भाग० ११–२२–५४)

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम्।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति॥

(भाग० १०–१४–२२)

अर्थ—जिसप्रकार स्वप्नदृष्टाके मनोरथकी सृष्टि स्वतः होती रहती है और उसके दुःख सुखका अनुभव भी उसे करना ही पड़ता है। उसी प्रकार यह समस्त विश्व ब्रह्मके स्वरूपमें अभिव्यक्त होकर अनेक प्रकारसे अनुभवमें आ रहा है। वस्तुतः यह है कुछ भी नहीं केवल स्वप्नवत् है, तथापि यथार्थ सत्य जैसा प्रतीत होता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

नित्य वैकुण्ठ है, सत्यपुरुष है, अचिन्त्यपुरुष तथा व्रजकी लीला है; वह सब कला रूपसे यहीं पर भी वर्तमान है एवं उन-उन लीलाओं के उपासक यहांपर ही आकर परमपद प्राप्त करते हैं। जब इस महाविष्णु के स्वरूपका नाश हो जाता है तब जो मुक्ति प्राप्त किये रहते हैं, वे तो अव्याकृत में चले जाते हैं। परन्तु जिनकों मुक्ति प्राप्त नहीं हो पाती, केवल दानादिके बलसे, तपोबल या योगबल से महाविष्णु को प्राप्त हुए हैं, वे पुनः अन्य विश्वमें जन्मधारण किया करते हैं। इस महाविष्णु के निर्मल चैतन्य में रासलीलाका प्रतिविम्ब पड़ता है, जिसके द्वारा रासलीला का आनन्द प्राप्त होता है। हरिदासजी, रूपसनातन, मधुसूदन, नित्यानंद भारद्वाज आदि इसी रासलीला को प्राप्त हुए हैं। यद्यपि ये सब लीला वास्तविक नहीं हैं, किन्तु प्रातिभासिकी लीलाके प्रतिविम्ब रूप हैं। तथापि विश्वके जीवोंके लिये तो अत्यन्त दुर्लभ ही हैं। इस प्रकार महाविष्णु आदिपुरुषके चारों स्वरूप, चारों पादोंमें जड़ चेतनात्मक विश्व–स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण, महाकारण रूप में अवस्थित हैं। ये सब पाद मिलने पर महाविष्णु का समष्टिस्वरूप कहा जाता है। यथा-

प्रधानादि विशेषान्तं चेतनाचेतनात्मकम् ॥
एकपादं द्विपादं च बहुपादमपादकम् ।
मूर्त्तमेतद्धरे रूपं भावना त्रितयात्मकम् ॥

(विष्णु पु० अंश ६ अ० ७–५७)

अर्थ–प्रकृतिसे लेकर स्थूल पर्यन्त चेतनाचेतनात्मक जगत एक पाद द्विपाद तीन पाद और अपाद अर्थात् सब पादोंकी समष्टि जो कुछ है भगवान का त्रिगुण भावनामय है। जो त्रिगुण भावनामय है, वह सब अनित्य है। अत एव इसे संसार कहते हैं। जहांपर गुणों का क्षोभ किंवा समावेश है, जहांपर प्राकृत पदार्थों का उदय–लय है, वह सब प्रकृतिका क्षेत्र है और अनित्य है। शेषशायी नारायण (पाताल) से लेकर आदिपुरुष तक जितने स्वरूपोंका वर्णन किया है वे सब, तथा इस विश्वके जितने भी जीव हैं, वे सब; इसी महाकारण स्वरूपमें लय हो जाते हैं। यथा—

यतः सर्वाणि भूतानि प्रभवन्ति युगागमे ।
यस्मिश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ (भागवत)

अर्थ–यहीं से युगारम्भ में प्रभव होता है और युगोंका क्षय होनेपर इसीमें सब समा जाते हैं एवं यही आदिपुरुष उपाधिसे रहित प्रणव ब्रह्म के स्वरूपमें अवस्थित रह जाता है। इस प्रकार पुरुष तथा प्रकृति रूपसे विश्वमें प्रविष्ट यह सब सनातन प्रवाह परम्परया आगे बढ़ा ही करता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

महाशून्य समष्टिः–

(अनन्त विश्वोंके स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारणों का इसीमें लय होता है)

इस पूर्वोक्त महाविष्णु के सब तरफ चारों ओर अनन्त, अपार विस्तृत शून्य–समष्टि है, जिसमें असंख्य ब्रह्माण्डों का उदय लय होता रहता है। इसी शून्य के अन्तर्गत आदिपुरुष भी एक ब्रह्माण्डको लेकर स्थित हैं। अनेक असंख्य वस्तुओं का जिसमें लय हो जाता हो, उसे समष्टि कहते हैं। अनेक ब्रह्माण्डों के असंख्य व्यापक आकाशों का लय इस 'परमाकाश' में होता है, अतएव इसे शून्य–समष्टि कहते हैं। जब असंख्य शून्य इसमें आकर लय हो जावें तो इसे शून्य–समष्टि तो कहना ही चाहिये। शास्त्रों में इस महाशून्यरूप माया को कारणप्रकृति, महामाया, शब्दब्रह्म, मोहनिद्रा, कारण, अव्याकृत, व्यापकविष्णु, परमाकाश, महाविष्णु आदि विविध नामों से लिखा है। यथाः—

यथासूर्योदये गेहे भ्रमन्ति त्रसरेणवः।
तथेमे परमाकाशे ब्रह्माण्ड–त्रसरेणवः॥
यथातरङ्गा जलधौ तथेमाः सृष्टयः परे।
उत्पत्त्योत्पत्त्य लीयन्ते रजांसीव महानिले॥

(योगवासिष्ठ उत्पत्ति प्रकरण)

अर्थ—जिस प्रकार सूर्योदय के समय गृह में असंख्य सूर्यकिरणों के त्रसरेणु प्रतीत होते हैं। उसी प्रकार परमाकाश स्वरूप में असंख्य ब्राह्मण्डरूप त्रसरेणु घूमते हैं। समुद्र तरगों की भांति उठ उठ कर अपने इसी स्वरूप में विलीन हो जाते हैं। जिस भांति रजकण हवा में उड़ उड़ कर समाते रहते हैं, उसी भांति इस परमाकाश महाशून्य में संख्यातीत विश्वों का उदय लय होता रहता है।

संख्या चेद्रजसामस्ति न विश्वानां कदाचन।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते॥ (देवीभा० ६—३—७)

अर्थ— रजके कणों को कदाच गिना भी जा सकता हो पर असंख्यातीत इन विश्वों को नहीं गिना जा सकता और न प्रति ब्रह्माण्ड में हमें होने वाले असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों को ही गिना जा सकता है। इस प्रकार से असंख्य विश्वोका तथा असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों का उदय लय इस शून्यसमष्टि के अन्तर्गत होता रहता है। यथा—

द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते!
अमूर्त्तं ब्रह्मणो रूपं यत्सदित्युच्यते बुधैः॥

(विष्णु पु० अं० ६ अ० ७—६८)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—यह व्यापक विष्णुका द्वितीय अमूर्त्त–निराकार रूप है, जिसे तत्त्वज्ञ पंडित 'सत्' कहते हैं। व्यापक और अमूर्त्त होने से योगियों द्वारा देखा जा सकता है। प्रकृति के सत् और असत्-(अव्यक्त,व्यक्त)ये ही दो रूप माने गये हैं। जिसमें सत् (अव्यक्त) और असत् (व्यक्त) प्रकृतिका वर्णन इस प्रकार किया गया।

इन्हीं दोनों सत् [1] असत् (व्यक्ताव्यक्त) प्रकृतियों में प्रतिबिम्बित होकर अव्याकृत पुरुष आदि पुरुष नारायण बन जाता है। इस प्रकार सत् (अव्यक्त) से असत् (व्यक्त) होकर विष्णु अपने इस 'सत्' स्वरूप में असंख्य ब्रह्माण्डों को धारण भी किये रहता हैं। इसी को शून्य–समष्टि कहते हैं। असंख्य विश्वरूप व्यष्टियों का आधार होने से इसे शून्य समष्टि कहते हैं।

यह शून्य–समष्टि अन्तर्बाह्य (भीतर बाहर) सर्वत्र अपार आकाशों का भी महाकाश-परमाकाश रूप सर्वत्र व्याप्त है। इस प्रकार इसे विष्णु का व्यापक

---

[1] ऋग्वेद के नासदीय सूक्तमें इन दोनों सत् और असत्) प्रकृतियोंका वर्णन पूर्ण रूप से आता है और वहां भी इन दोनों (शून्यसमष्टि और असत्) प्रकृतियों को नाशवान बतलाया है। यथा—

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्"

(ऋग्वेद ८–७–१७)

अर्थ—सृष्टिके पूर्व न सत् था, न असत् था, न परमाणु थे, परमसूक्ष्म आकाश भी नहीं था। इस प्रकार वेद मंत्र इस बातको स्पष्ट करता है कि ब्रह्मके सत् असत् ये दोनों ही स्वरूप नश्वर हैं। इसी प्रकार शुकदेवजीने भी सत् असत्–निराकार साकार दोनोंको उपाधि स्वरूप वर्णन किया है। यथा—

'यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा।
अविद्ययात्मनिकृते इति तद्ब्रह्म दर्शनम्॥'

बृहत्मन् बृहत्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः।
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात् सदसतः परे॥

(भाग० १०–८७–१)

अर्थ—स्वसंवेद जो आत्मानुभवका ज्ञान है उसे प्राप्त करनेवालेकी दृष्टिमें अविद्यासे कल्पित सत् और असत् ये दोनों रूप अमान्य होने लगना, यही तो ब्रह्म दर्शन है। ब्रह्मदर्शनकी योग्यतामें ब्रह्मकी सगुण निर्गुण दोनों उपाधियां मिथ्या हो जाती हैं। अतः उसे दोनों से पर कहा गया है,

Shri Prannath Ji Pustkalay

स्वरूप कहिये, चाहे सत् प्रकृति कहिये अथवा भगवान की अपरा प्रकृति का कारण स्वरूप कहिये–सब कुछ यही शून्य-समष्टि है। इसी को कुछ मनुष्य व्यापक ब्रह्म भी कहा करते हैं। अष्टावरण सहित विराट, महत्तत्त्व, इच्छाशक्ति, अहंकार आदि–ये तो सब महाविष्णु के अन्तर में हैं और महाविष्णु इस मोहनीद[1] महाशून्य के अन्दर में बैठे हैं। अनन्त काल तक अन्वेषण किया तथापि महाविष्णु को इसका पार न मिला, जब यह महाशून्य अपने अव्यक्त स्वरूप में और अव्यक्त अपने पर स्वरूप में लय को प्राप्त होता है, तब असंख्य ब्रह्माण्डों का लय हो जाता है, जिसे महाप्रलय कहते हैं।

प्रलय का वर्णन पीछे पृष्ठ (८५) में कर चुके हैं, वहां पर देख लेना चाहिये। पर इतना ध्यान रहे कि—प्राकृत प्रलय के अवान्तर भेद का ही नाम महाप्रलय है। जब सब विश्वों का एक साथ लय हो गया और कोई भी प्राकृत विश्व न बचा तब उसे प्राकृत महाप्रलय तो कहना ही चाहिये। यथा—

प्राकृते प्रलये प्राप्ते व्यक्तेऽव्यक्तं गते पुरा।
नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगुणान् बहून्॥
महद्विष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः।
महाविष्णुः प्रकृत्यां च सा चैवं परमात्मनि॥

(ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खंड)

अर्थ—प्राकृत प्रलय का समय आया जितना भी कुछ व्यक्त था, वह अव्यक्त हो गया। शेष नारायण, शम्भु अपने-अपने गुणों को समेट कर महाविष्णु में जा मिले। महाविष्णु छोटे विष्णुओं के सहित प्रकृति में जा मिले और प्रकृति परमात्मा में जा समायो। इसे अकालिक कहने का तात्पर्य यही है कि—ब्रह्मा की आयु पर्यन्त दो परार्द्ध हो जाते हैं, उस समय जो प्रलय होता है वह तो कालिक है। क्योंकि काल के साथ हिसाब बंधा है। परन्तु जो प्रलय करोड़ों विश्वों को अपने में लय करने को होता है वह तो अक्षर ब्रह्म की इच्छा पर निर्भर है जब अक्षर ब्रह्म की इच्छा हुई उसका समय हो जाता है। अतएव इसे अकालिक कहा है।

---

[1] **मोह अज्ञान भरमना कर्म काल और शून्य।**
ये नाम सारे नींदके निराकार निर्गुन॥ (तारतम सागर)

अर्थ—मोह कहो, या अज्ञान कहो, भरम कहो किंवा काल की गति कहो, निर्गुण कहो अथवा निराकार कहो—ये सब नाम इसी मोहरूप माया के हैं। शास्त्रकारों ने समझने के लिये एक ही वस्तु को विविध प्रकार से वर्णन किया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

यह सबको समेट ले जाता है, अतः इसे प्राकृत महाप्रलय [1] कहना युक्ति प्रमाण पूर्ण है। जो आत्यन्तिक प्रलय है, वह तो जीवात्मा के मोक्ष का ही नाम है। क्योंकि उसमें पुनः कभी जगत को देखना ही नहीं पड़ता, अतः वह आत्यन्तिक है।

इस प्रकार जितना भी पूर्वोक्त क्षर पुरुष का विस्तार है, वह सब अपने मूलस्वरूप अव्यक्त में लय हो जाता है। तब अपनी विभूति सहित अव्याकृत, शबल ब्रह्म, केवल ब्रह्म तथा सत्स्वरूप, अक्षर ब्रह्म और परब्रह्म परमात्मा ही शेष रह जाते हैं। इस प्रकार क्षरपुरुष–विनश्वर माया का–वर्णन हुआ। अब इसके आगे अव्याकृत पुरुष का वर्णन वाचें।

इति श्री सद्धर्मसिद्धान्तवागीश श्रीकृष्णदत्तशर्मशास्त्रिविरचिते विराट्पटदर्शने क्षरपुपुषे—अष्टावरण ज्योतिस्वरूप—महत्तत्वाऽऽदिपुरुष–महाकारणस्वरूप–निरूपणं नाम सप्तमं पर्व परिसमाप्तम् ।।

---

[1] ब्राह्मो नैमित्तिकस्तत्र यच्छेते जगतः पतिः।
प्रयाति प्राकृते चैव ब्रह्माण्डं प्राकृतौ लयम् ।।
ज्ञानादात्यंतिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि।
नित्यः सदैव जातानां यो विनाशो दिवानिशम् ।।
(विष्णु पु० अंश १ अ० ७—३९,४०)

शेषशायी तथा ब्रह्मा के शयन कालको नैमित्तिक प्रलय, ब्रह्माण्डका प्रकृतिमें लय होने का नाम प्राकृत प्रलय एवं ज्ञान से परब्रह्म पद को प्राप्त करनेका नाम आत्यंतिक प्रलय कहा जाता हैं। रात्रिदिन जो विनाश होता है उसको नित्यप्रलय कहते हैं। प्राकृत प्रलयके अवान्तर भेदका ही नाम अकालिक महाप्रलय है। दो परार्द्ध समय में प्राकृत प्रलय होता है। परन्तु जो अकालिक है उसका समय नियत नहीं। क्योकि वह तो अक्षरब्रह्म की इच्छा पर निर्भर है और उसमें असंख्य विश्वों को लय करना पड़ता है। कुछ ग्रन्थोंने इसका समय शब्दमात्रकहनेको बाँधा है पर वह भी असंख्य ही हो जाता है। इस प्रकार प्रलयके चार भेद होते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

विभूतिब्रह्म—अक्षर

अक्षर ब्रह्म अपनो चतुष्पाद-विभूति के [1] स्वरूप में सदा उदित है। जिस उसके तीन पाद तो सदा अखंड वर्तमान हैं। चतुर्थ 'पाद' जो अव्याकृत है, उसमें असंख्य विश्वों का उदय-लय होता रहता है।

"त्रिपादूर्ध्वमुदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाऽभवत्पुनः ।
एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः ॥
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि ॥"

(यजुर्वेद अ० ३१ मंत्र ३,४)

अर्थः—(पुरुषः) यह अक्षर ब्रह्म (त्रिपाद) अपने त्रिपाद ऐश्वर्य से अर्थात् सत्स्वरूप, केवल ब्रह्म तथा सबलिक नामक विभूतिपादों से (ऊर्ध्वः) ऊपर दिव्य स्वरूप में (उदैत) अखंड प्रकाशमान है। (अस्य) इसका (पादः) चतुर्थपाद स्वरूप अव्याकृत (इह) माया में (पुनः) वारम्वार (अभवत्) प्रकट होता रहता है।

अर्थ—(एतावान्) ये चारों पाद–स्वरूप धाम–सत्स्वरूप, केवल, सबलिक तथा अव्याकृत विभूतिमय जो कुछ भी है (अस्य) इसकी (महिमा) सामर्थ्य विशेष विभूति हैं, वास्तविक स्वरूप नहीं। (च) और (पूरुषः) वह अविनाशी ब्रह्म पुरुष तो (अतः) इस महिमा स्वरूप विभूतिसे भी (ज्यायान्) अतिशय अधिक है।

यद्यपि 'नित्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" नित्य ज्ञानस्वरूप अखंड अनन्ताऽद्वैत ब्रह्म की इयत्ता नहीं है, वह तो निरतिशय अधिक है तथापि मनुष्य-सुलभ ज्ञान में लाने के लिये उसकी विभूति का दिग्दर्शन करा देना भी वेद का कर्त्तव्य है।

---

[1] विभूतिका अर्थ होता है विशेष ऐश्वर्यों का समन्वय। चतुष्पाद् विभूति अनन्त ऐश्वर्योंका धाम है। अनन्त लीला वैचित्र्यसे ओत–प्रोत होनेके कारण ही इसको विभूति ब्रह्म कहते हैं। इस विभूति ब्रह्मका जितना भी ऐश्वर्य है वह सापेक्ष और कूटस्थ अक्षरकी सत्तामें व्यवस्थित होते हुए भी ब्रह्मानन्दसे परिपूर्ण है, अतः इसे भी ब्रह्म कहते हैं, इसमें तीन पाद् तो स्वयं अखण्ड स्थित हैं परन्तु चतुर्थपाद–अव्याकृतको माया और ब्रह्म दोनों भाववाला माना गया है। माया भावमें सृष्टि है, तो ब्रह्मभावमें मोक्ष है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

(विश्वा) सम्पूर्ण विश्वोंमें (भूतानि) अतीत और अनागत रूपसे प्रगट होनेवाले अनन्त जीव (अस्य) इसका (पादः) चतुर्थांश मात्र हैं (त्रिपाद) तीनों पाद 'सत्स्वरूप, केवल शबलिक स्वरूप विभूतिधाम' तो (अस्य) इसके (अमृतम्) अमृत-स्वरूप आवागमन रहित अखंड (दिवि) प्रकाशात्मक क्रोड़ाधाम में स्थित हैं।'

इस प्रकार वेदमंत्र ने चतुष्पाद विभूतिके स्वरूपको स्वतः ही स्पष्ट कर दिया। अक्षर ब्रह्ममें दो [1] भाव हैं – एक तो कूटस्थ अक्षर। दूसरा सर्वकारण कारण अक्षर। कूटस्थ अक्षर ब्रह्म तो सर्वातीत परब्रह्म परमात्मा के नित्य स्वयं सिद्ध प्रकाश स्वरूप दिव्यब्रह्मपुरमें अखंड विराजमान है। दूसरा, सर्वकारण-कारणभाव चतुष्पाद विभूति सम्पन्न अखंड वर्तमान है। बस, जो चतुष्पाद रूपमें अवस्थित है, उसीके चतुर्थपाद अव्याकृत में असंख्य विश्वों का उदय-लय होता है।

ब्रह्मकी इस विभूति ऐश्वर्य को चतुष्पाद कहनेका तात्पर्य यह है कि-इन सब पादोंमें चार-चार स्थान हैं और चार-चार ही भाव हैं। अपने-अपने भावमें तो सभी पूर्ण हैं, परन्तु एक-दूसरे भावमें भी उत्तमोत्तम दिव्यभावों का प्रतिभास उपबृंहण पाया करता है। एक विभूतिकी लीलाका दिव्यानन्द दूसरे भावको भी यथेष्ट प्राप्त होता है, अतएव इसे चतुष्पाद विभूति इस अन्वर्थक नामसे पुकारते हैं।

---

[1] कूटस्थ अक्षर को ही विलास स्वरूप कहते हैं। येह पूर्णब्रह्म के परमधाममें अवस्थित होनेसे एवं पूर्णब्रह्म के अंगस्वरूप होनेसे पूर्ण ही कहे जाते हैं। यथाः—

अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।
कूटस्थं चैव नित्यं च यद् वदन्ति पुराविदः॥ (महाभा० शां०)

अर्थ—अक्षर अविनाशीको ही कहा गया है जो पूर्णब्रह्म सनातन है उसीको तत्त्वज्ञ पंडित कूटस्थ और नित्य कहते हैं, इस प्रकारसे अक्षरके कूटस्थ भावको पूर्णब्रह्मरूप माना है जो पूर्णब्रह्म के अंगस्वरूप होनेसे पूर्णब्रह्म स्वरूपमें ही गिना जाता है। 'एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति' निरुक्तकार लिखते हैं कि 'परब्रह्म परमात्माके अन्य दिव्यस्वरूप जितने भी देव-ब्रह्म हैं, वे सब अंग प्रत्यंग हैं। इस भांति दोनों एक स्वरूप हो जाते हैं।

न जानन्ति सुराः सर्वे सर्वकारणकारणम्।
येन प्रकाशते दिव्यं यत्रैव प्रविलीयते।
न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य परात्परं पुरुषं विश्वधाम॥ (श्रुति)

परन्तु दूसरा स्वरूपः—सर्वकारण, अक्षरकी विभूति युक्त है। अतएव उसमें विभूति महिमाके स्वरूपोंका, भावोंका उदय प्रतिक्षण होता रहता है। अक्षरब्रह्मके इस दूसरे भाव को (खेलका स्वरूप) मनस्थानीय विभूतिस्वरूप भी कहते हैं। अक्षरका यह विभूतिस्वरूप

Shri Prannath Ji Pustkalay

त्रिष्वेकपाच्चरेद् ब्रह्म त्रिपाच्चरति चोत्तरम् ।
सत्यानृतोपभोगार्थं द्वैतभावो महात्मनः ॥ (श्रुति)

अर्थ— यह चतुष्पाद ब्रह्म–अक्षर अपनी महिमा से तीनों पादों में –सत्स्वरूप, केवल ब्रह्म, शवलिक ब्रह्म के धामों में एक अखंड रूपसे अपने आनन्दको अनुभव कराता हैं। त्रिपाद-तीनों पादों में अवस्थित सत्स्वरूप, केवलब्रह्म और शबलिक पुरुष अपने से उत्तरोत्तर पादों का आनन्द ग्रहण किया करते हैं। परन्तु सत्य और अनृत दोनों का उपभोग करने के लिये चतुर्थ पाद जो अव्याकृत है, उसमें तो द्वैतभाव–माया द्वारा विश्वों का उदय-लय भी होता है।

अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्वराभरत् ।
चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ॥
(अथर्व वेद कांड १० सूक्त ८ मंत्र २१)

अथ— सृष्टि पूर्व यह अव्याकृत पुरुष अपाद–अविज्ञेय रूप में स्थित दिव्यानन्द को धारण किये था। जब क्षोभको प्राप्त हुआ तो चतुष्पाद–प्रणव ब्रह्म, कालनिरंजन,महाशून्य और चतुर्थ आदिपुरुष रूपसे सब कुछ द्वैतरूप विश्व खड़ा कर दिया। एवं भोक्ता, भोग्य और भोजन रूप में सर्वत्र व्यक्त होकर पुनः सबको अपने में समेट लेता है।

सनातनमेन माहुरूताद्य स्यात्पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥
(अथर्वकांड १० सूक्त ८ मंत्र २३)

चतुष्पाद विभूति कहा जाता है। इसे चतुष्पाद विभूति कहनेका तात्पर्य यह है कि— इसके प्रत्येक पादमें चार-चार भावोंका उदय होता रहता है और चार-चार ही स्थान भी शोभित हैं।

इन चारों पादों में अक्षर ब्रह्मके गणितानन्दका अनुभव होता है। यद्यपि ब्रह्मस्वरूप होने से आनन्द तो ब्रह्मानन्द ही कहा जाता है परन्तु वह गणितानन्द है एवं सापेक्ष है। इस लिये ब्रह्मधाम के ब्रह्मानन्द की समता नहीं रखता। कूटस्थं गणितानन्दं पूरयत्येव सन्ततम्''ब्रह्मधामका आनन्द पूर्णात्पूर्ण होने से ब्रह्मस्वरूप है,उसमें अलौकिक शक्ति और पूर्णक्षमता है। चतुष्पाद विभूतिके आनन्द में आभास तो ब्रह्मानन्दका ही है परन्तु गणितानन्द होनेसे ब्रह्मानन्द की पूर्णक्षमता नहीं है। यही कारण है कि अक्षरब्रह्मके आनन्दको न्यून माना है। इस दूसरे भाव (चतुष्पाद विभूति) का नाम सर्वकारण कारण भी है, अतः सब लीला विश्वोंका कारण भी यही है इस प्रकार विभूतिब्रह्मका चौथा पाद अव्याकृत ही विश्वों के उदय-लयका कारण है।'

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—तत्त्व-को जानने वाले पण्डित इस अव्याकृत को ही सनातन कहते हैं। परन्तु यह सनातन होते हुए भी नित्य नवीन-नवीन भावों को धारण कर नूतन हुआ करता है। जिस प्रकार रात्रि और दिवस प्रवाह से नित्य होते हुए भी नित्य नवीन प्रकट हुआ करते हैं, उसी प्रकार अविनाशी अक्षर ब्रह्म का यह चतुर्थ पाद-अव्याकृत अपने सामर्थ्य से दोनों भावों को धारण किये है। इसमें सृष्टि भाव भी है और अनन्त ऐश्वर्यों का आनन्द भी विद्यमान है। इस प्रकार यह चतुष्पाद विभूति ब्रह्म (खेल की सूरति) अपने अनन्त ऐश्वर्यों का [1] धाम, अनन्त महिमाका

---

[1] शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वस्मिन्निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥

(अथर्वकांड १० सूक्त ८ मंत्र २४)

अर्थ—यह चतुष्पाद विभूतियुक्त ब्रह्म सैकड़ों, सहस्रों, लाखों-असंख्य दिव्य ऐश्वर्यों का भंडार है, जो इसको जान लेता है उसे इसके समस्त आनन्द प्राप्त हो जाते हैं। यह विभूतियुक्त ब्रह्म अपने ऐश्वर्य सुखसे सबको पूर्ण किये रहता है, सबको अपना प्रकाश प्रदान किये रहता है। इस प्रकार यह चतुष्पाद विभूति मुक्त-पुरुषोंके सुख का भंडार और ऐश्वर्योंका धाम है, तभी तो श्रीजीने विश्वके जीवोंको इन्हें मुक्ति रूपमें प्रदान किया है।

यह चतुष्पाद विभूति ब्रह्म अपने प्रथम पाद (सत्स्वरूप) में तो सच्चिदानन्द स्वरूप तीनों अंशोंसे उदित है परन्तु अन्य पादों में एक २ धर्मकी ही विशेषता है। द्वितीय पाद—केवल धाममें आनन्द की विशेषता है। सर्वत्र ब्रह्मानन्दकी ही प्रतीति होती है। अतएव उसे केवल धाम और वहां के अधीश्वरको केवल ब्रह्म कहते हैं। विभूति ब्रह्मके तृतीय पादमें चिदंशकी विशेषता है अतएव उसे चिद्रूप अक्षर—सबलिक ब्रह्मका धाम कहते हैं। वहांके स्वामी चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म कहे जाते हैं। विभूति ब्रह्मके चतुर्थ पादमें सदंशकी प्रधानता है 'सदंशेन क्षरं जगत्' अत एव इसे सद्रूपा माया, प्रकृति किंवा अव्याकृत कहते हैं। ब्रह्मके चेतन और आनन्द स्वरूप ये ही दोनों धर्म विशेष प्रकट होने के तत्व हैं, जब ये दोनों ही तिरोहित हैं तब तो उसे — अव्याकृत ही कहना चाहिए। जब आनन्द और चिदंशकी पूर्णतया अभिव्यक्ति नहीं होती तो उसे अव्याकृत कह दिया गया। इस प्रकार चतुष्पाद विभूति युक्त ब्रह्म अपने एक-एक पादमें अपनी विशेषतासे उदीयमान है। यद्यपि ऊपर लिखे अनुसार पादोंके नाम धर्मकी विशेषताके लिये पृथक्-पृथक् हैं परन्तु वस्तुतः ये चारों पाद एक ही स्वरूपमें अवस्थित होनेसे प्रत्येक पादमें अन्य पादोंके विशेष धर्म भी अपेक्षित रूपमें सबको सर्वत्र प्राप्त हैं। अतएव उसे चतुष्पाद विभूति ब्रह्म कहते हैं, इसीको बेहदभूमिका भी कहते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

केन्द्र है। अखंड सुख का स्रोत, असंख्य मुक्त पुरुषों के दिव्यानन्द का अनन्त क्षेत्रों सब प्रकार से अखंड शोभा ले रहा है। प्रणालिका में इस विभूति ब्रह्म को अक्षर के मन का स्वरूप वर्णन किया है।

विभूति ब्रह्म को अक्षर ब्रह्म का मन स्थानीय कहने का तात्पर्य यह है कि— जिस प्रकार मन सदा ही कल्पनाओं का पुंज बना रहता है, जाग्रत, स्वप्न, किसी भी दशा में कल्पनाओं को नहीं छोड़ता, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म का मनस्वरूप यह विभूति-ब्रह्म भी अपने चतुर्थपाद–अव्याकृत द्वारा असंख्य विश्वों की रचना कर सत्य और मिथ्या दोनों प्रकार के उपभोगों का अनुभव कराया करता है। मिथ्या के बिना सत्यका यथार्थ स्वरूप आत्मा में नहीं भरता। इसलिये विश्व के मिथ्या सुख दुःख द्वारा सत्य सुखका अनुभव कराना पड़ता है।

"ता कारण ये भई नकल, सुधि देने संसार सकल"

द्वैतभाव (मिथ्या प्रपंच) के द्वारा दिव्य आत्माओं को यथार्थ सुख का अनुभव कराना और दैवी आत्माओं द्वारा वद्ध जीवों को मुक्ति प्रदान कराना; बस, यही इस विश्व रचना का ध्येय माना गया है।

प्रणव ब्रह्म

(कूटस्थ अक्षर ब्रह्मकी चतुर्थ विभूति के अन्तर में प्रणव ब्रह्म का वर्णन)

शून्य–समष्टि अथवा क्षर समष्टि से पर अव्याकृत के चतुथपाद-स्थूल स्वरूप में इसका स्थान है, जिसे प्रणव ब्रह्म ओंकार का धाम कहते हैं। यह प्रणव ब्रह्म अहंकार स्वरूप है। पांच मुख, दशभुजा युक्त यह अनन्त सूर्यों के तेज को तुच्छ करने वाला प्रकाश पुंज अनुपम शोभा को धारण किये है इसको 'ओमित्य क्षर'[1] भी कहते हैं। अहंकार पुरुष के जितने नाम शास्त्रों में आये हैं, वे

---

1 श्रुतियों में इस प्रणव ओंकारकों अक्षर ब्रह्म करके भी लिखा है। इस ओंकार अक्षर–के यथार्थ ज्ञानसे और इसकी उपासनासे जो कुछ अभीष्ट हो सब प्राप्त होता है, ऐसा कहा है। यथा—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥
एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म ह्येतदेवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
(कठोप० १–२–१५,१६)

Shri Prannath Ji Pustkalay

सब मुख्यतः इसी के नाम हैं। अक्षर ब्रह्मके उन्मेष निमेष कालमें उदय – लय होने वाले असंख्य विश्वोका जीव स्वरूप चेतन यही है। यहीं से प्रत्येक विश्वके लिये जीवों का प्रदान होता है। प्रत्येक विश्वके प्रलयके पश्चात् भी जीवोंके एकत्रित होने का प्रधान केन्द्र भी यही है। अनन्त जीवों को उत्पन्न कर पुनः अपनेमें समेट लेना, यह इस प्रणव ब्रह्म[1] का ही सामर्थ्य है। यथा—

अर्थ — जिसके लिये वेद कथन करते हैं, सम्पूर्ण तपस्वी जिसको प्रतिपादन करते हैं, जिसके लिये सकाम पुरुष ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, वह पद यही ओम् अक्षर हैं। यही अक्षर ब्रह्म कहा जाता है इसी ओम्को परम अक्षर कहते हैं। इसीको जानकर मनुष्य अभीष्ट वस्तुको प्राप्त कर सकता है।

ध्रुवमेकाक्षरं ब्रह्म ओमित्येवं व्यवस्थितम् ।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च तद् ब्रह्मेत्यभिधीयते ।। (विष्णुपुराण अश ३)

अर्थ — निश्चत ही प्रणव ओंकार ब्रह्म स्वरूप है। यह ब्रह्म जिस प्रकार कहा गया है इसका निर्वचन भी साथ ही कर दिया है। यह असंख्य विश्वोंकी रचनाको अपनी सत्तामात्रसे जीवों को पूर्ण करके बढ़ा देता है और स्वयं भी वृहद्–एक विशाल स्वरूपमें अनन्त जीवोंका पिता बनकर अवस्थित है, इसलिये ब्रह्म कहा जाता है। इस भांति ओंकार को शास्त्रों ने बहुत कुछ महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है। इसी महत्त्व को देख करके अनेकों विद्वान इसकी उपासनाको ही ब्रह्मोपासना माने बैठे हैं। इसके स्वरूप को यथार्थ समझे विना इसी उपासनासे अपनेको कृतार्थ मान लेते हैं। वस्तुतः 'ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्' (४–१–५) इस ब्रह्मसूत्र के कथनानुसार ओंकारके उत्कर्ष और महत्त्वको देखकर ही श्रुतियोंने उसे ब्रह्म कह दिया है। परन्तु यथार्थ देखा जावे तो प्रणव अथवा ओंकार परब्रह्म परमात्मा नहीं है। केवल असंख्य विश्वोंके जीवोंकी समष्टि है।

प्रणवमेव जगद्व्याप्तं मायामात्रमवतिष्ठते (ज्ञानोत्तमे)

अर्थ — यह प्रणव ही जगतस्वरूपसे सर्वत्र व्याप्त है।

[1] शास्त्रों की यह शैली है जिस किसीको उत्कर्ष पूर्ण देखा ब्रह्म कह दिया। जिस किसीको ऐश्वर्य विशिष्ट देखा उसे भगवान कह दिया। 'अन्नं ब्रह्म' मनोब्रह्म, ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियोंमें अन्न, मन तथा ओंकार को एवं सम्पूर्ण विश्वको ही जो ब्रह्मत्वेन उपस्थान किया है वह केवल उत्कर्ष बतानेके लिये है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि—मनकी, अन्नकी अथवा वर्णमालाके अक्षरोंकी माला जपने लगो अथवा ब्रह्म मानकर मोक्षके लिये ध्यान लगाने लगो।

Shri Prannath Ji Pustkalay

असंख्या मूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः । मनु (१२—१५)

अर्थ—इस प्रणव के स्वरूप से असंख्य जीवों के स्वरूप निष्पन्न हुआ करते हैं। अनेक ज्योतिस्वरूपों का लय भी इसीमें होता है। नाद बिन्दुके स्वरूप को यहीं से प्रेरणा प्राप्त होती है और उनका लय भी इसी में आ कर हो जाता है।

नादकोटि–सहस्राणि बिन्दूकोटि–शतानि च ।
सर्वे तत्र लयं यान्ति ब्रह्मप्रणव–नादके ।। (नादबिन्दूप०)

अर्थ—करोड़ों नाद बिन्दु [1] (ज्योतिस्वरूप अहंकार और विराट) इस प्रणव ब्रह्म के स्वरूप में लय होते हैं। यहींसे सब जीवों को अपने अपने विश्वों में जानेका सौभाग्य प्राप्त होता है। कहने का तात्पर्य जीव मात्रमें जो चेतन प्रतीत होता है, वह सब इसीका है। इसलिये इसे जीवरूप चेतन की समष्टि भी कहते हैं। प्रकृति काल तक जीव इसी में सुषुप्ति दशाका अनुभव करते हैं। जब विश्वोंका उदय होता है तब कर्मानुसार उन्हें जीव योनियों में जन्म लेना पड़ता है। यथा–

येषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ।
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।।
(महाभारत शांतिपर्व अ० २३२—१६)

अर्थ—पूर्व विश्वों में जीवों ने जैसे-जैसे कर्म किये हैं तदनुसार अन्य विश्वोंमें उन्हें पुनः पुनः जन्म प्राप्त होता है जब तक मुक्तिको प्राप्त नहीं होता, यह जीवात्मा अनेक विश्वों का चक्कर काटा ही करता है। इस प्रकार असंख्य जीवों का मूल यह ज्योतिस्वरूप प्रणव ब्रह्म अपने धाममें रोधिनी आदि अनन्त शक्तियोंके सहित विराजमान है। इसीको ब्रह्मपुच्छ भी कहते हैं।

'यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति ।' (अथर्व वेद १३—३—१७)
अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
प्रत्यग्धामा स्वयं ज्योतिः विश्वं येन समन्वितम् ।।
(भागवत)

---

[1] बीजाक्षरं परं बिन्दुं नादं तस्योपरिस्थितम् ।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ।। (ध्यानबिन्दूप०)

Shri Prannath Ji Pustkalay

वह ज्योतिस्वरूप प्रणव एक ही बहुत रूप में प्रकाशित होता है। बीज रूपसे अनादि है, प्रकृतिसे पर गुणों से रहित भी गुणों का जनक है। प्रत्येक प्राणीमें जीवरूप से प्रकाशित यह प्रणव ब्रह्म स्वयं ज्योतिस्वरूप विराजमान है।

इस प्रणव ब्रह्मकी मनस्वरूपा (मनस्थानीय) शक्ति का नाम रोधिनो है। जो प्रणव की इच्छानुसार असंख्य जीवों को रचकर विश्वों का उदय-लय किया करती है। यह रोधिनी 'मूल प्रकृति' सुमंगला शक्तिकी कलामात्र का प्रतिनिधि स्वरूप है। इसमें व्यक्त (साकार) और [1] अव्यक्त (निराकार) दोनों भाव विद्यमान हैं। जब व्यक्त भाव का उदय होता है तब विश्वों की रचना होती है एवं जब अव्यक्त भाव का उदय रहता है तब प्रलय होता है।

त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका।
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्॥

(ब्रह्म वै० पु० प्रकृतिखंड)

अर्थ—यह अपनी इच्छा मात्रसे त्रिगुणात्मिका होकर सृष्टिको रचती है तब साकार बन जाती है। वस्तुतः स्वयं निर्गुण-अव्यक्त स्वरूप तो सदा रहती ही है। इस प्रकार उभय रूपको धारण करने वाली यह 'रोधिनी' महा प्रबल शक्ति है। प्रणव से प्रादुर्भूत होनेवाले जीवों को यह आगे नहीं जाने देती, अतएव इसे रोधिनो कहते हैं। वस्तुतः प्रकृतिसे प्रादुर्भाव पानेवाले प्राकृत जीव अपने मूलको किस प्रकार उल्लंघन कर सकें, अतएव मायामे फँस जाते हैं।

"प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः" (मांडूक्य १-२९)

प्रणव ब्रह्मके विशाल धाममें अपर प्रणव [2] और पर प्रणव, इस प्रकार दो

---

[1] **प्रकृतिर्या ममाख्यता व्यक्ताव्यक्त-स्वरूपिणी।**
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि॥

(विष्णु पु० अंश ६-४-३०)

अर्थ—इस प्रकृति—स्वरूप रोधिनीके व्यक्ताव्यक्त (साकार निराकार) दोनों स्वभाव हैं। इसीमें प्रतिविम्बित होनेवाला पुरुष प्रणव ब्रह्म है जो प्रतिबिम्बित होकर नारायण— महाविष्णु बन जाता है। जब ये प्रतिबिम्बित नहीं होता तो प्रणव रूपमें रहता है। जब ये प्रकृति और पुरुष नाशको प्राप्त होते हैं तो अपनी मात्राओं सहित अपने परस्वरूपमें लय हो जाते हैं।

[2] प्रणव ब्रह्मको चार पाद और पोड़श मात्रायुक्त कहा है। ये षोड़श मात्रा ही सोलह कलाके नामसे प्रसिद्ध हैं। एक-एक पादमें चार-चार मात्रा और उनके चारों स्वरूप

Shri Prannath Ji Pustkalay

भाव और चार-चार पाद हैं। अपर प्रणव में मायाका बीज है और स्थूल, सूक्ष्म, तथा बीजभाव-कारण, इन तीनों पादों का विस्तार भी यहीं से होता हैं। चतुर्थ पाद विशुद्ध चेतन है जिसे निर्मल चैतन्य कहते हैं एवं मुक्तजीवों का आठवां मोक्षस्थान है।

"अत्र कारणमद्वैतं शुद्धचैतन्यमेव हि" (श्रुति)

स्वरूप यथाक्रम विद्यमान रहते हैं। इस रहस्य को ब्रह्माजी के पूछने पर भगवान नारायणजी ने निम्न प्रकार से कहा है। यथा :—

"स होवाच नारायणः । ब्रह्म प्रणवः षोडशमात्रात्मक, सोऽवस्था चतुष्टय चतुष्टय गोचरः । जाग्रदवस्थायां जाग्रदादि चतस्रोऽवस्थाः स्वप्ने स्वप्नादि चतस्रोऽवस्थाः सुषुप्तौ सुषुप्त्यादि चतस्रोऽवस्था । स्तुरीये तुरीयादि चतस्रोऽवस्था भवन्तीति" (परमहंसपरिव्राजकोपनिषद्)

नारायणजी ने कहा 'हे ब्रह्माजी ! प्रणव ब्रह्म पोड़श मात्रा पूर्ण है, जो चार पादों में यथा-क्रम उदीयमान है और उसकी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया, इसप्रकार चार ही अवस्था हैं। पुनः प्रत्येक अवस्था में जाग्रत,स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया,इस प्रकार चार-चार भाव हैं। तीनों पादों में प्रणव की—अकार,उकार, मकार ये,तीनों मात्रा अपने-अपने अभिमानी देवों और वेदों के सहित वर्तमान हैं। यथा—

"विराड्विश्वः स्थूलश्चाकारः । हिरण्यगर्भस्तैजसः सूक्ष्मश्च उकारः। कारणाव्याकृत प्राज्ञश्च मकारः (योगचूड़ामणि० उप०)

प्रणव की अकार मात्रामें विश्व विराट का स्थूल रूप है। उकार मात्रा में हिरण्यगर्भ नारायण पर्यन्त सूक्ष्म तैजस जगतका समावेश है। प्राज्ञ अभिमानी मकार मात्रामें कारण अव्याकृत अर्थात् सद् असत् प्रकृति तथा बीजरूप स्वयं प्रणव ब्रह्मका भी समावेश होता है। अर्ध मात्रारूप निर्मल ज्ञानशक्ति गायत्री और शून्यस्वरूप पर प्रणव, ये दोनों उससे पर हैं। इस प्रकार प्रणव की पांचों मात्रा हैं। इन पांचों मात्राओं का प्रणव के परस्वरूप में लय हो जाना ही अमात्रिक प्रणव कहा जाता है।

प्रणवात्प्रभवो ब्रह्मा प्रणवात्प्रभवो हरिः।
प्रणवात्प्रभवो रुद्रः प्रणवो हि परो मतः ॥ (योगचूड़ा० उप०)

अर्थ— ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि यावत् विश्व प्रणव से ही होता है और प्रणव इनसे पर भी है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

इस श्रुति में स्पष्ट किया है कि प्रणव धाम में विश्वों का कारण स्वरूप प्रणव और सब मात्राओं[1] का जिसमें लय होता है, ऐसा शुद्ध चैतन्य प्रणव, दोनों भाव हैं। अतएव इस गायत्री धामकी सर्व सामग्री निर्मल स्वरूप मानी गई है। यद्यपि यहांपर प्रणव का आधिपत्य है, तथापि ज्ञान की विशेषता के कारण इसे गायत्री शक्ति का धाम कहते हैं। इस धाम की परदेवता गायत्री शक्ति को माना गया है। यथा :—

तदायुधधरा देवी गायत्री परदेवता ।
वेदाः सर्वे मूर्त्तिमन्तः शास्त्राणि विविधानि च ।।
स्मृतयश्च पुराणानि मूर्त्तिमन्ति वसन्ति हि ।
ये ब्रह्मविग्रहाः सन्ति गायत्री विग्रहाश्च ये ।।
व्याहृतीनां विग्रहाश्च ते नित्यं तत्र सन्ति हि ।

(देवीभा० १२-११-८६,८७)

---

[1] एकमात्रो द्विमात्रश्च त्रिमात्रश्चैव भेदतः ।
अर्धमात्रा परा ज्ञेया तत ऊर्ध्वं परात्परम् ।।
पचधा पंचदैवत्यं सकलं परिपठ्यते ।

(ब्रह्मविद्योप०)

अर्थ—प्रणव ओंकार एक मात्रा, दो मात्रा, तीन मात्रावाला है। उसकी आधी मात्रा जो है उसे तीनों मात्राओं (अकार से विष्णु, उकार से ब्रह्मा, मकार से शिवजी) से पर माना गया है। उस अर्धमात्रा से भी पर बिन्दु स्वरूप है जो पर अर्धमात्रा से भी पर होने के कारण परात्पर कहा गया है, अन्यथा अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा और बिन्दु, ये पांचों मिलकर ही प्रणव ओंकार कलापूर्ण कहा जाता है, ऐसा शास्त्रों में लिखा है।

"पञ्चधा वर्तमानं तं ब्रह्मकार्यमिति स्मृतम् ।"
पञ्चब्रह्मात्मिकां विद्यां योऽधीते भक्तिभावतः ।
स पञ्चात्मकतामेत्य भासते पञ्चधा स्वयम् ।।

(पञ्चब्रह्मोपनिषद्)

अर्थ—पांचों मात्राओं से युक्त प्रणव ब्रह्म अव्याकृत ब्रह्म का कार्यस्वरूप है जो इस प्रणवात्मक ब्रह्म की पाचों मात्राओं को भक्तिभावपूर्वक जानता है, वह भी इसी को प्राप्त होता है इसकी पांचों मात्राओं का पृथक पृथक् विस्तार नीचे लिखे अनुसार है। यथा—

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ — इस प्रणव धाममें परदेवता रूपसे ज्ञानशक्ति गायत्री विराजमान है। जहां पर "अनन्ता वै वेदाः" अनन्त मंत्रराशि वेद, असंख्य शब्दराशि शास्त्र पुराण सब मूर्त्तिमन्त ज्ञान स्वरूप विद्यमान हैं। यहीं पर 'स्वसंवेद' और अथर्व वेद मूर्त्तिमन्त विराजमान हैं। जगत में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व संहिता के नाम से प्रसिद्ध वेदसंहिता भिन्न हैं। वहां का अथर्व वेद इन सब वेदों का परात्म स्वरूप है और स्वसंवेद तो तारतम्य ज्ञान का प्रकाशक होने से स्वयं ब्रह्ममुनियों के साथ ही आता है। अतएव श्रीजी निर्देश करते हैं।

चारों वेदोंने यों कहा वेद अथर्वन सबको सार।
ये ही वेद कुलीमें त्रिगुणको उतारै पार॥

यह परात्मस्वरूप वेद तथा अन्य वेदराशि वहां पर सब मूर्तिमन्त विराजमान हैं। तभी तो श्रुतियों ने रासमंडल के समय तथा प्रलयकाल में प्रभु की स्तुति करके अपने लिये भी रास दिखाने को वरदान मांगा था। यथा—

स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः।
तदन्ते बोधयाञ्चक्रुः तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम्॥

(भाग० १० वेदस्तुति)

ऋग्वेदो गार्हपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च।
अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः॥

यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाग्निस्तथैव च।
विष्णुश्च भगवान्देव उकारः परिकीर्तितः॥

सामवेदस्तथा द्यौश्चाऽऽहवनीयस्तथैव च।
ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः॥
अर्धमात्रा परा ज्ञेया तत ऊर्ध्वं परात्परम्'।

(ब्रह्मविद्योपनिषद्)

अर्थ—ऋग्वेद गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी तत्त्व, ब्रह्मा देवता—यह सब अकार मात्रा से माना गया है। यजुर्वेद, अन्तरिक्ष, दक्षिणाग्नि विष्णुभगवान देव, ये सब उकार मात्रा से हैं। सामवेद द्यौ—आकाशस्थ द्युलोक, आवहनीय अग्नि, ईश्वर (शिव) देवता —ये सब मकार मात्रा से है। अर्धमात्रा 'परा' वाणी रूप है। उससे पर जो चन्द्राकार शून्य है वही ब्रह्मविद्या रूप है। इस प्रकार प्रणव और गायत्री के द्वारा सब प्राप्त होता है, ऐसा लिखा है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ- काल माया के विश्व का पान करके शक्तियों सहित ब्रह्मानन्द में निमग्न पुरुष को पास में खड़े होकर श्रुतियों ने गुण गा-गा कर जगाया। यहीं पर सब वेदों की माता गायत्री अपने शक्ति समूह को लेकर हंस के समान श्वेतरंग सिंहासन पर देदीप्यमान हो रही है। यहीं से सम्पूर्ण वेद शास्त्रोंको प्रणवके द्वारा विश्वमें आने का सौभाग्य प्राप्त होता है। प्रणवमें 'परा' रूपसे, नारायणमें 'पश्यन्ती' रूपसे, ज्योति स्वरूप अहंकार में 'मध्यमा' रूपसे और ब्रह्माके मुखमें 'वैखरी' वाणीके रूपसे वेदों का प्रादुर्भाव होता है। परन्तु गायत्री धाममें वेद साक्षात्स्वरूप से रहते हैं। जब विश्व में आना पड़ता है तब वाणी रूपमें हो जाते हैं। इस प्रकार प्रणव ब्रह्मधामका वर्णन मिलता है।

लयस्य त्वष्टमो भागः सृष्टिकाल उदाहृतः ।
तत्रैव वेद संचारो ह्यन्यदा स्तुतिमात्रकः ।। (महावाराहे)

अर्थ—महाप्रलय काल के आठवें भागको सृष्टिकाल [1] कहते हैं। जब विश्वों का उदय होता है तभी वेद वाणी रूपमें रहते हैं। शेष समय में स्तुति मात्रक स्वरूप रहता हैं। जिससे परब्रह्म परमात्मा का गान किया करते हैं।

इस प्रकार यह ज्ञानशक्ति गायत्री अपने धाममें सम्पूर्ण ज्ञान राशिको लेकर अवस्थित हैं। इसकी सब सामग्री प्रकाश स्वरूप श्वेत वर्ण है। इसका धाम अनेक योजन पर्यन्त विस्तृत है। इससे पर निर्मल चैतन्यस्वरूप 'पर प्रणव' है जो सब मात्राओं से पर सब कलाओं का अधिपति होते हुए भी निष्कल है।

"पादो वैश्वानरादीनां तुरीयो निर्गुणः स्मृतः ।" (नृसिंहतापिनी उप०)
अक्षरमजरं चैव अनुत्पन्नमनाशि च ।
सर्वमात्रा विनिर्मुक्तमानन्दं ब्रह्मनिष्कलम् ।। (वाष्कले)

---

[1] भागवतमें तथा अन्य पुराणों में प्रलय कालकी रात्रिका मान ब्रह्माकी आयु पर्यन्त ही माना है। जितने समय तक सृष्टि रचना रहती है उतने ही समय तक प्रलय काल रहता है ऐसा लिखा है। हो सकता है कि—प्रलयके आठवें भागको सृष्टिकाल लिखने का समन्वय समष्टिके प्रलय के साथ हो। क्योंकि शून्यसमष्टिके कालमें तो करोड़ों ब्रह्माण्डों का उदय-लय होता रहता है। अतएव प्राकृत प्रलयकी पद्धतिसे न मिल सके और वह प्रलय काल सृष्टिकी अपेक्षा आठ गुना होता हो। क्योंकि शास्त्रोंके वचनोंकी संगति तभी लग सकती है, जब प्रलय कालको दो प्रकारका मान लेवें। दूसरी बात—एक समष्टिके प्रलय कालमें और अनेक समष्टियों के प्रलय कालमें कुछ अन्तर हो जाना भी स्वाभाविक है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—तुरीय—(स्थूल, सूक्ष्म, कारणस्वरूप तीनों पादों से पर) यह महाकारणरूप निर्गुण कहा जाता है। प्रणवकी सब मात्राओंको अपने में अन्तर्लीन करके सबका अधिपति होने का सामर्थ्य रखने वाला यह सब मात्राओंसे 'पर' स्वरूपमें अवस्थित है, अतएव इसे अमात्रिक [1] निष्कल ब्रह्म भी कहते हैं। सब मात्राओंसे और सब कलाओं से विनिर्मुक्त आनन्द स्वरूप यही असंख्य जीवोंकी मुक्तिका धाम है। उत्पत्ति-विनाश से रहित यह अविनाशी है। श्रीजी से निर्दिष्ट आठ मुक्तिस्थानोंमें से आठवां यही मुक्तिस्थान है।

प्रणव ओंकाररूप अक्षरसे पर होने से कुछ लोगोंने इसीको अक्षरातीत कह डाला है। यह ओंकर अक्षर कहा जाता है ओंकारका परस्वरूप होनेसे इसमें अक्षरातीत अथवा शब्दातीत शब्द घट तो जाते हैं परन्तु वस्तुतः देखा जावे तो अक्षर शब्द से शास्त्रों में कूटस्थ अक्षर का ही ग्रहण है, न कि प्रणव अक्षर किम्वा शब्द ब्रह्म का। इस तत्त्वको न जानने वाले प्रणव के परस्वरूप में ही अक्षरातीत की कल्पना करने लग जाते हैं। कबीर मतने भी इसी प्रकार धोखा खाकर इसी को अक्षरातीत लिखने की भूल की है। यदि 'अक्षरमम्बरान्त धृतेः' 'सा च प्रशासनात्' इत्यादि ब्रह्मसूत्रों का मनन किया होता तो कबीरदासजी को ऐसा भ्रम कभी न होता। 'अक्षरात्परतः परः' इत्यादि मुण्डक श्रुतिका पर्यालोचन करने पर तो इस प्रकार की भूल कभी हो ही नहीं सकती थी। परन्तु क्या करें:—

"अबोधादन्यथा नीतः श्रुत्यर्थो बहुधा बुधैः"

अबोधवश बड़े-बड़े महर्षियो ने भी जिस तत्त्वको यथार्थ नहीं समझ पाया उस तत्त्व में कबीरदासजी को अथवा किसी को भ्रान्ति घेरले तो कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं। क्यों कि 'अक्षर' शब्द ओंकार वर्ण के लिये भी आता है तो कहीं कहीं

---

[1] **"अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकारः॥"** (मांडूक्य)

अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः।

ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः॥ (माड़ूक्य प्र० १—२९)

अर्थ—स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण से पर जो महाकारण—स्वरूप ओंकार है, वह अद्वैत (एक) रूप है। सब प्रपंच उसी में लय पा जाता है एवं मात्राओं के व्यवहारसे भी शिवरूप है। इस प्रकार अमात्रिक और अनन्त मात्रावाले "ओंकार एवेदं सर्वं" विश्वरूप से सब कुछ ओंकार ही विस्तृत हो रहा है' इस प्रकार जो ओंकारके दोनों मात्रिक अमात्रिक स्वरूप को जानता है वही ज्ञानी है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

पर जीवात्मा के लिये भी 'अक्षर' शब्द का प्रयोग होता है एवं प्रकृति के लिये भी 'अक्षर' कहा गया है। अकार, उकार, मकार आदि मात्राओं से युक्त प्रणवको किंवा ओंकार को तो अक्षर शब्द लागू पड़ता ही हैं। इन सब से आगे अव्याकृत को भी अक्षर शब्द से पुकारा गया है। इस प्रकार 'अक्षर' शब्द से कितने ही पदार्थों को पाते हैं परन्तु जब श्रुति में स्पष्ट लिखा है कि "अक्षरात् परतः परः" अक्षर शब्द वाच्य पदार्थों में जो सबसे परसे पर है उससे भी पर जो ब्रह्म है, वही अक्षरातीत है। तब तो फिर धोखा खा जाना, भूल करना अथवा दुराग्रह करके अन्यत्र का अन्यत्र जा घटाना अज्ञान ही हुआ। महाभाष्यकार ने अकार, उकार, मकारको भी निर्गुण सगुण रूप ब्रह्म कह दिया है परन्तु 'ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्' इस ब्रह्म सूत्र से परिचित व्यक्ति तो कभी धोखा नहीं खा सकते बल्कि जानकर दूसरे को भी जना देते हैं कि 'शब्द ब्रह्म' का उत्कर्ष बताने के लिये इसे ब्रह्म कह दिया है। परन्तु जो अनभिज्ञ हैं, वे तो इसी प्रणवको अपना ध्येय मान भजन पूजन में भी लग जाते हैं। और इसीका ध्यान करने लगते हैं।

अकारो ब्रह्म रूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु।
चित्कामि च समाश्रित्य जगद्रूपः उणीश्वरः॥

(नन्दिकेश्वर का०)

इस कारिका को लेकर उक्त मत दिखाया है, जो वर्णों का उत्कर्ष बोधन के लिये है। इसीको अमुक ग्रन्थों में निरक्षर ब्रह्म भी कहते हैं। क्योंकि ओंकार अक्षर की मात्राओं की समष्टि होनेसे एवं उनसे पर होनेसे यह निरक्षर भी कहा जाता है। ओंकार को अक्षर मानने वाले इसको अक्षरातीत भी कह देते हैं। परन्तु 'अक्षर' शब्द से क्या ग्रहण होता है, उन्हें इसका ज्ञान होता तो इसे अक्षरातीत कहने का साहस कभी न करते। जिन्होंने 'अक्षरमम्बरान्त धृतेः' 'सा च प्रशासनात्' इत्यादि ब्रह्मसूत्रों का मनन किया है, वे तो कभी इस भ्रममें नहीं पड़ सकते। कारण ब्रह्म सूत्र में अक्षर शब्द से ब्रह्म को ग्रहण किया है, ओंकार को नहीं। यही अक्षर निरक्षर का रहस्य है जिसने "कबीरदास जी" जैसे महात्माओं को भी विमूढ़ बना दिया था। जिन शब्दों को देखकर भ्रम हो जाता है और समझ नहीं पाते वे प्रमाण नीचे लिखे हैं। यथा :—

'एतत्क्षराक्षरातीत-मनक्षर-मितीर्यते—
क्षरः सर्वाणि भूतानि सूत्रात्माऽक्षर उच्चते।
अक्षरं परमं ब्रह्म निर्विशेषं निरंजनम्॥' (श्रुति)

Shri Prannath Ji Pustkalay

कालनिरंजन

"निरंजनं निराकारं निर्लेपं निर्गुणं किल"

अव्याकृतके अन्तर्गत चतुर्थपाद–स्थूलमें अवस्थित प्रणव ब्रह्म तथा गायत्री से पर सूक्ष्म (विद्यापाद) में काल निरंजनका स्थान है। शास्त्रोंमें निरंजन पुरुष, काल पुरुष, कालनिरंजन, कालभगवान, निरंजनशक्ति, अचिन्त्य पुरुष, महाकाल, महारुद्र, महत्तत्त्व आदि नामोंसे इसीका उल्लेख है। अथर्व वेदमें इसका विस्तृत वर्णन आता है। उदाहरणके लिये यहांपर दो मंत्र दिये जा रहे हैं। यथा—

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥

(अथर्व कां० १९ अ० ६ सूक्त ५३ मं० ८)

सायणभाष्य — काले परमात्मनि तपः जगत्सर्जनविषयं पर्यालोचनम्। 'तप' पर्यालोचने धातोः। असुन् प्रत्ययः। 'तपसा चीयते ब्रह्म इति (मुण्डक श्रुतेः १-१-९) इत्यादौ तपः शब्दः पर्यालोनार्थत्वेन व्याख्यातः। तथा जेष्ठम् सर्वस्य आदिभूतं हिरण्य-गर्भाख्यं तत्त्वं वर्तते। तथा ब्रह्म साङ्गो वेदस्तत्प्रतिपादकः समाहितम् सम्यगाहितः। एकः कालशब्दो यौगिकः कलयितरि काले ज्येष्ठं ब्रह्म हिरण्याख्यम्। 'ज्येष्ठं ब्रह्म श्रेष्ठं ब्रह्म' इति हि श्रुत्यन्तरम्। ह शब्दः अवधारणे। कालः सर्वस्य जगत ईश्वरः स्वामी। यः कालः प्रजापतेः प्रजानां स्रष्टुश्चतुर्मुखस्य ब्रह्मणः पिता जनक आसीत्।

भावार्थ — इसी काल निरञ्जन पुरुषके अन्तर्गत जगत रचने की शक्ति है। इसी कालके अन्तर्गत सबसे ज्येष्ठ हिरण्यगर्भ नामक आदि पुरुष भी वर्तमान है। इसी अधिष्ठान स्वरूप काल पुरुषके अन्तरमें साङ्ग वेदोंका बीज है। एक काल शब्द यौगिक भी है। जो सबको संकलन कर अपने स्वरूपमें ही सब खिला रहा है। अतएव वह जगत का ईश्वर भी कहा जाता है। यही कालपुरुष जगत पिता ब्रह्माका जनक भी है।

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥

(अथर्वका० १९ अ० ६ सूक्त ५३ मंत्र ७)

सायणभाष्य — काले परमात्मनि मनः जगत्सिसृक्षानिमित्तभूतं मनो वर्तते। तस्मिन्नेव प्राणः सूत्रात्मा सर्वजगदन्तर्यामी वर्तते। अन्तर्यमनोपाधिकत्वेन काले वर्तत इति आधार व्यपदेशः। यद्वा मनः जात्येकवचनं सर्वेषां प्राणिनां मनांसि।

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्राणः पञ्चवृत्तिकः प्राणा अपि परमात्मन्येव वर्तन्ते । तथा नाम नामधेयं सर्वेषां वस्तूनां संज्ञा अपि तत्रैव समाहितम् । यद्वा सर्वेषां रूपाणि कृत्वा तेषां नामान्यपि स्वयमेव व्यवहरतीत्यभिप्रायेण काले नाम समाहितम् इत्युक्तम् । सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते इति हि श्रुतिः (तै० आरण्यक ३-१२-७) कालेन वसन्तादिरूपेण आगतेन सर्वा इमाः प्रजाः नन्दन्ति संतुष्यन्ति स्वस्व कार्यसिद्धेः ।

अर्थ—विश्व रचना की इच्छा रखने वाला अक्षर ब्रह्म का मन स्वरूप महाविष्णु भी इसी कालपुरुष की सत्ता में वर्तमान है । इसी कालपुरुष के अधिकार में सबका अन्तर्यामी प्राणस्वरूप सूत्रात्मा भी वर्तमान है । प्राणशब्द से पांचों प्राणों को भी ले सकते हैं । क्योंकि ये भी इसी काल पुरुष के अन्तर्गत हैं, इसकी इच्छा पर निर्भर हैं । "खाये जगत के प्राणा" इत्यादि पद में मुकुन्द स्वामी ने इसी कालपुरुष को जगत के प्राणों को समेटने वाला कहा है । विविध नामरूप से भासित यह काल ही सर्वत्र व्यापक है । स्थूल जगत में जो सूर्य है, वह भी इसी का प्रतिनिधि है । सूर्य से ही अयन, वर्षा, ऋतु आदि का सर्वत्र विस्तार फैल रहा है । यही काल कहीं प्रकाश रूप से कहीं दाहक रूप से, तो कहीं पाचक रूप से सूर्य, अग्नि, दिव्य-तेज आदि अनेक रूपों से विविध भांति प्रसिद्धि पा रहा है ।

कालः कर्ता विकर्ता च सर्वमन्यदकारणम् ।
नाशं विनाशमैश्वर्यं सुखं दुःखं भवाभवौ ।।

(महाभा० शान्तिप० मोक्षधर्मे अ० २२७-७३)

अर्थ—यह काल ही कर्ता है, यही बिगाड़ता है, यही नाश-विनाश करता है । सुख-दुःख और ऐश्वर्य सब इसी के द्वारा मिलता है । इसके सामने इसके सिवा किसी का बल नहीं चलता । यही काल विश्व में व्यापक हो रहा है । अग्नि की भांति सबको समेटकर स्वयं भी अन्तर्हित हो जाता है । इसके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत नाम के तीन स्वभाव हैं । यथाः—

अधिदैव-मथाध्यात्म-मधिभूतमिति प्रभुः । (भाग० २-१०-१४)

१—'अध्यात्म' के साथ इच्छा, ज्ञान, क्रिया—ये तीन गुण और चौबीस सहस्र शक्ति युक्त सुमना नाम की शक्ति है ।

२—'अधिदैव' के साथ काल, विक्षेप और आवरण-ये तीन गुण और चौबीस सहस्र शक्ति युक्त विद्या ब्रह्मविद्या नाम की दो शक्ति विद्यमान हैं ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

३—अधिभूत के साथ असत्[1] जड़ और दुःख—ये भाव और चौबीस सहस्र शक्ति युक्त दस महाविद्या नाम की शक्ति विद्यमान हैं।

इस प्रकार वहत्तर सहस्र शक्तियों सहित यह काल निरंजन पुरुष खड़ा है। यह महाप्रबल है, विश्वों के असंख्य जीवों का प्राण भक्षण करने वाला यही है। संसार में महाकाली, भवानी आदि जितनी देवियां हैं, वे सब इसी के विस्तार हैं। महत्तत्त्व इसी का प्रतिबिम्ब स्वरूप है। यह काल निरंजन अखंड के द्वार पर चौकी रूप होने से किसी को आगे नहीं जाने देता। इसके विशाल धाम में भी व्रज, रास आदि अनेक लीलाओं के प्रतिभास विद्यमान हैं। इसके ऊपर जो सात महाशून्य हैं, वे सब एक प्रकार से इसी का विस्तार है। यह काल निरंजन अनेक विद्या और विभूतियों का भण्डार है। विश्व में जितना विज्ञान बढ़ रहा है, वह

---

[1] यद्यपि असत् जड़ दुःख—ये पदार्थ तो विश्वके मिथ्या प्रपंचमें ही हैं, वहांपर ये संज्ञा नहीं हैं। तथापि विश्वमें जो असत्,जड़ तथा दुःख प्रतीत होता है उसका मूल यही है अतएव इसे भी उसी नामसे लिख दिया गया है। कालनिरंजनमें असत्,जड़ दुःखका भाव केवल आनन्द और चिदंशका तिरोहित हो जाना है। चिद्रूप शबल ब्रह्ममें जो अनन्त शक्तियाँ हैं तथा सत्,चिद्, आनन्द इच्छा,ज्ञान और अनन्त आदि जो धर्म हैं वे ही इस अव्याकृतमायाके सूक्ष्म पादमें प्रतिबिम्बित होकर कुछ विपरीतसे बन जाते हैं और असत्, जड़ दुःख आदि नामों से पुकारे जाते हैं।

जिस प्रकार चित्र (फोटू) में चेतन पुरुष भी जड़ वन जाता है। स्वप्नमें मन की मिथ्या कल्पना भी चेतन प्रतीत होती है। सिनेमामें मिथ्या प्रतिभास भी जड़ चेतन दोनों रूपमें दृष्टिगोचर होता है। उसी प्रकार शबल ब्रह्मका चिद्रूप भी प्रतिविम्बित होकर विपरीतताको धारण कर लेता है। सत्,चिद्,आनन्दके विपरीत भावको व्यक्त करनेके लिये प्रतिविम्बित विपरीत भावों को असत्,जड़,दुःख कह दिया गया है। वस्तुतः कालनिरंजनके स्थानमें 'असत्, जड़ दुःख' ये विश्व के से असत् जड़ दुःख नहीं हैं किन्तु इनसे विलक्षण—असत् जड़ दुःख हो सकते हैं। विद्याका अर्थ मायाशक्ति है। ये दशों महाविद्या महाप्रबल स्वरूप हैं। पिण्डमें ये ही प्राणरूप हो जाती हैं। ब्रह्माण्डमें काली, तारा, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, वगुलामुखी, मातंगी, और षोडशी एवं कमला ये दश रूपसे प्रसिद्ध हैं। ये ही दशों महाविद्यारूपसे कालनिरंजनको अनन्त शक्तिसम्पन्न बना देती हैं। दश महाविद्याके नाम :—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
बगुलामुखी सिद्धविद्या मातङ्गी कमला वै। (चामुंडतन्त्र)

Shri Prannath Ji Pustkalay

सब इसी का विस्तार है। विश्व में जितने भी रुद्र[1] रूप से स्थित देव हैं, वे सब इसी काल पुरुष के विस्तार हैं। जितनी दुर्गा, काली, भद्रकाली आदि शक्तिरूप से विद्यमान हैं, सब इसी की शक्तियां हैं।

"यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा"

अथर्व कांड १३—सूक्त ३—३)

जो काल पुरुष सबको मारता है, सबको जिलाता है। उससे सम्पूर्ण जगत प्राणशक्ति पाता है। शिव, सदाशिव आदि नाम से प्रसिद्ध देव सब प्रणव ब्रह्म के स्वरूप से विस्तार पाते हैं। यह रहस्य गूढ़ और जटिल है। इसको साधारण जीव नहीं जान पाते। कबीर दासजी ने 'काल निरंजन' के विषय में एक विचित्र प्रणालिका[2] लिखी है, जो सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है।

अथर्वशिरोपनिषद्

[1] **अक्षरात्संजायते कालः कालाद् व्यापक उच्यते।**
व्यापको हि भगवान् रुद्रः (श्रुति)
सदा नादानुसन्धानात्संक्षीणा वासना तु या।
निरंजने विलीयेते मनोवायू न संशयः। (नादबिन्दूपनिषद्)

अर्थ—अव्याकृत स्वरूप अक्षर से कालनिरंजन को शक्ति प्राप्त होती है। कालनिरंजन शक्ति के द्वारा परमाकाश का विस्तार हो जाता है। इसी को कुछ विद्वानों ने महारुद्र करके भी लिखा है। इस प्रकार कालनिरञ्जन का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। कुछ योगियों का मत है कि प्रणव का ध्यान करते-करते वासना क्षीण हो जाती है, तब इस कालनिरञ्जन के धाम को प्राप्त होते हैं।

[2] कबीरदासजी ने कालनिरञ्जन के विषय में अजीब मनगढंत कल्पना की है। नाम तो शास्त्रों से ले लिये हैं पर उनके अर्थ मनमाने किये हैं अतः वह सर्वथा त्याज्य हैं। शास्त्र विरुद्ध प्रणालिका किसी मत को स्थिर नहीं कर सकती। एक ने कुछ कहा, दूसरे ने कुछ और कह दिया। जो जितनी कल्पना विशेष करे, वही महात्मा, कोई मान दण्ड तो रहा नहीं।

कबीर मत में कहीं जीव को, कहीं मन को, तो कहीं सैतान को निरञ्जन लिखा है। उसका निवास नेत्रों में बताया है। कहीं कहते हैं कि कितने निरञ्जन को हमीं ने बनाया है। कहीं निरञ्जन को ही सारा विश्व सौंप देते हैं। कभी तो अपना शरीर भी निरंजन को दे डालते हैं कभी तो स्वयं ही निरञ्जन बन जाते हैं, इसी प्रकार वह प्रणालिका पूर्वापर विरुद्ध, मनस्वी कल्पित होने से त्याज्य है।

जैसे बालक बावरा खेले हँसता रोय।
तैसे साधु शास्त्रमें दृढ़ नहीं शब्दा कोय। (तारतमसागर)

Shri Prannath Ji Pustkalay

सात महाशून्य

(अव्याकृत ब्रह्मके तृतीयपाद—कारणमें इसका स्थान है)

काल निरंजन से पर अव्याकृत के तृतीय पाद—कारण में सात महा शून्यों का विस्तार है। ये सातों शून्य सात रंग के हैं। इनको कई खर्व योजना के विस्तार वाला माना है। यहां पर वास्तवी, अनिर्वचनीया, तुच्छा, शिव—कल्याणी और उन्मुनी ये पांच शक्ति अधिष्ठात्री रूप से विराजमान हैं। प्रत्येक शून्यमें असंख्य शक्तियों का निवास है। इन सातों शून्यों में अनेक प्रकारके स्वर उठा करते हैं। इनको माया और ब्रह्म दोनों नाम से लिखा है। ये कारण रूपसे माया हैं और चेतन रूपसे ब्रह्म कहे जाते हैं। जिस प्रकार आदिपुरुष के कारण में इच्छा शक्ति के दो रूप हैं। उसी प्रकार यहां पर इसके भी दो स्वरूप हैं इच्छा शक्तिको इसी का प्रतिबिम्ब स्वरूप माना हैं।

"यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्" (मनु० १—११)

प्रकृतिः सा मम परा व्यक्ताव्यक्ता सनातनी।
तां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ताश्च योगवित्तमा : (वि. पु०)
सा सांख्यानां गतिः पार्थ योगिनां च तपस्विनाम्।
तत्परं परमं ब्रह्म सर्वं विभजते जगत्॥

अक्षरब्रह्म (विभूतिब्रह्म) की व्यक्त और अव्यक्त स्वरूपमें प्रतीत होने वाली सनातनसे यही परा [1] प्रकृति है। जो दोनों स्वरूपोंको धारण कर काय सम्पादन

---

[1] कुछ सज्जनों को संशय हो सकता है कि जहां देखिये—वहीं एक एक, दो दो, चार चार, शक्तियों का वर्णन करते चले आ रहे हो और सर्वत्र शक्तियों के कार्य भी सृष्टि रचना ही बताते चले आ रहे हो, ऐसी दशामें किस किस को जगत्कर्त्री माना जावे ?

इस उत्तरमें हमें अपनी तरफसे कुछ नहीं कहना है। इसका निर्णय स्वतः होता चला जा रहा है। जिस प्रकार एक कार्यालयमें अनेक पुरुषोंका सहयोग होता, है, उसी प्रकार सृष्टिरचना के कार्य में अनन्त शक्तियों का सहयोग चला आ रहा है। इस कारण कुछ साधारण लोगोंको भ्रम हो सकता है, सबको नहीं। क्योंकि—

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥

(देवी भाग० ९—९—५)

अर्थ 'प्र'का अर्थ होता है विशेष और 'कृति'का अर्थ होता है सृष्टि। अब, सृष्टिके कार्य में

Shri Prannath Ji Pustkalay

किया करती है। यही व्यक्ता (जड़) रूपसे जगत कार्य करती है और अव्यक्त (चेतन) स्वरूपसे अनन्त मुक्त पुरुषोंको सुख प्रदान करती है। सांख्य-तत्त्वके ज्ञाता और बड़े बड़े योगी पुरुष यहीं पर आकरके मुक्ति सुख प्राप्त करते हैं। इसके पर विष्णुपुरुषका स्थान है जिसकी प्रेरणा मात्रसे स्थूल, तथा कारण रूप जगतोंको व्यवस्था चला करती हैं। यहां पर पांचों शक्तियोंका आधिपत्य है परन्तु तीन प्रमुख शक्ति हैं जो जगत कार्य में सहयोग देती हैं। सबकी प्रधान उन्मुनी शक्ति है जो सब प्रपंचों का मूल गिनी जाती है। अव्याकृत का यह कारण-स्वरूप अनन्त एश्वर्यों का और अनन्त सुखोंका धाम है। यद्यपि इसका नाम शून्यमंडल [1] है, परन्तु शून्यका अर्थ चिदाकाश होता है। इसलिये योगी पुरुष इस पद को पानेके लिये शून्य समाधि लगाया करते हैं। विश्वके ऋषि महर्षिगण

साक्षात् परम्परया किसी प्रकारसे जो प्रेरणा देती हैं, वे सब प्रकृति शब्द से बोली जा सकती है। यही कारण है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नारायण, प्रणव ब्रह्म, कालनिरञ्जन आदि सबके पास प्रकृति नामसे कही जानेवाली शक्तियाँ विद्यमान हैं। इसी प्रकार व्यक्ताव्यक्त ये दोनों स्वरूप भी सब शक्तियों के पास विद्यमान हैं। जब कार्य रूप में होना पड़ता है तो व्यक्त रूपमें अन्यथा अव्यक्त स्वरूपमें तो हैं ही। इसी परा शक्ति को शबल ब्रह्मकी सुमङ्गला शक्ति कहते हैं। चिदानन्द लहरी नामकी जो शक्ति है उसमें दो भाव हैं' एक ब्रह्मभाव, दूसरा मायाके उन्मुख होने का भाव है। जब यह माया बढ़ाना चाहती है तो इसकी साम्यावस्था में से तीन शक्ति प्रकट हो जाती हैं। इस कारण इसको शबल ब्रह्मस्वरूपा, परा शक्ति, साम्यावस्थारूपा आदि विविध नामों से पुकारने लगते हैं।

साम्यावस्थात्मिका त्वं हि शबल-ब्रह्मरूपिणी।
ततः परापराशक्तिः परमा त्वं हि गीयसे।
इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिस्त्रिशक्तिदा। (देवीभा० १२—५—१६)

अर्थ — शबल ब्रह्मकी यह शक्ति ही परा अपरा रूपसे प्रगट होकर विश्व रूप में दृष्टि-गोचर होने लगती है। यही परा अपरा पुनः इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति इस प्रकार विविध बन जाती है। इस प्रकार से इस एक ही शबल ब्रह्मरूपी शक्तिका विस्तार अनन्त विश्वोंके रूपमें प्रतीत होने लगता है।

[1] इस महाशून्य मण्डलको शास्त्रों में विविध प्रकार से वर्णन किया है। विश्वके लाखों मनुष्य इसीको ब्रह्म मानकर भी भजते हैं। निर्गुण की उपासना करने वाले, अव्यक्तका ध्यान करनेवाले व्यष्टि शून्यका नाश हो जानेपर इसी शून्यमण्डल को प्राप्त होते हैं। हम पीछे जिन

Shri Prannath Ji Pustkalay

को तथा पैगम्बरों को एवं निर्लेप योगी पुरुषों को यही मुक्ति स्थान प्राप्त होता है। श्रीजी ने इसे सातवीं मुक्ति बताया है। योगमाया और कालमाया का यही प्रधान स्थान है। परन्तु जिस योगमाया ने रासमंडल रचा था, वह योगमाया इससे भिन्न है और उसका स्थान केवल ब्रह्मके धाममें है।

पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिखा सा दृश्यते परा । (ब्रह्मविद्योप०)

इस शून्य मंडलसे कमल-तन्तुके सदृश चिदाभासकी सूक्ष्म शिखाका एक सूत्र ऊपरको चला गया है, जो महाकारणसे मिला देता है। इस धामसे आगे जानेवाले मुक्त पुरुषोंको यह पथ प्रदर्शक बन जाता है। अजपा जाप जपने वाले ओहं सोहं ब्रह्मास्मीति आदिके माननेवाले इसी शून्य मंडल को प्राप्त होते हैं। शबलिक धामकी लीलाका कुछ आभास यहां भी प्राप्त होता है। विश्वमें जितने भी राग रंग प्रतीत होते हैं, उन सबका मूल केन्द्र यही है। इसमें शबल ब्रह्मकी लीलाका आभास होनेके कारण ही इसे सातवीं मुक्ति कहा है। परन्तु यहांसे आवागमन होता है।

'ओहं सोहं अजपा कहिये सो परले तर आना ।'

इस प्रकारसे मुकुन्द स्वामीने भी यहांसे आवागमन माना है।

इति श्री सद्धर्मसिद्धान्तवागीश श्रीकृष्णदत्तशर्मशास्त्रिविरचिते विराटपदर्शने,
अक्षरपुरुषे-प्रणवब्रह्म-कालनिरञ्जन महाशून्यमण्डलादि-
स्वरूपनिरूपणं नाम अष्टमं पर्व परिसमाप्तम् ।

सात शून्योंका वर्णन कर चुके हैं, वे सब इसीके व्यक्तरूप हैं। उनका लय इसी शून्य मण्डलमें होता है। शून्यके उपासक अथवा समाजकी निरन्तर सेवा करनेवाले, अनिश्चित सन्मार्ग बतानेवाले आदि जितने महापुरुष होते हैं, वे भी इस स्थानकी मुक्ति प्राप्त करते हैं। सुमंगला शक्ति जो 'चिदानन्द लहरी' का विश्वोन्मुख भाव है, इसी स्थानसे विश्व रचनाकी प्रेरणाको आगे बढ़ाती है। इसलिये इसे अव्याकृतका कारण स्वरूप कहा जाता है। यहां पर कारण स्वरूपमें अनन्त सुख, विविध भाव विद्यमान हैं परन्तु वे सब शून्यावस्था वाले होनेसे इसे शून्यमण्डल के नामसे प्रसिद्धि प्राप्त है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अव्याकृत का महाकारण

पूर्व कथित सात महाशून्यों के मण्डल से पर यह अव्याकृत का महाकारण स्वरूप है जो शबलिक ब्रह्म का स्थूल भी[1] कहा जाता है। इस महाकारण के द्वारा ही अनन्त विश्वों को स्थूलरूप प्रदान करने की प्रेरणा मिलती है अतः इसे भी स्थूल कह दिया जाता है। वस्तुत यहां स्थूल पदार्थों का सर्वथा अभाव है। इस महाकारण में सत्स्वरूप की लीला का प्रतिभास है। जिसे नित्य वैकुण्ठ, सतलोक, अमरलोक, अचिन्त्य पुरुष का धाम, श्वेतद्वीप, साकेत आदि विविध नामों से संबोधन करते हैं। यहां पर चार द्वीप हैं, जो अनेक आत्माओं के मुक्त होने के धाम हैं। चारों द्वीपों में मुक्तात्मा निर्मल स्वरूप होकर निवास करते हैं। जिन्हें योगीजन हंस कह कर पुकारते हैं। वैष्णव मुक्तात्मा कहते हैं एवं अन्य-अन्य मतवाले अन्य नामों से संबोधन करते हैं।

"हंसो गणेशो विधिरेव हंसः हंसो हरिर्हंसमयश्च शम्भुः।
जीवो हि हंसो गुरुरेव हंसः हंसो निजात्मा परमात्महंसः॥

योग मत के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, गुरु, शिष्य जीवात्मा परमात्मा सब हंस कहने योग्य हैं। यही कारण है कि कबीरदासजी आदि सन्तों ने सत लोकवासी मुक्त पुरुषों को हंस नाम से लिखा है। इस महाकारण स्वरूप में चार पाद किंवा चार द्वीप अथवा चार धामों के विविध वैभवों का वर्णन भी मिलता है। जिनमें अनन्त शक्तिरूप किंवा मुक्तात्माओं को नाना प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है। किसी-किसी के मत से सौ-सौ कोटि शक्तियों युक्त इनमें परविष्णु पृथक्-पृथक् स्वरूप से विराजमान हैं। चारों द्वीपों के नाम भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलते हैं। रामोपासक अपने इष्ट के धाम को साकेत धाम, सान्तानिक लोक, अखंड अयोध्या आदि नामों से संबोधन करते हैं कबीर मत के

---

[1] अव्याकृत में सत्स्वरूप और सबलिक ब्रह्म की लीला प्रतिबिम्बित होने से प्रतिभासिक आनन्द प्राप्त होता है। चतुष्पाद विभूति में एक क्रम और चलता है वह यह कि प्रत्येक पाद में तीन-तीन स्थान तो अपने होते हैं और चौथे स्थान में दो पादों का समन्वय हो जाता है। इसलिये अव्याकृत का जो महाकारण है वह सबलिक ब्रह्म का स्थूल भी कहा जाता है। चतुष्पाद विभूति में यद्यपि यहां की भांति स्थूल सूक्ष्म का जैसा स्वरूप भेद नहीं है तथापि लीला भेद तो पादों की योग्यतानुसार है ही, जिसके लिये विभूतिपाद शब्द का प्रयोग होता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

इस चित्रमें प्रणवब्रह्म, गायत्री, निरंजनशक्ति शून्यमण्डल, नित्यवैकुण्ठ, प्रातिभासिक गोलोक आदिका समावेश है।

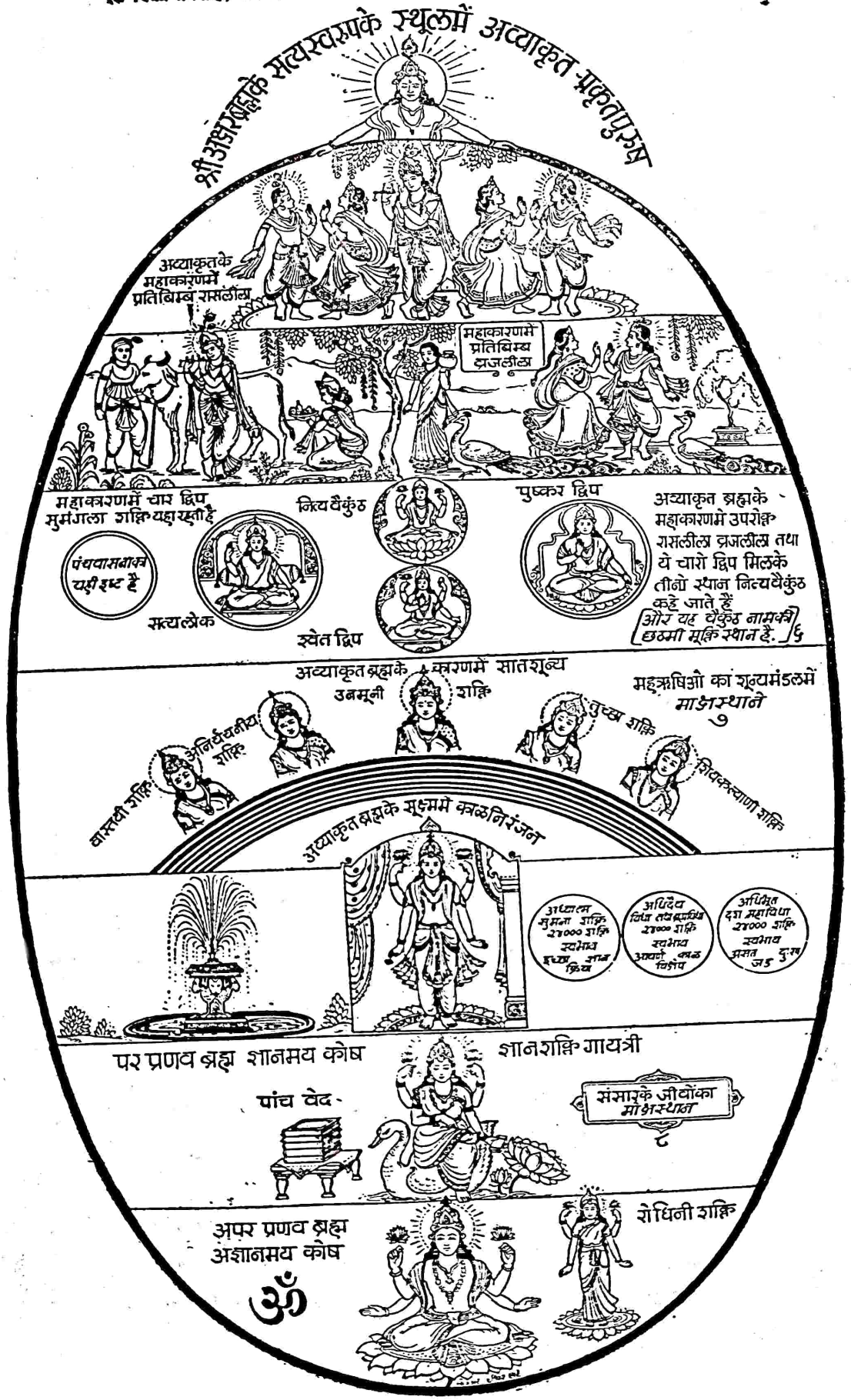

Shri Prannath Ji Pustkalay

सन्त अपने 'सतलोक' को अमरलोक अचिन्त्य पुरुषका धाम, हंसलोक, अलख पुरुषका धाम, आदिपुरुषका धाम, निर्गुण लोक आदि नामोंसे उल्लेख करते हैं। वैष्णव जन वैकुण्ठ धाम, श्वेतद्वीप, पुष्करद्वीप, विष्णुलोक आदि नामोंसे पुकारते हैं। हम यहांपर संक्षेप में चारों द्वीपों का थोड़ा सा वर्णन कर देते हैं। 'नित्यवैकुण्ठ, सतलोक, श्वेतद्वीप और पुष्करद्वीप'— इस प्रकार ये चारों द्वीप किंवा धाम अव्याकृत के महाकारण में "दिवि चक्षुरिवाततम्" नेत्र के समान प्रकाशित हैं। पद्मपुराणमें तथा ब्रह्मवैवर्त पु० में इन द्वीपोंका विस्तृत वर्णन मिलता है। हम थोड़ासा यहां लिखते है। यथा—

तनः शून्यमिदं सर्वं प्रकृत्यन्तर्गतं महत्।
एवं प्रकृतिरूपाया विभूते रूपमुत्तमम् ॥ ५७ ॥
त्रिपाद्विभूति रूपं तु शृणु भूधरनन्दिनि।
प्रधान परम व्योम्नो रन्तरा विरजा नदी ॥ ५८ ॥
तस्याः पारे परे व्योम्नि त्रिपाद्विभूति सनातनी।
अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम् ॥ ५९ ॥
शुद्धसत्त्वमयं दिव्यमक्षरं ब्रह्मणः पदम्।
तद्विष्णोः परमं धाम सदा पश्यन्ति सूरयः ॥ ६० ॥

(पद्मपु० उत्तरखण्ड अ० २२७)

अर्थ—अक्षर ब्रह्म का विभूति रूप जो चतुर्थ पाद है, उसे अव्याकृत कहते हैं। इस अव्याकृत प्रकृति के अन्तर्गत शून्य मण्डल है, जिसका वर्णन गत प्रकरण में किया जा चुका है। उससे पर अव्याकृत का उत्तम विभूति-स्वरूप शून्य मण्डल से तीन गुना परम व्योम है, जिसके मध्य में विरजा नाम की नदी है। उस विरजा नदी के पार परम व्योम में जो सनातन विभूति है वही विष्णु का परम पद है। यह विष्णुपद अमृत स्वरूप शाश्वत और नित्य है। इसमें शुद्ध सत्त्वमूर्त्ति भगवान श्री विष्णु विराजे हैं।

अथातो ब्रह्मणो लोकश्शुद्धसत्त्वसनातनः।
तस्थतुर्जागरूकेऽस्मिन्युवानौ श्रीसनातनौ ॥

(पद्मपु० उत्तर खंड अ० २२७)

अर्थ—इसलिये इसे शुद्ध सत्त्वरूपी विष्णुरूप ब्रह्म का लोक कहते हैं। यहां पर लक्ष्मीजी और सनातन विष्णु दोनों युवावस्था युक्त सदाकाल जागरूक स्थित हैं। इसके साथ दूसरा द्वीप 'सत्यलोक' है जिसे सत्य पुरुष का धाम भी कहते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

द्वितीयं वैष्णवं लोकं शृणु वक्ष्यामि सुव्रते ! ।
योऽयं सत्य इतिख्यातो लोकाग्र्यो वैष्णवःस्मृतः ॥
(पद्मपु० उखं० अ० २२६)

यह सत्यलोक अन्य तीनों द्वीपों की अपेक्षा अग्रगण्य है, इस प्रकार वैष्णव जन कहते हैं। किसी के मत से इसी सत्यलोक में कबीरदासजी को मुक्तिस्थान प्राप्त होगा तो किसी के मत से पुष्करद्वीप में अनन्त हंसों के साथ कबीरदासजी को मुक्ति प्राप्त होगी। मतभेद चाहे जो हो, ये दोनों ही सनातन हैं। परन्तु हम जिस नित्य वैकुण्ठ का वर्णन अभी पीछे कर चुके हैं उससे पचास करोड़ योजन ऊपर गोलोक का वर्णन मिलता है अतः निश्चित होता है कि चारों द्वीपों में वही ऊपर होना चाहिये। इस सतलोक के साथ पुष्करद्वीप भी लगा है। जो पुष्कर-कमल के सदृश होने के कारण पुष्कर द्वीप के नाम से लिखा गया है। "परितः पुष्कराकारस्तं लोकं परिरक्षते" इसके चारों तरफ पुष्कर कमल के सदृश आवरण शोभा ले रहे हैं अतः इसे पुष्करद्वीप कहा गया है इनके अधोभाग में श्वेतद्वीप है जिसके सब पदार्थ श्वेत वर्ण के हैं एवं श्वेतवर्ण जल के आवरण में स्थित होने से इसे श्वेतद्वीप कहा जाता है। यथा—

जलावरणमध्ये[1]तु वैकुण्ठं कारणं शुभम् ।
आमोदसान्तानिकादिभिर्लोकैर्बहुभिरावृतम् ॥ (पद्मपु० उ ख० अ० २२६)

---

[1] कुछ विद्वनोंका मत है कि — जलका आवरण जो इस ब्रह्माण्डके ऊपर चारों ओर घेरकर है, उसीमें विष्णुका वैकुण्ठ है। यही कारण है कि—जलका देवता विष्णुको माना गया है। जब सब आवरणों के देव पृथक् पृथक् माने गये हैं तो जलतत्त्व के देव विष्णुको भी उसका अधिपति मानना ही होगा। यद्यपि आवरणों में भी चित्र विचित्र आध्यात्मिक तत्त्वोंका वर्णन मिलता है अवश्य परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इस जलके आवरणमें विष्णुका निवास मान लेने से श्वेतद्वीप खाली रह जायेगा। किन्तु विष्णुको तो व्यापक माना है अतएव जलके आवरणमें विष्णु लोक भले रहे, परन्तु श्वेतद्वीपमें भी परविष्णुका निवास माना है क्योंकि—

"स्वमहिम्ना सर्वांल्लोकान्सर्वान्देवान्सर्वानात्मनः
सर्वाणि भूतानि व्याप्नोति व्य नयति इति विष्णुः"

अर्थ — अपनी महिमासे सर्वत्र ओत प्रोत होकर जो इस विश्वमें सबको धारण किये है, सबको खिला रहा है, इसलिये तो वह विष्णु है। बस, जब विष्णुके विविध रूप हैं तो एक श्वेतद्वीपमें भी हो सकता है। यही कारण है कि विष्णुका एक रूप इस वैकुण्ठमें है। दूसरा नारायण हैं और तीसरा यह अव्याकृत के महा कारणमें है। बस, इसके आगे विष्णु की लीला नहीं है। अब तो जो कुछ भी ब्रह्म का वर्णन है, वह तो त्रिपाद्विभूतिका है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ — जलके आवरण मध्य स्थित यह कारण वैकुण्ठ भी कहा जाता है। कुछ अवतार और महानविभूति यहींसे विश्वमें उतरा करती हैं एवं नारायण आदिका भी कारण होनेसे इसे 'कारणवैकुण्ठ' कहना उचित ही है। ब्रह्मवैवर्त पु० के 'कृष्णजन्म खण्डमें' तो इन विष्णुको पिता भी कहा है। यथा – 'श्वेतद्वीप–निवासी यः पिता विष्णुश्च सोऽप्यजः' नारायण, विष्णु, ब्रह्मादिका परात्म होनेसे इनको पिता विष्णु भी कह दिया गया है। जो सबका परात्म हो, जनक हो, पिता कहने योग्य भी हैं।

श्वेतद्वीपे [1] महायोगि–सेविते हेयवर्जिते ।
तत्रोद्यानानि रम्याणि पारिजातमयानि वै ॥
सन्तानकलताकीर्णं चन्दनद्रुम–मण्डितम् ।
तन्मध्ये नगरी रम्या नाम्ना श्वेतवती शुभा ॥

(पद्मपु० उत्तरखंड अ० २२९)

अर्थ — यह श्वेतद्वीप महा योगियों द्वारा सेवित है। नाना प्रकार के सुन्दर बगीचोंसे शोभित है जिसके मध्य 'श्वेतवती' नामकी रम्य नगरी स्थित है इस प्रकार श्वेतद्वीप का वर्णन मिलता है।

देवं परमकं ब्रह्म श्वेतं चन्द्राभमच्युतम् ।
यत्र च कान्तिनो यान्ति नारायणपरायणाः ॥
नारायणात्मके मोक्षे ततो यान्ति परां गतिम् ।
नारायणेन दृष्टस्तु प्रतिबुद्धो भवेत्पुमान् ॥

(महाभा० शान्तिपर्व मोक्षधर्मे)

अर्थ – नारायण आदि देवों की अपेक्षा पर होनेके कारण 'श्वेतद्वीप' निवासी विष्णुको 'परमक' कहा गया है। इस श्वेतद्वीप में विष्णु भी श्वेत कान्ति

[1] श्वेतद्वीपका वर्णन विविध प्रकारसे मिलता है। शेषशायी नारायणका क्षीरसमुद्र भी श्वेतद्वीप कहा जाता है। महाविष्णुके महाकारणमें नित्य श्वेतद्वीपका प्रतिविम्ब पड़ता है, अतः वहां भी श्वेतद्वीपका वर्णन है। परन्तु इन श्वेतद्वीपों में आना जाना भी होता है। यथा–

श्वेतद्वीपान्निवृत्तश्च नारदः परमेष्ठिनः ।
बदरीमाश्रमं प्राप्य समागम्य च तावृषी ॥
प्राप्य श्वेतमहाद्वीपं दृष्टवा च हरिमव्ययम् ।
निवृतो नारदो राजंस्तरसा मेरु मागतम् ॥
यद् ब्रह्मा ऋषयश्चात्र स्वयं पशुपतिश्च यत् ।
शेषाश्च विबुधश्रेष्ठा दैत्यदानव राक्षसाः ॥ (महाभा० शांति० अ० ३४३)

Shri Prannath Ji Pustkalay

धारण किये बृंहण पा रहे हैं। इस पदको नारायण–महाविष्णु के एकान्त भक्त ही प्राप्त हो पाते हैं, सब नहीं। कारण, जो प्रथम भगवान् नारायण महाविष्णुके धाममें मुक्ति प्राप्त किये रहते हैं। जिन्हे नारायण के धाम में जाग्रत ज्ञान प्राप्त हो गया रहता है वे वैष्णव जब महाविष्णु का प्रलय होता है तब परविष्णुके इस श्वेतद्वीप को प्राप्त हो जाते हैं। यह विष्णुलोक विशुद्ध सत्त्वगुण से परिपूर्ण है। अतएव वहां काम क्रोधादि हेय गुण नहीं हैं। इस प्रकार अव्याकृत के महाकारण में चारों द्वीपों का वर्णन मिलता है। सुमङ्गला नामकी शक्ति इसी श्वेतद्वीप निवासी विष्णुको अनुरूप पाकर मोह रूप निद्राको रच दिया करती है। जो इस पुरुषको विक्षेप और आवरण में प्रतिविम्बित कर अनन्त विश्वों का कारण बना देती है। विश्वोत्पति का महाकारण सुमङ्गला शक्ति द्वारा यहीं से उठा करता है। इन चारों द्वीपों को मायासे पर वर्णन किया है। जो विष्णु भक्त अथवा रामोपासक निष्काम भावसे अपने इष्ट स्वरूप इनको भजते हैं, वे नश्वर वैकुण्ठ, आदिपुरुषके धाम आदिका लय हो जानेपर इन्हीं नित्यविष्णु के पद को प्राप्त होते हैं।

कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् (ब्रह्मसूत्र ४—४—१०)

ब्रह्मसूत्र (वेदान्त दर्शन) में व्यासजी ने इस श्वेतद्वीप निवासी विष्णु को पर कहा है। एवं रमा वैकुण्ठ, हिरण्यगर्भ आदिके धामों में सायुज्य मुक्ति पाने वाले मुक्त पुरुषों को उन उन अनित्य वैकुण्ठादि के नाश होने पर यहीं पर स्थान प्राप्त होता है, ऐसा लिखा है। अक्षर ब्रह्मके मनस्थानीय सत्स्वरूप का प्रतिभास रूप होनेसे इसे नित्यवैकुंठ कहते हैं। परन्तु वस्तुतः "नित्य वैकुंठ मीने अक्षर" जो कहा है, वह तो सत्स्वरूप के लिये कहा गया है। तथापि उस का प्रतिभास होनेसे यह भी उसी नाम से प्रसिद्ध है। यथा—

तत्र मध्यमपाद मध्यप्रदेशेऽमिततेजः प्रवाहाकारतया नित्यवैकुण्ठं विभाति (त्रिपाद् विभूति महाना० उपनिषद्)

अर्थ—उस मध्यमपाद के मध्य प्रदेश में अमित तेजका पुंज स्वरूप प्रवाह प्रकाशित हो रहा है। जिसे नित्य वैकुंठ कहते हैं। यद्यपि उक्त श्रुतिमें इसे

अर्थ—इस प्रकार नारदजीका श्वेतद्वीप में जाना भी लीखा है और वहां से लौटना भी वर्णन किया गया है। वहां से लौटकर नरनारायणजीके पास जाते हैं। एवं श्वेत द्वीपमें ब्रह्मा विष्णु शम्भु, शेष तथा दैत्य-दानव आदि सबकी उपस्थितिका भी उल्लेख है। इस परसे सुतरां स्पष्ट हो जाता है कि यह श्वेत द्वीप अखंड नहीं है। यदि अखंड और आवागमन रहित होता तो नारद आदि देव, दानव की उपस्थिति और आना जाना नहीं बन सकता था।

Shri Prannath Ji Pustkalay

मध्यम पादमें कहा है जो शून्यमंडल में गिना जाता है, परन्तु शून्यमंडल असीम है अतएव उसके ऊर्ध्व भागमें स्थित वैकुण्ठको मध्यम पादमें कह दिया है। या तो "पादत्रयं परम वैकुण्ठः" [1] इस श्रुतिमें तीनों पादोंको वैकुण्ठ शब्दसे पुकारा है।

---

1 तीनों पादोंको परम वैकुण्ठ कहने का तात्पर्य यह है कि ये तीनों पाद कुंठित नहीं होते। न कभी दुःखका योग है इसलिये इन्हें भी वैकुण्ठ कहा गया है। परन्तु संप्रदायवाले अपनेको इन तीनों पादोंका उपासक नहीं कह सकते। क्योंकि—यदि ये सब त्रिपाद विभूतिके उपासक होते तो शंख, चक्रसे अपने को जलाते नहीं, न नश्वर वैकुण्ठके चिह्नोंको धारण करते। न तो तुलसी दल को भगवान पर चढ़ाते।—क्योंकि तुलसीकी कथाका सम्बन्ध तो नश्वर वैकुण्ठके साथ है। यथा—

वृन्दया शापितो विष्णुः छलनं यत्त्वया कृतम्।
अतस्त्वं स्त्री वियोगं हि वचनान्मम यास्यसि॥
सतीत्वहानिस्तत्पत्न्या यत्र काले भविष्यति।
तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया॥ (देवी भाग० ६–१६–६१)
शंखचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति। (देवी भाग० ६–२३–११)

इत्यादि पुराण वचनोंको देखनेसे भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि वृन्दा किंवा तुलसी को छला विष्णु भगवानने और श्राप भी मिला नश्वर वैकुण्ठपति विष्णु को। यदि ये वैष्णवत्रिपाद् विभूतिके उपासक होते किंवा परविष्णुके उपासक होते तो तुलसीको प्रसादमें क्यों ग्रहण करते? यदि इन्हें त्रिपाद्विभूति जो परम कैवल्य भी कहा जाता है, प्रिय होता अथवा इष्टत्वेन उपास्य होता तो ये शंख, चक्र,, तुलसीदल; तुलसी काष्ठ तथा शालिग्राम शिला के परम भक्त न होते। गरुड़के भोजनको थाल न रखते। एवं विष्णुके चतुर्भुज स्वरूपका ध्यान न करते होते।

'शान्ताकारं भुजगशयनं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।'
'शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।'

इत्यादि पद बोल-बोल कर ध्यान, स्तुति आदि करनेका तात्पर्य तो स्पष्ट है कि—ये वैष्णव उपासक तो इसी विष्णुके हैं परन्तु इन विष्णुका नाश होता है अथवा वैकुण्ठका नाश होना वादीके द्वारा उपस्थित किया जाता है तब बचाव के लिये त्रिपाद् विभूतिका नाम लेने लग जाते हैं। अन्यथा इन्हीं के मान्य ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है कि—

चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे महालक्ष्मीपतिः स्वयम्।
नारायणश्च भगवान् यन्नाम मुक्तिकारणम्॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

अतएव कारण, महाकारण और निर्मल चैतन्य, तीनोंमें भी 'वैकुण्ठ' शब्दको कहा जा सकता है । श्रुतिमें भी इसे दिव्य आकाश में ही प्रकाशित माना है। यथा-

चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मी सरस्वती ।
गङ्गा च तुलसी चैव देव्यो नारायणप्रियाः ।।
आनन्दो द्विविधः प्रोक्तो मूर्त्तश्चामूर्त्त एव च ।
अमूर्त्तस्याश्रयो मूर्त्तः परमात्मा नराकृतिः ।।
स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं प्रोक्तं चतुर्भुजम् ।
परं तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत् त्रयं भजेत् ।।

(अनन्तसंहिता)

अर्थ — वैकुण्ठमें विराजमान महालक्ष्मीपति नारायण स्वयं चतुर्भुज स्वरूप हैं। जिनका नाम मुक्तिका कारण है । इन चतुर्भुज भगवानकी महालक्ष्मी, सरस्वती तथा गङ्गा एवं तुलसी ये चारों देवी पत्नी कही जाती हैं ।

आनन्द मूर्त्त और अमूर्त्त भेदसे दो प्रकारका है । मूर्त्त–साकार आनन्द, अमूर्त्त आनन्द के आश्रित है । जो परमात्मा है वह नर–मनुष्यकी आकृति वाला है । भगवानका स्थूल स्वरूप आठ भुजा वाला है और सूक्ष्म स्वरूप चतुर्भुजाधारी है एवं जो पर स्वरूप है, वह नराकृति द्विभुज स्वरूप है, इस लिये तीनों स्वरूपोंको भजना चाहिये ।

जब ये द्विभुज नराकृति स्वरूप को सबसे श्रेष्ठ और पर मानते हैं एवं विष्णु, महा विष्णु, नारायण आदिसे पर इसे ब्रह्मरूप कहते हैं । यथा—"नरतीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातन" इत्यादि महाभारतका प्रमाण देकर सनातन भी द्विभुज स्वरूप को ही मानते हैं । तब चारभुजा और आठ भुजावाले स्वरूपोंके मोहमें क्यों फंसते हैं, यह नहीं समझ पड़ता । यथार्थ तो यह है कि—इन्हें विष्णु और पर विष्णु तथा परब्रह्म के स्वरूपका रहस्य विदित ही नहीं है ।

"जो बंध बाँधे बापने बेटे चले तिन लार"

एकने जैसा कहा दूसरेने वैसा ही मान लिया । उपासना क्या वस्तु है एवं उसमें अनन्य भक्तिका क्या फल है यदि इस तत्त्वको जानते, तब तो सगुणोपासना में लगते ही क्यों ? यदि इन्हें ज्ञान होता तो—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ।। (यजु० ४०-९२)

इस प्रकार गहरे नरकमें ले जानेवाली निराकार साकार उपासना के मोहमें क्यों पड़े रहते

Shri Prannath Ji Pustkalay

एवमेतत्पदं विष्णोस्तृतीयममलात्मकम् ।
आधारभूतं लोकानां त्रयाणां वृष्टिकारणम् ।। (वि० पु० २–८–१०७)
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् (अथर्व ७—२७—७)
निराधारश्च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डानां परो वरः ।
तत्परश्चापि गोलोकः पंचाशत्कोटि योजनात् ।। (ब्रह्मवैवर्त)

अनेक ब्रह्माण्डों से पर विष्णुका यह वैकुण्ठ स्वरूप 'परम–पद' निराधार स्थित है। इससे पर पचाश करोड़ योजन पर गोलोक धाम है। निराधार वैकुण्ठ में विराजमान विष्णुको विद्वान जानते हैं। इसे विद्वान पंडित आकाश में विस्तृत महान पद कहते हैं। आकाश में व्याप्त होनेसे व्यापी वैकुण्ठ भी कहा जाता है। प्रणालिका में वैकुंठकी मुक्ति व्रज, रासकी प्रातिभासिकी लीलाको लिखा है। बृहद् वामन पुराण तथा गर्गसंहिता में श्रुतियों के स्तुति प्रकरण में प्रातिभासिकी रास लीलाका दर्शन व्यापी वैकुण्ठ में बताया है। "पादत्रयं परम वैकुण्ठः" त्रिपाद् विभूति उपनिषद् में (महाशून्य मंडल, श्वेत द्वीप और प्रातिभासिकी व्रज, रास लीला धाम) तीनों को नित्य वैकुण्ठ कहा है। इस लिये अव्याकृत के महाकारण में तथा निर्मल चैतन्य में जो व्रज, रास लीला है, उसे नित्य वैकुण्ठ अथवा वैकुण्ठ की मुक्ति कह सकते हैं। ये तीनों धाम किंवा स्थान निराधार एवं प्रकृतिसे पर होनेसे व्यापी वैकुण्ठ, गोलोक आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इस कारण से प्रातिभासिकी व्रज लीला और रास लीला के स्थान के लिये वैकुण्ठ शब्द का प्रयोग कर दिया है, वह अनुचित नहीं। साहचर्यसे एक दूसरे नामोंका प्रयोग देखा जाता है। यही कारण है कि-प्रणालिका में इसे वैकुण्ठको मुक्ति कहा है। वस्तुतः प्रतिविम्ब लीला में गोलोक स्वरूप के साथ नारायणजी का आत्मांश था। जब वह प्रतिविम्ब लीला अखंड वर्तमान है तो उसके साथ नारायण जी का आत्म–स्वरूप भी अखंड हो गया। बस, इसी लिये इसे वैकुण्ठकी मुक्ति कहते हैं। श्री जी ने भी यही लिखा है। यथा–

"जिनको दियो ऊधव ज्ञान योगारम्भ, सो क्यों माने प्रेमलीला प्रतिबिंब ।
याही विरह में छोड़ी देह, पहुंची जहां सरूप सनेह ।
या विध मुक्ति इन्हों की भई, वेदऋचा सखियां जो कही ।।"

1 यह विष्णु निर्मल तीसरा पद है एक रमा वैकुण्ठ, दूसरा महाविष्णुका धाम और तीसरा यह। यह हेय गुण रहित है अतः इसे निर्मल कहा गया है। उक्त दोनों लोकों का और अपने लोकका आधारभूत भी है अतः तीनों को बढ़ानेवाला बताया गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

विश्वेषामूर्ध्वभागे च वैकुण्ठश्च निराश्रयः ।
तस्मादुपरि गोलोकः पञ्चाशत्कोटि [1] योजनात्
वायुना धार्यमाणश्च विचित्रः परमाश्रयः ।। (ब्रह्म वैवर्त कृष्णखंड अ० ८४

अव्याकृतस्थ गोलोक

पूर्वोक्त वैकुण्ठसे आगे पचास कोटि योजन ऊपर अव्याकृत के इसी महाकारण में गोलोक धाम है, जिसे नित्यगोलोक का प्रतिभास कहते हैं । यद्यपि

---

[1] यहांपर आजकल मुद्रित प्रतिमें "पंचाशत्कोटियोजनः" कर दिया है, जो लिपिके भ्रमसे अथवा भूलसे हो गया है । क्योंकि इसी प्रकरणमें इसी श्लोकके नीचे "कोटियोजन विस्तीर्णा प्रस्थेन विरजा व्रज" इस प्रकार लिखा है । यदि गोलोक पचास करोड़ योजनका होता तो उसे पुनः कोटि योजनका किसलिये लिखते ? और वह भी उसी प्रकरण में और उसी स्थानमें, इतना भ्रम और इतना अन्तर नहीं पड़ सकता । अतः स्पष्ट होता है कि यह प्रमादवश अथवा तो लिपिदोषसे ऐसा हो गया है । या तो जानबूझ कर भी ऐसा किया जा सकता है । क्योंकि वैकुण्ठसे पचास करोड़ योजन गोलोकको आगे देखकर वैष्णव मुद्रकको दुःख भी हो सकता है, अतः ऐसा किया गया हो। कुछ भी हो हमने शुद्ध पाठ रखा है, जो प्रकरण से भी मिलता है और अर्थ से भी । इसकी पुष्टि नीचे लिखे प्रमाणोंसे और भी सुदृढ़ हो जाती है । यथा—

पातालाद् ब्रह्मलोकान्तं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् ।
तत ऊर्ध्वं च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद बहिरेव सः ।।
तदूर्ध्वं चैव गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।
(ब्रह्मवैवर्त प्रकृतिखंड)

तेषामुपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद्द्विज !
त्रिकोटि योजनायामविस्तीर्णं मण्डलाकृतिम्
तदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।
वैकुण्ठं शिवलोकं तु तत्समं सुमनोहरम् ।।
(ब्रह्मवैवर्त ब्रह्मखंड अ० २)

इस प्रकार जहां भी देखिये, आपको वैकुण्ठसे पचास करोड़ आगे गोलोकका वर्णन मिलेगा । इन श्लोकोंका अर्थ पीछे पृष्ट (९१) में और पृष्ट (१३०) में गत प्रकरणों में लिख चुके हैं, अतः यहां नहीं लिखा गया ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

यहां पर नित्यगोलोक की प्रतिभासिकी लीला है, तथापि नित्यगोलोक का प्रतिभास होने से यह भी सदा अखंड है, अतएव इसे भी नित्य कहते हैं।

यहां पर नन्द, यशोदा, गोपी, ग्वाल बाल, घन उपवन, यमुना, गोवर्द्धन गिरि आदि जितने भी श्रीकृष्ण की बाललीलाके क्षेत्र हैं वे सब वर्तमान हैं। जिन वेदऋचा स्वरूप गोपियों को उद्धवजी ने ज्ञानोपदेश दिया था, वे सब श्रीकृष्णके इसी लीला धामको प्राप्त हुई हैं। श्रीकृष्ण के बाल स्वरूपको 'सेव्य' मान कर भजने वाले श्रीकृष्ण भक्त इसी गोलोकको प्राप्त होते हैं। इस ब्रजलीला का आनन्द पूर्वोक्त वैकुण्ठके आनन्दसे अति विशिष्ट है, तभी तो भगवान विष्णु इसका ध्यान [1] किया करते हैं। रमाके बारम्बार पूछने पर भी विष्णुने अपने जिस आराध्य देव को नहीं बताया था, वह यही स्वरूप था। जिसके स्वरूपानन्द को भगवान जी भी नहीं बता सके। स्वामीजीने पांच वासनाओंको इसी पदका अधिकारी

---

[1] विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः।
ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायन्तः कमपि ध्रुवम् (देवीभा० १—८—४५)
एकदा खलु वैकुण्ठे विष्णुरेकान्तसंस्थितः।
सन्नियम्येन्द्रियगणं मनसा बुद्धिसारथिः॥
कश्चिद् दध्यौ महातेजाः प्रमोदभरनिवृत्तः। (माहेश्वर तंत्रे)

एक समय वैकुण्ठनाथ भगवान विष्णु एकान्त में परमतत्त्वके ध्यानमें निमग्न थे। इतनेमें अकस्मात् लक्ष्मी जी आ पहुचीं। देखते हीं आश्चर्य में पड़ गई। अरे! सारा विश्व तो इनको भजता है क्या इनसे भी कोई परमतत्त्व है जिसके ध्यानमें लगे हैं। समाधिसे निवृत हुए नहीं कि रमाने झट से अपनी जिज्ञासा उपस्थित कर दी। पहले तो विष्णुने बहुत कुछ बहाना किया परन्तु अन्ततोगत्वा जब लक्ष्मीजी रुष्ट होकर तप करने चली गई तो ब्रह्माजीके कहने से विष्णु भगवान उन्हें मनाने गये। अब लक्ष्मीजीने पुनः यही पूछा तो कहना पड़ा।

विषयानन्दसन्तुष्टा लोकाः सर्वेऽपि देवताः।
न प्राप्नुवन्ति कणिकां नित्यानन्द-महोदधेः॥
तस्मान्मदानन्दमूलं नाहं वक्ष्ये कथंचन। (माहे०)

लक्ष्मीजी! विषयानन्द में संतोष माननेवाले बड़े बड़े महापुरुष और देवता भी जिस तत्त्व का एक अणुमात्र भी नहीं जान पाते, उसे साक्षात् मायामूर्त्ति आप किस प्रकार जान सकेंगी? इसलिये मैं अपने आराध्य देवके आनन्दधाम को किसी प्रकार नहीं कह सकता।' इस प्रकार दुष्प्राप्य कहकर नहीं बताया। वही सब तारतम्य की कृपासे आज हम सबको सुलभ है फिर भी उसका लाभ दुर्भाग्यवश नहीं ले पाते।

Shri Prannath Ji Pustkalay

बताया है। यहां पर नित्यगोलोक की सम्पूर्ण लीला का प्रतिभास है जो प्रतिक्षण ब्रह्मानन्द का अनुभव कराता है, अतः इसे भी नित्य कहते हैं।

तेजो मंडल मध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम् ।
स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारण-कारणम् ॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषण-भूषितम् ।
सर्वाधारं च सर्वेशं सर्व-शक्तियुतं विभुम् ॥
ध्यायन्ते वैष्णवाः शाश्वद् देवदेवं सनातनम् ।

(देवीभाग० ९-२-१५,२०,२१)

अर्थ— श्री नारायणजी नारदजीके प्रति श्री कृष्णके स्वरूपका वर्णन करते हैं। 'हे नारद ! असंख्य सूर्यों के प्रकाशको लज्जित करने वाले तेजोमंडलके मध्य में ब्रह्म-तेजको धारण किये स्वेच्छामय सुन्दर द्विभुज स्वरूप श्रीकृष्णजी स्थित हैं और मुरली हाथमें शोभित हो रही है। अनेक भूषणों से अलंकृत सर्व शक्ति पूर्ण सबके आधार स्वरूपको वैष्णव जन निरन्तर ध्यान किया जा करते हैं।

नित्य आत्मा नभो नित्यं नित्यो गोलोक एव च ॥
तदेकदेशो वैकुण्ठो [1] नम्र-भागानुसारकः ॥
तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीला सनातनी ॥

(देवीभाग ९—२—६)

---

[1] अज्ञान होनेसे ईर्ष्यावश परब्रह्म स्वरूप कृष्णतत्त्व को तुच्छ करने के लिये कतिपय रामभक्तों ने अपने अनुकूल कल्पित ग्रन्थों की रचना कर ली है। जिनमें राम, लक्ष्मण भरतादि को सच्चिदानन्दमूर्ति एवं अयोध्या को, साकेत को अखंड बताते हुए श्रीकृष्ण गोलोक आदि को इनका अंशांश बताने का निंद्य प्रयास किया है। यों तो सूर्य पर थूकने वालों का थूक उन्हीं के मुख को अलंकृत करता है। श्री कृष्ण के ब्रह्मरूप की तुलना राम भरत आदि अंशमात्रों के साथ करना और कृष्ण तत्त्व के महत्त्व को न्यून बताना यही उन्हें लज्जित कर देता है। फिर भी भोलेभाले पुरुषों में उल्टा सीधा ज्ञान बताकर उन्हें फंसा लेते हैं। इनके यहां ऋषियों के नाम से कल्पित किये ग्रन्थों में—वसिष्ठसंहिता, शिवसंहिता, अनन्तसंहिता, विश्वंभरोपनिषद्, बृहद् ब्राह्म संहिता, भरद्वाज संहिता, हारीतस्मृति, शुकसंहिता, इनकी कल्पित पराशरस्मृति, अगस्त्य

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ —श्री नारायणजी कहते हैं, हे नारद ! उस श्री कृष्ण धामके आत्मा नित्य हैं, आकाश भी नित्य है, जहांके देश, काल, दिशा, सब नित्य हैं। जहां की ब्रह्म लीलाको सम्पन्न करने वाली प्रकृति भी नित्य है। ऐसे नित्य गोलोक धाम में द्विभुज स्वरूप श्री कृष्णजी विराजमान हैं। इसी गोलोकके निम्न भागके एक देशमें वैकुण्ठ धाम स्थित हैं, जो चार द्वीपों में विभक्त माना गया है।

संहिता आदि अनेक ग्रन्थ हैं। जिनके प्रमाण बोलकर मूर्खों को धोखा देते हैं जो इनके स्वयं रचित ग्रन्थ हैं। कृष्णतत्त्वका उत्कर्ष और महिमा को देखकर इन्हें संकोच होने लगता है कि—हम अंशांश कोटि के अवतारों के पूजने में लगे हैं परन्तु "कृष्णस्तु भगवान् स्वयं" हैं अतः हमारी उपासना की महत्ता सिद्ध नहीं होती। इस कारण इन्होंने कृष्ण तत्त्व को भी श्रीरामचन्द्रजी से समुत्पन्न लिखने का अधम प्रयास किया है,तथापि विद्वत्समाज में इन्हें समादर नहीं प्राप्त हो सका। आर्ष साहित्य में एक भी ग्रन्थ आज तक दृष्टिगोचर नहीं हो सका जिसमें कृष्ण तत्त्व को राम से उत्पन्न माना हो। हां प्रत्युत यही मिलता है कि कृष्ण के अंशांश से सब अवतार हुआ करते हैं। भागवत,गीता,महाभारत अथवा अष्टादश पुराण सभी एक स्वर से इस तथ्य को पुकार रहे हैं कि—कृष्णतत्त्व ही सर्वोपरि है। वैदिक ग्रंथों में भी कृष्णतत्त्व को अद्वितीय ही माना है। योगियों ने भी राम को युंजान योगी माना है परन्तु कृष्ण को युक्त योगी ही लिखा है। सत्य तो यह है कि—इनके स्वयं रचित ग्रंथ भी पूर्वापर विरुद्ध हैं। शुकदेवजी के नाम से भी शुकसंहिता बना डाली। जो शुकदेवजी 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' लिख चुके हैं वे उसके विरुद्ध क्यों लिखेंगे, इतना भी न सूझा और मनमाना प्रकरण लिख कृष्णतत्त्व को राम से छोटा सिद्ध करने की चेष्टा करने लगे। क्या कोई वैष्णव किन्हीं आर्ष प्रणीत मान्य ग्रन्थों से कृष्ण की उत्पत्ति राम से प्रमाणित सिद्धकर बताने का साहस करेगा ?

यद्यपि ये सब ग्रंथ आर्ष ग्रन्थों के—शास्त्र पुराणों के विरुद्ध कल्पित किये गये हैं और अपने स्वार्थ सिद्ध के लिये रचे हैं तथापि साधारण पुरुषों को शिव, वसिष्ठ आदि के रचे ग्रन्थों पर स्वाभाविक विश्वास हो जाता है। वेद, शास्त्र, पुराण आदि आर्ष ग्रंथों में तो न कहीं साकेत का वर्णन है, न कहीं राम से कृष्ण के होने का प्रमाण है। प्रत्युत रामायण, पुराण इतिहासों में तो इनके कपोल कल्पित वचनों का विरोध है। नारद के श्राप से तथा जय विजय के उद्धार के लिये,देवों की प्रार्थना से रामावतार होता है जिसका सम्बन्ध रमावैकुण्ठ के साथ शास्त्र-सिद्ध है। यद्यपि ऐसी बातें कृष्णावतार के साथ भी हैं। परन्तु कृष्णस्वरूप में विविध स्वरूपों का और विविध देवों का तथा गोलोकी एवं पूर्णब्रह्म स्वरूप का आना पृथक्-पृथक् लिखा है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अचिन्त्यमक्षरं यत्तु तुरीयं च सदास्थितम् ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते नरास्तत्रैव तत्पदम् ॥
अनेकसृष्टिरचनाः[1] सन्ति तस्यैव लीलया ।
तदव्ययात्समुद्भूतो राधाकृष्णः सनातनः ॥
एकीभूतं द्वयोरंगं राधाकृष्णो बुधैः स्मृतः ।

(भविष्य पु० प्रतिपर्व सर्ग अ० २५)

अर्थ—अचिन्त्य अक्षर–अव्याकृत के तुरीयपाद-महाकारण स्वरूप में सदा स्थित गोलोक है, जिसको प्राप्त होकर पुनः आवागमन नहीं होता । उसकी लीला मात्र से अनेक सृष्टियों की रचना होती रहती है । इस तुरीय पाद अव्याकृत के महाकारण स्वरूपसे राधाकृष्ण के सनातन स्वरूप का प्रादुर्भाव होता है, जो देखने में युगल स्वरूप होते हुए भी वस्तुतः एक ही अंग स्वरूप हैं । इस परसे भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि–अव्याकृत के तुरीयपाद–महाकारण में जो ब्रज लीला का प्रतिभास है, वहीं से श्रीकृष्ण राधा आदि का प्रादुर्भाव होता है और उसी की लीलामात्र से असंख्य विश्वों की रचना होती रहती है । जिस प्रकार स्वप्न सिनेमा आदि में प्रातिभासिक आनन्द की प्रतीति होती है । उसी प्रकार नित्य गोलोकका प्रतिभास अपने स्वरूप के आनन्द की अभिव्यक्ति यहां पर नित्यरूप से करा देता है । प्रतिभास के आनन्द में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रहती । केवल मूल वस्तु के साथ सापेक्ष निरपेक्ष का अन्तर रहता है। नित्यानन्द निरपेक्ष होता है, तो प्रातिभासिक आनन्द सापेक्ष होता है । स्वप्नन में किसी प्रकार के आनन्द का अभाव नहीं रहता, परन्तु वह स्वप्नवृति सापेक्ष रहता है। बस, इसी प्रकार अव्याकृत स्थित ब्रजलीला में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं।

रामावतार में ऐसे प्रमाणों का अभाव है । अतएव कल्पित ग्रंथों की बातों का मूल्य ही नहीं रहता। सच पूछिये तो साकेत शब्द ही वेदों में नहीं है ।

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः । (मनु० १२-९५)

अर्थ —यों तो इनकी सारी बातें वेद विरुद्ध कल्पित होने से त्याज्य ही हैं । तथापि उन पर समाधान पर्व में विचार किया जायगा ।

[1] इस स्थान में सुमङ्गला शक्ति का भी महाकारण स्वरूप है । सुमङ्गला के पास विक्षेपा और आवरण नाम की दो शक्ति हैं, जो जगत रचती है । जिनमें से विक्षेपा शक्ति सूक्ष्म और स्थूल ब्रह्माण्ड को रच देती है । आवरण नाम की शक्ति विष्णुके चेतन को उपहित (ढंक देना)

Shri Prannath Ji Pustkalay

नित्य गोलोकके समान ही सब बातें यहां भी विद्यमान हैं। परन्तु नित्य गोलोकके द्वारा आभास रूप होनेके कारण 'सापेक्ष' है। प्रणालिका में इसीको वैकुण्ठकी छठी मुक्ति कहा हैं। इसके आगे जो रासलीला है उसका भी समावेश इसीमें हो जाता है, अतः वह भी छठी मुक्ति में ही गिनी जाती है। इस व्रजलीला और रास लीलाको एवं इसके प्रथम जिस पर विष्णुके वैकुण्ठका वर्णन कर चुके हैं, ये सब धाम छठी मुक्तिके अन्तर्गत माने जाते हैं। श्रीजी द्वारा निर्दिष्ट आठ मुक्तियोंमें से इसे वैकुण्ठ की मुक्ति कहते हैं।

कर चेतन छायामें अपनी शक्तिसे व्यावहारिक जीव बना देती है। ये जीव नित्य चेतन नहीं होते किन्तु व्यवहार अवस्था तक ही इनका अस्तित्व रहता है। स्वप्न के जीवों की भांति विश्वके प्रलयमें ये लीन हो जाते हैं। जिस प्रकार कोई वैज्ञानिक नीले रंगके काचमें सूर्यकी किरणोंको रोक कर अपना व्यवहार सिद्ध कर लिया करता है, उसी प्रकार यह आवरण शक्ति चेतनको अपनेमें आच्छादित कर उसे जीवरूप प्रदान कर देती है।'

इस प्रकार विष्णुकी प्रेरणा में रहकर यह सुमङ्गला शक्ति अपनी अन्तरंग विविध शक्तियों से विविध कार्य सम्पादन कराया करती है। जिस प्रकार किसी विशाल कार्यालय में लाखों मनुष्य अपने अपने सहयोगसे उस कार्यालयको चलाया करते हैं। उसी प्रकार इस विश्व रचना रूप महाकार्य में अनेक शक्तियों का सहयोग विद्यमान है।

एवमेतत्पदं विष्णो स्तृतीयममलात्मकम्।
आधारभूतं लोकानां त्रयाणां वृद्धिकारणम्॥
(वि० पु० अं० २—८)

इस प्रकार विष्णुका यह तृतीय पद—वैकुण्ठवासी विष्णु और महाविष्णु दोनों से पर होने के कारण इसे तृतीय विष्णुपद कहा है—निर्मल स्वरूप में स्थित सब लोकोंका आधार स्वरूप है एवं तीनों लोकोंकी वृद्धि का कारण भी है। यद्यपि सुमङ्गला अव्याकृत के कारण स्थानमें कार्य करती है परन्तु यहां पर सुमङ्गला शक्तिका प्रधान कार्यालय होनेसे ही यही सबकी वृद्धिका कारण बन जाता है। अतएव लिखा है।

विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यतो विदुः।
प्रथमं महतः स्रष्टृद्वितीयं त्वण्डसंस्थितम्॥
तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते॥ (नारदीये)

अर्थ—विष्णुके ये ही तीन रूप प्रसिद्ध हैं। यथा—प्रथम महत्तत्त्वको रचने वाला, दूसरा इस ब्रह्माण्ड में स्थित एवं तीसरा अव्याकृत के महाकारण रूप तुरीय में। जो इन तीनोंको जानता हैं वह मोक्षका अधिकारी बन जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अव्याकृत के निर्मल चैतन्य में रासलीला

तुरीयपादस्तु तुरीत–तुरीयं तुरीयातीतं च (त्रि. श्रुति)

चतुर्थ–महाकारणमें तुरीय और तुरीयातीत इस प्रकारके दो भेद श्रुतिने वर्णन किये हैं। अव्याकृतके तुरीय पादमें व्रजलीलाको बतलाया गया उसमें नित्य गोलोकके प्रतिभासका आनन्द अभिव्यक्त होता है। पूर्वोक्त व्रजलीलासे (गोलोक) से पर तुरीयातीत–निर्मल चैतन्यमें नित्यरास लीलाका प्रतिभास है। अतएव उसे प्रातिभासिकी रासलीला कहते हैं।

विद्यानन्द तुरीयांशाः सर्वेषु पादेषु व्याप्य तिष्ठन्ति (त्रिपाद्विभूति उप०)

चतुष्पाद विभूतियुक्त ब्रह्मके विद्यापाद–सबल ब्रह्म, आनन्दपाद–केवल ब्रह्म और तुरीयपाद–सत्स्वरूप, ये तीनों पाद सब पादों में ओत प्रोत हैं। इसलिये सबल ब्रह्म तथा केवल ब्रह्म दोनों पादोंकी रासलीला का प्रतिभास अव्याकृतके निर्मल चैतन्य में अभिव्यक्त होता है। दूसरी बात—अव्याकृतमें जो कुछ भी अभिव्यक्त होता है वह सब चिदानन्द लहरीके द्वारा आता है। चिदानन्द लहरी में चिद्रूपाक्षर (शबल ब्रह्म) और केवल ब्रह्म दोनों के चिदानन्द धर्मका घनीभाव है, इसलिये उसके द्वारा उतरने वाला प्रतिभास दोनों (सबलिक और केवल) स्वरूपों का ही हो सकता है। इसलिये अव्याकृत के निर्मल चैतन्यमें जो प्रतिभास का आनन्द है वह बहुत ही महत्वपूर्ण और अलौकिक आनन्दयुक्त है।

श्री वल्लभाचार्य, श्री चैतन्य महाप्रभु आदि महापुरुषों ने इसी को अखण्ड रास करके वर्णन किया है। उपरोक्त लीला के पूर्णभक्तों को उक्त लीला में स्थान प्राप्त होता है। इसप्रकार अव्याकृत में व्रजलीला और रासलीला दोनों अखण्ड वर्तमान हैं। इसलिये इन दोनों नित्य गोलोक और नित्य वृन्दावन की लीला भी कहते हैं, परन्तु यह प्रातिभासिकी लीला ही है।

नास्य ज्ञानं ब्रह्मसृष्टि बिना कस्यापि जायते।
अक्षर ब्रह्म हृदये वास्तवीं विद्धि शांकरि॥
नित्यं वृन्दावने या च सा स्मृता प्रातिभासिकी।
व्रजभूम्यां च या लीला सा प्रोक्ता व्यावहारिकी॥ (आलमन्दार सं०)

अर्थ—शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं 'हे गिरिजे! रासलीला के त्रिविध रहस्यको सुनकर मनुष्य भवसागर को तर जाता है। परन्तु यह रहस्य जो

Shri Prannath Ji Pustkalay

सृष्टिके हृदय में बड़ा सौभाग्य हो तो जमता है। इसे तो ब्रह्मसृष्टि ही ग्रहण करके जीवों को प्रदान कर सकते हैं। अक्षर ब्रह्मके हृदय में जो रासलीला अनादि कालसे अखंड वर्तमान है उसे वास्तवी रासलीला कहते हैं। नित्य वृन्दावन में जो रास लीला होती है उसे प्रातिभासिकी कहते है। वास्तवी लीलाका प्रतिभास होनेसे अन्वर्थक नाम प्रातिभासिकी है। यों तो इसे अन्य नामोंसे भी पुकारते हैं। एवं इस विश्वमें व्रजभूमिका में जो रासलीला हुई है, उसे व्यावहारिकी कहते हैं।

रहस्यं त्विदमेतस्य प्रकृतेः परमुच्यते।
प्रकृत्या खेलतस्तस्य लीलाऽन्यैरनुभूयते॥

(स्कन्द पु० विष्णुखंड)

अर्थ — इस नित्यलीलाका वर्णन करते हुये व्यासजी कहते हैं कि इस रहस्य को सब नहीं जान पाते। कारण यह तो प्रकृतिसे पर तत्त्व है इसके अधिकारी तो उत्तम कोटिके आत्मा ही होते हैं। सब मनुष्य तो प्रकृतिके साथ लीला करने वाले श्रीकृष्ण की लीला को ही अनुभव कर पाते हैं, जो व्यावहारिकी लीला कही जाती है। यथा—

सर्ग स्थित्यप्ययो यत्र रजः सत्त्व तमोगुणैः।
लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी॥
वास्तवी तत्स्वसंवेद्या जीवानां व्यावहारिकी।
आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित्॥

(स्कन्ध पु० विष्णुखंड)

अर्थ — जिस प्राकृत विश्व में सत्त्व, रज और तमोगुणके द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है, वहांकी कृष्णलीला भी वास्तवी और व्यवहारिकी भेदसे दो प्रकार की है। इस प्राकृत विश्वको वास्तवी लीला भी स्वसंवेद्य है उसका रहस्य तारतम्य ज्ञान के द्वारा ही समझमें आता है अन्यथा नहीं। और वास्तवी श्रीकृष्णलीला के ज्ञानके विना विश्वकी व्यावहारिकी लीला का रहस्य भी नहीं खुलता एवं व्यावहारिकी लीला के द्वारा ही वास्तवी लीलाका यथार्थ ज्ञान होता है। इस प्रकार ये नश्वर जगतकी लीला भी जीवों को समझ में नहीं आती, तब प्रकृति से पर प्रातिभासिकी और वास्तवी लीला को अनधिकारी जीव न समझ पायें, यह स्वभाविक है। इसीलिये शिवजी ने कहा है कि इसका ज्ञान ब्रह्मसृष्टि के विना दूसरे जीवों को प्राप्त नहीं हो सकता। इसे तो तारतम्यके ज्ञाता सद्गुरुके अनुग्रहसे ही जाना जा सकता है, अन्यथा नहीं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सात्त्वतां स्थानमूर्धन्यं विष्णोरत्यन्त दुर्लभम् ।
नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थितम् ॥
(पद्मपुरा० पातालखंड अ० ६९)

वृन्दावनं महापुण्यं सर्वपावन-पावनम् ।
सर्वलोक-बहिर्भूतं निराधारं परिस्फुरत् ॥ (सनत्कुमार सं०)

अर्थ —सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों से पर भगवान विष्णु के वैकुंण्ठादि सात्त्वत स्थानों में मूर्धन्य-सर्वोत्तम, विष्णु को भी अत्यन्त अभीष्ट-प्रार्थनीय, परम पावनों को भी पावन करने वाला नित्य वृन्दावन नाम का धाम पूर्वोक्त सब लोकों से अलग एवं निराधार प्रकाशित हो रहा है। जिसके ध्यान मात्रसे पामर जीव भी भवपार हो जाते हैं। इस प्रकार अव्याकृत के निर्मल चैतन्यमें स्थित 'वृन्दावन धाम' की प्रातिभासिकी लीला को शास्त्रों में विस्तरशः वर्णन किया है, जिसका अति संक्षेप में यहां पर दिग्दर्शन कराया गया है।

सबलिकमें चिदानन्द लहरी

पूर्वोक्त अव्याकृत-प्रकृति पुरुष से पर सबलिक ब्रह्म के सूक्ष्म पाद-स्थान में इस चिदानन्द लहरी का स्थान है। जो शिवाकार मंच पर मणिद्वीप के मध्य में विराजमान है। यथा—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपवाटी परिवृते-मणिद्वीपे नोपोपवनवति चिन्तामणि गृहे।
शिवाकारेमंचे परमशिवपर्यंकनिलयां भजन्ति त्वांधन्याःकतिचन चिदानन्दलहरीम्॥
(सौन्दर्यलहरी शंकराचार्यकृत)

अव्याकृत-प्रकृति पुरुष से पर सबलिकके सूक्ष्मपाद में एक महान सुधा का सिन्धु है जिसके मध्य में मणिद्वीप[1] है। उस मणिद्वीप के मध्य नाना दिव्य

[1] कैलासादधिको लोको वैकुण्ठादपि चोत्तमः ।
गोलोकादपि सर्वस्मात् सर्वलोकोऽधिकः स्मृतः ॥
बहुयोजन विस्तीर्णो गम्भीरस्तावदेव हि ।
मणिद्वीपस्य परितो वर्तते तु सुधोदधिः ॥
(देवीभाग १२-१०-४,६)

Shri Prannath Ji Pustkalay

रत्न खचित वेदिका (चबूतरा) पर एक शिवाकार मंच के ऊपर चिदानन्द लहरी विराजमान है। चार शिवों के[1] चार पाये हैं और पांचवें परम शिवका

अर्थ — कैलाश, वैकुण्ठ, पूर्वोक्त गोलोक आदि सब से अधिक दिव्य शोभा युक्त मणिद्वीप है जिसके चारों ओर सुधा सिन्धु आवृत शोभा ले रहा है। उसके मध्य में पञ्च शिवके मंच पर चिदानन्द लहरी विराजमान है।

चिदानन्दमयो सा हि सर्वकारणकारणा।
सा नित्यरूपा परमा नित्यसिद्धा निरामया ॥
अक्षरान्तर्हृदाकाशरंगे ब्रह्माण्डनाटकम् ।
रमयन्ती सूत्रधारमात्मानं स्वप्रकुर्वती ॥
चिद्भागेऽक्षरलीलाया दर्शनं सम्भविष्यति ।
आनन्दांशे शुद्धलीला–दर्शनं चेति मे मतिः ॥

(पुराण सं० अ० ११–२,३,५)

यही सब कारणोंका मूल–अक्षर ब्रह्मके हृदयाकाश में असंख्य विश्वों के उदय-लय की रंगभूमि का सूत्रधार बनकर विश्व–रूपमें खेलती है और अपने मूल रूपमें भी नित्य चिदानन्द मयी है। इसके चिदंश में अक्षरकी लीलाका दर्शन है अतएव अनेक विश्वों के उदय-लय का महाकारण बना करती है एवं आनन्दांशमें विशुद्ध लीलाका आनन्द विविध प्रकारसे व्यक्त होकर ब्रह्मानन्दकी अनुभूति प्रदान करता है, अतः इसे चिदानन्द लहरी कहते हैं।

[1] नादशिव, ब्रह्मशिव, सदाशिव, परमशिव और शिव, ये पांचों शिवों के नाम हैं। किसी-किसी ग्रन्थ में इनको महाप्रेत नामसे भी लिखा है। यथा :—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते पंच महाप्रेताः पादमूले व्यवस्थिताः ॥

(ज्ञानार्णव तंत्र)

इसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इनको पायारूप लिखा है। ये ही पांचों प्रणव की पांच मात्रा हैं। इस प्रकार विश्व रूपके ये ही पांचों देव हैं, इन्हीं पर विश्व स्थित है अतः इन्हें पाया कह दिया है। सुमंगला का मंच एक रूपक है, वह यह विश्व ही हो सकता है। इच्छा शक्तिका विराजना विश्व की स्थिति है। इस प्रकार पांच शिव और चिदानन्द लहरी की कल्पना अध्यात्म और अधिभूत दोनों पक्षमें घट जाती है। तन्त्रोंने भी इसे माना है। यथा–

"शिवात्मके महामंचे महेशानोपवर्हणे ।
मृतकाश्च चतुष्पादःकाशीपुश्च सदा सदाशिवः ॥"

(भैरवया ले)

Shri Prannath Ji Pustkalay

आसन बना कर बैठी है। उस मञ्चमें चारों शिवों की चार शक्तियों की चारों पाटी और पांचवीं व्यापिका [1] शक्ति का बुनाव है।

चिद्रूपा (शबल ब्रह्म) का चिदंश और केवल ब्रह्म का आनन्दांश ये दोनों अंशोंका ऐक्य चिदानन्द लहरी का स्वरूप है। उपरोक्त दोनों अंशोंका जो घनीभाव है, उसीको 'चिदानन्द लहरी' कहते हैं।

जिस प्रकार नदीका प्रवाह दोनों तटोंको स्पर्श करता हुआ चलता है, उसी प्रकार दोनों अंशों को अभिव्यक्त करती हुई इसकी लीला है। इसी को सुमंगला शक्ति भी कहते हैं। यह सर्वोपरि 'इच्छा शक्ति' का स्वरूप है। इसमें दो भाव हैं। जो भाव-वृत्ति चिदानन्द को स्पर्श करती है, उसे चिदानन्द लहरी कहते हैं। जो भाव-वृत्ति सृष्टिकी इच्छामें प्रवृत है, उसे सुमंगला कहा जाता है। इसीका कार्य क्षेत्र है जिसे अव्याकृत, सद्रूपा माया, मूलप्रकृति, पुरुषप्रकृति आदि नामोंसे पूर्व प्रकरण में लिख चुके हैं। सद्रूपा मूल प्रकृति का नाम ही अव्याकृत है। उसमें सत्स्वरूप का प्रतिभास पुरुष रूपसे अभिव्यक्त है, अतएव उसे पुरुषप्रकृति भी कहते हैं। अर्धनारीश्वर शिवकी भांति एकत्र दोनों स्वरूपों का ऐक्य ही प्रकृतिपुरुष कहा जाता है। इस प्रकार अव्याकृतका सम्पूर्ण क्षेत्र सुमंगला का उल्लास रूप है। जब [2] सुमंगला अपने इच्छा रूपको व्यक्त स्वरूप में देखना चाहती है तब अव्याकृत-सद्रूपा माया में प्रविष्ट हो कर इस विश्वरूप प्रपंच को रचवा देती है। यथा—

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्याः निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतो भद्रा सर्वमङ्गल-मंगला॥

(ब्रह्म वैवर्त प्रकृति खडं २—९६—११)

---

[1] **उद्गारिणी पालिका च तथा संहारिकाऽपि च।**
विशाला व्यापिका चेति शक्तयः पंच कीर्तिताः (माहेश्वरतंत्र २२—१०)

[2] **परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी।**
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रह विग्रहा॥ (ब्रह्मवै० प्र. ख. २)

सुमंगला का अव्यक्त स्वरूप ही अव्याकृत है। जब उसकी इच्छा से इसमें क्षोभ का संचार होता है तभी असंख्य विश्वोंका कारण बन जाता है। इसे निम्न रूप में समझिये :— सुमंगला तो इच्छा शक्ति है। सद्रूपा माया जिसे अव्याकृत कहते हैं कार्य क्षेत्र है। सुमंगला

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ —स्वयं भगवान श्रीकृष्णजी कहते हैं—हे सब मंगलों के मंगल स्वरूप सुमंगला ! तुम सर्ववीज स्वरूपा हो,सर्व पूज्या एवं सर्व तन्त्र स्वतन्त्र हो,तुम सर्वज्ञा हो। तुम अपनी इच्छा मात्र से सब कुछ हो जाती हो। तुम्हीं सबकी जननी स्वरूप मूल प्रकृति हो। इस प्रकार सुमंगला के विषय में बहुत कुछ उल्लेख मिलता है।

स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः।
तस्मिन्नेव लयं सर्वं यान्ति तत्र भवन्ति वै ॥

(ब्रह्म पुराण अ० २१–४३)

इस सुमंगला की इच्छा मात्र से सब कुछ हो जाता है। यही मोहरूपी निद्रा को उत्पन्न कर विश्व नाटक को व्यक्त कर देती है, अतः इसे मूलप्रकृति भी कहते हैं। इसी में सबका लय भी हो जाता है अतः अव्याकृत भी कही जाती है।

की इच्छानुसार 'योगमाया' व्यवस्था करती है। महामाया सत्त्वः रज, तम गुणात्मिका(मेटर रूप) व्यक्त होने वाली है और माया उपरोक्त शक्तियों के नियन्त्रण में रहकर 'स्थूल' विश्व की व्यवस्था को ठीक रखती है। उसमें जो चेतन अंश है, वह पुरुष का प्रतिभास है। दूसरा जो मिथ्या चेतन है, वह व्यवहार मात्र है और महामाया से उदय पाने वाला है। इस प्रकार यह सारा प्रपंच माया रचित है, परन्तु मायाके अन्तर्गत प्रकारों का तारतम्य है, उसे जाने बिना मनुष्यका अज्ञान नहीं छूटता।

उदाहरण रूपमें आप इसे यों समझिये—इच्छाशक्ति–सुमंगलाने अपनी इच्छाको अव्याकृत में–अव्यक्त रूप चिदाकाश में–विकसित देखना चाहा। बस, शून्यमंडलमें योगमाया (जिसमें पांच शक्ति निहित हैं) को व्यवस्था सौंप दी। योगमायाकी प्रेरणा मात्रसे महामाया–रोधिनी शक्तिने अपने ही में विश्वको व्यक्तरूप दे दिया अर्थात् स्वतः विश्वरूप बन गई। जब व्यक्त विश्व स्थूलकी ओर बढ़ा तो आगेका सम्पूर्ण कार्य माया को सौंप दिया। माया गुणात्मिका सृष्टिकी व्यवस्था करने लगी। इस विश्वकार्य में काल निरंजन निरीक्षक (सुपरवाईजर) का काम करता है। जो कार्य उसे उचित नहीं लगता, उसको नष्ट करा देना कालनिरंजन शक्तिका काम है। इस भांति यह सब प्रपञ्च सुमङ्गला की इच्छाका परिणाम मात्र है। जिस अव्याकृतके चारों स्वरूपों का वर्णन पीछे कर चुके हैं वह अव्याकृत सुमङ्गला शक्तिका इच्छा स्वरूप क्षेत्र है। उसमें दो भाव हैं—प्रकृतिभाव और पुरुषभाव। प्रकृति भावमें जो-जो कार्य हैं वे सब सुमंगलाकी इच्छासे सम्पन्न होनेवाले हैं। पुरुषभावके जो-जो धाम हैं, वे सब मुक्त जीवों के सुखस्थान किम्वा मुक्तिधाम हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

कूटस्थस्य हृदाकाशात् प्रादुर्भूता सुमंगला ।
निद्रामुत्पादयामास महामोहमयीं दृढाम् ॥ (पु० सं०)

वस्तुतः कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदय स्थानीय सबल ब्रह्म के चिदाकाश से प्रकट होकर स्वयं मोहमयी निद्रा द्वारा स्वप्न स्वरूप[1] विश्व को रचने वाली यही सुमंगला शक्ति है। यों तो इसके चिदानन्द भाव में जो वृत्ति है उसके द्वारा ब्रह्मानन्द का अनुभव भी लिया करती और देती भी है। इसके चिदानन्द स्वरूप में अनन्त शक्ति उदित हैं और सबलिक, केवल को लीलारस को स्पर्श करने में इसे अधिक सुविधा प्राप्त है। यही कारण है कि चिदानन्द लहरी के धाम में जो-जो आत्मा पहुंचते हैं उन्हें उभय विधका आनन्द प्राप्त होता है।

इति श्री सद्धर्मसिद्धान्तवागीश श्रीकृष्णदत्तशर्मशास्त्रिविरचिते विराटपट दर्शने, अक्षरपुरुषे—अव्याकृत चिदानन्दलहरी धामादिस्वरूप निरूपणं नाम नवमं पर्व परिपूर्णम् ॥

---

[1] शुद्ध सत्त्वप्रधाना हि निर्मला ज्ञानरूपिणी ।
तत्र यः प्रतिबिम्बोऽभूदक्षरस्य परात्मनः ॥
तमाहुः पुरुषं देवि श्रुतिसिद्धान्तवादिनः ।
स एव कालरूपेण प्रकृतिक्षोभकारकः ॥
तस्मान्नारायणो जज्ञे स एव प्रणवाभिधः ।
शब्द ब्रह्ममयं प्राहुः तमेवागमवेदिनः ॥
आदौ शब्दात्मकं विश्वं ततश्चार्थमयं भवेत् ।
(माहेश्वर तंत्र)

प्रकृतिर्हर्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ॥
सतोऽभिव्यंजकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् ।
(भागवत ११–२४–१९)

अर्थ — यह शुद्ध सत्त्वप्रधाना कही जाती है अतः इसमें चेतनका आभास पुरुषरूप होकर जगत को बढ़ाने लगता है। इसमें जो चेतन का प्रतिभास है उसीका नाम प्रणव ब्रह्म है। वही जब और आगे बढ़ता है तो विश्व का उत्पादक महाविष्णु रूप हो जाता है। यथा—

पञ्च ब्रह्ममये मञ्चे शयानः पुरुषो महान् ।
महाविष्णुस्वरूपेण स्वप्ने ब्रह्माण्डमीक्षते ॥ (पुराण सं ११-४१

अर्थ – पांच ब्रह्मरूप शिवों का एक मञ्च–पलंग है, जिसपर इसका निवास है–यही महा विष्णुरूप होकर स्वप्नमें इस विश्वको रचा करती है। इसीको सुमंगला शक्ति कहते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

नित्य गोलोक

सबलिक ब्रह्म के कारण स्वरूप में यह नित्य गोलोक धाम आता है। जो पूर्वोक्त चिदानन्द लहरीसे पर और नित्य चेतन शोभायमान है। इसको तत्त्वज्ञ पंडितों ने माया के शीश पर स्थित बताया है। यथा—

मायाधेनोः पुच्छभागे सविरा सप्त सागराः।
हृदये व्याप्य वैकुण्ठं मूर्ध्निगोलोक मुत्तमम् ॥
शिखाग्रांशमिवाश्रित्य धाम यच्चाक्षरे ध्रुवम्।
त्रिषु नित्यानि रूपाणि योज्यन्ते वैष्णवेषु वै ॥

(गौतमीय तन्त्रे)

इस सुमंगला शक्तिके व्यापक क्षेत्र (अव्याकृत स्वरूप) को मायारूपी गौ कहा है। उस माया रूपी गौ के पुच्छ–भाग में [1] सात सागरों सहित सप्त द्वीपा पृथिवी–विराट स्थित है। हृदय में श्वेतद्वीप–व्यापी वैकुण्ठ शोभायमान है। मायारूपी गौ (सुमंगला) के शिर पर अर्थात् ऊपर सबलिक का कारण स्वरूप नित्य गोलोक है एवं शिखाके अग्रभाग के समान चिद्रूपाक्षर (सबल ब्रह्म) का धाम है जो नित्य अखंड वर्तमान है। वैष्णव जन इन तीनों धामों को नित्य कहते हैं।

इस नित्य गोलोक में साढ़े तीन कोटि सखी वृन्दके सहित तो किसीके मत से सौ सौ [2] कोटि गोपियों के यूथों के साथ श्री राधा कृष्णजी विहार करते

---

[1] ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा (तैत्तिरीय श्रुति) श्रुतियों में भी जगत की प्रतिष्ठा ब्रह्मके पुच्छ भाग में ही मानी है। तैत्तिरीय में ब्रह्मको एक पक्षीके रूप से वर्णन करते हुए विश्वको उसी (पक्षी) के पुच्छ भाग में बताया है। प्रणव ब्रह्म, अक्षर ब्रह्मका सबसे अन्तिम भाग है जो विश्वों के उदय लय का क्षेत्र है और यही क्षेत्र सुमंगलाका भी पुच्छ भाग है।

उपाधिविलये याते केवलात्मावशिष्यते।
देहत्रये पंचकोशा अन्तःस्थाः सन्ति सर्वदा ॥
तं च कोशपरित्यागे ब्रह्मपुच्छं हि लभ्यते।
नेति नेतीत्यादि वाक्यैर्मम रूपं यदुच्यते ॥

(देवीभाग० ७-३४-३०,३१)

[2] **एकदा राधया सार्धं गोलोके श्रीहरिःस्वयम्।**
विजहार महारण्ये निर्जने रासमंडले ॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

हैं। वस्तुतः यहां पर असंख्य गोपी ग्वाल बाल आदि हैं। कोटि शब्द तो उपलक्षण मात्र है। तीन साढ़े तीन और सौ शब्द अनन्त संख्या परक हैं। अनन्त गोप, गोपी, यमुना, वन-उपवन, अनन्त पशु पक्षी गण से शोभायमान यह श्रीकृष्णजी का नित्य गोलोक धाम है। इसी के द्वारा अव्याकृत में तथा आदि पुरुष के महाकारण में एवं इस विश्व में कृष्णलीला उतरा करती है।। इसी का प्रतिभास अव्याकृत में भी नित्य गोलोक कहा जाता है और उसके द्वारा पुनः आगे बढ़ जाती है।

तत्प्रिया प्रकृतिश्चाद्या राधिका प्राणवल्लभा।
तत्कलाकोटिकोटयंशा दुर्गाद्या त्रिगुणात्मिका।।

श्री कृष्ण की प्राण वल्लभा राधिकाजी प्रकृति स्वरूपा हैं, जिनके कोटिम अंशांश से असंख्य त्रिगुणात्मिका दुर्गा, काली, लक्ष्मी आदि शक्तियां विश्व में लक्षित होती हैं।

गोलोकाभ्यन्तरे ज्योतिरतीव सुमनोहरम्।
एवं रूपं परं विभ्रद् भगवानेव एकशः।। (ब्रह्म वै०)

इस नित्य गोलोक धाम में परम कमनीय दिव्य स्वरूप भगवान श्री कृष्णजी अपने प्रकाश पूर्ण स्वरूप से सबमें ओत प्रोत हैं। सबके मनोरथ पूर्णातपूर्ण हो रहे हैं। इस ब्रज मंडल में वन-उपवन, गोप-गोपी, ग्वाल बाल, यमुना गिरि पर्वत माता यशोदा, नन्द-उपनन्द, वृषभान आदि सब यहीं से आये थे और यहीं पर पुनः जाकर अखंड रूप से वर्तमान हैं।

द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषिणम्।
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमंत्रभम्।।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम्।
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम्।।

(देवीभाग० ९–११–१५,१६)

वृन्दारण्ये च विरजा सुभगा राधिका समा।
तस्या वयस्याः सुन्दर्यो गोपीनां शतकोटयः।।

(ब्रह्म वै० अ० २–२३:२४)

अर्थ —एक समय राधिकाजी के साथ श्री कृष्णजी विहार करने के लिये निर्जन रास-मण्डल में जा पहुंचे, उनके साथ में सौ कोटि सखियां विद्यमान थीं, इस प्रकार सौ कोटि सखियोंके होनेका भी प्रमाण मिलता है। गोलोक विविध हैं अतः भिन्न-भिन्न संख्या हो सकती है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ – इस गोलोक धाम में द्विभुज स्वरूप श्री कृष्णजी मुरली हाथमें लिये हुए किशोर अवस्थाके जैसे इच्छामय रूपमें विराजमान है। प्रकृति–अव्याकृत से पर श्री कृष्णके इस ब्रह्ममय स्वरूपकी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देव एवं महर्षिगण नमन किया करते हैं तथापि जान नहीं पाते। कारण यह स्वरूप निर्गुण, निर्लेप एवं साक्षी रूपसे वर्तमान है।

इस व्रज लीलाको कूटस्थ अक्षर ने अपने विभूति स्वरूपके चिदन्तः करणमें अखंड रूपसे धारण कर लिया है। तबसे इसमें ब्रह्मानन्द लीला का आनन्द निरतिशय हो गया है। इसके प्रथम यहांका आनन्द गणितानन्द था, परन्तु अक्षरके द्वारा धारण किया गया, तबसे निरवधिक ब्रह्मानन्द हो गया है। क्योंकि व्रजमंडल में ब्रह्मलीला हुई थी, उसके द्वारा यहां पर (नित्य गोलोक में) भी ब्रह्मानन्द का निरन्तर उदय हो गया है। इसी को व्रजकी पांचवीं मुक्ति कहते हैं। जो जीव तारतम्यके द्वारा इसको धारण कर चिन्तवन करेंगे, वे अन्तमें इसी पदको प्राप्त होवेंगे।

'ध्यायन्ति सदा कृष्णं मुक्तास्ते नात्र संशयः।'

कृष्णे रताः कृष्णमनुस्मरन्ति रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये।
ते भिन्नदेहाः प्रविशन्ति कृष्णं हविर्यथा मंत्रहुतं हुताशनम्॥

(ब्रह्म पु० अ० ६८–५)

सबल ब्रह्मका महाकारणः–

नित्य गोलोक से पर चिद्रूपाक्षर (शबलिक) का यह नित्य वृन्दावन स्वरूप महाकारण स्थान है, जिस में महारास अखंड वर्तमान है। अक्षरातीत श्री कृष्ण परमात्मा ने केवल ब्रह्मके द्वारा अक्षरको ब्रह्मानंदरस का जो अनुभव कराया था उसे अक्षर ने अपनी जाग्रत बुद्धि द्वारा सबल वृत्तिके अन्तःकरणमें धारण कर लिया है। अतएव वह सबल ब्रह्मके महाकारण में [1] अखंड वर्तमान है।

---

[1] योगमाया ने रास मंडल को कहां पर रचा था, इस विषय में मतभेद है। कुछ महात्मा केवलधाम में केवल की स्वामिनी (आनन्द योगमाया) के कारण स्वरूप में रास मंडल को बताते हैं तो कुछ लोग अव्याकृतके निर्मल चैतन्य में रासमंडल की रचना मानते हैं।

"कछुक नींद कछुक सुध, रास को सुख लियो या बिध"

इस प्रकार योगमाया में आधी निद्रा भी मानी गई है आधा स्वप्न भी है। रासमंडल को ब्रह्माण्ड भी कहा है "ये तीन ब्रह्माण्ड हुए जो अब ऐसे हुए न होसी कब" यह भी अखंड

Shri Prannath Ji Pustkalay

यद्यपि यह योगमाया के रासमंडल का अनुरूप स्वरूप पश्चात् अखंड हुआ है, परन्तु इसके ब्रह्मानन्दका महत्त्व केवल धामकी नित्यलीला से कहीं अधिक है। केवल धामकी लीलामें लवमात्र आनन्दका उदय रहता है परन्तु इसमें तो सदा ही पूर्ण ब्रह्मानन्द उदित है। पूर्ण ब्रह्मके आवेश द्वारा जो रास रचा गया था, वह अक्षर ब्रह्मकी इच्छा पूर्ण करने के लिये था। अतः उसमें पूर्ण ब्रह्मानन्द का उदय था। फिर इसे अक्षरने जाग्रद् बुद्धि द्वारा धारण किया, अतएव उसका महत्त्व केवलके आनन्दसे कहीं और अधिक बढ़ गया। क्योंकि वह तो पूर्ण ब्रह्मानन्द वास्तवी लीला का स्वरूप हो गया, अतः शास्त्र में लिखते हैं :—

"आनन्दरूपा सामग्री सर्वाऽखण्डसुखात्मिका
न मायागुण संसर्गः कदाचित्कुत्रचित्प्रिये ।।"

श्री युगलदासजी ने इसीको रासको चौथी मुक्ति कहा है, जो यथार्थ है। जीवों को वही मुक्ति प्रदान की जा सकती है जो ब्रह्मसृष्टि के द्वारा ब्रह्मानन्दसे पूर्ण बन चुकी हो। अन्यत्र भी :—

वृन्दावनाश्रया लीला साधु सर्वत्र दुर्लभा ।
गुचाद्गुहचतमाऽगम्या नित्याक्षरहृदि स्थिता ।। (पुराण सं०)

भूमिका में लागू नहीं पड़ता। 'दुनामा में नूहतोफान की मुराद' रास लीला बताया है। रास लीला का होना रात्रि में हीं पाया जाता है। तोफान और रात्रि का होना केवल–धाम में संगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि वे दोनों मिथ्या हैं।

नौतन खेल या रासको सो तो कबहुँ ना भग।
खेले साथ सुपन में योगमायाके रंग ।।
तुम देखो साथ सुपन में खेल खेले ज्यों

इत्यादि वचनों का विचार पूर्वक मनन करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि रासमंडल केवल धाममें नहीं रचा गया किन्तु योगमाया द्वारा अन्यत्र किसी स्वतंत्र भूमिका में पृथक् रचा गया है। कारण, सुमंगला के अन्तर्गत ही कोई भी माया खेल रच सकती है, उससे पर तो माया का खेल हो नहीं सकता और न सुमंगला से पर निद्रा का अस्तित्त्व है। अतः सुमंगला से पर रास मण्डल का रचा जाना युक्ति पूर्ण प्रतीत नहीं होता। हां, रास मण्डल योगमाया के द्वारा रचा गया, इसलिये योगमाया उसका कारण हो सकती है। जो कारण हो वह कारण स्थान भी कहा जा सकता है। योगमाया के कारण का अर्थ चतुष्पाद व्यवस्था नहीं

Shri Prannath Ji Pustkalay

यद् ब्रह्म परमैश्वर्यं नित्य वृन्दावनाश्रयम् ।
कृष्णधाम परं तेषां वनमध्ये विशेषतः ।।

(पद्म पु० पाताल खंड अ० ६६—११)

गुणातीतं तु तद्धाम सुन्दरं सर्व दुर्लभम् ।
युगलं क्रीडते तत्र नित्यधाम्नि सुखास्पदे ।। (सनत्कुमार सं०)

अर्थ—अक्षर ब्रह्मके हृदय रूप सबल ब्रह्म के महाकारण में अखण्ड वृन्दावन के मध्य होने वाली रासलीला नित्य अखण्ड और सब प्रकार दुर्लभ है। उसका रहस्य गूढ़ातिगूढ़ होने से दुष्प्राप्य है। पूर्ण ब्रह्मके सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का जहां पर नित्य निरन्तर उदय हो रहा है,ऐसा यह सुन्दर धाम गुणों से पर होने से सब प्रकार इसे दुर्लभ बताया गया है। इसी नित्य सुखधाम में युगल(श्रीराधाकृष्ण)स्वरूप निरन्तर क्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार वृन्दावन की रास लीला को सबने उत्तम माना है। जब रासलीला वास्तवी स्वरूप में अखंड हो गई, उसे जितना भी महत्त्व दिया जाय थोड़ा है। तारतम सागर और शास्त्रों की प्रणालिका एवं उसके गर्भित रहस्य को मनन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि—अखण्ड रासलीला का स्थान सबल ब्रह्म के महाकारण में ही निश्चित होता है। केवलधाम तो परमधामका प्रतिभास अथवा प्रतिबिम्ब स्वरूप है वह तो रसानन्द लीला का धाम है। वहां तो नौ खण्डों में नौ रस उदित ही हैं वहां पुनः अखण्ड क्या करना था। अक्षरब्रह्म ने जो वस्तु देखी है उसे तो वह अपने ही अन्त करण में धारण कर सकता है। इस प्रकार से देखा जावे तो भी सबलिकमें ही रास अखण्ड हो सकता है, केवल ब्रह्म में नहीं। यही बात श्रीजी ने भी व्यक्त की है। यथा—

है और न केवलधाम में स्थूल, सूक्ष्म, कारण का क्रम है। वहां पर तो केवल एक स्वरूप केवल ब्रह्म है। योगमाया केवलधाम की स्वामिनी शक्ति है। उसने अपने रचे रासमंडल में केवल धाम के ऐश्वर्य पर परमधाम के ब्रह्मानन्द को उतारा था। इसलिये रासमंडल का औपचारिक सम्बन्ध केवल के साथ हो सकता है। भारत में काम करनेवाली यूरोपियन कम्पनी इंग्लैंड की कम्पनी कही जाती है। मिथ्या विश्व में मिथ्या स्वरूपों द्वारा की गई लीला को ब्रह्मसृष्टि के साहचर्य से ब्रह्मलीला कहते हैं। इसी प्रकार केवल की स्वामिनी के द्वारा लाये गये उसके धाम के आनन्द के साहचर्य से इस भी केवल धाम में कहें तो यह हो सकता है। क्योंकि ब्रह्मानन्दके उतरने का द्वार केवल ब्रह्म को ही मानना पड़ेगा। नवरंग स्वामी तो रासमंडल को क्षर अक्षर की सन्धि में बताते हैं, तथ्य क्या है इसे ब्रह्ममुनि निर्णय करें। श्रुति में लिखा है—

Shri Prannath Ji Pustkalay

'ये असल नूर मकानकी नूरसागर साबित ।
देखो नूरके तरंग रास भिस्त कही तित ।।'

'वृन्दावनस्य दिव्यस्य यद्दले दक्षिणे स्थितम् ।
तत्र रासमहालीला नित्याऽखण्डा हि वर्तते ।।' (बाराहसं०)

यों तो सबलिक और केवल में कोई विशेष अन्तर नहीं है, दोनों एक ही भूमिका में हैं, परन्तु जब तत्त्वतः विचार किया जा रहा है तो जो वस्तु जहां पर है और जिस भाव के अन्तर्गत विद्यमान है उसे वहीं पर मान लेना उचित है। उदाहरण के लिये हम परमधाम को ले सकते हैं। सारा परमधाम पूर्णब्रह्म के साम्राज्य में है, परन्तु यमुना के पूर्व तरफ के वन तथा घाट अक्षर के कहे जाते हैं। इसी प्रकार सबलिक धाम और केवल धाम दोनों एक हैं पर जब लीलाभेद को लेते हैं तब उनके अधिकारों को भी पृथक् मानना चाहिये। मुक्ति स्थान का निर्णय करते हुए शिवजी पार्वती से कहते हैं हे देवि ! चिदाभासमय कोटि का कोई जीव भले ही नित्यलीला विहारी पूर्ण ब्रह्म के विरह में विभोर बन जावे, ब्रह्मसृष्टि की भांति प्रेम दशा में निमग्न हो जावे, तो भी पूर्ण ब्रह्म के दिव्य धाम को प्राप्त नहीं होगा, अपितु अक्षरब्रह्म के आभास के अधिकारानुसार कूटस्थ अक्षर के हृदय में अखण्ड रूप से वर्तमान नित्यवृन्दावन को प्राप्त होकर ब्रह्मलीला का अनुभव करता हुआ वहीं निवास पायेगा। एवं पुनः आवागमन में नहीं पड़ना पड़ेगा। यथा—

"मूलाऽविद्या प्रथमपादे नान्यत्र" "तत्राधस्तनमेकं पादमविद्याशबल भवति"
(त्रिपाद वि० उप०)

मूलप्रकृति रूप जो अव्याकृत है अविद्या—माया का प्रपंच उसी के अन्तर्गत है, अन्य पादों में नहीं। चारों पादों में जो सबसे अधस्तन पाद—नीचे का पाद—अव्याकृत है, उसी में अविद्या शबलित सब प्रपंच लीला होती है। उसके ऊपर के पादों में नहीं। कारण—

उपरितनपादत्रयं शुद्धबोधानन्दलक्षणममृतं भवति
(त्रिपाद वि० उप०)

ऊपर उदित तीनों (शबलिक, केवल तथा सत्स्वरूप) पाद शुद्धज्ञान और आनन्द से पूर्ण अमृत स्वरूप हैं। इस प्रकार मानें तो भी रासमण्डल की रचना सुमङ्गला से आगे नहीं हो सकती। अतः अव्याकृत के निर्मल चैतन्य में मानना चाहिये। केवल धाम में जो नित्य वृन्दावन लीला है, उसी को योगमाया ने रासमंडल में उतारा था और उसी पर ब्रह्मलीला को पूर्ण करने के लिये ब्रह्मधाम का सुख व्यक्त हो रहा था। इसलिये इसे केवल में कहते हैं। अन्यथा

Shri Prannath Ji Pustkalay

यदयं विरही जातो नित्यलीलाविहारिणि ।
न पश्यति तथा चापि नित्यलीलाविहारिणम् ॥
तस्माद् वृन्दावने देवि कूटस्थहृदयङ्गमे ।
लीलामनुभवन् तिष्ठेत् पुनरागतिवर्जितः । (माहेश्वर तन्त्रे)

इस प्रकार नित्य वृन्दावन में ही मुक्ति का होना भी लिखा है। इस अवतरण पर से भी रासका अखण्ड होना शवलिक में ही पाया जाता है ।

"क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतम्" (भाग ८—२२—२०) ये तीनों जगत क्रीड़ाके लिये रचे गये हैं, ऐसा भागवत में लिखा है, वह भी युक्ति संगत नहीं रह जाता। क्योंकि जगतकी रचना तो चिदानन्द लहरी के ऊपर हो नहीं सकती, चाहे योगमाया हो या कालमाया। उस के द्वारा ब्रह्माण्डों की रचना तो अव्याकृत में ही हो सकती है। योगमाया के मण्डलमें निद्रा को भी माना है, जो अखण्डमें नहीं हो सकती। "रास का सुख है ख्वाब" इत्यादि वचनों की संगति भी स्वप्नमें ही घट सकती है। क्योंकि ख्वाब तो निद्राके आधीन ही रह सकता है और निद्रा आवरण के बिना नहीं होती। इसलिये रास मण्डल की रचना किसी स्वतंत्र स्थान में ही हो सकती है, केवल धाममें नहीं। यदि रासमण्डल केवल धाम में होता तो उसमें केवल धाम के शक्ति समूह का सामिल होना भी पाया जाता। वृहद् वामन पुराणमें रास लीलाका स्थान नित्यगोलोक में बताते हुए उसे केवल धामके आश्रित माना है। यथा—

ब्रह्मानन्दमयो लोको नित्यगोलोकसंज्ञकः ।
निर्गुणोऽनाद्यनन्तश्च वर्तते केवलेऽक्षरे ॥

ब्रह्मानन्द को व्यक्त करने वाला यह रासमण्डल रूपी ब्रह्मानन्दमय लोक जिसे नित्यगोलोक कहते हैं आदि अन्त रहित एवं निर्गुणस्वरूप अक्षरमें केवल के आश्रित वर्तमान है। इस प्रकार नित्यगोलोक को केवल ब्रह्मके आश्रित माना है। जो जिसके आश्रित होता है अथवा जिसकी सत्तामें रहता है उसी में गिना जाता है। जिस प्रकार परमधाम में सात घाट और सात वन एवं अक्षर ब्रह्मकी लीला सब पृथक् हैं तथापि उसे परमधाम में ही गिना जाता है। उसी प्रकार रासलीला नित्यगोलोक में होते हुए भी केवलधाम मे गिनी जाती है। अतः लिखा है कि—

स्थानं नित्यविहारस्य ख्यातं वृंदावनं वनम् ।
यत्र नित्यं विहरति कृष्णो राधिकया सह ॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

सबलब्रह्म[1] का निर्मल चेतन

यह हम प्रथम लिख चुके हैं कि 'तुरीयपादस्तु तुरीयतुरीयं तुरीयातीतं च' चतुष्पाद विभूतिके चतुर्थ पादमें तुरीय और तुरीयातीत दो भाव रहते हैं। बस, तुरीयातीत का ही नाम निर्मल चैतन्य कहा जाता है। सबल ब्रह्मका निर्मल चैतन्य ही चिद्रूपाक्षर का मुख्य धाम है। यहांपर सबलिक ब्रह्म अपनी अनन्त शक्तिओं के सहित विराजमान हैं। लक्ष्मी जी युक्त बाल स्वरूप अवस्था है। बाल स्वरूप असंख्य शक्तियां इनके धाम में परिचारिका रूपमें वर्तमान हैं। यह अक्षर ब्रह्मके चिदंश का कोटिवां भाग का स्वरूप है। जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म परमधाम में सर्वातीत–स्वरूप श्रीपूर्ण ब्रह्म के दर्शनार्थ जाते हैं। उसी प्रकार ये भी केवल धाम में केवल ब्रह्मके दर्शनार्थ जाते हैं। श्री कृष्ण के तीसरे स्वरूपके द्वारा जीवों को जो मुक्ति प्रदान की गई है उसका स्थान यहीं पर माना गया है। अतः इसे तीसरी मुक्ति कहते हैं। यही बात महात्मा युगल दासजी भी लिखते हैं :—

तिन ऊपर कारण मांहि नित्यगोलोक है ।।
तिन आगे महाकारण में रहस अनूप है ।
तिन आगे चिदमें तृतीय कृष्णको रूप है ।।

सबल ब्रह्मके कारण स्वरूप में नित्य गोलोक और महाकारण स्वरूप में अखण्ड रासलीला एवं निर्मल चैतन्य में श्री कृष्णके तृतीय स्वरूपका धाम है, इस प्रकार यथाक्रम तीनों का वर्णन युगल दासजी महाराज ने भी किया है।

---

[1] 'सबलिक' शब्द के विविध निर्वचन और अर्थ होते हैं। बलेन सह वर्तते इति सबलः किम्वा समानमक्षरसदृशं बलं यस्य स सबलः। सोऽस्यास्तीति सबलिकः। सबलिक इति वक्तव्ये सबलमस्यास्तीति सबलिकः। अर्थ—जो बल के सहित वर्तमान हो, जो बलवान हो उसे सबल कहते हैं। अथवा अक्षर ब्रह्म के अनुरूप—समान जिसमें बल विद्यमान हो उसे भी सबलिक कहा जाता है। माया से युक्त वृत्ति को सबल कहते हैं। वह वृत्ति जिसमें निरन्तर कार्य करती रहे उसे भी सबलिक या सबल कहते हैं। चित्रविचित्र पदार्थों के मिश्रण को भी सबल कहा जाता है अपने स्थूल पाद—अव्याकृत नाना चित्रविचित्र विश्वों को रचने की वृत्ति जिसमें विद्यमान हो उस ब्रह्म को सबल ब्रह्म कहा जाता है। इस प्रकार सबलिक शब्द के विविध अर्थ पाये जाते हैं। जो उक्त ब्रह्म में घट जाते हैं अतः मायाशक्ति समन्वित ब्रह्म को सबलिक अथवा सबल ब्रह्म कहा जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

यहां पर 'तृतीय कृष्ण को रूप है' इस पद में 'तृतीय' शब्द रहस्य गर्भित है। श्रीजी ने 'सतगुरु मेरा श्यामजी' इत्यादि में तथा खुलासा में इस तथ्य को खूब स्पष्ट किया है। कृष्ण के तीसरे स्वरूप का संकेत श्री निजानन्द स्वरूप के प्रति है। क्योंकि निजानन्द प्रभु ने जो कार्य किया है, वह जागनी व्रजलीला के रूप में तीसरे फेरे की बात है। महात्मा लोगों ने इस तत्त्व को कई प्रकार से स्पष्ट किया है। यथा—

"पहिली आरति व्रजमें वासा, सब सखियन मिलि देखे तमासा।
दूसरी आरति रास में आये, अक्षर मनोरथ पूर्ण कराये॥
तीसरी आरति श्याम सुहाये, सुर असुरन धनी सबन मिलाये।"

व्रज, रास और जागनी इस प्रकार श्रीकृष्ण की त्रिधा लीला है। व्रज में बाल स्वरूप तो रास में किशोर स्वरूप में एवं इस तीसरे इण्ड में निजानन्द प्रभु के रूप में है। इस भांति तीनों अवस्था की तीनों ही लीला विद्यमान हैं। परन्तु इस तत्त्व को सब नहीं समझ पाते। तीसरी आरती में 'श्याम' स्वरूप होकर सुर और असुर दोनों को तारतम्य देकर कृतार्थ किया। इसी कार्य को श्रीजी स्वरूप में होकर और भी अधिक रूप से पूर्ण किया है। जो कार्य निजानन्द प्रभु का अधूरा रह गया था उसे श्रीजी ने भलीभांति पूरा किया है। इस बात को वेद में भी लिखा है। यथा—

'एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु'।

(अथर्ववेद कां ४ सूक्त १ मन्त्र ६)

अर्थ—(एष) यह निजानन्द स्वरूप (इत्था बहुभिः साकं जज्ञे) जिस प्रकार बहुतों को साथ लेकर यहाँ आयेगा उसी प्रकार बहुतों को साथ लेकर जायगा। परन्तु (पूर्वे अर्धे बिसिते) प्रथम जहां से आयेगा वहां जाने के लिये आधा द्वार खुलेगा भी तो (ससन्नु) सबके सब सोते ही रह जायेंगे परन्तु जाग न सकेंगे।

यद्यपि निजानन्दात्मक ज्ञान को पाकर मानव शीघ्र ही अखंड पद का अधिकारी बन जाता है परन्तु जागनी का नियत समय नहीं आ पाया था, अतः सबके सब न जाग सके। अन्यथा —

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।

(अथव कां ४ सूक्त २—१)

जो श्याम स्वरूप निजानन्द प्रभु प्राणी मात्रको आत्मा प्रदान करने वाले थे। जो जीव मिथ्या कोटिके थे उन्हें भी जाग्रत आत्मबल देकर नित्य कोटि के जीवों में सुमार करने वाले होने से इन्हें 'आत्मदा' कहा गया है। जिनको माया घेरे रहती थी उन्हें भी जाग्रत ज्ञान का बल देकर बलवान बना देते थे। अतः 'बलदा' कहा

Shri Prannath Ji Pustkalay

गया हैं। (विश्वे) सब प्राणी (यस्य) जिस निजानन्द प्रभुको (प्रशिषम्) ज्ञानरूप शासनको (उपासते) उपासना करते हैं एवं (यस्य) जिसके ज्ञानको (देवाः) देवता भी धारण कर परम पदके अधिकारी बन जाते हैं।' इस 'श्याम' स्वरूप निजानन्दके द्वारा सुर असुर सबको आत्मकल्याण का मार्ग प्राप्त होगा, इस प्रकार वेदमें भी लिखा है।

इस प्रकार कृष्णके तीसरे 'श्याम' स्वरूप का अधिष्ठान सबलिक के निर्मल चैतन्यमें वर्णन किया है। जो सुन्दरसाथ प्रेमलक्षणा भक्तिको यथार्थ न ग्रहण कर सकेंगे, जो सेवाभाव को भी न ले सकेंगे, किंतु केवल धर्मको ग्रहण कर साधारण जीवन व्यतीत करते रहेंगे, वे सब इसी निर्मल चैतन्य में मुक्तिपद प्राप्त करेंगे। क्योंकि-जिन्होंने सत्य धर्मको निभाया है, वे कभी चौरासी लाख योनिमें नहीं जा सकते किन्तु जागनी व्रजलीलाकी इस तीसरी मुक्तिको पायेंगे।

इसके आगे केवल ब्रह्मका धाम है। यद्यपि सबलिक धाम और केवल धाम एक ही भूमिका में आमने सामने है, बीचमें अखण्ड यमुना का प्रवाह चलता है। तथापि सबलिक ब्रह्मकी लीला में और केवल ब्रह्मकी लीलामें स्वरूप भेद है। केवल धाममें केवल रसकी नौ भूमिका नौ खण्डों में पृथक् पृथक् रसका अनुभव कराती हैं परन्तु इस सबलिक धाममें चिदानन्द रूपसे सदानन्दका अनुभव होता है। जो आनन्द सदंशके द्वारा अभिव्यक्त होता है उसे सदानन्द कहते हैं। 'यो यदंशः स तं भजेत्' जो जिसका अंश होता है, वह उसीको प्राप्त होता है, इस प्रकारसे श्रुतिमें भी स्पष्ट किया है। अधिकतर चेतन परम्परा सबलिक ब्रह्मके द्वारा ही आगे बढ़ा करती है। क्योंकि अव्याकृत में जो अनन्त विश्वोंका प्रवाह उदय लय पाया करता है उन सबका परात्म तो सबलिक को ही माना गया है। "ये माया ब्रह्म सबलिक जो त्रिगुणकी पर आतम" इस प्रकार श्रीजीने भी त्रिगुणका मूल सबलिकके आगे नहीं माना। जिस अव्याकृतमें हम अनेक मुक्त पुरुषोंकी मुक्तिका वर्णन करते चले आ रहे हैं. वे सब धाम (प्रणव धाम, काल पुरुषके धाम, शून्य मण्डल, परविष्णुका वैकुण्ठ सतलोक, श्वेत द्वीप, प्रातिभासिक व्रज रासकी लीलाका धाम) इसी सबलिक ब्रह्मके चतुर्थ विभूतिपाद-अव्याकृतमें इसके द्वारा चेतन प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि-अव्याकृतको सबलिक का स्थूल कहा करते हैं। अव्याकृतमें जितना भी चेतन है, वह सब इसका प्रतिभास है। सुमङ्गलामें प्रतिबिम्बित सबलिकका चेतन ही अव्याकृतकी विभूति कही जाती है। यद्यपि अव्याकृतमें विश्वों का उदय-लय होना भी प्रवाह रूपसे नित्य है, तथापि दूसरा-जो पुरुषभाव कहा जाता है, उसमें मुक्ति सुखका जो आनन्द है, उसे तो नित्य माना ही है। इस पुरुषभावको अथवा नित्यसुखको सबलिक ब्रह्मके चेतन द्वारा अभिव्यक्त होना मानते हैं। अतएव सबलिक तक ही जीवसृष्टि का मूल पहुंचता हैं उसके आगे नहीं। यही कारण है कि श्रीजीने मुक्तिओंका क्रम

Shri Prannath Ji Pustkalay

सबलिक ब्रह्म ही तक माना है। सबलिक से पर सत्स्वरूपके महाकारणमें तथा निर्मल चैतन्यमें जो दो मुक्तिस्थान वर्णन किये हैं, वे तो केवल ब्रह्मसृष्टिके द्वारा प्राप्त होने वाले धाम परमधामकी लीलाके तादृश स्वरूप हैं।

केवलधाम

तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि। (भा० ४-७-५२)

सबल ब्रह्म के निर्मल चैतन्यसे नौ लाख कोश के अन्तर पर केवल ब्रह्मका धाम है। सबलिक और केवल ब्रह्म दोनों एक ही भूमिका में हैं। दोनों धामों के मध्य साढ़े चार लाख कोश के अन्तर पर यमुनाजी बहती हैं। यमुनाजी के दोनों किनारों पर सात-सात वन शोभित हैं और वनों के नाम के रत्नों से खचित सात-सात घाट भी शोभा ले रहे हैं। केवलधाम के पूर्व तरफ यमुना और यमुना से पूर्व सबलिक ब्रह्म का धाम है। केवलधाम में नौ खण्डों का वर्णन आता है। आठ खण्ड तो आठों दिशा में हैं और नौवां खण्ड मध्यभाग में पद्मराग मणिका शोभित है। नौ खण्डों में नौ रस को नौ भूमिका हैं। मध्य खण्ड में दस[1] भूमिका (खण्ड) युक्त एक विशाल मन्दिर है, जिसके मध्य में चौंसठ स्तम्भों का एक अद्भुत मंडप है। जिस मंडप के मध्य में स्वर्णखचित एक सिंहासन पर अपनी स्वामिनी शक्ति से युक्त केवल ब्रह्म विराजमान हैं।

यत्र कैशोरवयसं नित्यमानन्दविग्रहम्।
गति नाट्यकलालापं स्मितवक्त्रं निरन्तरम्॥ (पद्म पु०पा.खं.)

निजधाम रसानन्दस्वप्रकाशमहोज्वलम्।
कालिन्दी यत्र कोटयर्कभास्वद्रत्नतटोन्नता॥ (माहेश्वर तन्त्रे)

[1] दस रस की जो अभिव्यक्ति है वह केवल धाम से अपर धामों में नहीं होती। केवल धाम में नौ खण्डों में नौ रस पृथक्-पृथक् पूर्ण विद्यमान हैं, परन्तु केवल ब्रह्म का जो मूल मन्दिर है वहां पर दसों रस की अभिव्यक्ति होती है अतः उसे दस भूमिका वाला वर्णन किया है। वस्तुतः केवल ब्रह्म के धाम में केवल रसानन्द का ही उल्लास सर्वत्र ओत प्रोत है, अतः सबको सर्वत्र यथेष्ट रूप में उसकी प्राप्ति होती रहती है, इसी कारण इसको रसरूपी ब्रह्म कहते हैं। यथा—

तस्माल्लीलारसमयो रसो लीलामयः स्मृतः।
द्रवीभूतः प्रियाधारः प्रियाभावात्कं रसम्॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

केवल ब्रह्मको और उनकी आनन्द योगमाया (स्वामिनी) को किशोर अवस्था युक्त माना गया है। आनन्द स्वरूपमें दोनों ही इस धामके अधिपति हैं। नाना शक्ति समूहसे शोभित नाना प्रकारके रास, विलास, राग-रंग, कला ज्ञान, प्रसन्नताको प्रकट करनेवाले विविध साधनोंसे सम्पन्न यह केवलधाम प्रकाशोज्वल भासित हो रहा है। जहां पर करोड़ों सूर्यो के प्रकाशको धारण करने वाले रत्नोंसे खचित कालिन्दीं के दोनों उन्नत तट शोभा पूर्ण भास रहें हैं। नाना रत्नमणियों की चित्रविचित्र भूमिका चिन्तवन मात्रसे मनोरथको पूर्णकर केवल ब्रह्म के रसानन्द का आस्वादन कराती है। रसानन्द लीला का प्रवाह प्रतिक्षण उल्लास को प्रकट करते हुए सबको ब्रह्मानन्द रसमें विभोर किये रहता है। सदा सर्वदा रसानन्द लीला ही नवों खण्डों में नवों रससे सबको किये रहती है, ऐसा यह केवल धाम है। यद्यपि केवल धाममें भी ब्रह्मानन्द लीलाका ही रस है, परन्तु पूर्ण ब्रह्मके कोटिन अंशका अंश-लवमात्र है। इसलिये रसानन्द लीलाको ही नवों खंडों में नौ रस के रूपमें वर्णन किया है। जब जिस खंडमें जाते हैं उसी रस का आस्वाद होता है। यहांपर केवल रसरूप ब्रह्म ही सर्वत्र ओत-प्रोत हैं। इन की शक्ति का नाम आनन्द योग माया है। यथा—

'रसो वै ब्रह्म ब्रह्म वै रसः' तस्मादेकाकी न रमते सः (बृह० १-४-३)

'स एवात्मा द्विधा भवति पतिश्च पत्नी च (श्रुति)

आनन्दरूपा सामग्री सर्वाऽखंडसुखात्मिका।
न मायागुणसंसर्गः कदाचित्कुत्रचित् प्रिये !॥
द्रवीभूतः प्रियाधारः प्रियाभावात्मकं रसम्।
प्राधान्यं तत्र नेच्छन्ति घनीभूतादपि प्रिये !॥

(माहेश्वर तंत्रे)

यह केवल रसरूप ब्रह्म होनेके कारण ही केवल ब्रह्म कहा जाता है। द्रवीभूत और घनीभूत दोनों भावों में रसरूप ब्रह्म ही सर्वत्र ओतप्रोत है। केवल धामके यावत् पदाथ हैं, वे सब आनन्दस्वरूप हैं। केवल ब्रह्ममें न चतुष्पाद कल्पना है, न सूक्ष्म कारण के क्रमका झगड़ा है। वहांपर तो जो कुछ भी है रसरूप है। इसलिये धामका नाम भी केवल और ब्रह्मका नाम भी केवल ब्रह्म है। नवों[1] रस की नवों

[1] **श्रृंगारहास्यकरुणा रौद्र वीरभयानकाः।**
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ शान्तोऽपि नवमो रसः।

इस प्रकार साहित्य शास्त्रोंमें नौ रस माने हैं परन्तु केवल धामके रस इनसे विलक्षण हैं। यहां पर तो भक्ति रस और वात्सल्य भावको भी इसमें ग्रहण किया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

भूमिका अपने अपने स्थायी भावोंसे पूर्ण हैं । विभाव, अनुभाव और स्थायी भावके रूपमें जिधर देखो, उधर ही ब्रह्मानन्दका लवानन्द सर्वत्र अभिव्यक्त हो रहा है ।

भावनां सर्व भावेभ्यः समुत्सृज्य समुत्थितः ।
अवशिष्टं परं ब्रह्म केवलोस्मीति भावय ॥ ९५
वाचामतीत विनयो विषयाशादशोज्झितः ।
परानन्दरसाक्षुब्धो रमते स्वात्मनात्मनि ॥ ९६
(अन्नपूर्णोप०)

यहां पर जो रसानन्दकी अभिव्यक्ति है, वह सब भावनाओं से पर केवल ब्रह्मस्वरूप होती है । यहां पर प्रत्येक आत्माको केवल ब्रह्म स्वरूपका अवभास होता है। इस केवल धाममें परमानन्द शान्त रसमें विभोर आत्मा आत्मा के ही साथ केवलानन्द [1] रसका अनुभव करता है। उसे जो कुछ भी अभिव्यक्ति होती है, जो कुछ रसानन्दका साक्षात्कार होता है, सर्वत्र केवल ब्रह्म स्वरूपका ही साक्षात्कार है। केवल ब्रह्मानन्दकी अभिव्यक्ति होती है । इसलिये इसे केवलधाम कहते हैं ।

"कं' सुखं वलयतीति केवलः ।' क उपपद रहते वल संवरणे धातुसे केवल शब्द निष्पन्न होता है । जिसका अर्थ होता है आनन्दका अगाध समुद्र, सुखका वातावरण, रसानन्दका व्यापक आकाश, जहां पर आत्मा को आनन्द ही आनन्द घेरे रहे उसे केवल कहते हैं । यहां पर पूर्ण ब्रह्मका पूर्ण आनन्द ही प्रतिबिम्बित

---

[1] **ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ।**
त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ॥
(भाग० ११–५–१६)

जो इस केवल धामके आनन्द को नहीं जानते, और मूर्ख भी नहीं है किन्तु त्रिवर्गधर्म; अर्थ काम में लगे हैं, वे थोड़े से त्रिवर्ग के लोभ में अपने आत्माका घात करते हैं। क्योंकि धर्म, अर्थ और कामको सेवन करने में ही अपनेको कृतार्थ माननेवाले अनादि आत्मा को भी नरकमें डाल देते हैं। इस प्रकार इस केवलके आनन्दको विशेष महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन किया है। एवं जो उसके स्वरूप को नहीं जानता और अपने को कृतार्थ मान रहा है वह आत्मघाती इस तत्त्वसे वंचित रह जाता है। इस प्रकार शुकदेवजी की दृष्टि में कैवल्यतत्त्वसे वंचित पुरुष चाहे जितना साधन निष्ठ क्यों न हो, वह भवसागरके पारको प्राप्त नहीं कर पाता । इसीलिये निजानन्द स्वामी तारतम्य ज्ञानके द्वारा ब्रह्मसोपान पर्वों के यथार्थ समझने की आवश्यकता प्रदर्शित करते थे ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

है। पूर्ण ब्रह्मके आनन्दकी मात्रासे ही केवलधाम अपार रसानन्दका भंडार प्रपूर्ण हो रहा है। "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति श्रुतेः" वस्तुतः ब्रह्मानन्दका अगाध सिन्धु तो पूर्णब्रह्म ही है परन्तु उस पूर्ण ब्रह्मके आनन्दकी एक मात्रासे ही यह केवलधाम [1] ब्रह्मानन्दमय हो रहा है। तभी तो इसे श्रुति तथा पुराणोंमें 'आनन्द ब्रह्म' करके लिखा है। "मायापरं भवेद् ब्रह्म तत्परं ब्रह्मकेवलम्" इस प्रकारसे-वज्रसूची वेदान्त में शंकराचार्यजीने भी इसे मायासे पर जो सबलिक ब्रह्म है उससे भी पर केवल स्वरूप ही माना है। अन्य ग्रन्थों में तो केवल धामका विस्तृत वर्णन मिलता है। यथा-

गुणातीतं सरस्तत्र पूर्णप्रेम स्वरूपकम् ।
यत्र वृक्षादिपुलकैः प्रेमानन्दाश्रुवर्षणम् ।।
पूर्णानन्दरसामृतं पूर्णप्रेमसुखार्णवम् ।
तत्र कैशोरवयसं नित्यमानन्द विग्रहम् ।
सदानन्दपरं ज्योतिः दलितांजलि सन्निभम् ।
नखेन्दुकिरणश्रेणि पूर्ण ब्रह्मैककेवलम् । (वाराह संहिता)

---

[1] इस केवलधाममें केवल रसानन्द लीला है वही विविध रूपमें प्रतीत होती है। अव्याकृत, सबलिक की भांति इसके धाममें चतुष्पाद व्यवस्थाका क्रम नहीं है और न उसमें स्थूल, सूक्ष्म, कारणकी कल्पना है। यही कारण है कि रासमण्डल को केवल में अखण्ड न करके सबलिक अखंड किया है। इस रहस्य को शुकदेवजी ने गुप्त रूपसे भाग० (११-२८-३६) में भी रख छोड़ा हैं। यथा—

एतावानात्मसम्मोहो यद् विकल्पस्तु केवले।
आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलम्बो न यस्य हि ।।

अर्थ—यही तो आत्मा का अज्ञान है कि जो इस केवल ब्रह्म के स्वरूप में भी अन्य भावों की कल्पना करने लगते हैं जिस केवल स्वरूप में एक आत्मानन्द के अतिरिक्त अन्य भावों का अवलम्बन ही नहीं हो पाता, उस रसानन्द धाममें अन्य की कल्पना किस प्रकार की जा सके? इसलिये रासलीला का अखण्ड होना सबलिक के महाकारण में माना गया है। पादत्रयात्मक ब्रह्म कैवल्यं शाश्वतं परम्) श्रुति निर्देश करती है कि अव्याकृत से पर जो त्रिपाद विभूति है, में वह सब शुद्ध-बुद्ध स्वरूप होने से नित्य अखंड है और माया रहित होनेसे केवल स्वरूप है। इस प्रकार देखा जावे तब तो सबलिक को भी केवल का ही स्वरूप माना जा सकता है। इस प्रकार यह रहस्य अत्यन्त गहन प्रतीत होता है। जिसके अन्तरात्मा में जो भरे वही ठीक है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ — इस केवलधाममें गुणों से पर ब्रह्मानन्द रसका एक सरोवर भी है जो प्रेमस्वरूप ही माना गया है। जहांपर सर्वत्र सुरद्रुम वन वेलि लता नाना प्रकार के सौंदर्य को बृंहण प्रदान करते हैं। प्रत्येक पदार्थ प्रेमानन्द रससे परिपूर्ण प्रेमरसको बढ़ाता है। जहांपर आनन्द स्वरूप केवलब्रह्म किशोर [1] जैसो अवस्था से युक्त प्रकाश मान हैं। इस प्रकार यह केवलधाम भी अनन्त शोभासे पूर्ण दिव्य स्वरूप अखण्ड स्थित है। इस धामकी लीलाको परमधामकी लीला जैसी मानी है। कुछ ग्रन्थों में तो इसको परात्पर वर्णन किया है। इस केवलधामसे पर अक्षरब्रह्म के मन स्थानीय सत्स्वरूपका धाम है जिसे खेलकी वृत्ति भी कहते हैं। एवं जिसको सर्वकारण कारण, चतुष्पाद विभूतिका नियता, विभूतिब्रह्म, आदि विविध नामों से स्मरण किया है। वह भी चतुष्पाद रूप में दिव्य शोभा ले रहा है। जिस के तीन पादों में तो धाम परमधाम की लीला है और चतुर्थ पादमें यह केवलधाम और सबलिकधाम का वर्णन आता है।

इति श्री सद्धर्मसिद्धान्तवागीश श्री कृष्णदत्तशर्मशास्त्रिविरचिते विराटपट–दर्शने, अक्षरपुरुषे–गोलोक सबलिक केवलधामादि–स्वरूप निरूपणं नाम दशमं पर्व परिपूर्णम् ॥

---

[1] इस तृतीय ब्रह्माण्ड में केवल धामकी शक्तियों के आनेका भी उल्लेख मिलता है। परम धाम से खेलमें आनेवाली ब्रह्ममुनियोंकी अन्तर्वृति ने केवल धामके शक्ति समूहको ही अधिष्ठान बनाकर विश्व को देखा है, इस प्रकार का वर्णन मिलता है। ब्रजभूषणजीने अपनी वृत्तान्त मुक्तावली में इस लीलाका वर्णन विस्तार के साथ किया है, जो मनन करने योग्य है। वेद, शास्त्र और पुराणों में बहुधा केवल ब्रह्मको अक्षरातीत ब्रह्म के समान ही वर्णन किया गया है। अतः अमुक अंश में केवल धामका और परम धामका वर्णन कहीं-कहीं एकसा ही प्रतीत होता है।

श्री प्राणनाथजी पुस्तकालय
Shri Prannath Ji Pustkalay

सत्स्वरूप

केवल धामसे पर चतुष्पाद विभूतिका यह तुरीयपाद है; जिसे सत्स्वरूप कहते हैं। यों तो चारों पादोंमें सत्स्वरूपकी महिमाका ही विस्तार है, परन्तु "प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति" जो भाव जहांपर प्रधान है उसी नामसे उसे पुकारते हैं। अव्याकृतमें सदंश की विशेषताका सब विस्तार है अतएव उसे सद्रूपा प्रकृति कहते हैं। सबलिकमें चिदंश प्रधान है इसलिये उसे चिद्रूपाक्षर कहा जाता है। केवल में केवल आनन्द ही प्रधान है अतएव आनन्दांशकी सब लीला है। केवलधामके यावद् पदार्थ आनन्द स्वरूप हैं। सत्स्वरूप में सदंश, चिदंश और आनन्द अंश, तीनों का सामरस्य है। तीनों ही धर्म प्रधान रूपसे विद्यमान होनेके कारण उस में त्रिविध भावों का सदा उदय रहता है। यही कारण है कि–सत्स्वरूपका आनन्द उत्तरोत्तर सब विभूति पादों से विशेष और विलक्षण है।

इसको सत्स्वरूप, अक्षर ब्रह्मका मनस्वरूप, अक्षर भगवान आदि नामों से पुकारते हैं। इसीको विलास की [1] सूरत कहते हैं। इसमें व्याप्य, व्यापक

---

[1] और कुमारिका व्रज वधू संग जेह, सुरता सबै अक्षरकी एह।
जो व्रत करके मिलीं संग स्याम, मूल अंग याके नहीं धाम॥
(तारतम सा०)

शुद्धा संवलिता चेति चित्तवृत्तिर्द्विधेशितुः।
लीलावलोकने युक्ता शुद्धाऽन्या विश्वसर्जिनी॥

सत्स्वरूप जो अक्षर ब्रह्मके मन रूप कहे जाते हैं, दो वृत्ति संयुक्त हैं, एकको विलास की वृत्ति कहते हैं और दूसरी को खेलकी वृत्ति माना हैं। जो खेलकी वृत्ति है, उसके द्वारा अव्याकृत में चेतन का आभास पड़ता है जिससे अनेकों ब्रह्माण्डों की रचना होती रहती है, अतएव उसे संवलिता कहते हैं। दूसरी विलास वृत्ति है उसे शुद्धा वृत्ति कहते हैं। शुद्ध होने के कारण इसमें मायाका भाव उदय नहीं हो पाता, अतः सदा सर्वदा शुद्धाके द्वारा ब्रह्मानन्द के रसका आस्वादन होता है। शुद्धा वृत्तिके द्वारा अक्षर ब्रह्मने जो तन धारण किये हैं, वे सब इसी स्थानकी मुक्तिको प्राप्त होगे। उनकी कृपासे अथवा ब्रह्म मुनियों के अनुग्रह से जिन अन्य जीवों को भी तारतम्य ज्ञान प्राप्त हो चुका है एवं जिन्होंने सेवामें अपना सर्वस्व निछावर किया है, वे सब इसी मुक्ति धाम को प्राप्त करेंगे।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सर्व चिन्मयी त्रिपाद्विभूति-सबलिक, केवल ब्रह्म तथा सत्स्वरूपका समावेश होता है। इसमें पर अक्षरधाम और परमधाम कहे जाते हैं
इसीके चतुर्थ पादको अव्याकृत कहते हैं, जो समस्त क्षर ब्रह्माण्डों की समष्टिरूप और त्रिपाद्विभूतिका प्रतिभास मात्र कहा जाता है

श्री अक्षरब्रह्मका सत्यस्वरूप

सत्स्वरूपका तुरीयातीत निर्मल चैतन्यमें ब्रह्मसृष्टि के अधिष्ठान स्वरूप उत्तम जीवोंका मोक्षस्थान. १

सत्स्वरूपके महाकारणमें ईश्वरी सृष्टिका मोक्षस्थान. २

श्री केवल ब्रह्म

यमुनाजी नदी

सबलिक ब्रह्म

सबलिक ब्रह्ममें तीन मुक्त स्थान है यथा
श्रीकृष्णके तृतीय स्वरूप द्वारा मुक्ति ३
अखंड रासकी मुक्ति महाकारणमें. ४
अखंड व्रजकी मुक्ति
कारणमें. ५

चिदानन्द लहरी

अव्याकृतब्रह्म

हिरण्य गर्भ

Shri Prannath Ji Pustkalay

दोनों भावों का उदय है। व्यापक भावसे तो चारों विभूत पादों में प्रकाशित है। व्याप्य भावसे अपने स्वरूप में उदीययान है।

"तुरीयपादस्तु तुरीयतुरीयं तुरीयातीतं च (त्रिपाद वि० उप०)"

तुरीयपाद में तुरीयतुरीय–महाकारण और तुरीयातीत–निर्मल चैतन्य, ये दो स्थान स्वतन्त्र रूपसे प्रकाशित हैं। सत्स्वरूप के महाकारण में कुमारिकाओं को मुक्ति स्थान मिला है और निर्मल चैतन्य में ब्रह्मसृष्टि के 'अधिष्ठान' स्वरूप उत्तम जीवोंको मोक्ष प्राप्त होगा।

अक्षर ब्रह्म ने अपनी अन्तर्वृत्ति से अनेक तन धारण कर इस प्रपञ्च में ब्रह्मसृष्टि को सहयोग दिया है जिन्हें ईश्वरी सृष्टि कहते हैं व्रज लीला के समय जिन कन्याओंने कात्यायनीका व्रत करके श्रीकृष्णको पतिरूप में वरा था एवं श्रीकृष्णजी ने जिनके वस्त्र हरण किये थे वे सब कुमारिका नामसे प्रसिद्ध हैं। उन्हें जो मुक्ति स्थान प्राप्त हुआ है, उसे कुमारिकाओंकी दूसरी मुक्ति (स्थान) कहते हैं। संसार के जो जीव तारतम्य ज्ञानसे जाग्रत होकर कुमारिकाओं के जैसे भावसे पूर्णब्रह्म को भजेंगे, वे इसी मुक्तिस्थान को प्राप्त होंगे।

"ब्रह्माभासमयः कश्चिद्यदि जीवः परिभ्रमन्।
साधुसंगेन [1] देवेशि ! यदिदं ज्ञानमाप्नुयात् ॥

---

[1] तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः।
तस्मात्तत्त्वविदो ये तु ते मुक्ता मोचयन्त्यपि ॥

जो स्वयं तत्त्व ज्ञानसे हीन हैं, वे इस तत्त्वको नहीं पा सकते। उन्हें इस आत्मतत्त्व का भास भी नहीं हो पाता। जो इस तत्त्वके ज्ञाता हैं, वे तो स्वयं भी मुक्त हो जाते हैं और दूसरे जीवोंको भी मुक्तिपद प्रदान किया करते हैं।

जगच्चक्रेषु जीवात्मा काल–कर्म स्वभावतः।
भ्रमति सततं तावद् यावद् ब्रह्म न लभ्यते ॥

यह जीवात्मा काल, कर्म और स्वभाववश निरन्तर चौरासी लाख योनियों के चक्र में भ्रमण करता ही रहता है, जहां तक इसे ब्रह्म तत्त्वका लाभ न हो यह चक्कर नहीं मिटता।

यदायमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठताम् ॥ (भाग० ११)

जिसके उपर प्रभुकी असीम दया होती है, वही इस माया के चक्करसे पार जानेके ज्ञानको ग्रहण कर माया को छोड़ देता है, अन्यथा यह तत्त्व समझ में नहीं आता। यथा—

'मायानो जे पामशे पार, तारतम करशे तेह विचार'

Shri Prannath Ji Pustkalay

जितेन्द्रियो निर्विषयः प्रेमासक्ति-समन्वितः ॥
त्यजन् देहमवाप्नोति कुमार्यः प्रापुरेव यत् ।
न जले जलवत्तस्य लयो भवति चाक्षरे ॥ (माहेश्वरतंत्र)

विश्वके विदाभासमय जीव यदि संयोगवश तत्त्वज्ञानी साधुके संगसे इस जाग्रत ज्ञानको प्राप्त करलें और जितेन्द्रिय हो कर प्रेमलक्षणा भक्ति में लगे रहें, तो देहावसान में अर्थात् शरीरत्याग के अनन्तर इसी पदको प्राप्त होंगे। उनके चेतनको मुक्त साकार प्राप्त हो जायेगा एवं मुक्त स्वरूपसे ब्रह्मानन्दका अनुभव करेंगे। ऐसा लिखा है। श्रुतियों में भी यही लिखा है। यथा—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ॥

(मुडण्क ३—३)

अर्थ—जिस समय ज्ञानी जाग्रत होकर सब कारणोंके कारण प्रकाश स्वरूप पूर्णब्रह्म को देखता है उसके सब शुभाशुभ कर्म क्षीण हो जाते हैं और वह निर्मल होकर ब्रह्मके सदृश सच्चिदानन्द स्वरूप धारण करता है। उसे पुनः कभी आवागमन के चक्कर में नहीं फँसना पड़ता वह तो नित्य अखण्ड स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, इसप्रकार श्रुतियां निर्देश करती हैं। यह पद मुक्तिस्थानों में उत्तम माना गया है। कारण, पूर्वोक्त मुक्तिस्थानोंमें सदंश, चिदंश और आनन्दांश तीनों का पूर्ण उदय नहीं है प्रत्युत एक-एक अंश अप्रधानतया तिरोहित रहते हैं। परन्तु यहां पर विविध भाव पूर्ण सब पदार्थ हैं। यहां पर भगवान् सत्स्वरूपके षट् ऐश्वर्य सदा विद्यमान हैं। अतएव यहां का ब्रह्मानन्द पूर्वोक्त मुक्तिस्थानों की अपेक्षा अलौकिक और सदा पूर्णरूप से वर्तमान है।

अशब्द गोचरस्यापि तस्य वै ब्रह्मणो द्विज ।
पूजायां भगवच्छब्दः क्रियते ह्यौपचारिकः ॥
शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि वर्तते ।
मैत्रेय ! भगवच्छब्दः सर्वकारणकारणे ॥

(विष्णु पु० अंश ६ अ० ५—७१,७२)

अर्थ—शब्दातीत ब्रह्मके लिये भी भगवान शब्दका प्रयोग होता है, परन्तु उसे औपचारिक-गौण माना गया है। 'हे मैत्रेय ! वस्तुतः भगवान शब्दका प्रयोग

Shri Prannath Ji Pustkalay

महाविभूति ब्रह्म सत्स्वरूप जो सर्वकारण–कारण भी कहा जाता है, उसीके शुद्ध स्वरूप के लिये होता है। क्योंकि जो अक्षर ब्रह्मकी विशुद्ध विभूति ब्रह्म स्वरूप है, वही छः ऐश्वर्यों का धाम है। जो वृत्ति माया युक्त है वह तो सापेक्ष है अतः भगवान कहने योग्य नहीं। परन्तु व्यवहार में गौण रूपसे भगवान अनेक देवों के लिये भी बोला जाता है। ऋषि मुनियों के लिये भी 'भगवान' शब्दका प्रयोग मिलता है, परन्तु ये सब गौण हैं। मुख्यरूप से तो अक्षर ब्रह्मकी विभूति के लिये ही भगवान् शब्द बोलना चाहिये क्योंकि–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इतीरणा॥

जिसके स्वरूप में समग्र ऐश्वर्य–सर्व प्रकार की नियामक शक्ति, धर्म, यश, श्री, हेयगुणोंका अभाव और मोक्ष–ये छ पदार्थ पूर्णतया निहित हों उसे भगवान कहना चाहिये, इस प्रकार विष्णुपुराण में लिखा है। अन्यत्र भी आता है—

ज्ञानशक्ति बलैश्वर्य वीर्य तेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि बिना हेयगुणादिभिः॥

जिसमें अखूट ज्ञान, सब प्रकारका सामर्थ्य, विविध प्रकारकी शक्ति, पूर्ण ऐश्वर्य, बीर्य और तेज–ये छः ऐश्वर्य हेय गुणों से रहित हों उसके लिये भगवान शब्द प्रयुक्त करना चाहिये इस प्रकार इस सत्स्वरूप की विभूति को षट् प्रकारसे पूर्ण माना जा सकता है, अन्य तो इस विभूतिके अंशांश रूप में स्थित हैं। इस सत्स्वरूप के अन्तर्गत अनन्त ऐश्वर्योंका और अनन्त लीलाओं का प्रवाह निरन्तर उल्लास पा रहा है। यथा—

त्रिपाद्विभूतेर्लोकास्तु असंख्याताः प्रकीर्तिताः।
शुद्धसत्त्वमयाः सर्वे ब्रह्मानन्द–सुखाह्वयाः॥
सर्वे नित्या निर्विकारा हेयरागादि वर्जिता।
सर्वे हिरण्मयाश्शुद्धाः कोटिसूर्य समप्रभाः॥

(पद्म प० उत्तरखंड अ० २२८)

अर्थ—इस त्रिपाद विभूति ब्रह्मके अन्तर्गत असंख्य मुक्त पुरुषोंका निवास हैं एवं असंख्य दिव्यलोकों की रचना समुज्वल प्रकाश पार ही है। सभी पदार्थ विशुद्ध

Shri Prannath Ji Pustkalay

एवं ब्रह्मानन्द सुख से पूर्ण प्रतीत होते हैं। नाश रहित इस भूमिका में लौकिक गुण नहीं है, किन्तु अलौकिक दिव्य गुण शोभा ले रहे हैं। सम्पूर्ण पदार्थ करोड़ों सूर्यों के समान प्रभासे पूर्ण शोभा ले रहे हैं, इस प्रकार से देखा जावे तो त्रिपाद विभूतिब्रह्म भी अनन्त अपार है। उसके धाम लीलादि विग्रहवन्त पदार्थ जितने भी हैं, वे सब उसके अन्तरमें अनन्त रूपसे स्थित हैं। इसी धाममें बुधजी का स्थान बताया जाता है। जो बुधजी विश्व को जाग्रत कर यहांपर लाने के लिये आज भी प्रयत्नशील हैं।

सत्स्वरूप का निर्मल चैतन्य

सत्स्वरूप के महाकारण (तुरीयस्थान) से पर यह निर्मल चैतन्य–तुरीयातीत परात्म है। इसे ब्रह्मसृष्टि की मुक्ति कहते हैं। यद्यपि ब्रह्मसृष्टि के 'परात्म' परम धाम के मध्य मूलमिलावा में ही विराजमान हैं। वह इस नश्वर विश्वमें आये ही नहीं, केवल उनका नाम आया है। इसलिये ब्रह्मसृष्टि तो इस खेलको खतम करके अपने मूल परात्म में जा उठेंगे।

मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भजन्ते (महाभाष्ये)

मुक्त आत्माओं को पुनः मुक्ति क्या प्राप्त करना है। वे तो "इतहीं बठे घर जागे धाम, पूरण मनोरथ हुए सब काम" न प्रपंच में फँसे हैं न माया में डूबे हैं। वे पद्मपलाश–कमल पत्रके समान सदा निर्लेप हैं। उन्होंने जो लीलामात्र तन धारण किये हैं, वे भी संसार के अन्य जीवों को मुक्ति प्रदान करनेके लिये हैं न कि अपनी वासना तृप्त करने को। तथापि विश्व के मायाजनित दुःख सुखका अनुभव उन्हें प्राप्त हो ही गया। उनके मनोरथ पूर्ण भी हुए और उन्हें भवसागर पार करना भी न पड़ा। उनकी अन्तर्वृत्ति ने स्वप्नवत् शरीर धारण किये है अतः उनकी मूलवृत्ति को पुनः अपने मूल स्वरूप में पहुंचना स्वभाव सिद्ध अधिकार है। परन्तु उन्होंने जिन उत्तम जीवों पर बैठ कर अथवा जिन उत्तम जीवों के साथमें रहकर इस प्रपंच को देखा है, उन अधिष्ठान स्वरूप जीवोंको यह ब्रह्मसृष्टि की मुक्ति प्राप्त होगी। यथा :—

यं यं जीवमधिष्ठाय चिदाभासमयं मुनेः।
वासना वासितं कृत्वा वासनाः स्वगृहं यदा ॥
गमिष्यन्ति तदा ते ते चिदाभासमया अपि।
आनन्दावरण व्याप्तं गोलोकाच्च परं पदम् ॥

(पुराण सं० अ० ३४)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—शिवजी व्यासजी को मुक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं। हे मुने ! जिन-जिन जीवों को अधिष्ठान बनाकर ब्रह्मवासनाओं ने इस प्रपंच को देखा है अथवा जो साथ में रहे हैं, वे सब जीव भी ब्रह्मवासनाओं के ब्रह्मधाम चले जाने पर आनन्द से पूर्ण उस परम पद को प्राप्त होंगे, जो गोलोक से भी परात्पर है। श्रीजी तो इससे भी विशेष वर्णन करते हैं। यथा—

"जो कदी जीवें संग कियो, ताहि मेलो न करों भंग।"
रंगे रमाड़ों वासना, वासना सत को अंग ॥[1]

(तारतम सागर)

श्रीजी आज्ञा करते हैं कि जो कदाच जीवसृष्टि ने ब्रह्मसृष्टि का संग किया अर्थात् चिदाभासमय जीव (प्रतीतमात्र चेतन वाले जीव) कभी वास्तविक

---

[1] व्यासजी तो ब्रह्मसृष्टि के अधिष्ठान स्वरूप जीवों को ही मुक्ति प्रदान करते हैं, परन्तु श्रीजी का कथन है कि 'जिस किसी जीव ने ब्रह्ममुनियों का संग किया है, उनके ज्ञान को धारण किया है उसको भी इसी सत्स्वरूप के निर्मल चेतन में मुक्ति प्राप्त होगी। जो केवल ब्रह्ममुनियों के अधिष्ठान रूप जीवों को ही मुक्ति देना होता तो 'जो कदी' शब्द का प्रयोग न करते। और "खाकी वुत सत होवही सो अक्षर की बरकत" भी न कहते। परन्तु श्रीजी की तो प्रतिज्ञा है कि तारतम्य को लेकर चलने वाले जीवों के साथ स्वरूप भेद न होगा। बल्कि सब जीवों को मोक्ष देने के लिये ही तो ब्रह्ममुनि आये हैं। यथा —

"अभाविनो भविष्यन्ति मुनयो ब्रह्म (बहु) रूपिणः।
उत्पन्ना ये कलियुगे प्रधानपुरुषाश्रयाः ॥
कथायोगेन तान्सर्वान्पूजयिष्यन्ति मानवाः।"
तत्पूजा प्रभावेणैव जीवसृष्टेरुद्धारणम् ॥

(हरिवंश भविष्यपर्व अ० ४)

अर्थ—जो कभी भी विश्व में प्रकट नहीं होने वाले ब्रह्ममुनि कलियुग में किसी ब्रह्मपुरुष के आश्रय में प्रकट होंगे। एवं उनकी अकथ कथा को सुनकर विश्व के मानव उनकी पूजा करेंगे जिससे उन्हें भी मोक्ष प्राप्त हो जायेगा। इत्यादि वचनों की संगति तभी हो सकती है जब सभी जीवों के लिये भी मुक्ति प्राप्त हो। देवीभागवत में भी ऐसी एक कथा आती है कि— श्रापवंश गंगा को नदीरूप और तुलसी को वृक्ष होना पड़ा है। उन सबका उद्धार भी इन ब्रह्ममुनियों के द्वारा हो जायगा।

Shri Prannath Ji Pustkalay

ब्रह्मसृष्टि का अनुसरण नहीं कर पाते। कारण, उनसे मायाका त्याग नही बनता और न वे ब्रह्मसृष्टिके लक्षणों को धारण कर पाते हैं। यदि धारण करने जाते हैं तो मोह, माया, अज्ञान आदि उन्हें घेर लेते हैं। जिस प्रकार मीन (मछली) हंस पक्षियोंका साथ करने जावे तो वह मरी जाती है। कारण, हंस तो सरोवर से केवल कमलकन्द ग्रहण करने भरको पानी में घुसता है, पश्चात् वह पानी से अलग फिरता है। परन्तु मीनका तो पानी ही प्राण है। जहां उसने पानी छोड़ा नहीं कि उसमें प्राण सूखे और वह विकल बनी। इसलिये मीन और हंस का साथ नहीं बनता। इसी प्रकार ब्रह्मवासना–मुक्तात्मा तो केवल निर्वाह मात्रके लिये माया (सरोवर) से सम्बन्ध रखते हैं, उन्हें माया से अलग होते (मायाको खर्च करते) दुःख नहीं लगता। परन्तु मीन समान माया के जीव मायाको छोड़ने लगते हैं तो उनके प्राण ही सूख जाते हैं। उनसे मिथ्या मायाका मोह छूटता नहीं, वे तो माया के दास बनकर जीते हैं। अतएव मायाको छोड़ते ही प्राण छूटने लगते हैं। इस कारण वे ब्रह्मसृष्टि के साथी नहीं बन पाते। इस रहस्य को ध्यान में रखते हुए श्रीजीने 'जो कदी' शब्द का प्रयोग किया है।

पद्मावती सरिद्रूपा तुलसी वृक्षरूपिणी।
कलेःपञ्चसहस्रे च गते वर्षे च मोक्षणम्॥
मन्मंत्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात्।
युष्माकं मोक्षणं पापाद् दर्शनात्स्पर्शनात्तथा॥
पृथिव्यां यानि तोर्थानि सन्त्यसंख्यानि सुन्दरि।
भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्तस्पर्श दर्शनात्॥
मन्मंत्रोपासका भक्ता विश्रमन्ति च भारते।
पूतं कर्तुं तारितुं च सुपवित्रां वसुन्धराम्॥
मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च।
तत्स्थानं महातीर्थं सुपवित्रं भवेद् ध्रुवम्॥

(देवी भाग० ९ अ० ७)

इत्यादि वचनों में स्पष्ट लिखा है कि—गंगा आदि सरिताओं का एवं तुलसी आदि वृक्षों का तथा पृथ्वी के जितने तीर्थ हैं, उन पर तीर्थों का उद्धार परमात्मा के भक्तों द्वारा होगा। संसार के साधु तो तीर्थ, गंगा, तुलसी आदि से पवित्र होना मानते हैं, परन्तु शास्त्र कहता है कि—परमात्मा के भक्तों के दर्शन से स्पर्श से तथा चरणों के जलसे सम्पूर्ण विश्व पवित्र होगा। तीर्थ, तुलसी और गंगाओं को भी ब्रह्ममुनियों के चरण ही तारेंगे, इस प्रकार गंगा, त्रिवेणी, सरिता और तुलसी आदि का मोक्ष भी हो चुका। अब तो जो तुलसी को प्रसाद रूप में ग्रहण करते हैं, वह निष्फल जैसा है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

यों तो स्वाभाविक ही जीवसृष्टि से ब्रह्मसृष्टि का अनुसरण नहीं बन सकता, पर कदाच सौभाग्यवश 'कीटभ्रमर' [1] न्याय से जीवस्वरूप कीटने ब्रह्मसृष्टि स्वरूप भ्रमर का संग पा लिया, उनके अनुसरण को अपना लिया; तो फिर उनके स्वरूप में भेद न होगा। वे दोनों एक ही स्थान को प्राप्त होंगे। वह स्थान यही सत्स्वरूप का निर्मल चैतन्य होगा। क्योंकि—

"बदले आप दिखावत प्यारी निसवत राखी छिपाय"

पूर्ण ब्रह्म स्वरूप ने परमधाम में ब्रह्मसृष्टि को जो प्रपंच रूप खेल दिखाया है, वह सत्स्वरूप के अन्तर्गत और सत्स्वरूप के चैतन्य में होकर दिखाया है। इस कारण इस प्रपंचरूप खेल में आने वाली ब्रह्मसृष्टियों के स्वरूप का चेतन भी तो परम धाम वाला चेतन नहीं है किन्तु सत्स्वरूप का चेतन है। बस, जिस चेतन का संग मिथ्या जीवों को प्राप्त हुआ है उसी चेतन के धाम को प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार माया के जीव भी इस ब्रह्मसृष्टि की मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

ब्रह्मसृष्टि का 'परात्म' चेतन तो परमधाम से यहां पर आया ही नहीं। उसे तो वहीं पर मूलमिलावा में छिपा रखा है। उसके बदले में सत्स्वरूप के चेतन की ब्रह्मसृष्टि प्रकट कर दी हैं। जिस प्रकार रामचन्द्रजीने अपनी धर्मपत्नी सीता को अग्नि में छिपाकर छाया को कृत्रिम (नकली) सीता बना ली थी। उसी को वनवास में साथ ले गये थे। रावण भी नकली ही सीता को हर ले गया। जब लंका से लौट कर अपने राज्य में आये तो सबको दिखाने के लिये उसकी अग्नि में परीक्षा भी की

---

[1] कीटभ्रमर न्याय—भमरी कीड़ों को पकड़ लाती है और उसे अपना स्वरूप दिखा कर के अपना रूप प्रदान कर देती है अर्थात् भमरी को देखते-देखते कीड़ा भी भमरी बन कर उड़ जाता है, इसी प्रकार जीवसृष्टि को भ्रमर स्वरूप कोई ब्रह्मसृष्टि सद्गुरु मिल जावे और अपना स्वरूप (तप, त्याग, आचरण, प्रेम, विश्वास आदि) दिखाकर उसे भी अपना जैसा बना देवे तो फिर उसके मिलाप का भंग नहीं होगा। वे दोनों जब एकरूप बन गये तब एक ही स्थान को प्राप्त होंगे। जब जीवसृष्टि अंकुर प्राप्त करके ब्रह्मसृष्टि का स्वरूप बन जायगी, तब तो स्वतः ही उसे ब्रह्मसृष्टि का स्थान प्राप्त होगा। ब्रह्मसृष्टि का चेतन यहां पर सत्स्वरूप का है। इसलिये उसे सत्स्वरूप के निर्मल चैतन्य में स्थान प्राप्त होगा। उसका साथी जो जीव है उसे भी वही स्थान प्राप्त होगा। उन दोनों की समानाधिकार प्राप्त हो गया। अब कभी आवागमन (जन्म मरण का बन्धन) नहीं भोगना पड़ेगा। इस प्रकार जीव और ब्रह्मसृष्टि के साथ का निष्कर्ष (निचोड़) समझें।

Shri Prannath Ji Pustkalay

जो सब प्रकारसे पवित्र आत्मा सिद्ध हुई थी। तथापि धोबीके व्यंग्य वचनों को महत्त्व देकर असली सीता को अपराधी मान लिया और उसका परित्याग भी कर दिया। लंका में गई छायारूप नकली सीता और वह भी अग्निपरीक्षा में पवित्रात्मा सिद्ध हुई फिर भी उसके बदले असली सीता के शिर दोष मँढ़ा गया।

उसी प्रकार दूसरी ब्रह्मसृष्टि बना कर खेल देखाया, भूल भी हुई तो नकली ब्रह्मसृष्टि की। माया में जो कुछ किया कराया सब कुछ सत्स्वरूप के चेतन की बनी हुई ब्रह्मसृष्टियों ने, फिर भी वह सब मूलमिलावा में बैठी हुई ब्रह्मसृष्टियों का माना गया। विश्व के असंख्य जीवों को मोक्ष भी मिला तो उन्हीं ब्रह्मसृष्टि के प्रताप से ही मिला।

ब्रह्मसृष्टि को ऐसो नूर जो दुनिया थी बिना अंकूर।
ताहि नये अंकूर जो कर किये निहचल देख नजर ॥

ब्रह्मसृष्टि के प्रताप से अन्य असंख्य [1] जीवों को ब्रह्मसृष्टि होनेका अधिकार प्राप्त हो गया। जिन जीवों के मिथ्या चेतनका अस्तित्व ही मिथ्या था, वे भी अखंड अविनाशी नित्य आत्मा हो गये। जिस प्रकार भमरीके संगसे कीटको

---

[1] जीवों में चेतनभेद विविध प्रकार का है। साधारण मनुष्य 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' अथवा 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' आदि वचनों को पढ़फर यही समझा करते हैं कि सभी जीव ईश्वर के अंश होने से अविनाशी हैं, परन्तु बात ऐसी नहीं है। जीवों के विविध भेद हैं। कुछ मुक्तात्मा हैं कुछ नित्य हैं तो कुछ अनित्य भी हैं एवं कुछ जीव ऐसे भी हैं जो प्रतीतिभात्र हैं। संक्षेपशारीरिके यथा—

स्वप्ने न जागरितमस्ति मृषात्वहेतो :।
स्वप्नस्य सत्यमिति जागरितं वदन्ति ॥

स्वप्न में जाग्रदवस्था के पदार्थ नहीं रहते क्योंकि स्वप्न तो मिथ्या कल्पना से प्रतीत हो रहा है। स्वप्नकी सत्यता भी जाग्रत होनेपर ही सिद्ध होती है। क्योंकि स्वप्न क्या पदार्थ है, इसका ज्ञान भी तो जाग्रत-ज्ञान सापेक्ष है। क्योंकि वह स्वयं तो वाधित हो जाता है। अतएव जो चेतन बाधित नहीं होता उसे नित्य कहते हैं। विद्यारण्यमुनि ने इस तथ्यको पृथक् रूपसे वर्णन किया है। यथा—

तुच्छानिर्वचनीया च वास्तवी चेत्यसौ त्रिधा।
ईक्षणादि प्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन कल्पिता।
जाग्रदादिविमोक्षान्तः संसारो जीवकल्पितः ॥ (पञ्चदशी)

Shri Prannath Ji Pustkalay

भमरी बन कर उड़ने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार मायाके जीव जो प्रतीति मात्र थे, जिनका अस्तित्व ही स्वप्नवत् मिथ्या था, वे भी ब्रह्मसृष्टि के संगसे, ब्रह्मसृष्टि के तारतम्य ज्ञानसे जाग्रत होकर ब्रह्मसृष्टि स्वरूप हो गये।

अर्थ—तुच्छा, अनिर्वचनीया और वास्तवी भेदसे जीवात्माको त्रिविध कहा है। अक्षर ब्रह्मके मन ने "एकोऽहं बहुःस्याम्" मैं अकेला ही बहुत रूप हो जाऊं, इस प्रकारका जो विचार किया है और जहां तक विश्व में प्रविष्ट नहीं हुआ, उसके मध्यमें जो सृष्टि रची गई है उसे ईश्वर सृष्टि कहते हैं, वह चाहे गौलोककी हो अथवा अक्षर धाम की हो। नारायण के इस विराट स्वरूप में जो कुछ जीव उनकी स्यप्नवृत्ति से प्रतीत होने लगते हैं, उन्हें जीव कहते हैं। वे सब कल्पित जीव हैं उन्हें अनित्य माना है। उनके अतिरिक्त एक चेतन केवल प्रतीति मात्र के लिये भी है। जिस प्रकार श्रावण भादों में असंख्य पतंग पंक्तियों के ऊपर मरा करते हैं और असंख्य नित नये समुत्पन्न होते जाते हैं। इन्हें प्रातीतिकी सृष्टि कहते हैं। इनका कर्म बन्धन मनुष्यसृष्टिके अनुपातमें नहीं आता।

"यामें असली रुह विष्णुकी दूजी रुह कुफरान।
तोजा दम देखन का ये जो कहे हैवान॥" (तारतम सागर)

इस प्रकार सृष्टि में भी त्रिविध भेद मिलता है। इन्हीं को उत्तम, मध्यम और निकृष्ट भी कहते हैं। नित्य—बद्ध, बद्ध—मुक्त और बद्ध—मुमुक्षु—ये तीन भेद जीवों के मिलते हैं। ब्रह्मसृष्टि की गणना इनमें नहीं है। वे इनसे पृथक् हैं।

जिनको साधन एक प्रेम या गिनती में नाही।'
'न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते'
एतत्तदुत्तमं तस्य यत्र कश्चिन्न जायते (मां० का० ४—९८)
सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः
(छां ६—८—४)

इस प्रकार एक तो सनातन कोटि के आत्मा हैं तो दूसरे स्वप्नवत् हैं। इस भांति नित्य अनित्य दो भेद हो जाते हैं। फिर उक्त दो भेद के और भी भेद होते चले जाते हैं। नित्य कोटि में—परमधाम, अक्षर धाम, गोलोक, अव्याकृत, आदि धामों के जितने भी आत्मा जिस किसी रूप में आये हैं, वे सब नित्य हैं एवं नारायण के स्वप्न से जितने भी जीव होते हैं, वे चाहे तुच्छा सृष्टि के हों अथवा अनिर्वचनीया के हों या प्रतीति मात्र हों, वे सब अनित्य

Shri Prannath Ji Pustkalay

सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मके ब्रह्मानन्द को [1] नित्य निरन्तर प्राप्त करने वाले बन गये। अब तो अनित्य कोटिके जीवोंको भी समान अधिकार मिल गया।

यह सत्स्वरूप का 'निर्मल चैतन्य धाम' दिव्य ब्रह्मपुर (परमधाम) के समान ही सब सुख और सब ऐश्वर्यों से परिपूर्ण एवं पूर्णात्पूर्ण ब्रह्मानन्द का अनुभव कराता है। यहां पर किसी प्रकार किसी वस्तुका अभाव नहीं होता। यहां का आनन्द वैकुण्ठादि की भांति गणितानन्द नहीं है, किन्तु पूर्ण ब्रह्मानन्द ही है यहां पर मुक्तात्माओं को मुक्तसाकार (नित्य अखंड स्वरूप) प्राप्त होता है। जिसके द्वारा नित्य अखंडानन्द का अनुभव करते हैं। ऋग्वेदमें भी इसका वर्णन मिलता है।

मर्त्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः (ऋग्वेद १—११—४)

अर्थ—मरणधर्म वाले अर्थात् अनित्य कोटिके जीव भी अमृतत्व–मोक्षधाम को प्राप्त करेंगे। "छन्दसि कालानियमः" भाष्यकार पतंजलि ने इस बातको सिद्ध किया है कि वेद मंत्रोंमें कालका नियम नहीं है, क्योंकि वे नित्य हैं अनादि हैं। इसलिये काल की कल्पना कर लेनी चाहिये।

यथा स्वप्नमयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च।
तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च॥

(मांडूक्य कारिका)

जिस प्रकार स्वप्नके जीव उत्पन्न होते हैं और मिट जाते हैं उसी प्रकार ये अनित्य कोटिके जीव होते हैं और फिर मिट जाते हैं। परन्तु ब्रह्मसृष्टि की कृपासे ये भी नित्य धामको प्राप्त कर अखंड हो जावेंगे। यथा—

"मोहनाशे भविष्यन्ति सर्वे ब्रह्ममया इमे"

कोटि में माने जाते हैं। अनित्य कोटिके जीवों में भी जो उत्तम कोटिके हैं और मनुष्यके रूपमें जन्मे हैं उन्हें भ्रमरीकीट न्यायसे नित्यपद प्राप्त हो सकता हैं। यही जीवों का तारतम्य रहस्य है। जो मनुष्य रूपमें नहीं आ पाते वे मुक्त पद नहीं प्राप्त कर सकते। अतः मनुष्य को चाहिये कि—सब की उपेक्षा करनी पड़े तो भी आत्मकल्याण की उपेक्षा न करे।

[1] ब्रह्मानन्दको यों तो अनन्त असीम माना है, सकी इयत्ता नहीं हो सकती, तथापि उसको समझने के लिये शास्त्रों में प्रत्येक ब्रह्मस्वरूप देवोंके धामों में प्राप्त होनेवाले आनन्दका स्वरूप भिन्न भिन्न रूपसे वर्णन किया है। यथा—

Shri Prannath Ji Pustkalay

माहेश्वर तंत्रमें शिवजी ने भी पार्वती के प्रति यही बात कही है कि-इस विश्वका नाश होने पर अथवा मोहरूप विश्वका नाश होने पर ये सब जीव भी

ते ये शतं मानुषा आनन्दाः । स एको मनुष्य गन्धर्वाणामानन्दः ।
ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः । स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः ॥
(तैत्तिरीय अनु० ८)

सम्पूर्ण पृथिवीका राज मिल जावे और पृथिवी धनसे पूर्ण हो जावे एवं युवावस्था होवे, उत्तम स्वभाव और स्वस्थ शरीर होवे, इस प्रकार सब सुविधा होनेपर वह रूप, रस, गंध स्पर्श कामोपभोग आदि के सब सुखों का पूर्ण उपभोग करता रहे, तो मनुष्यलोक का एक आनन्द गिना जावे । इसी प्रकार के सौ आनन्द हो जावें तो स्वर्गलोकके जो मनुष्य गन्धर्व हैं उनके एक आनन्दकी बराबर सब हुए । मनुष्य गन्धर्वों के सौ आनन्द देव गन्धर्वों के एक आनन्द के समान होते हैं । इसी प्रकार पितृगणों के और आजान देवों के, इन्द्रके, बृहस्पतिके, प्रजापति के सौ-सौ आनन्दों की बराबर उत्तरोत्तर एक-एक आनन्द होता जाता है ।

ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः । स एको ब्रह्मण आनन्दः (तैत्तिरीय उप० अनु० ८)

जब प्रजापति के सौ आनन्द एकत्रित किये जावें तो ब्रह्माके एक आनन्दकी बराबर होता है । इस प्रकार श्रुतियों में ब्रह्माके आनन्दको बहुत अधिक माना है । स्मृति में भी अधिक लिखा है । यथा—

वैरंच्यानन्दशतकमानन्दो वैष्णवः स्मृतः ।
वैष्णवानन्दशतकं रुद्रानन्दस्तु कथ्यते ॥
भवानन्द शतेनोक्त ईशानन्द परो महान् ।
ईशानन्द शतेनोक्तः शैवानन्दस्तु केवलः ॥
तच्छतेन भवेद् देवि प्रकृत्यानन्द उत्तमः ।
प्रकृत्यानन्द-शतकं पुरुषानन्द उच्यते ॥
पुरुषानन्द-शतं ह्यक्षरानन्द उच्यते ।
अक्षरं परमं ब्रह्म ब्रह्मानन्दस्ततः स्मृतः ॥
(माहेश्वर तंत्र० २०-१८,२२)

जब ब्रह्मा के सौ आनन्द एकत्रित किये जावें, तो वे सब मिलकर विष्णुके एक आनन्द की बराबर होते हैं एवं विष्णुके सौ आनन्दोंकी बराबर रुद्रका एक ही आनन्द महत्वपूर्ण माना गया है । रुद्र के सौ आनन्दोंकी बराबर ईश्वरका एक ही आनन्द हो जाता है । ईश्वरके सौ आनन्दों को शिव (प्रणव ब्रह्म) का एक ही आनन्द तुच्छ बना देता है । इसी प्रकार प्रणव

Shri Prannath Ji Pustkalay

ब्रह्मस्वरूप हो जायेंगे। कारण, सत्स्वरूप भी अक्षरब्रह्म के स्वरूप हैं और अक्षरब्रह्म पूर्णब्रह्म श्रीराजजीके अंगरूप होने से एक हैं, सिर्फ़ लीलामात्र भेद है।' वास्तवमें चतुष्पादविभूति सब अक्षरब्रह्मके स्वरूपांतर्गत है। अक्षरके विविध स्वभावोंका ही नाम अव्याकृत, सबलिक, केवल, सत्स्वरूप आदि रख दिया है। केवल समझने के लिये विस्तारपूर्वक पृथक् पृथक् वर्णन है, वस्तुतः अक्षरब्रह्म के व्यापक स्वरूपके अन्तर्गत होनेसे सब अक्षरब्रह्मके स्वरूप में हैं, जो मुक्तात्माओं के मुक्तिसुख भोगनेके धाम हैं। पूर्वोक्त आठ प्रकारकी मुक्ति किस प्रकार प्राप्त होती है और आठ भेद क्यों हैं? इन सब बातों का पूर्ण विवरण इसी ग्रन्थके मुक्तिपर्व में वांचनेकी कृपा करें।'

ब्रह्म (सदाशिव) के सैकड़ों आनन्दोंकी क्षमता प्रकृतिके एक ही आनन्द में विद्यमान है एवं प्रकृति के सैकड़ों आनन्द एकत्रित किये जावें तो पुरुष (अव्याकृत ब्रह्म) के एक आनन्द की बराबर भी नहीं हो पाते। अव्याकृत पुरुष के सैकड़ों आनन्दोंकी अपेक्षा अक्षर ब्रह्म का एक ही आनन्द विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है। अक्षरब्रह्म से पर अक्षरातीत ब्रह्म के एक ही आनन्द में अक्षरब्रह्म के करोड़ों आनन्द समा जाते हैं, तथापि उसके समान नहीं हो पाते। क्योंकि पूर्णब्रह्म का ब्रह्मानन्द तो पूर्णात्पूर्ण और परात्पर है। सब आनन्दोंका घनीभूत समुद्र है। "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्" (छां. ७—२३) जो भूमा है वही यथार्थ सुख है, वही पूर्ण ब्रह्मानन्द है। थोड़ा है, गणनामें आता है, वही गणितानन्द है। जो गिना जा सकता है, सीमित है, अल्प है, इसलिये पूर्ण सुखरूप नहीं है।

सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति (तैत्तिरीय०)

इस प्रकार आनन्दकी मीमांसा मानी गई है। जो मनन करने योग्य है कि-पूर्णब्रह्म के आनन्द के समक्ष सब विभूतिब्रह्मों के आनन्द चाहे वे कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों तुच्छ हैं। अब कहना यह है 'कि ब्रह्मसृष्टिकी कृपासे जीवों को जो मुक्ति प्राप्त होगी उसमें पूर्णब्रह्म के आनन्दका ही साक्षात्कार होगा, वह चाहे अक्षर के निर्मल चैतन्य में हो या चाहे कहीं भी हो। उस मुक्तिके सुखमें पूर्णब्रह्म का पूर्णानन्द ही प्राप्त होगा। यथा—

किं हेयं किमुपादेयं किमन्यर्त्तिक विलक्षणम्।
अखंडानन्दपीयूष-पूर्णब्रह्म-महार्णवे।। (अध्यात्मोपनि०)

ब्रह्म मुनियों के लिये तारतम्य ज्ञान आया और उसने सबको यह अवसर प्रदान किया कि—जिस ब्रह्मानन्दमें लेने व त्यागने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जो अखण्ड आनन्द का समुद्र है, जो अमृत स्वरूप दिव्य है, जो ब्रह्मानन्द सदा सर्वदा विभोर बनाये रहता है। इस प्रकार के मुक्तिके आनन्द को प्रदान कर जीव कृतार्थ होते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्रस्तुत 'सत' स्वरूपका मंडल सनातन सुखका भण्डार है। यहांपर सब पदार्थ नित्य अखण्ड अविनाशी ब्रह्मस्वरूप स्थित हैं। यह 'सतमंडल' श्रीराज श्यामजीके प्रतिभास लीला धामोंका केन्द्र होकर परमधामके समान ही नाना प्रकारके आनन्द विहार और लीला विभवोंसे पूर्ण अखंड प्रकाशमान मुक्ति आनन्द का सागर है। जिसकी एक-एक तरंगके [1] रंगमें असंख्य मुक्त पुरुष अपनेको सदा विभोर पाते हैं। यहांपर जो कुछ भी प्रतीत होता है-सब प्रेममय, प्रमरूप और प्रेमपूर्ण है। यथा—

सतचिद आनन्द भावमें, विविध भाव बहु भेद ।
गुप्त गुप्तचर गूढ़तर, कछु कछु जानत वेद ॥
प्रेमरूप मन प्रेम तन, प्रेम साज शृंगार ।
रास रंग रस प्रेममय, प्रेम आहार विहार ॥

यहांकी सब सामग्री यहांके सब आनन्दोपभोगके साधन ब्रह्मानन्द स्वरूप हैं। नीचे ऊपर दायें बायें जिधर देखिये उधर ही सब सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मका आनन्द ही अभिव्यक्त होकर सबके मनोरथ पूर्णात्पूर्ण कर आनन्दित करता है। यहांपर किसीका मनोरथ अपूर्ण नहीं रहता। जब यहांके सब पदार्थ ब्रह्मानन्द-स्वरूप हैं तब कमी किस बात की हो। यह तो सब ब्रह्ममय लीला का धाम है। यथा—

---

[1] सच्चिदानन्दमात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्घनः ।
सत्त्वस्वरूप सन्मात्र सिद्धसर्वात्मकोऽस्म्यहम् ॥ (ब्रह्मविद्योपनि०)

मुक्त पुरुषों को यहांपर मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूं, दिव्यप्रकाश स्वरूप हूं, चिद्घन हूं; इस प्रकार का अनुभव होगा। यों तो मुक्तपुरुषों को सनातन सन्मात्र स्वरूप की प्राप्ति होगी। वे सब स्वरूप प्रकाशपूर्ण होंगे। परन्तु उन्हें अनुभव में सच्चिदानन्द स्वरूपकी प्रतीति होगी। जिस प्रकार यहांपर उन्होंने श्रीराज श्यामजी के स्वरूपकी भावनाका भजन किया है। उसी प्रकार वहां पर भी श्रीराज श्यामजी स्वरूपके दर्शन होंगे। उन्हें यह भान न होगा कि—हम सत्स्वरूप में हैं, किन्तु यही भान होगा कि हम अक्षरातीत पूर्णब्रह्म के परमधाम में बैठकर नित्य नवीन ब्रह्मानन्द का अनुभव ले रहे हैं। जिस प्रकार सुखपालों का वर्णन धाम, परमधामकी लीला का वर्णन, श्रवण करके यहां परमधाम के स्वरूपों की शोभा और वहां के नित्य ब्रह्मानन्द को चिन्तवन करते हैं। उन सब दिव्य पदार्थोंका साक्षात्कार और उनके विविध आनन्दों का अनुभव वहांपर साक्षात्स्वरूप से होगा। वहांपर स्वतंत्ररूप से गति होगी। वहां की चिन्तामणिमयी भूमिका में चिन्तनमात्र से ही सब आनन्द प्राप्त होते हैं इस भूमिका में किसी सनातन वस्तु का अभाव नहीं, प्रत्युत सब कुछ पूर्णात्पूर्ण निरतिशय निरन्तर वर्तमान है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सत्य सच्चिदानन्दमय, सेवा विभव अभंग ।
शब्दातीत अनन्त सब, एक रूप एक अंग ॥
जल थल जन बन अगन गन, धरनि धाम सुखधाम ।
आनन्द के सतभाव मधि, सब विध पूरन काम ॥

"त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ।"

(यजुर्वेद० ३२—९)

अर्थ—(अस्य) इस अविनाशी ब्रह्मके (त्रीणि पदानि) तीनों पाद-तीनों धामों (सबलिक,केवल और सत्स्वरूप) की लीला (गुहा निहिता) अक्षर ब्रह्मके हृदयस्थानीय होने से गूढ़ातिगूढ़ है (यः) जो कोई पुरुष (तानि) उन तीनों धामों की लीला के स्वरूप को (वेद) जान लेता है (सः) वह ज्ञानी (पितुः) ब्रह्माका भी (पिता) गुरु (असत्) होता है। इस प्रकार से वेद ने इन पूर्वोक्त तीनों (सबलब्रह्म, केवलब्रह्म और सत्स्वरूप) को गूढ़ातिगूढ़ बताकर इसके ज्ञाताको ब्रह्मा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण सद्गुरु पद दे दिया है।

यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।

(यजु० ३२—१०)

अर्थ—(यत्र) जिनमें से (तृतीये धामन्) पूर्वोक्त तीनों धामों में से तीसरे धाम सत्स्वरूप में तो (देवा दिव्यस्वरूप मुक्तपुरुषाः अमृतम्) मोक्ष स्वरूप आनन्द को प्राप्त करते हुए (अध्यैरयन्त) स्वेच्छासे—अव्याहृत गति से विचरते हैं। इस प्रकार वेद ने इस तीसरे धाम—सतमंडल के ब्रह्मानन्द में मुक्त पुरुषों को जो स्वतन्त्रता प्राप्त है, उसको भी प्रतिपादन करके स्पष्ट कर दिया है। इस तत्त्व को—

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् । (यजुर्वेद० ३२-८)

अर्थ —(यत्र) जिस मुक्तिस्थान में (विश्वम्) चिदाभासमय जीव जो अनित्य कहे जाते हैं (विश्वरूपं तु चैतन्यमेतन्मायास्वरूपकम्) विश्वरूप में जो चेतन है, वह मायास्वरूप है मायाजनित है अतएव वह अनित्य है। इसलिये विश्व शब्द से यहां पर चिदाभासमय जीवों का ग्रहण है। (एकनीडम्[1] भवति) एकत्रित होकर मुक्ति सुख को प्राप्त करते हैं। (गुहा निहितम्) गूढ़ातिगूढ़ (तत्) उस (सत्)

---

1 इस मंत्र में 'वेन.'और 'नीडम्' शब्द सांकेतिक हैं। 'नीड' कहते हैं घोंसला को। 'वेन' कहते हैं जिसे अपने मूल स्वरूप का पूर्ण ज्ञान हो। घोंसला को वही जान सकता है जो घोंसला को देखकर आया हो और उसका पूर्ण ज्ञान रखता हैं। इसलिये इस तत्त्व को ब्रह्ममुनियों को जाग्रत करने को आने वाले मूलस्वरूप निजानन्द ही कह सकते थे। क्योंकि वे वहीं से आये भी थे और घोंसला को पूर्णतया देखा भी था।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सत्स्वरूपको (वेनः) कान्तदर्शी ब्रह्मस्वरूप वेदान्त तत्त्वको ज्ञाता सद्गुरु निजानन्द (पश्यत्) जानते हैं। उस प्रकार इस मुक्तिस्थानको जब वेदोंने ही गुप्तातिगुप्त बताया है तब सब मनुष्य किस प्रकार जान पावें। उस तत्त्वको एक 'वेन' ज्ञानियोंका भी सद्गुरु ही जानता है, अन्य नहीं। यह भी कह दिया तब विवाद ही किस बातका रह गया।

विराट ब्रह्म तथा विभूतिब्रह्म एवं अक्षर ब्रह्मका जो कुछ विवेचन हमने किया है, उस सब का निचोड़ बड़े ही मर्मके साथ स्वामी मकुन्द दासजी ने अपने एक ही पद्यमें रखकर सागर को गागरमें भर दिखाया है। यथा—

"वह घर सद्गुरु मोहिं लखाया जहां बसे पुरुष पुराना।
अगम अगोचर सबसे न्यारा, परुमहंस मन माना॥ १
सात पाताल सात स्वर्ग ऊपर, तहँ वैकुंठ रचाना।
तहां चतुर्भुज विष्णु विराजैं, चार मुक्ति परवाना॥ २
तिनके आगे आठ आवरण, तिनका सुनो उनमाना।
आठ आवरण आठों रंगा, एक तें एक दश गुना॥ ३
तिन के आगे आदि नारायण, महाविष्णु तिन नामा।
चार वेद हैं जिनकी श्वासा, तिनमें जग उरझाना॥ ४
तिनके आगे ओंकार है, नाद बिन्दुको थाना।
मोह माया की उत्पत्ति कहिये, सुतगुरु शब्द से जाना॥ ५
तिनके आगे ज्योतिस्वरूपी, निर्गुण रूप बखाना।
पांच देवकी उत्पत्ति कहिये, तिन सब सृष्टि रचाना॥ ६
तिन के आगे काल निरंजन, जिन खाये सृष्टि प्राना।
सतगुरु शब्द बचे नर सोई, जिन निजनामहिं जाना॥ ७
ताके आगे सात शून्य हैं, तिनका सुनो परमाना।
सात शून्य हैं मातों रंगा, उठत राग बहु ताना॥ ८
कोटि कोटि शक्ती तिन माहीं, कालमाया नींद निदाना।
एक एक शून्य खरब विस्तारा, मकरी तार निसाना॥ ९
ओहं सोहं अजपा कहिये, महा शून्य प्रगटाना।
सात सुरति की [1] उत्पत्ति कहिये सो परलय तर आना॥ १०
तिनके आगे पुरुष जो कहिये, जाको कबीर धरे ध्याना।
उन सतलोक अमर कर गाया, चार द्वीप तिन थाना॥ ११

[1] सदाशिव, ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु महेश, इन्द्र और धर्मराज, इनको सात सूरति कहते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सौ-सौ कोटि सखी तिन माहीं, तिन का सुनौ परमाना ।
षोड़स वर्ष को रूप जो कहिये, शोभा षोड़स भाना ॥ १२
ता आगे गोलोक जो कहिये, श्याम स्वरूप बखाना ।
सौ सौ कोटि सखी तिन माहीं करत क्रीड़ा विध नाना ॥ १३
तिनके आगे अखंड वृन्दावन, न जाने खलक जहाना ।
बारह सहस सखी तहां कहिये, योगमाया परमाना ॥ १४
तिनके आगे सबलिक [1] ब्रह्म है सतगुरु दई पहिचाना ।
कोटि असंख्य धामं सखी कहिये, योगमाया उतपाना ॥ १५
तिनके आगे केवल ब्रह्म कहिये, निर्मल पद अस्थाना ।
बारह हजार सखी संग राजें, केवल रूप निदाना ॥ १६
तिनके आगे अक्षरब्रह्म कहिये, यह पद है निरवाना ।
और भये सब याके अंशा, यह अजर अमर अस्थाना ॥ १७
बारह हजार सखी संग राजें, को करि सकत बखाना ।
झलके भूमि किरन परकासा, मानो कोटि शशि भाना ॥ १८
तिनके आगे पूर्णब्रह्म जो कहिये, सतगुरु दई सहिदाना ।
सब कर्तन को कर्ता कहिये, वेद कतेब नहि जाना ॥ १९
अगणित धाम भूमि वन सो हैं, निज परमधाम अस्थाना ।
जहँ चमके भूमि होय झलकारा, तेज पुंज आसमाना ॥ २०
बारह हजार सखी तहं राजें, चिदानन्द परमाना ।
तिनकी शोभा कहत न आवे, कोटिन सूर्य लजाना ॥ २१
बिन सतगुरु पहुंचे नहीं कोई, अनेक कथे जो ज्ञाना ।
प्राणनाथ सतगुरु की दाया, दास 'मुकुन्द' उर आना ॥ २२

इस शब्दमें शेषशायी विष्णु–पातालसे लेकर सर्वातीत परब्रह्म के धाम पर्यन्त जितने स्थान किम्वा धाम आते हैं, सूक्ष्मरूप से सबका वर्णन किया है। मकुन्द दासजीने अष्टावरण के ऊपर ज्योतिस्वरूप का वर्णन नहीं किया। किन्तु प्रणव ब्रह्मके परस्वरूप को ही ज्योतिस्वरूप कह दिया है। अष्टावरण के ऊपर जो ज्योतिस्वरूप है, वह प्रणवब्रह्म के पर ज्योतिस्वरूप का ही प्रतिनिधि स्वरूप है।

[1] इस शब्द डोरीमें भी रासलीला को सबलिक में ही माना है केवल में रासकी मुक्ति मानने वाले इस पर विचार करें। मकुंद दासजी, युगल दासजी और स्वयं श्रीजीने भी अखंड वृन्दावन में ही महारास को माना है जो सबलिक धाममें ही आता है, केवल में नहीं, यह ध्यान में रखने योग्य विषय है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अतः व्यष्टि ज्योति है। व्यष्टि ज्योति, इच्छाशक्ति और महत्तत्त्व—ये तीनों नारायण महाविष्णुकी अन्तः समष्टि हैं, अतएव इनको पृथक् पृथक् न कह कर केवल समष्टि ज्योतिस्वरूप का ही वर्णन किया है, जो मनन करने योग्य है।

इस भांतिसे इस विराटपट दर्शनमें जिन—जिन स्थान धाम आदि का वर्णन किया है, वह कल्पित अथवा अपनी बुद्धि मात्रसे नहीं किया, किन्तु वेद, शास्त्र, पुराण और महान पुरुषों के वचनोंका आधार लेकर लिखा गया है। इस तथ्य को स्पष्ट करने को स्थान स्थान पर प्रमाण भी दिये हैं। श्री जो के द्वारा जो आठ मुक्ति वर्णन की गई हैं, वे सब स्थान अखण्ड तो थे ही उनकी प्राप्ति और उनका महत्त्व अविदित था।

तारतम्य ने यह विशेषता प्रदान की है—जिन स्थानों में मुक्तिको प्राप्त जीवात्मा किसी कालमें किसी कारण वश इस मिथ्या प्रपंच में पुनः आ जाया करते थे। वे अब पुनः आवागमन में नहीं[1] आवेंगे। मुक्ति को प्राप्त जीवात्मा को मुक्त साकार प्राप्त हो जायगा, उससे वह सदाकाल अनन्त लोकों का अखण्ड ऐश्वर्य सुख भोगता रहेगा। त्रिपाद विभूतिके जो अनन्त लोक परब्रह्म की महिमा स्वरूप हैं वे सब अनन्त ऐश्वर्यों के अखण्ड धाम हैं। जहांपर परमधाम की दिव्य लीला का साक्षात्कार ही सबको होता रहता है। इस सत्स्वरूप के ब्रह्मानन्द में और पूर्ण ब्रह्मके आनन्दमें मुक्तपुरुषों को किसी प्रकारका भेद प्रतीत न होगा।

---

[1] गोलोकसे कृष्ण लीलाके साथ अनेक गोपी ग्वालों को आना पड़ा था। केवल धामसे केवल लीला केवलधाम के हिसाब के वर्षों से बारह वर्ष के युग में पुनः आया करती है। प्रणव धामसे भी जीव पुनः आया करते हैं। सृष्टि काल जितने समयका होता है उससे सात गुना काल मुक्त जीवों के आने का है। इसी प्रकार शून्य मण्डलसे अमुक कारण वश आया करते हैं। "मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भजन्ते" महाभाष्यकार पतञ्जलि ने लिखा है कि यद्यपि मुक्त जीवात्माओं के कर्म शेष नहीं रहते, तथापि अन्य जीवों पर कृपा करने के लिये मुक्त पुरुष कभी कभी तन धारण किया करते हैं। एवं अनेक जीवों का उद्धार कर पुनः अपने मुक्त पदको चले जाते हैं। इस प्रकारसे अथवा अन्य कारणों से जो जाने का क्रम हैं, वह तारतम्य प्राप्ति के बाद सदाके लिये मिट जाता है। 'न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्वते' इत्यादि श्रुति पुनः आवागमन को बारम्बार निषेध करती है। अतएव लिखा है। कि "जीवन मुक्ति आठ विध दीन्हीं" जीवोंको आठ प्रकारकी मुक्ति प्रदान कर आवागमन के बन्धनसे सदा के लिये मुक्त कर आनन्द स्वरूप बना दिया।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सनातनं ब्रह्मगुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ।
य एतन्मभ भक्तेषु संप्रदद्यात् सुपुष्कलम् ।
तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥
(भागवत ११–२९–२५,२६)

अर्थ — जो इस सनातन ब्रह्मके गुप्त रहस्य को तत्त्वतः जान लेता है, वह इससे भी पर जो अक्षरातीतका धाम है उसको प्राप्त हो जाता है। श्रीकृष्णजी कहते हैं 'हे उद्धव जी ! जो इस तत्त्व को पुष्कल–यथेष्ट रूपमें मेरे भक्तों को प्रदान करता है अर्थात् कृष्णभक्तों के हृदय में इस परम तत्त्वको उतार देता है, उस ब्रह्मतत्त्व के दाता पुरुषको मैं अपनी आत्मा का सहयोग प्रदान करता हूं। इस प्रकार स्वयं श्रीकृष्णजी क्यों कह रहे हैं ? इसका कारण यह है कि 'कृष्णभक्तों की भी विविध कोटि हैं। विष्णुरूप कृष्णके भक्त, गोलोकवासी श्रीकृष्णके भक्त और उनसे भी पर अक्षरातीत पूर्णब्रह्म स्वरूप श्री कृष्णके भक्त। कहने को तीनों ही श्री कृष्णके भक्त हैं, परन्तु तत्त्वतः देखा जावे तो तीनों में महान् अन्तर है।

जो विष्णुरूप कृष्ण के भक्त हैं अथवा गोलोकवासी कृष्णके भक्त हैं, वे इस तत्त्वको नहीं प्राप्त कर पाते। कारण, वे अपने इष्टसे और भी कुछ पर है, यह कल्पना ही मनमें नहीं लाते। इस कारण, इस परम तत्त्वसे वंचित रह जाते हैं। अतएव श्री कृष्णजी उद्धवजी के प्रति कहते हैं कि 'हे उद्धव ! जो इस तत्त्वको मेरे भक्तों को प्रदान करता है, उस निरपेक्ष ब्रह्मतत्त्व के दाताको मैं आत्मा से सहयोग देता हूं अर्थात् उसके ज्ञान मार्गको सरल, सुविधा जनक एवं उपादेय बनाने में आत्मासे सहयोग दिया करता हूं। श्री कृष्णकी दृष्टि में वैकुण्ठ को मुक्ति इतना महत्त्व नहीं रखती, जितना महत्त्व इस परात्पर तत्त्वको जान लेने में समाया हुआ है, अतएव कहते हैं। यथा—

सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद् यदि वाञ्छति ॥
न किञ्चित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ।
वांछन्त्यपि मया दत्त कैवल्यमपुनर्भवम् ।
नैरपेक्ष्यं परं प्राहुः निः श्रेयसमनल्पकम् ।
तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपक्षेस्य मे भवेत् ॥
(भाग० ११–२०–३३,३४,३५)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—हे उद्धव ! ज्ञान, योग, पूजा, अर्चा, तीर्थ, दान पुण्य, अनुष्ठान आदिसे जो फल प्राप्त होते हैं, वे सब तो मेरी भक्ति से तत्काल अनायास ही मिल जाते हैं। स्वर्ग, अपवर्ग, मोक्ष किम्वा मेरा धाम जो कुछ भी वांछा रखते हैं, वह उन्हें मिलते देर नहीं लगती। किन्तु जो परमात्मा के एकान्त भक्त हैं, धीर हैं, परम तत्त्व को ग्रहण कर चुके हैं, वे तो मेरी दी हुई मुक्ति को भी नहीं लेते। न कैवल्य पद को लेते हैं, न जन्म-मरण को मिटाने वाले परम पद को लेते हैं। कारण, जो पद निरपेक्ष है साधन साध्य नहीं है, जो परात्पर पूर्ण ब्रह्मस्वरूप है, जो भूमा पद है, वही सबसे महान है, इसलिये वे अपने उसी सिद्धपद को प्राप्त करते हैं ऐसे जो ब्रह्मस्वरूप ब्रह्ममुनि हैं, 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' जो ब्रह्मतत्त्व को पाकर ब्रह्मस्वरूप हो गये हैं, उनके तो मैं पीछे-पीछे चरणधूलि को वन्दन करता फिरता हूं।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं शमदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः॥ (भा० ११)

'हे उद्धव ! जो निरपेक्ष मुनि हैं, जो परम तत्त्व के ज्ञाता परमधाम को जान चुके हैं, शांत चित्त हैं, जिनकी दृष्टि में माया ब्रह्मका भेद नहीं रहा गया "पिण्ड ब्रह्माण्ड लखाये दोऊ, जहँ पूर्ण ब्रह्म और नहीं कोऊ" पिण्ड ब्रह्माण्ड दोनों को जिन्होंने ब्रह्मरूप प्रदान कर दिया, ऐसे ब्रह्ममुनियों की चरण धूलि लेने के लिये उनके पीछे-पीछे घूमता हूं। कारण, उनके चरणों की धूलि से मैं भी पवित्र हो जाऊं।

प्रेमी पाठकगण ! इस प्रकार उस ब्रह्मपद के ज्ञाता ब्रह्म मुनियों की चरण रज को स्वयं श्री कृष्णजी ललचाते हैं। उसी ब्रह्म पद को श्री निजानन्द सद्गुरु ने प्रकट कर कितना महान उपकार किया। उसी ब्रह्म पद को श्री प्राणनाथ प्रभु ने घर-घर में सबको देने के लिये जो तारतम्य सागर रचा है, वह भी अपूर्व अलौकिक उपकार कहा जा सकता है। बस, उसी तारतम्य ज्ञान की कृपा से इस सत्स्वरूप के धाम का निरूपण यहां पर सूक्ष्म रूप में उपस्थित किया गया है। इस सत्स्वरूप के आगे अक्षर धाम है और अक्षर धाम से भी परात्पर सर्वातीत पूर्णब्रह्म परमात्मा का परमधाम है। जिसका ब्रह्मधाम के प्रकरण में वर्णन किया जायेगा। यह परम तत्त्व गुरुगम्य है। नाना मत मार्गों से दुष्प्राप्य होने से दुर्लभ है। इस भांति यह विभूतिब्रह्म सदाकाश में उदित है, किन्तु चेतन के आभास द्वारा सब चेतन है। अतः इसे चिदाकाश में भी कहते हैं। अक्षर अक्षरातीत का प्रतिभास होने से सनातन दिव्य स्वरूप अखण्ड स्थित है।

इति श्री सद्धर्मसिद्धान्तवागीश श्री कृष्णदत्तशर्मशास्त्रिविरचिते
विराटपट-दर्शने, अक्षरपुरुषे—सत्स्वरूप निरूपणं
नाम एकादशमं पर्व परिपूर्णम्॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

परब्रह्म स्वरूप तथा परमधाम

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षिते ।।

(ऋग्वेद)

अब अक्षरब्रह्म से भी पर जो सर्वातीत सच्चिदानन्द–स्वरूप परब्रह्म परमात्म. है उसके निज स्वरूपका रहस्य तथा सुदिव्य शोभा से परिपूर्ण स्वयंसिद्ध प्रकाश स्वरूप परब्रह्मधाम जिसे 'दिव्यब्रह्मपुर' परमधाम आदि नामों से संकेत किया है उसका दिग्दर्शनमात्र कराते हैं।

जिस प्रकार परब्रह्म परमात्मा पूर्णात्पूर्ण, परात्पर, सच्चिदानन्द स्वरूप, अनन्ताऽद्वैत, सदा सर्वदा चेतन, दिव्य प्रकाशपुंज, अनन्त–धर्मावच्छिन्न, एकरस, सर्वोत्कृष्ट, सर्वाध्यक्ष, सर्वाश्रय, स्वयंसिद्ध, निरपेक्ष विराजमान है। उसी प्रकार परमात्मा का परमधाम भी सदा सर्वदा एकरस स्वयंसिद्ध दिव्य शोभासे परिपूर्ण, नित्यचेतन, सनातन सामग्री संपन्न सर्वप्रकार के आनन्दों से भरपूर चिद्घन स्वरूप में अवस्थित है अतएव वहां पर किसी प्रकार का विकार नहीं है।

परमधाम–सत, चिद आनन्द, अनन्त और अद्वैत, इन पांच भावों से परिपूर्ण होनेके कारण वहां के वृक्ष जड़संज्ञा वाले होते हुए भी सदा चेतन हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं एवं सदाकाल ब्रह्मानन्द लीलारस में निमग्न हैं। ब्रह्मधाम के प्रत्येक वृक्षमें सब प्रकार के फूल, फल, सब प्रकारकी शोभा और सुगंध समष्टि व्यष्टि रूपसे भरे पडे हैं। सदाकाल सर्व ऋतु वर्तमान हैं।

ऋतु से लीला न लगी, लीला से ऋतु जान।
जब जैसी लीला जहां, तैसी ऋतु परमान ।।

ब्रह्मधाम ब्रह्मकी लीलाओं का उल्लास स्वरूप, भूमा, उपबृंहण–विशिष्ट, सदा सुखदाता, नित्य नवल रास विलास, लीला विहार सामग्री सम्पन्न स्वयं सिद्ध प्रकाश स्वरूप शोभायमान है। अतएव श्रुति निर्देश करती है।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

(बृहदारण्यक उप० ५–१)

Shri Prannath Ji Pustkalay

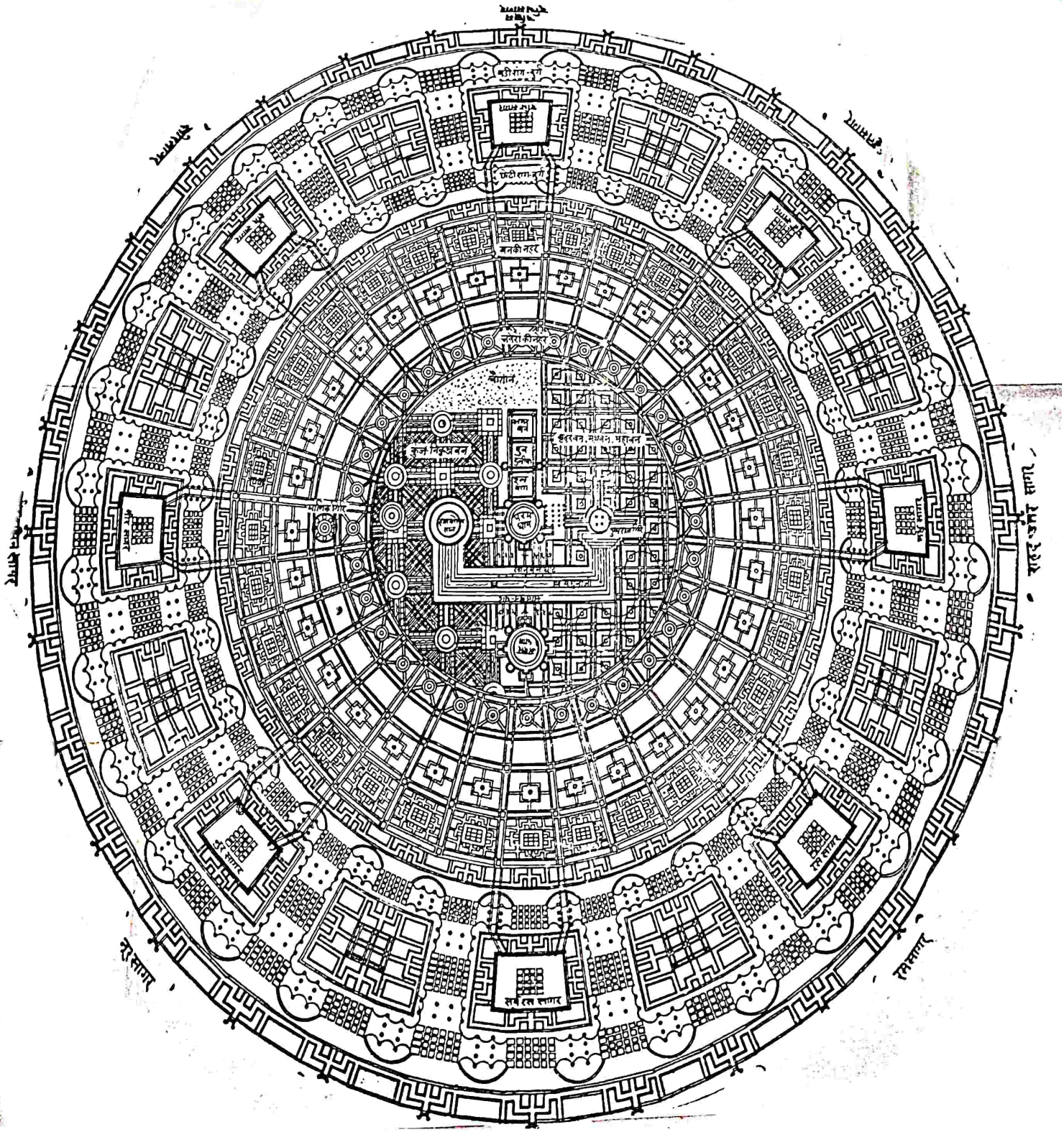

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ— (अदः पूर्णम्) उस परब्रह्म का धाम भी परिपूर्ण है (पूर्णम् इदम्) यह परब्रह्म परमात्मा भी सब प्रकारसे पूर्ण है, अतएव (पूर्णात्पूर्णम्) पूर्ण [1] जो अक्षर ब्रह्म है उससे भी पूर्ण–विशेष निरवधिक निरतिशय अनन्त असीम परिपूर्ण होने से पूर्णब्रह्म अक्षरातीत परमात्मा (उदच्यते [2]) उत्कृष्टतया पूजने योग्य है अर्थात उसी–परात्पर परम तत्त्वको पूजना चाहिये, जो सबसे उत्कृष्ट और सर्व पूज्य है। (पूर्णस्य) इस पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्माके धाम लीलादि में यही तो विचित्रता है कि उसमेंसे चाहे जितना आनन्द लेते जाइये, चाहे जितना ब्रह्मानन्द रसका उपभोग करते रहिये (पूर्णम् आदाय) उसकी पूर्णता को लेकर करोड़ों ब्रह्माण्डों को रचना जिसके अंशांश (अक्षर ब्रह्मके द्वारा) से होती है, जिसके स्वरूप से अनन्त सागरों के सागर लीला विहार के उमड़ते रहैं किन्तु (पूर्ण एवं अवशिष्यते) वह अपनी लीला धामादि सम्पूर्ण सामग्री से परिपूर्ण

---

[1] इस श्रुति में 'पूर्ण' शब्द अक्षर ब्रह्म के लिये आया है। एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति (निरुक्त अ० ७) जब परब्रह्म परमात्मा के अङ्ग प्रत्यङ्ग ही अक्षर ब्रह्म आदि हैं तब अंग प्रत्यङ्ग स्वरूप अक्षर ब्रह्मको भी पूर्ण कह सकते हैं। क्योंकि अंगवान के धर्म अङ्ग प्रत्यंगों में जा सकते हैं। यही कारण है कि अक्षर आदि विभूति पुरुषों को भी यत्र तत्र श्रुतियों में पूर्ण कहा है। निम्नलिखित महाभारत के श्लोकों से उक्त आशयकी पुष्टि मिलती है। यथा—

अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।
अनादि मध्य निधनं निर्द्वन्द्वं कर्तृ शाश्वतम्।
कूटस्थं चैव नित्यं च यद्वदन्ति मनीषिणः॥
यतः सर्वाः प्रवर्तन्ते सर्गप्रलय विक्रियाः॥ (महा शांतिपर्व)

महाभारत में 'अक्षर' शब्द का निर्वचन करते हुए भीष्म पितामह कहते हैं कि 'हे युधिष्ठिर! जिस सनातन पूर्ण ब्रह्मसे सम्पूर्ण विश्वोंका उदय, लय, क्रिया होती है, जिसे मनीषी विद्वान नित्य कूटस्थ कहते हैं। आदि मध्य रहित अविनाशी ब्रह्म ही निश्चय सबका कर्ता है। उसी को अक्षर ब्रह्म कहते हैं। यहां पर जो अक्षर ब्रह्मको पूर्ण कहा है, सर्वातीत ब्रह्मकी पूर्णताको लेकर ही कहा गया है।

[2] उत् उपसर्ग पूर्वक 'अंचु—गति पूजनयोः' धातु से उदच्यते क्रियापद निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ होता हैं 'उत्कृष्टतया पूजने योग्य।' पूर्णात्पूर्ण होने से परब्रह्म परमात्मा ही पूजनीय है, अन्य नहीं। आत्मेत्येवोपासीत। योऽन्यां देवतामुपास्ते न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम् (शतपथ ब्रा० कां १४ अ० ४) परब्रह्म की ही उपासना करना चाहिये। जो कोई परमात्माके स्थान में अन्य किसी देव की उपासना करता है, वह विद्वानों में पशु तुल्य है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

ही बना रहता है। क्योंकि वही तो सर्वत्र धाम लीलादि स्वरूप से विद्यमान है अतए उसे श्रुति पूर्णात्पूर्ण वर्णन करती है। परब्रह्म परमात्मा अपने ब्रह्मधाममें विराजमा है तो वह सर्वत्र किस प्रकार वर्तमान है इसको श्रुति निम्न प्रकार से प्रतिपादन करती है यथा—

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥
(श्वेताश्व० उप० ३ – ९)

अर्थ— (यस्मात्) जिस परब्रह्मसे (परम्) श्रेष्ठ और महान विस्तृत (अपरम्) अन्य दूसरा (किंचित्) कुछ भी (न अस्ति) नहीं है (यस्मात्) जिससे बढ़कर (कश्चित्) कोई भी (न अणीयः) अधिक सूक्ष्म भी नहीं है। (न ज्यायः) और न उससे कोई महान ही (अस्ति) है (एकः) जो अकेला ही सबका [1] अधिपतिरूप (वृक्ष इव) वृक्षकी भांति (स्तब्धः) निश्चल भाव से (दिवि) प्रकाशमय परमधाममें (तिष्ठति) विराजमान है (तेन पुरुषेण) उसी पुरुषस्वरूप परमात्मा से (इदं सर्वम्) यह सम्पूर्ण लीलामय ब्रह्मधाम (पूर्णम्) परिपूर्ण हो रहा है। कहनेका आशय यह है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूपमें देखें, चाहे वृहत रूपमें ढूढें, सर्वत्र वही ओत-प्रोत हो रहा है। अतः श्रुति कहती है—

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरतः।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥
(मुण्डकोप० २–२–११)

पुनः श्रुति निर्देश करती है कि— ब्रह्मधामके चिदाकाश में जितने भी पदार्थ हैं, वे सब (ब्रह्म एव) ब्रह्म स्वरूप ही हैं (इदम् अमृतम् ब्रह्म पुरस्तात्) यह अमृत स्वरूप ब्रह्म ही पूर्वको ओर अथवा सामनेकी ओर है (ब्रह्म पश्चाद्)

---

[1] उस परब्रह्मके प्रकाशसे ही विश्वके तथा विभूति अक्षरके और परमधामके सब पदार्थ प्रकाश पा रहे हैं। सब प्रकाशोंका केन्द्र वही है। उसका प्रकाश सबमें विविध रूपमें भास रहा है तथापि कुछ विद्वान अज्ञानवश उसे निराकार, निरञ्जन, निरीह आदि नामोंसे पुकारा करते हैं। स्वप्नवत् मिथ्याको साकार कहना और सनातन अविनाशीको निराकार बता देना, यही तो इस मायाका परदा है। जब तक मनुष्य उसकी शरणमें नहीं जाता, उसका यह आवरण नहीं हटता।

'मामेव हि प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते' (गीता)

Shri Prannath Ji Pustkalay

ब्रह्म ही पीछे की ओर सब सामग्री रूप में विराजमान है। (दक्षिणतः ब्रह्म) दक्षिण दिशा की ओर भी जितने पदार्थ हैं वे भी सब ब्रह्म स्वरूप हैं। (उत्तरेण ब्रह्म) उत्तर दिशा की ओर यावत् पदार्थ हैं वे भी सब ब्रह्म स्वरूप हैं। (अध च ऊर्ध्वम्) नीचे की ओर और ऊपर की ओर भी (प्रसृतम्) फैले हुए (ब्रह्म एवं इदम्) सब पदार्थ ब्रह्मरूप ही हैं (इदम् वरिष्ठम् विश्वम्) यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मधाम सम्पूर्ण ही ब्रह्मरूप शोभा ले रहा है।

कुछ सज्जन इस श्रुति में 'विश्व' शब्द देखकर इस नश्वर जगत को ब्रह्मरूप कहने लगते हैं, पर वह बात श्रुति को इष्ट नहीं है। अतएव उसने पूर्व श्रुति में स्पष्ट कर दिया है कि इस ब्रह्मधाम रूप विश्व में नश्वर विश्व की भांति शशि, सूर्य, तारागण आदि पार्थिव पदार्थ नहीं हैं किन्तु सब पदार्थ ब्रह्मरूप हैं। यथा—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

(मुण्डक० २–२–१०)

अर्थ –(तत्र सूर्यः न भाति) उस ब्रह्मधाम में न तो सूर्य अपने प्रकाश का गौरव बता सकता है और (न चन्द्रतारकम्) न चन्द्रमा तथा तारागण ही प्रकाश करते हैं (न इमा विद्युतः भ्रान्ति) न तो इस विश्व की भांति बिजलियां ही ब्रह्मधाम में चमक सकती हैं। (अयम् अग्निः कुतः) फिर इस अग्नितत्त्व की तो बात ही क्या कहना है (तम् एव भान्तम्) ब्रह्मधाम के तो समस्त पदार्थ उसी परब्रह्म के प्रकाश से ही (सर्वम् अनुभाति) सम्पूर्ण प्रकाश पाते हैं। (तस्य भासा इदं सर्वम्) इस परब्रह्म के प्रकाश से ही यह सब ब्रह्मधाम (विभाति) प्रकाशरूप हो रहा हैं।

इस प्रकार श्रुतियों ने ब्रह्मधाम के समस्त लीलामय पदार्थों को ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्म के प्रकाश से प्रकाशमान माना है। ब्रह्मधाम के सब पदार्थ ब्रह्मस्वरूप ही हैं। नीचे ऊपर दायें बायें आगे पीछे चारों ओर सर्वत्र ब्रह्मानन्द रस से सभी पदार्थ भरपूर हैं तभी तो उसका नाम भूमा है। "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति" (छान्दोग्य ७–२३–१)

जहां पर सर्वत्र आनन्द ही आनन्द भरा है, जहां पर अद्वैत के अतिरिक्त कभी द्वैत (माया) का भास नहीं होता, जो दिव्य धाम निरवच्छिन्न ब्रह्मानन्द से परिप्लावित है। उसके स्वरूप को, वहां के प्रकाश स्वरूप नित्यचेतन पदार्थों के आनन्द को, संकुचित वृत्ति वाले हमारे लौकिक शब्द किस प्रकार कह सकें? यदि ब्रह्मधाम के स्वरूपों को, वहाँ के आनन्दमय चेतन पदार्थों को शब्द में कहते ही बनता तो उसे शब्दातीत कहते ही क्यों?

Shri Prannath Ji Pustkalay

यहां के लौकिक शब्दज्ञान में जीव और जड़ का, चेतन और अचेतन का जो भेद है, हमारी बुद्धि कभी इस भेदका अतिक्रमण (उल्लंघन) नहीं कर सकती। क्योंकि हमारी बुद्धि तदाकार वृत्तिवाली बन चुकी है। यह शक्ति तो तारतम्य ज्ञान में ही है कि–ब्रह्मधाम के पदार्थों का यथार्थत: वर्णन कर सके।

तारतम्यको बल कोई न जाने, एक जाने मूल स्वरूप ।
मूलस्वरूप के चित की बातें, तारतम्य में कई रूप ।।

जिसका कोई अन्याश्रय नहीं, जो अपनी सत्ता से स्वयं अवस्थित है, जिसे अन्य किसीकी सत्ता सापेक्षता नहीं। जो अपने ही अलौकिक प्रकाश से पूर्ण है, जिसे अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं, प्रत्युत जिसके प्रकाश से सब प्रकाश पा रहे हैं। जो सब प्रकाशों का केन्द्र है। जो सर्वरस पूर्ण है, सम्पूर्ण रसों के स्रोत जिससे प्रवाहित होते हैं, जो स्वत: निरपेक्षानन्द होते हुए भी सर्वानन्द प्रद है। जो अपनेको ही अनन्त धाम लीलामय नाना रूपों में भासित कर रहा है। उसी अद्वितीय चेतन परमतत्त्व को 'परमात्मा' शब्दसे पुकारते हैं।

जो विश्व दूसरे की सत्ता से अवस्थित है, जो दूसरे के आश्रय से जीवन पाता है, सदाकाल सापेक्ष और अपूर्ण है, जो अन्य के प्रकाश की अपेक्षा रखता है, जिसका निजी प्रकाश नहीं, जो स्वतंत्र नहीं, दूसरे के परिचयसे जिसका ज्ञान हो, जो अन्योन्याश्रय है, जो निर्जीव है और चेतन शक्ति सापेक्ष है. वही जड़ है, वही द्वैत है और विनश्वर मायाजन्य है, उसे चेतन तत्त्व की उपमा के लिये उपस्थित नहीं किया जा सकता।

बस, जड़ चेतन का यही भेद हमें आगे नहीं बढ़ने देता। हमारा लौकिक ज्ञान मिथ्यापदार्थ सापेक्ष और सीमित है। अत: वह स्वयंसिद्ध, दिव्यस्वरूप, असीम, अनन्त नित्य चेतन पदार्थों को यथार्थ अवगत नहीं करा पाता। अतएव श्रीजी कहते हैं "शब्दातीत शब्द में आवे नहीं, पर विना कहे ना भाजे हाम" प्रथम तो सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मधाम कि - जो स्वयं प्रकाश, दिव्यस्वरूप, अखंड, एकरस नित्य ब्रह्मलीला–रसानुस्यूत चिद्घनराशि स्वयंसिद्ध है–'उसका[1] वर्णन करना और

[1] सिनेमा के चित्रपटपर आनेवाले चित्र सिनेमा के दर्शक को जिस प्रकार नहीं बता सकते उसी प्रकार यह मिथ्या चेतन उस अखण्ड चेतन को नहीं कह सकता "विश्वरूपं तु चैतन्यमेतन्माया स्वरूपकम्" विश्व का चेतन स्वप्नके चेतन की भांति मिथ्या है। जो स्वयं ही मिथ्या है वह 'सत्यस्य सत्यम्' सत्य के भी सत्य को किस प्रकार देख सके। अत: विश्व का ज्ञान उसको नहीं कह पाता। जो कुछ शास्त्रों में वर्णन है वह तो दिशा सूचनके लिये है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

फिर सर्वातीत, सर्वाधिपति, पूर्णात्पूर्ण, सच्चिदानन्द - स्वरूप चिद्घनात्मा श्रीपरब्रह्म के स्वरूप को "इदमित्थं' जैसाका तैसा इन अधूरे शब्दों से कहना एक प्रकार से गूंगेका गुड़ बन जाता हैं। "अरे ! विज्ञातारं केन विजानीयात् (श्रुति)"

जिसके प्रकाश से ही सबको देखते हैं, जानते हैं उसे किस से देखें ? नेत्रोंकी पुतली नेत्रोंसे ही देखी जा सकती है, कान, हाथ या नाक से नहीं। बस, इसी प्रकार उस ब्रह्मतत्त्व का वर्णन ब्रह्म स्वरूपसे ही बन सकता है, और ब्रह्मज्ञ पुरुष ही उसे श्रवण,मनन कर [1] धारण कर सकते हैं, सब नहीं। ऐसा ही श्रुतिमें लिखा है। यथा:—

स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः॥

(मुण्डक ३-२-१)

अर्थ – (सः) वह ब्रह्मस्वरूप तत्त्वज्ञ पुरुष ही (एतत् परमं ब्रह्मधाम) इस परमोत्कृष्ट ब्रह्मधाम-परमधाम को (वेद) जान सकता है। (यत्र शुभ्रम् विश्वम्)

---

[1] श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तदनन्तरम्।
निदिध्यासमित्येतत्पूर्णाबोधस्य कारणम्॥
अन्यविद्या परिज्ञानमवश्यं नश्वरं भवेत्।
ब्रह्मविद्या परिज्ञानं ब्रह्मप्राप्तिकरं स्थितम्॥ (शूकरहस्योप०)

अर्थ—प्रथम गुरुदेव के मुख से श्रवण करना, उसके अनन्तर उस तत्त्व का मनन करना, एवं तत् पश्चात् उस तत्त्व को बारम्बार हृदय में धारण कर स्मरण करते रहना। इस प्रकार जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वही पूर्ण बोध का कारण बनता है। अन्य विद्याओं से जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह नश्वर है, परन्तु ब्रह्मविद्या से हृदय में तत्त्व दृढ़ होता है, जो अनुभव होता है, वह तो ब्रह्मपद को प्राप्त कराता है। अतः ब्रह्मज्ञान कभी नाश को प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत प्रभु के साक्षात्कार में सहायभूत होता है। अतः लिखा है—

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शन-हेतवः॥

प्रथम श्रुतियों द्वारा सुनना उसे उपपत्ति द्वारा धारण करना और धारण करने के अनन्तर ध्यान में रखना—ये ही तीनों साक्षात्कार के हेतु हैं। इन्हीं के द्वारा आत्मा को अनुभव होता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

जिस ब्रह्मधाम में विशुद्ध चेतन विश्व (निहितम्) निहित अवस्थित (भाति) प्रकाशमय शोभा ले रहा है 'यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितम् (छान्दोग्य श्रुतेः)' जितने पदार्थ इस विश्व में दृष्टिगोचर होते हैं वे सब और जो पदार्थ यहां सुलभ नहीं हैं केवल सुने जाते हैं, वे भी सब उस ब्रह्मधाम के विश्वमें अनन्त, अपार वर्तमान हैं। इसीलिये श्रुति ने ब्रह्मधाम के विशुद्ध चेतन विश्वका निर्देश किया है। इस प्रकार के विशुद्ध चेतन पदार्थोंसे भरपूर जो ब्रह्मधाम है उसको जाननेवाला जो ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ पुरुष है 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' वह भी ब्रह्मके तुल्य ही पूजनीय है। क्योंकि ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्मरूप ही माना गया है। इसी प्रकार श्रुतिकी आज्ञा भी है, अतः श्रुति उत्तरार्द्धसे निर्देश करती है कि—(ये हि अकामाः) जो कोई भी मनुष्य निष्काम भावसे (पुरुषम् उपासते) उस ब्रह्मज्ञानी पुरुषको जो ब्रह्मके स्वरूपको तथा ब्रह्मधाम को जाननेवाला है उसको तन, मन, धनसे सेवते हैं,[1] सेवा सुश्रूषा करते हैं (ते धीराः) वे ही श्रद्धालु बुद्धिमानी पुरुष (एतत्) इस विश्वके जन्म मरणरूप (शुक्रम्) कारणको (अतिवतन्ति) अतिक्रमणकर—पार कर जाते हैं अर्थात् आवागमन से छुटकारा पा जाते हैं।

हाँ, तो ब्रह्धाम और पूर्णब्रह्म परमात्मा दोनों ही ब्रह्मज्ञानी द्वारा ही जाने जा सकते हैं, अन्यथा नहीं। क्योंकि मनुष्य सुलभ विज्ञान—यावत् विषय, सम्पूर्ण

---

[1] स यो ह वै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति
(मुण्डक० ३—२—८)

निश्चय ही यह बात सत्य है कि—जो कोई पुरुष उस परब्रह्म परमात्माको जान लेता है, वह ब्रह्मरूप ही हो जाता है। इस ब्रह्मज्ञ महापुरुषके कुलमें भी ब्रह्मको न जाननेवाला नहीं होता। अर्थात् ब्रह्मज्ञ पुरुषका कुल भी मोक्षगामी बन जाता है। यही कारण है कि—श्रुतिने ब्रह्मतत्त्व को जाननेवाले की उपासना करनेका निर्देश किया है। 'तत्कुलं मोक्षगामि वै' इति स्मृतेः। ब्रह्मज्ञानीका कुल भी मोक्षका अधिकारी बन जाता है। यहां 'कुल' शब्द शिष्यों के लिये आया हैं, यह ध्यान रहे।

अथवा कुल शब्दका अर्थ होता है 'पृथिवीमें पुनः पुनः लानेका कारण कर्म। 'कौ पृथिव्यां लाति पुनः पुनः जन्ममरणार्थं प्रेरयति इति कुलं' संसार में पुनः पुनः जन्ममरणके लिये प्रेरणा करनेवाली वृत्तिका नाम कुल है। उसमें कोई भी भाव ऐसा उदय नहीं होता जो पुनः जन्ममरणमें ले जावे। 'प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायम्' इस श्रुति में 'कुलायम्' का अर्थ शरीर किया है। कुलका अर्थ यूथ भी होता है। ब्रह्मतत्त्वको जाननेवाले एक ब्रह्मसृष्टि ही हैं उनके यूथमें ब्रह्मको न जाननेवाला काहे को होगा। क्योंकि वे तो सब वहीं से आये हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

पदार्थ और उनका स्वरूप—ससीम, सादि, सान्त (उत्पत्ति लयवाले) और सापेक्ष समाये हुए हैं। इन्द्रिय और मनके प्रवाह पाश में नियन्त्रित मनुष्य चेतना के समक्ष अनन्त, असीम, अद्वैत, दिव्यस्वरूप, स्वयंसिद्ध चेतन पदार्थ अपने वास्तविक स्वरूपमें प्रतीत होते ही नहीं। सत्य, सनातन, चेतन पदार्थों की तुलना असत्य, जड़, दुःख रूप पदार्थों के साथ कभी भी सुसंगत प्रतीत नहीं हो सकती और न वास्तविक अनुभूतिको ही उपलब्ध करा पाती है। तब फिर उसका वर्णन और परिचय किस प्रकार किया जा सके ?

जिस प्रकार हम अपने स्वप्नमें दृष्टिगोचर होने वाली पृथ्वी पर जाग्रत अवस्था के चूना, ईंट, और सीमेंट से इमारत खड़ी करने लगें तो वह सब बनता ही नहीं क्योंकि जिस भूमिका पर हम मकान खड़ा करना चाहते हैं, वह ग़लत है, मिथ्या है, मिथ्याके आश्रय में, सत्यके स्वरूपको नहीं खड़ा किया जा सकता। बस, इसी प्रकार यहाँ के शब्दों की अवस्था अद्वैत भूमिकाके पदार्थों को वर्णन करने में हमें सफल नहीं होने देती।

विश्वके विज्ञानमें चाहे जितना उत्थान क्यों न आ जावे, वह अधूरा ही रहेगा। क्योंकि उसके विज्ञान की भित्ति ही सिनेमाके चित्रपटके समान मिथ्या प्रतीति मात्र है, छायारूप है। व्यावहारिकी है, वास्तवी नहीं। जो विज्ञान स्वाप्निक है, प्रतीति मात्र है, मिथ्या है, वह कभी पूरा नहीं हो सकता। यह शक्ति तो जाग्रदवस्था द्वारा प्राप्त ब्रह्मज्ञान (तारतम्य [1] ज्ञान) में ही है, कि वह हमें युक्ति, तर्कसे अतीत बुद्धिसे पर, कल्पना राज्यसे पृथक्-दिव्यज्ञानकी पारमार्थिक भूमिका में उपनीत (पहुंचा) कर ब्रह्मका साक्षात्कार करा सके और उसके पर स्वरूप को भी हस्तामलकवत् बता सके।

विश्वके सभी विद्वानों ने चाहे वे निराकारवादी हों अथवा साकारवादी—एक स्वर से इस बातको माना है कि – परब्रह्म परमात्मा सर्व शक्तिमान, अविनाशी,

---

[1] तारतम्येन जानाति सच्चिच्चदानन्दलक्षणम।'
"तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्" (योगदर्शन)

तारतम्यज्ञान क्रमसापेक्ष नहीं. उसमें धीरे-धीरे अथवा जन्म—जन्मान्तरका झगड़ा नहीं। उसमें एक कालावच्छेदेन सबका ज्ञान हो जाता है। तारतम्य हाथमें आया नहीं कि ब्रह्म मार्गका द्वार खुल गया। चाहे जितने स्त्री पुरुषोंको एक साथ भव पार पहुंचाया जा सकता है। "तारतम्यज्ञान हाथ कर लीन्हों। खीर नीरको निर्णय कीन्हों" परन्तु क्षीर नीरका निर्णय तभी हो सकता है, जब तारतम्यज्ञान को यथार्थ रूपमें ग्रहण किया हो, अन्यथा नहीं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

स्वयं सिद्ध, प्रकाशस्वरूप चिद्घन सच्चिदानंदमय है । वह अनन्त, अद्वैत, अखण्ड, अपार, अजर, अमर, सदा अपने प्रकाश स्वरूपमें अवस्थित है ।

परब्रह्म परमात्मा के परमधामको तथा पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तमके स्वरूपको समझे बिना उसके अपर स्वरूपों को अवगत किये बिना–ब्रह्मके स्वरूपको आत्मा में धारण नहीं किया जा सकता । अतएव श्रुति परब्रह्मके स्थान और स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्हें जाननेका सूचन करती है "द्वे ब्रह्मणी वेदितव्येति परं चैवापरं च" अविनाशी ब्रह्मके पर और अपर दोनों स्वरूपों को जानना चाहिये । क्योंकि स्वरूप ज्ञान के बिना वस्तुज्ञान नहीं होता । अतः परब्रह्म के स्वरूप तथा स्थान को बताते हैं । यथा—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥

(मुंडक २—२—९)

अर्थ— ब्रह्मधाम में अपरकोश अक्षर ब्रह्मका [1] धाम परकोश परब्रह्म का परमधाम–इस प्रकार दो दिव्यधाम शोभायमान हैं । वहां पर प्रथम परकोश के लिये लिखा है (हिरण्मये) प्रकाशमय (ज्योतिर्वै हिरण्यम्' इति श्रुतेः) हिरण्य नाम प्रकाश ज्योति का है ऐसा श्रुतियों में लिखा है । (परे कोशे) परकोश–परमधाम में (तत् विरजम्) वह निर्मल स्वरूप (निष्कलम्) ह्रास वृद्धि रहित (ब्रह्म) पूर्ण ब्रह्म परमात्मा विराजमान हैं । वह किस प्रकार का है–यह दिखाते हैं । (तत् शुभ्रम्) वह परब्रह्म सर्वथा निर्मल विशुद्ध गौरवर्ण है एवं (ज्योतिषां ज्योतिः) समस्त ज्योतियों का ज्योति स्वरूप, अनन्त विभूतियों का अथवा अक्षर ब्रह्मादि अपने अङ्ग

---

[1] इस प्रकार श्रुतियां अक्षर ब्रह्म और अक्षरातीत ब्रह्म के दोनों स्थानों का पृथक्-पृथक् वर्णन करती हैं ।

अस्मिन्ब्रह्मपुरे वेश्म दहरं यदिदं मुने ।
पुण्डरीकं तु तन्मध्ये आकाशे दहरोऽस्ति तत् ॥ (श्रुति)

इस ब्रह्मपुर में एक सुदिव्य वेश्म—मन्दिर है, जिसको ब्रह्मभुवन कहते हैं । हे मुने ! इस ब्रह्मभुवन में चौंसठ स्तम्भों का कमल पुष्प के समान गोल पुण्डरीक—मूल मिलावा है, उस के मध्य में परब्रह्म विराजमान हैं जो सबके आधार स्वरूप कहे जाते हैं । इस श्रुतिमें आकाश शब्द भूताकाशके लिये नहीं आया । किन्तु ब्रह्मके लिये आया है । ब्रह्मरूप आकाश में ब्रह्म स्थित है । इस प्रकार आकाश भी ब्रह्म, पुण्डरीक भी ब्रह्मस्वरूप और परकोश में अखंड शोभायुक्त स्थित ब्रह्म तो ब्रह्म है ही ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्रत्यङ्ग स्वरूप ब्रह्मों का भी प्रशाशक स्वरूप है (यत्) जिस स्वरूप को (आत्म विदः) आत्म तत्त्व को जानने वाले ब्रह्मभूत (ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति, इति श्रुतेः) ब्रह्ममुनि ही (विदुः) जान पाते हैं, सब लोग नहीं। यही कारण है कि ब्रह्मतत्त्व को न जानने वाले विद्वान् उसके विषय में भ्रम उत्पन्न कर कुछ का कुछ कहने लगते हैं। अन्यथाः—

यो वैतां ब्रह्मणो वेदामृतेनाऽऽवृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥

(अथर्ववेद कांड १० सू० २ मं० २९)

अर्थ —(यः) जो आत्मज्ञ पुरुष (वै) निश्चय अमृतेन आवृताम्) अमृत नाम के वन से आवृत (ब्रह्मणः) ब्रह्म की (ताम् पुरम्) उस पुरी—ब्रह्मधाम को (वेद) जान लेता है (तस्मै) उस ब्रह्मज्ञानी पुरुष के लिये (ब्रह्म) परमात्मा (च) और (ब्राह्माः) ब्रह्म पुरुष ब्रह्ममुनि अथवा ब्रह्मसृष्टि—शाश्वती समा मुक्तात्मा (चक्षुः) दिव्य दृष्टि (प्राणम्) जीवन (च) और (प्रजाम्) उत्तम ज्ञान अथवा उत्तम सन्तान (ददुः) प्रदान करते हैं। इस प्रकार आत्मज्ञ पुरुष को तो परमात्का की ओर से तथा ब्रह्मस्वरूप ब्रह्ममुनियों की ओर से दिव्य ज्ञान, सात्त्विक जीवन और यथार्थ उत्तम ज्ञान मिलता ही है, जिससे उसके आत्मा में यर्थार्थ ज्ञान का प्रभाव पूर्ण रूप से बढ़ता रहे और मोहमाया का किंवा वासना का अंकुर उदय ही न हो सके।

इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा जो सब ज्योतियों का प्रकाशक है, सब पतियों का अधिपति है, जो सब ईश्वरों का[1] परम नियंता परमेश्वर है, सबका

---

[1] **तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।**
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥
न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके नचेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥

(श्वेताश्वतरोप ६–७,९)

यही सब ईश्वरों का भी महान ईश्वर है। सब देवोंका भी परम देव है। वैकुण्ठपति, कैलाशपति, गोलोकपति, प्रजापति आदि जितने लोकपति हैं, सब पतियों का पति है। सबका पूजनीय है। न इसका कोई अन्य पति है, न इससे पर इसका कोई ईश्वर है। न इस का कोइ अधिपति है। बल्कि यही सबका सब कुछ है, इस प्रकार श्रुतियों में स्थान-स्थान पर एक पूर्णब्रह्म परमात्माको ही सर्वोत्तम परात्पर एवं सब पतियों का अधिपति और सबका नियन्ता वर्णन किया है, जो मनन करने योग्य है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्रेरक, सबका नियामक, अक्षर ब्रह्मसे पर अपने पूर्णात्पूर्ण सर्वातीत स्वरूप में दिव्य शोभा सम्पन्न श्री परमधाम में–जिसे श्रुतिने 'परकोश' और ब्रह्मपुर नाम से निर्देश किया है, नित्य किशोराकृति–युवावस्था सम्पन्न युगल स्वरूपसे अनेक शक्ति समन्वित विराजमान है।

ब्रह्मधाम में दो कोशोंका होना प्रतिपादन किया जा चुका है। परकोश–परमधाम में श्री अक्षरातीत पूर्णब्रह्म परमात्माके विराजमान होनेका ब्रह्मभुवन है और अपरकोश–अपरब्रह्मके धाममें अक्षरब्रह्मके विराजनेकी भूमिका है, जिसका वर्णन आगे चलकर करेंगे।

परमधाम में परब्रह्म परमात्मा सर्वातीत पुरुषोत्तम स्वरूपसे विराजमान हैं और अपरकोश–अक्षर धाममें पूर्णब्रह्मके अंगस्वरूप अक्षरब्रह्म विराजमान हैं। अक्षर-ब्रह्म सापेक्ष है और परमात्मा पूर्णात्पूर्ण होनेसे निरपेक्ष है। इन्हीं को सर्वातीत ब्रह्म और 'सर्व कारण–कारण' ब्रह्म [1] इन दो नामोंसे वर्णन किया है।

---

[1] लक्ष्यन्तेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः।
तमाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्॥ (भागव० २–१०)

अक्षरब्रह्म के दो स्वरूप हैं एक कूटस्थ अक्षर और दूसरा सर्व कारणकारण। जो विश्वों को रचता है, अन्य असंख्य ब्रह्माण्डोंकी कोटिन राशियां जिसके अन्तर्गत लक्षित होती हैं। उस अक्षर ब्रह्मको 'सर्वकारणकारण' कहते हैं। इस प्रकार अक्षरब्रह्मको सब कारणोंका कारण माना है। और सर्वातीत पूर्णब्रह्मको सबसे अतीत – पर होनेसे अथवा अक्षरसे भी पर होनेसे सर्वातीत, अक्षरातीत आदि नामोंसे उल्लेख किया है।

"न जानन्ति सुराः सर्वे सर्वकारणकारणम्" (पंचब्रह्मोपनिषद्)

जब ब्रह्मादि देव सर्वकारणों के कारण स्वरूप अक्षर ब्रह्मको ही नहीं जान पाते, तब उससे भी पर सर्वातीत पूर्णब्रह्म को किस प्रकार जान सकें। यही कारण है कि 'परब्रह्म तत्त्व' को न जाननेवाले विद्वान् भी क्षरपुरुष–विष्णु, महाविष्णु आदिको ही परब्रह्म कह दिया करते हैं। पर वस्तुतः यह भी अज्ञान ही कहा जा सकता है। जो पुरुष जिस पदार्थको यथार्थतः नहीं जानता उस विषय में उसे भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। अक्षर ब्रह्मके सर्व कारणकारण स्वरूपसे और कूटस्थ अक्षर दोनों से पर होने के कारण ही परब्रह्म को सर्वातीत कहा जाता है। 'अक्षरात्परतः परः' इस मुण्डक श्रुति में परात्पर अक्षर से भी पर कहने का कारण यही है कि–अक्षर के अपर, पर दोनों स्वरूपों से परमात्मा पर है। अथवा अक्षर शब्दसे जितने ब्रह्मों का ग्रहण होता है उन सबसे जो पर अक्षर है, उस अक्षरसे भी 'पर' होनेसे सर्वातीत ब्रह्मको 'अक्षरात्परः परः' कहा गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सर्वकारणात्मक (अक्षरब्रह्म) स्वरूपके द्वारा ही सर्वातीत स्वरूप (अक्षरातीत ब्रह्म) का अनुसन्धान प्राप्त होता है और सर्वातीत स्वरूप ही सर्वकारणात्मक स्वरूपका आश्रय है। ब्रह्मके सर्वातीत स्वरूपको छोड़ दिया जाय तो व्यष्टि समष्टि अध्यस्त स्वरूपोंकी कार्य कारण शृंखला ही उच्छिन्न हो (टूट) जाय और विश्वके उद्गम कारण–अक्षर ब्रह्मका पता भी न चले। एवं सर्वकारणात्मक ब्रह्मके स्वरूप को न माना जाय तो सर्वातीत स्वरूप जो अक्षरातीत परमात्मा है उसकी सत्ता का स्वरूप ही खड़ा न हो सके और न उनके स्वरूपका परिचय हो पाये।

वस्तुतः देखा जाय तो ब्रह्मकी अद्वैत पूर्ण सत्ता इन दोनों – अक्षर, अक्षरातीत ब्रह्म – स्वरूपों को लेकर ही है। जिस प्रकार "एकोऽद्वितीयो राजा" के कथन से राजा की सर्वोपरि अद्वितीय सत्ता का ही बोध होता है, न कि मंत्री अमात्य भृत्य आदिके अभावका। उसी प्रकार "एकमेवाद्वितीयं [1] ब्रह्म" आदि श्रुतियोंका अर्थ भी परब्रह्म की सर्वोपरि अद्वितीय सत्ता–परक ही है।

जिसकी सत्ता मात्रसे समस्त प्रकाशित हो, जो सबका जीवन हो, जिस अद्वितीय चिद्घन तत्त्व से सब परिपूर्ण हों, जहांके यावत् पदार्थ ठोस चिन्मय हों जिसके स्वरूपको अनन्त रूपसे देखा जा सके, जो सभी रूपमें एकरस वर्तमान है, वही तो स्वयं प्रकाशरूप है, अनन्त है, भूमा है। वही सबसे बृहत्तम होनेके कारण परब्रह्म कहा जाता है।

---

[1] एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति (निरुक्त)

एक-मुख्य परब्रह्म स्वरूप जो सर्वाधिपति है 'अन्य अक्षर ब्रह्म, विभूति ब्रह्म, महाविष्णु आदि जितने भी दिव्यगुण विशिष्ट ब्रह्म हैं, वे सब उस परब्रह्म के अङ्ग प्रत्यङ्ग हैं। 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' मुख्य परमात्मा तो एक ही है और वह 'अक्षरात्परतः परः' इस मुण्डक श्रुति के अनुसार परात्पर अक्षर ब्रह्मसे भी पर है, अतएव उसे सर्वातीत परब्रह्म कहते हैं।

अथ कस्मादुच्यते परं ब्रह्म। यस्मात्परमपरं परायणं च बृहद् बृहत्या बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म। (अथर्वशिर श्रुति)

अर्थ— सबसे श्रेष्ठ प्रमुको परब्रह्म इसलिये कहते हैं—कि वह 'पर' अपने को, अपर-अक्षर ब्रह्मको, परायण–परमाधाम को सब प्रकार से पूर्ण किये रहता है। प्रत्येक वस्तु को उच्च कक्षा में लेजाने को अपनी शक्ति प्रदान किया करता है। सबको बृंहण की ओर ले जाता है इसलिये उसे 'परब्रह्म' कहते हैं। परब्रह्म शब्दका कितना सुन्दर निर्वचन है, तथापि मनुष्य उसे छोड़कर इधर उधर भटका करते हैं, इतना ही दुर्भाग्य है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

जो अपनी सत्ता और शक्तिसे सबको प्रकाश दे रहा है, जो अपने सामर्थ्यसे सबको ब्रह्मानन्द प्रद है। जो विष्णु, महाविष्णु, शिव, सदाशिव आदि अनेक ब्रह्माण्ड पतियोंको प्रेरणा और बुद्धिबल प्रदान करता है। जिसकी शक्तिसे असंख्य विश्वोंका उदय-लय अक्षर ब्रह्मके द्वारा निमेषमात्र कालमें हुआ करता है। जिसकी शक्तिसे ही [1] सबको शक्ति प्राप्त है।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् (श्वेताश्व० १-३)

अर्थ — परब्रह्म परमात्माकी स्वरूपभूता यह अचिन्त्य शक्ति इतनी विचित्र और नाना लीला वैचित्र्य आदि गुणोंसे निगूढ़-भरपूर है कि जिसके दिव्यचेतन स्वरूप को ब्रह्मवादी ब्रह्म मुनियोंने ही समझ पाया है।

परब्रह्म परमात्मा अपनी नाना गुणसम्पन्न अचिन्त्य शक्तिके कारण ही शक्तिमान् कहा जाता है। जो नाना शक्ति समन्वित है, वही सर्वशक्तिमान् है। "पराऽस्य शक्तिर्विविधैव [2] श्रूयते"(श्वेता. ६-८) जो अपनी विविध परा नामकी शक्तियोंसे समन्वित है, वही लीलामय सर्वशक्तिमान है।

बस, परब्रह्मके इस नानाविध पराशक्ति समन्वित रूपको ही संप्रदाय क्षेत्रमें 'युगल स्वरूप' कहा जाता है। ब्रह्मको निर्विशेष, निराकार, निरीह, निर्गुण आदि माननेवाले भी उसको सर्वशक्तिमान् कहते ही हैं। स्वरूप विशिष्ट शुद्ध साकार मानने वाले साकारवादी इसीको राधाकृष्ण आदि युगलरूपमें देखते हैं। वस्तुतः देखा जाय तो निराकार और साकार-ये दोनों ही उपाधि हैं और परब्रह्म को उपाधिसे पर बताया है। यथा—

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि (ब्रह्मसूत्र० ३-२-११)

श्रुतियों में ब्रह्म को सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार दोनों स्वरूपों में वर्णन किया गया है तो तत्त्वतः क्या मानना चाहिये ? इस शंकाके उत्तर में

---

[1] परब्रह्म अपनी अनन्त शक्तियोंके सहित लीलामय चेतनस्वरूपसे परमधाममें विराजमान है इस बातका उल्लेख प्रायः श्रुति स्मृति आदि सभी आर्ष ग्रन्थोंमें मिलता है। कतिपय ग्रन्थोंमें तो शक्तियों का नाम और स्वरूपका भी विचार किया गया है। कुछ ग्रन्थोंमें तो अन्तरङ्ग बहिरङ्ग भेदसे दो प्रकारकी शक्तियोंका उल्लेख भी मिलता है। इसी कारण शक्तियों के लिये 'विविधा' शब्दका प्रयोग किया है। अर्थात् कुछ अन्तरङ्ग शक्ति हैं तो कुछ बहिरङ्ग।

Shri Prannath Ji Pustkalay

भगवान व्यासजी उपरोक्त सूत्र को [1] रचते हुए कहते हैं कि 'साकार-निराकार' ये दोनों ही उपाधि हैं और परब्रह्म उपाधि से पर है। अतएव ब्रह्म के साकार निराकार दोनों ही स्वरूप वास्तविक नहीं हो सकते। इसी 'सूत्र' पर भाष्य करते हुए शंकराचार्यजी भी निम्नोक्त पंक्ति लिखते हैं:—

"उपाधीनां चाविद्याप्रत्युपस्थापितत्वात् । अतश्चान्यतरलिङ्गपरिग्रहेऽपि । समस्त विशेषरहितं निर्विकल्पकमेव ब्रह्म प्रतिपत्तव्यं, न तद्विपरीतम् ।।"

"साकार-निराकार दोनों ही अविद्या से प्रत्युपस्थापित उपाधि हैं, अतः ब्रह्म का सगुण निर्गुण-वर्णन मिलने पर भी उसे समस्त उपाधियों से रहित निर्विकल्प-सच्चिदानन्द स्वरूप ही मानना चाहिये, न कि उससे विरुद्ध।" जब पूर्णब्रह्म परमात्मा सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार स्वरूप उपाधियों से पर है, तब तो स्वतः सिद्ध हो जाता है कि—वह अपने स्वयं सिद्ध सर्वातीत स्वरूप में नित्य ही एकरस अखण्ड विराजमान है और वही सबका उपास्य ब्रह्म है। इस प्रकार वेद,शास्त्र,पुराणों के मनन से यही निश्चित होता है कि सगुण-निर्गुण से पर जो परम तत्त्व है, वह अनन्त असीम तो है ही, साथ ही अनन्त शक्ति समन्वित भी है।

हां, तो निष्कर्ष यह निकलता है कि-पूर्णब्रह्म परमात्मा अपने शक्ति समूह के साथ क्रीड़ा करने के कारण शक्ति-समन्वित युगल स्वरूप है। वह नाना प्रकार की अनन्त शक्ति रखता है, अतएव सर्वशक्तिमान् है। 'परा' नाम की विविध शक्तियां उसके लीलामय ब्रह्मधाम में लीलावैचित्र्य की सिद्धि के लिये अपने-अपने स्वरूप में अनन्तरूप से लक्षित होती हैं। इन सबको अधिष्ठात्री श्यामा शक्ति है,

---

[1] "न स्थानतोपि परस्य"आदि ब्रह्मसूत्र पर न्यायनिर्णय टीकाकारने बड़ी मार्मिक चुटकी ली है। आप लिखते हैं कि— उपाधिवशादविद्योभयलिङ्गत्व—योगेऽपि न तात्त्विकमुभयलिङ्गत्वं कूटस्थस्य ब्रह्मणो वास्तवरूपान्तरायोगात्।"

उपाधि के कारण अविद्याकल्पित ब्रह्म के दोनों स्वरूपों का प्रतिपादन होने पर भी ब्रह्म को उपाधि स्वरूप युक्त नहीं मान सकते। क्योंकि जब परब्रह्म के वास्तविक स्वरूप में रूपान्तर का योग हो ही नहीं सकता, तब अविनाशी ब्रह्म के दोनों उपाधि वाले (साकार निराकार) स्वरूप किस प्रकार माने जावें। अतः दोनों से पर ही ब्रह्म को मानना चाहिये। वस्तुतः है भी ठीक। तभी तो यजुर्वेद (४०—९) में लिखा है कि असम्भूति, सम्भूति दोनों प्रकार की उपासना परमात्मा को प्राप्त नहीं करा पाती, प्रत्युत अन्धकार में ही ले जा डालती है। इस बात को शतपथ ब्राह्मण में तो और भी कठोर शब्दों में लिखा है, जो देखते ही बनता है। यथा—

Shri Prannath Ji Pustkalay

जो सर्वदा एक रूप में एकरस शोभायमान है। वह शक्ति नित्य ही परमात्मा के साथ है और फिर वह शक्ति रूप है, इसलिये परमात्मा शक्तिमान् कहा जाता है।

"शक्तिशक्तिमतो भेदो दृश्यते नैव कुत्रचित्।"

शक्ति और शक्तिमानका कभी भेद नहीं माना जाता, अतएव वह शक्ति सहित होने से युगल स्वरूप है। परन्तु यह युगल स्वरूप, यह युगल भाव वैसा नहीं है, जैसा कि 'हम मैथुनी' सृष्टि के लिये ग्रहण करते हैं। यह युगल स्वरूप विचित्र और विलक्षण है। यह वस्तुतः एक होकर भी पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है। ब्रह्म के इस युगल भाव में एक का परित्याग कर दिया जाय तो दूसरे के अस्तित्त्व का प्रत्यय भी प्राप्त नहीं हो पाता। क्योंकि वह नित्य युगलभाव है।

यह एक ऐसा रहस्यमय परम विलक्षण युगलभाव है कि जिसमें सम्पूर्ण भावों का समावेश है। जो नाना विचित्र, विलक्षण धर्मों का आश्रय और केन्द्र होते हुए भी नाना धर्मों से पर विलक्षण एक अद्वितीय-सा वर्तमान है। जो स्वरूपतः एक होकर भी द्वैतभाव के पारस्परिक सम्बन्ध के द्वारा ही अपना परिचय देता है। जो युगलरूप में भी सबको अपने अद्वैतरूप का ही अनुभव कराता है। जो एक रूप में भी सबके विकास का आधार स्तम्भ है। इस प्रकार वह युगल रूप में भी एक और एक होकर भी युगल रूप से सदा सर्वदा अखण्ड शोभायमान है।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रता॥
असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्त्यविद्वांसोऽबुधा जनाः॥

(शतपथ ब्रह्मण १४-७-१३-१४)

अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्त्यविद्वांसोऽबुधो जनाः॥

(बृहदा० ४-४-११)

असम्भूति और सम्भूति उपासना में प्रवृत्त पुरुषों को अविद्वान और अबुध कहने का तात्पर्य 'उनकी सकाम भावना, किंवा जन्म-मरण का न मिटना' ही हो सकता है; अन्यथा उपासक होते हुए भी 'असुर्या' लोकों को प्राप्त होना, उचित नहीं लगता। वस्तुतः भाव यह है कि मनुष्य तन को पाकर आत्माको जाग्रत न कर सके और निराकार-साकार उपासना में ही भूला रहे तो वह आत्म-हनन है। जिस उपासना से मोक्ष प्राप्त न हो सके, आवागमन सदाके लिये न मिट सके, वह सब तुच्छ है। अतः लिखा है "भवाब्धिं व तरेत्स आत्महा" हे राजा परीक्षित! जो नरतन पाकर भी भवसमुद्रको न तर सके, वह 'आत्महत्यारा' माना गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

पदार्थ और उसकी शक्ति, सूर्य और उसका तेज, चन्द्र और उसकी चाँदनी, शब्द और अर्थ, जल और उसके तरंग-इसमें जैसे नित्य युगलभाव विद्यमान है, वैसे ही ब्रह्म में भी – पूर्वोक्त उदाहरणों से भी विचित्र, विलक्षण युगलभाव शोभायमान है। विलक्षण और विचित्र कहनेका तात्पर्य यह है कि—जो नित्य, अनन्त होकर भी एक है, जो नित्य एक अखंड अद्वैत होकर भी नाना शक्ति युक्त नित्य युगल स्वरूप है। जो नित्य भिन्न-भिन्न और पृथक्-पृथक् होकर भी सदा नित्य एकरस वर्तमान है। जो एकमें अनेक और अनेकमें नित्य एकरस है, वही 'दो' में एक और एकमें सदा युगलभाव पूर्ण शोभायमान है। यह युगल स्वरूप एक ऐसी अनिर्वचनीय आकृति को धारण किये है, जिसे शब्द द्वारा यथार्थतया कहा नहीं जा सकता। "देखत तो कछु विचित्र रचना, समुझि मन ही मन रहिए केशव कहि न जात कह कहिये।"

यह युगल स्वरूप स्वयंसिद्ध, अनादि, सदा सर्वदा एकरस 'आनन्द' राशि है। यह युगलभाव इतना प्रिय और आकर्षक है कि—जो कोई इसे देखकर कथन करने बैठता है वह स्वयं तद्रूप[1] बन जाता है। अब कहें क्या? यह ऐसी बाँकी

---

[1] यों तो सम्पूर्ण ब्रह्मधाम ही उसकी आनन्द शक्तिसे परिपूर्ण है, तथापि श्यामा शक्ति ब्रह्मानन्द की अधिष्ठात्री कही जाती है। जब सब पदार्थ आनन्द स्वरूप हैं तो श्यामा शक्तिके आधिपत्य में उन्हें होना ही चाहिये।

आनन्दरूपा सामग्री नित्याऽखण्डा हि वर्तते।
न मायागुण संसर्गः कदाचित्कुत्रचित् प्रिये॥

ब्रह्मधाम के यावत् पदार्थ आनन्द स्वरूप, नित्य अखण्डित शोभा ले रहे हैं। किसी काल में कहीं भी मायाका संसर्ग स्पर्श नहीं कर पाता। इस धामके आनन्द को विकसित रूप में देखना श्यामा शक्ति का आधिपत्य है। अनन्त महिमाका भण्डार, समस्त विभूतियों का स्वामीहोने से परमात्मा राजा कहने योग्य है। अतः श्रुतिमें इसको 'राजा' लिखा है :—

स वाऽयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः।
सर्वेषां भूतानां राजा (शतपथ ब्रा. कां० १४ अ० ५–१५)

यह परमात्मा ही सबका अधिपति है, यही सब प्राणियों का राजा है। जब वह सबका स्वामी है, सबका राजा है और शक्ति युक्त है अतएव 'राजश्याम' शब्दसे सम्बोधन करने योग्य है। यह नाम सबसे विशेष महिमाको सूचित करता है, अतः इसको 'राजश्यामा' कह कर पुकारते हैं। इस नामसे स्वामित्व भाव और शक्तियुक्त भाव दोनों धर्म व्यक्त होते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

युगल छवि है, कि जिसका चित्र खींचनेवाला स्वयं ही चित्रमय बन जाता है । अब खींचे किसको ? इस चेतन युगल भावको देखनेवाला स्वयं मुग्ध हो जड़वत् मूक हो जाता है । ब्रह्मके इस युगलभाव का अनुभव होता है । इसकी इस छविका प्रकाश होता है,उपलब्धि होती है । भासता है,पर कथन में नहीं आता । अतः उसे शब्दातीत कहते हैं।

"तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः"

ब्रह्मके प्रकाशमय इस दिव्य स्वरूपको तत्त्वदर्शी धीर पुरुष ही देख पाते हैं, सब मनुष्य नहीं । युगलभाव पूर्ण यह ब्रह्म एक ऐसा विलक्षण तत्त्व है-जहां लीलारस है, ब्रह्मानन्द है, ब्रह्म आनन्दका अनुभव है । सर्वभावेन सर्वत्र सबका प्रत्यय सबको होता है । ब्रह्मधामके सभी चेतन पदार्थ ज्ञानपूर्ण होने के कारण सर्वज्ञ हैं, सर्वरसका अनुभव सर्वत्र सब रूपमें हो रहा है । वहां कल्पना और आकांक्षाकी प्रतीक्षा नहीं । सर्वत्र सभी पूर्णात्पूर्ण हैं,तथापि ब्रह्म अपने सर्वातीत रूपसे सर्वत्र एकरस एक ही विराजमान है।

ब्रह्मधाम पूर्णात्पूर्ण होनेसे सर्वत्र सब कुछ उपस्थित ही रहता है । आविर्भाव तिरोभाव प्रतीत होता है, परन्तु वस्तुतः ब्रह्मधाम सर्वसामग्री सम्पन्न होने के कारण वहां किसी भावकी नवीन सृष्टि नहीं होती । वहां के सभी पदार्थ नित्य चेतन, सत्य सनातन, स्वयंसिद्ध, दिव्य स्वरूप, ज्ञानपूर्ण, सच्चिदानन्दमय पृथक् पृथक् होते हुए भी भेदरहित, ब्रह्मस्वरूप, सदा अद्वैतभाव पूर्ण शोभायमान हैं । इसलिये श्रुतियों में "पूर्णात्पूर्णमुदच्यते" पूर्णसे भी पूर्ण मानकर उसे उत्कृष्टतया पूजने योग्य कहा गया है।

पूर्णात्पूर्ण होनेके कारण सबको पूर्ण किये रहता है । वह सर्वशक्ति सम्पन्न है अतएव सबको शक्तिप्रदान किये रहता है । वह सबसे उत्तम है, सबसे अधिक सौन्दर्य की राशि है अतएव सबको आकर्षित किये रहता है । वह बल और विद्याका भण्डार है, उद्गम है, सबको बल और विद्या प्रदान किये रहता है अतएव चिद्घनराशि किशोर स्वरूप है । जितने भी दिव्यगुण हो सकते हैं उन सबका मूल वही है, सबको निभानेवाला और सबको सदा सुखदाता भी वही है । अतः उसको सब पतियोंका पति, सबका स्वामी एवं सबका आश्रय कहते हैं । सबको प्रेरणा करता है अतः सबका नियन्ता प्रेरक है । वस्तुतः अवस्था भेद की कल्पना तो जड़ चेतन के संमिश्रण इस मिथ्या जगत में ही विद्यामन है अनित्य विश्वके संकीर्ण धरातल की कल्पना के कनिष्ठ भावोंको लेकर ही तो हम असीम, अनन्त, अद्वैत, चेतन भूमिका वाले, ब्रह्मधामके पूर्णात्पूर्ण सुदिव्य चेतन पदार्थों को समझ नहीं पाते । स्थिति और गति, भोग्य और भोक्ता, साधना और सिद्धि, कामना और प्राप्ति, दूर और समीप, थोड़ा बहुत एक अनेक आदि भावों की कल्पना और

Shri Prannath Ji Pustkalay

भेद ये सब तो जगतके संकीर्ण विश्वमें चेतनांश के न्यून होने के कारण ही प्रतीत होते हैं। ब्रह्मधाम की अखंड चेतन भूमिका पूर्वोक्त कल्पना भेदसे पर है। क्योंकि वहां की अद्वैत भूमिका— सदा चेतन है। चिन्तामणि-मयी आनन्द स्वरूप है। वहां पर सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा परस्पर विरोधी अनन्त धर्मों को आलिंगन किये हुए नित्य लीलामय स्वरूप से शोभा सम्पन्न विराजमान हैं।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः (ईशावास्यो० ५)

वहां परब्रह्म परमात्मा अपने लीलामय स्वरूपों से सर्वत्र चलता सा प्रतीत होता है। वह पूर्णात्पूर्ण होने से सर्वत्र एक रस विद्यमान है, फिर भी चलता है। वह दूर से भी दूर भास रहा है। और सबका प्रेरक अन्तर्यामी रूपसे सर्वत्र पास में विद्यमान भी है। वही ब्रह्मधाम के लीलामय पदार्थों के भीतर भरपूर है वही बाहर भी सर्वत्र पूर्णात्पूर्ण भास रहा है। यही तो उसके स्वरूप की विशेषता और विलक्षणता है कि— वह परस्पर विरोधी धर्मों को धारण किये सर्वत्र सबको आनन्दप्रद हो रहा है। जो धर्म विलक्षण हैं, एवं जो परस्पर विपरीत प्रतीत होते हैं, उन्हीं को वह धारण किये है।

जहां पर सच्चिदानन्द ब्रह्मकी स्वरूपभूता विविध पराशक्ति वर्तमान हैं, जो सर्वातीत पूर्णब्रह्म परमात्मा के साथ नित्यलीला निबद्ध हैं, जो सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मानन्द रसको अगणित स्तरोंके सत्स्वरूपमें असंख्य प्रकारके चिद्घन रूपमें, असंख्य प्रकारके आनन्दरस के[1] रूपमें आस्वादन के योग्य बनाकर अनादि अनन्त कालसे चिद्घनात्मा ब्रह्मकी सेवामें तत्पर रहती हैं, उनके स्वरूपको कौन कह सके ? जबकि—उनका यह शक्तिरूप तथा शक्ति समन्वित समस्त लीला विलास उस चिद्घन तत्त्वसे अभिन्न है एवं चिद्घनराशि परमात्मा शक्ति समूहके सहित ही

---

[1] **तस्माल्लीला रसमयी रसो लीलामयः स्मृतः।**
तादात्म्यादेकरूपत्वाल्लीला ब्रह्ममयी सदा॥
आनन्दरूपा सामग्री सर्वाऽखण्डसुखात्मिका।
कैवल्या सच्चिदानन्दा ब्रह्मरूपा रसात्मिका॥ (माहेश्व०)

ब्रह्मकी लीला आनन्दमयी है, आनन्द लीलामय है। आनन्द रूपा सम्पूर्ण सामग्री अखंड और सुखप्रद है। वहांके किसी भी भाव में मायाका भाव नहीं है, अतः कैवल्या कही जाती है। प्रत्येक समय प्रत्येक भाव उल्लसित ही प्रतीत होते हैं, अतः वे सब ब्रह्मरूप हैं। रसात्मक भूमिका में रसानन्द के लिये तो पूछना ही क्या है। इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्मधाम ब्रह्ममय एक होते हुए भी विविध लीलामय रूप में भासता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

शक्तिमान और अद्वितीय है। इस प्रकार युगल भावपूर्ण, युगल स्वरूप अभिन्न होकर ही भिन्नरूपमें परस्पर शोभायमान एक दूसरे का प्रकाश प्रेमभाव और आस्वादन करते हुए, एवं एक दूसरे को आनन्दरस में आप्लावित करते हुए निरंतर अपने पूर्ण ब्रह्म स्वरूपका परिचय दे रहा है। ब्रह्मशक्ति और ब्रह्म वस्तुतः एक ही चिद्घन स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं। इसलिये ब्रह्मपूर्ण सच्चिदानन्दघन और साथ ही नित्य आनन्दप्रद है। यही ब्रह्मानंद लीला है। "रसौ वै सः, ब्रह्म वै रसः" इत्यादि श्रुतियाँ जिसको रस स्वरूप प्रतिपादन करती हैं, वह रस भी ब्रह्मका लीलामय स्वरूप है। ब्रह्म आप अपने लीलामय स्वरूपसे ही सबको आनन्दप्रद है। ब्रह्मको बाहर भीतर जहां कहीं देखिये सर्वत्र आनन्दरस रूप ही प्रतीत होगा। ब्रह्म ही द्रवीभूत और घनीभूत उभयविध भोग्य भोक्ता स्वरूपमें सर्वत्र फैला हुआ है।

यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघनः एवं 'अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्ति धर्मा'

(बृहदा० उ० ४–५–१३, १४)

याज्ञवल्क्य महर्षि मैत्रेयी से कहते हैं 'हे मैत्रैयी ! जिस प्रकार (सैन्धवघन) सेंधानमक का ढेला (अनन्तरः अबाह्यः) बाहर भीतर सब ओर (कृत्स्नः) सम्पूर्ण (रसघन एव) रस ही रस से भूरपूर नमक मूर्त्ति है (एवं वै) निश्चय उसी प्रकार (अरेऽयमात्मा अनन्तरः अबाह्यः) अरे मैत्रयी ! यह परब्रह्म परमात्मा भी बाहर भीतर सर्वत्र (कृत्स्नः) सबका सब सम्पूर्ण (प्रज्ञानघन एव) प्रज्ञानमूर्त्ति [1] ही

[1] प्रज्ञान घनका अर्थ प्रज्ञान मूर्त्ति होता है इसके लिये पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी व्याकरण में विशेष सूत्र बनाया है (मूर्त्तौ घनः ३—३—७७) इस सूत्र से अप्प्रत्ययान्त घन आदेश होता है। जब किसी पदार्थ के काठिन्य भावको कहना होता है तो वहां पर घनादेश हो जाता है। यद्यपि परमात्माको किसीने घनीभूत किया नहीं है किन्तु वह तो आनादि से ही प्रज्ञानघन हैं तथापि यहां पर धर्म शब्द से धर्मी का ग्रहण होता है। अतएव कौमुदीमें 'कथंसैन्धवगनमानय इति' सेंधा नमक तो स्वतः ही कठिन (ठोस) होता हैं यहां घनादेश किस प्रकार हुआ ? इस प्रकार शंका करके 'अत्र धर्मशब्देन धर्मी लक्ष्यते" यहां पर काठिन्य धर्मसे धर्मी जो नमक है उसको ग्रहण करके सूत्रकी प्रवृत्ति मान लेते हैं। इस प्रकार समाधान किया है। इस 'प्रज्ञानघन एव' श्रुति ने तो हमारे समाजी, नमाजी, किरानी, कुरानी आदि भाईयों की जवान ही बन्द कर दी। ये लोग परमात्मा की मूर्त्ति सुन कर कोसों भागते हैं। पर श्रुति तो किसी का पक्ष लेती नहीं। वहां तो सत्यका राज्य है। सत्य का साक्षात्कार करना हो तो श्रुतियों की शरण ग्रहण करें।

Shri Prannath Ji Pustkalay

है। सच्चिदानन्द स्वरूप होने से सर्वत्र अविनाशी तथा निर्विकार धर्मवाला है।" मुण्डक श्रुति (२-६) में भी ब्रह्म को आनन्द स्वरूप ही वर्णन किया है। यथा—

"आनन्दरूपममृतं यद्विभाति"

(यत्) वह परमात्मा (अमृतम्) अमृत स्वरूप अविनाशी (आनन्दरूपम्) आनन्दमूर्त्ति (विभाति) शोभायमान है। परन्तु अल्पज्ञ मनुष्य ब्रह्म के इस आनन्द स्वरूप को नहीं समझ पाते। अतः ब्रह्म की इस प्रज्ञानघन मूर्त्ति से कोसों दूर भागते हैं। ब्रह्म के घनीभूत और द्रवीभूत स्वरूप को जान लेने पर ही तो ब्रह्मानन्द रस का ज्ञान और अनुभव आत्मा को प्राप्त होता है। जब ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है तभी आत्मा ब्रह्मानन्द में विभोर हो उठता है। "रसं ह्येवाय लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" रस को पाकर ही आत्मा आनन्द मानता है। "आनन्दं ब्रह्म इति श्रुते" ब्रह्म को श्रुतियां आनन्दस्वरूप वर्णन करती हैं। 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन' ब्रह्मानन्द को जानकर निर्भय हो जाता है। इस प्रकार श्रुतियों ने ब्रह्मानन्द को अनेक विध वर्णन किया है।

पूर्णात्पूर्णं—मुदच्यते (बृहदार०)
रसो वै सः ब्रह्म वै रसः, आनन्दं ब्रह्म (तैत्तिरीय)
आनन्दरूपममृतं यद्विभाति (मुण्डक)
यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति (छां, ७-२३)
रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति (तैत्तिरीय)
कोह्येवान्यात्कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो नस्यात् (तैत्तिरीय)
एष ह्येवानन्दयाति (तैत्तिरीय)
तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः (तैत्तिरीय)
प्रमोद उत्तरः पक्षः। आनन्द आत्मा (तैत्तिरीय)
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् (श्वेता० ३-९)
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति (श्वेता० ३-१०)
शाश्वतं ध्रुवमच्युतम् (श्रुति)
विज्ञानमानन्दं ब्रह्म (बृ० ३-९-२८)

Shri Prannath Ji Pustkalay

वह परमात्मा पूर्णात्पूर्ण होनेसे नित्य पूर्णावस्था (युवावस्था) [1] सम्पन्न है। इसलिये युगलकिशोर है। वह आनन्द स्वरूप है इसलिये लीला सहित है। वह लीला करता है इसलिये रसमय है। वह रसघन है इसलिये सबको रसप्रद है। वह ब्रह्मानन्दसे पूर्ण है इसलिये सबको पूर्ण किये रहता है। वह अमृत स्वरूप है इसलिये उसकी सम्पूर्ण लीला अमृत स्वरूप अविनाशी हैं। वह भूमा है—

"यो व भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्"
यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा
यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम् (छान्दोग्योप० ७–२३,२४)

जो अनन्त है वही 'भूमा' है। अल्प है वही सुख रहित है। बहुतमें ही सुख है, थोड़ेमें सुख नहीं होता। जहांपर एक सच्चिदानन्द ब्रह्मके अतिरिक्त न कुछ देखनेमें आता है न सुननेमें आता है। जहांपर पूर्णब्रह्मके सिवा अन्य कुछ अनुभव होता ही नहीं, वही तो भूमा कहा जाता हैं। जो भूमा है वह अविनाशी है, वह बहुत स्वरूप है, इसलिये सबको सर्वत्र आनन्दमें विभोर किये रहता है। वह विज्ञानात्मा है इसलिये उसका सम्पूर्ण ब्रह्मधाम प्रकाशपूर्ण चेतन शोभायमान है। वह आकाश स्वरूप, अपने नित्य अखंड धाममें अविचल विराजमान अपनी पूर्णताको सर्वत्र प्रकाशित कर रहा है, इसलिये उसके प्रकाशसे सम्पूर्ण ब्रह्मधाम लीलादि यावत् पदार्थ हैं, वे पूर्ण और ब्रह्मस्वरूप हैं। बस, यही सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मकी विशेषता है कि–वह सबको सर्वत्र अपने ब्रह्मानन्द रससे परिपूर्ण किये हुए स्वयं निरपेक्ष–स्वतन्त्र विराजमान है। इसलिये—

तस्माल्लीला रसमयो रसो लीलामयः स्मृतः ।
तादात्म्यादेकरूपत्वाल्लीला ब्रह्ममयो सदा ।।

—परब्रह्मकी सब लीलाएँ रसमय और पूर्ण हैं और ब्रह्मधाम के सब रस भी लीलामय हैं। दोनों ही परस्पर अभिन्न रूपसे ब्रह्मस्वरूप ही शोभायमान हैं। ब्रह्मकी

---

[1] परमधाम में केवल परमात्मा ही युवा है ऐसा नहीं किन्तु वहां पर सभी युवा हैं, बालक या वृद्ध कोई नहीं हैं।

आनन्दात्मानो ह वै सर्वे देवाः (शतपथ १०–३–५–१३)
अपहत पाप्मानो देवाः (शतपथ ब्रा० २–१–३–४)

सभी दिव्य गुण सम्पन्न आनन्दात्मा हैं। दिव्य ब्रह्मधाम के स्वरूप सदा निर्मल हैं उन्हें जरा, मरण एवं पापादि दोष कभी स्पर्श नहीं कर पाते। क्योंकि वे दिव्य स्वरूप हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

लीला और विविध 'परा'शक्तियाँ—शाश्वती समा, तादात्म्य [1] सम्बन्धसे एक स्वरूप हैं। अतएव लीलाविशिष्ट ब्रह्मके स्वरूपको 'स्वलीलाद्वैत कहा जाता है। यथा—

'स्वस्य या लीला स्वलीला अथवा स्वस्मिन्या लीला तया सह अद्वै-तम् इति स्वलीलाद्वैतम्। द्वयोर्भावो द्वैतं न द्वैतम् इति अद्वैतम्'

जो परमात्मा अपनी लीलासे सदा अद्वैत है अथवा जो अपने ब्रह्मस्वरूप में लीला सहित अद्वैत विद्यमान है उसे स्वलीलाद्वैत कहते हैं। जहां द्वैत—मायाका भाव है उसे द्वैत कहते हैं। पर जहांपर द्वैत—मायाका भाव ही नहीं, जहांपर माया का उदय हो ही नहीं सकता। जिस चेतन भूमिकामें द्वितीय भाव है ही नहीं उसे अद्वैत कहा जाता है इस प्रकारसे ब्रह्मधाममें माया का अभाव होने से ब्रह्मको

---

[1] परब्रह्म अपनी ब्रह्मानन्द लीला के लिये सम्पूर्ण नित्य पदार्थों को लेकर लीलामय शोभायमान है। ब्रह्मधाम के सभी पदार्थ तादात्म्य सम्बन्धसे ब्रह्मस्वरूप हैं, भिन्न नहीं। तादात्म्य सम्बन्धका क्या स्वरूप हैं? इस तथ्यको हम वहांके अलौकिक स्वरूपमें तो कहने को असमर्थ है यहां के संकुचित वृत्तिवाले शब्दों में कहें तो उसका लक्षण "भेदसहिष्णुरभेदत्वम् तादात्म्यम्" भेद रहते हुए अभेद को तादात्म्य कह सकते हैं। घरमें जलते हुए दीप और उसके फैले हुए प्रकाशके साथ जो सम्बन्ध है, वह उपरोक्त (तादात्म्य) लक्षण का लक्ष्य हो सकता है।

'दीप—ज्योति और प्रकाश परस्पर अभिन्न हैं। यदि भिन्न भिन्न होते तो दीप ज्योति के हटने से प्रकाश न हटता। दीप ज्योति और प्रकाश दोनों एक स्वरूप हैं तो यह भी नहीं कहते बनता। क्योंकि दीप ज्योतिमें हाथ लग जाने से हाथमें छाला पड़ जाता है, किन्तु हाथ के ऊपर प्रकाश पड़ने से यह बात नहीं होती। इसलिये अभेद (एक) भी नहीं कहते बनता। बस, जिसमें भेद भी प्रतीत हो और अभेद भी विद्यमान हो। वह भेद सहिष्णु अभेद "तादात्म्य सम्बन्ध" कहा जाता है। बस, ब्रह्मधाम में भी यही विचित्रता है। लीलामय सब पदार्थ पृथक् पृथक् विद्यमान हैं, वे सब ब्रह्मस्वरूप होनेसे एक स्वरूप विराजमान हैं। वस्तुतः ब्रह्मतत्त्व शब्दातीत होने कारण भेद अभेद दोनों कल्पनाओं से पर है और कहते बनता ही नहीं। केवल समझने के लिये संकेत मात्र कहा जाता है। क्योंकि भेद की कल्पना तो मायामें जड़ और चेतन के योगके कारण चेतन की न्यूनता से प्रतीत होती है। अद्वैत भूमिका के चेतन पदार्थों में भेदकी कल्पना करना ही असंगत

Shri Prannath Ji Pustkalay

'स्वलीलाद्वैत' कहते हैं। ब्रह्मको अद्वैत प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियोंका यही निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्म माया से रहित है और वह अपने स्वरूप में लीला सहित शोभायमान है। परब्रह्मका यह लीलाविहार वैसा नहीं हैं जैसा हम मैथुनी सृष्टि के लिये ग्रहण करते हैं। यह लीलाविनोद, यह ब्रह्मानन्द विलक्षण तो है ही साथ ही मन और वाणी की कल्पनासे भी पर होने से 'शब्दातीत' है, अतएव सांख्य दर्शनकार कहते हैं—

नाद्वैतश्रुति विरोधो जाति परत्वात् (सा० दर्शन १—१५४)

ब्रह्मको अनन्त स्वरूप, अनन्त शक्ति सम्पन्न माननेसे अद्वैत प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियों से विरोध नहीं हो सकता। क्योंकि 'नित्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" आदि वचन ब्रह्मको अनन्त कहते हैं। ब्रह्म अनन्त होने पर भी एक जाति धर्मविच्छिन्न है अतएव द्वैत नहीं कहा जा सकता। इस तथ्यको गौड़पाद आचार्यने अपनी कारिकाओं में और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है। यथा—

मायया भिद्यते ह्येतन्नाऽन्यथाऽजं कथञ्चन।
तत्त्वतो भिद्यमाने हि मर्त्यतामृतं व्रजेत्॥

(मांडूक्यका ३-१९)

अर्थः— (एतत्) यह परब्रह्म (मायया) मायाके कारण (भिद्यते) द्वैत देखनेमें आता है (अन्यथा) नहितर (हि) निश्चय ही (अजम्) अविनाशी ब्रह्म (कथंचन) किसी प्रकार भी भेद बुद्धि करने योग्य (न) नहीं है (तत्त्वतः भिद्यमाने हि) यदि ब्रह्म तत्त्वतः भेदको प्राप्त होता है ऐसा मान लेवें तब तो (अमृतम्) अमृतस्वरूप अनादि परमात्मा (मर्त्यताम्) विनाशी भावको (व्रजेत्) प्राप्त हो जावे और नित्य अविनाशी न रहे। अतएव ब्रह्ममें भेद की कल्पना जो उठने लगती है कि— 'ब्रह्मधाममें' जब नाना पदर्थ हैं, नाना प्रकारकी लीला हैं तब तो विश्वका-सा व्यवहार हो गया और व्यवहार में भेद अवश्य मानना पड़ेगा, इत्यादि जो कल्पनाकी लहरें उठती हैं वे सब मायाके कारण। क्यों कि मायामें चेतनकी न्यूनताके कारण मिथ्या जगतका व्यवहार भी जड़ चेतनके भेद पर स्थित है अतः यहां की जैसी कल्पना ब्रह्मधामके लिये भी उठने लगती है पर वस्तुतः ब्रह्ममें और ब्रह्मके धाम में माया तीनों कालमें नहीं है तब तो भेद कल्पनाका स्थान ही नहीं रह जाता'। अतएव श्रुति कहती है :—

"अथात आत्मादेश एवाऽऽत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्ठदात्मा पश्चादात्मा पुरस्ता दात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वमिति" (छा० ७—२५—१)

सनत्कुमारजी नारद से ब्रह्मकी महत्ता और पूर्णताको बताते हैं कि-

Shri Prannath Ji Pustkalay

हे नारद ! यह परब्रह्म और इसका आत्मस्वरूप बड़ा ही विचित्र तत्त्व है, वह अनंत, असीम तो है ही साथ ही सब रूपमें सर्वत्र आत्म-स्वरूप पदार्थों से ही भरपूर है। ब्रह्म और ब्रह्मका परधाम दोनों आत्मतत्त्व से परिपूर्ण होनेसे सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म हो रहा है। ब्रह्मधामकी भूमिका ब्रह्मधामका चिदाकाश, पश्चिम पूर्वकी ओर एवं दक्षिण उत्तर के बन उपवन जो कुछ भी विद्यमान हैं वह सब आत्मा ही आत्मा सर्वत्र सब रूपमें फैला हुआ है, सब पदार्थ में वही एक आत्मतत्त्व भरा पड़ा है। जल, थल, पशु, पक्षी, बन, उपवन आदि ब्रह्मधामके यावत् पदार्थ हैं, वे सब आत्मस्वरूप, एकरस प्रेममय रूपमें नित्य चेतन ब्रह्ममय हैं।

वस्तुतः ब्रह्मतत्त्व है ही ऐसा विलक्षण कि उसके विषय में न तो कारण कार्यभाव की कल्पनाकी जा सकती है, न उसे निराकार-शून्य ही कह सकते हैं। न उसके ब्रह्मधामके लीला मात्र पदार्थों की अनन्त और अद्वैत भावना को शब्द में कहा जा सकता है, न वहां उपादान का झगड़ा है, न एक अनेक का प्रश्न है।

जिस प्रकार एक सिद्ध योगी अपनी इच्छा मात्रसे सब प्रकार की सृष्टि तत्काल रच देता है उसे किसी उपादान अथवा साधन की आवश्यकता नहीं होती। उसको सृष्टिमें साधन सापेक्ष कुछ भी नहीं होता, क्योंकि जो स्वयं सिद्ध हो चुका वह सभी कुछ सिद्धरूपमें प्रतिक्षण उपस्थित कर सकता है। योगी को आभास वैचित्र्यमय पदार्थ-समूह इच्छा मात्रसे ही प्रकाशित हो जाते हैं, जिस प्रकार स्वप्नके पदार्थ साधन सापेक्ष नहीं होते किन्तु इच्छा मात्रासे उपस्थित होते रहते हैं। उसी प्रकार योगीके जगतमें सभी पदार्थ उसकी इच्छामात्रसे सब कुछ उत्पन्न हो जाते हैं वे[1] उपादान सापेक्ष नहीं रहते।

---

[1] विश्वामित्र आदि अनेक योगियोंने इच्छामात्र से यावत् (सम्पूर्ण) पदार्थों की सृष्टि का निर्माण किया है। योगी अपनी सृष्टि का संवरण (समेटलेना) भी कर लेता है और कभी नहीं भी करता। यह उसकी सार्वभौम इच्छा पर निर्भर है। कुछ लोग कहते हैं कि सिद्ध योगी की इच्छा मात्र से तत् तत् पदार्थों के परमाणु इकठ्ठे होकर पदार्थों का निर्माण कर देते हैं, किन्तु यह कथन यथार्थ नहीं। क्योंकि परमाणुवादी विद्वान भी किसी पदार्थ की रचना साक्षात् परमाणुओं द्वारा नहीं मानते, किन्तु परम्परया मानते हैं। वे भी बीच में परमाणुसे द्वयणुक, द्वयणुक के सम्मेलन त्रसरेणुसे और उससे स्थूल इस प्रकार अवान्तर अवयवोंका व्यवधान मानते हुए क्रमशः स्थूल कार्य की उत्पत्ति बताते हैं। परमाणुसे सीधा स्थूल कार्य बनता है, ऐसा नहीं कहते अतएव 'ईश्वर प्रत्यज्ञाविमर्शिनी' पृष्ट १३८ पर लिखा है 'नहि एवं वक्तुं शक्यम्-परमाणवो योगीच्छया झटिति संघटिताः कार्यमारप्स्यन्ते" ऐसा नहीं कहा जा सकता।

Shri Prannath Ji Pustkalay

जब मृत्यु लोक का एक नश्वर मनुष्य योगशक्ति सम्पन्न होकर अनन्त पदार्थों को चिन्तन मात्र से उपस्थित कर देता है तब ऐसे असंख्य किंवा संख्यातीत योगसिद्धियों का केन्द्र परब्रह्म परमात्मा अपनी लीलामात्र से अनन्त पदार्थों को उपस्थित कर मुक्तात्माओं को आनन्दित करता रहे अथवा नित्य चेतनघन पदार्थों द्वारा अपने को लीलामय भासित करता रहे तो इसमें द्वैत की शंका करना कितना अज्ञानपूर्ण है ? जो ब्रह्म सदा उदित है, जहां पर सर्वत्र अद्वैतभाव ही पूर्ण है, जहां के समस्त पदार्थ ब्रह्मानन्द रस पूर्ण हैं , जो "रसो वै ब्रह्म" "ब्रह्म वै रसः" की उक्ति को चरितार्थ कर रहा है, जहां प्रतिक्षण अद्वैत ब्रह्मानन्द का ही भास सर्वत्र भरपूर है, वहां के लिये द्वैत की शंका करना ही भूल है, बल्कि अज्ञान है।

वस्तुतः आत्मदृष्टि से अनुभव में आने वाला ब्रह्मतत्त्व चर्म दृष्टि वालों को समझ में न आ सके यह तो स्वाभाविक है। सूक्ष्मतत्त्व दर्शक यंत्र से देखने योग्य वस्तु आज भी सबको दृष्टिगोचर नहीं होती। आज के विज्ञान युग ने इस बात को प्रत्यक्ष सिद्ध कर बताया है कि—सूक्ष्मतत्त्व सूक्ष्म निरीक्षक यन्त्रों से ही देखे जा सकते हैं, अन्यथा नहीं। इसीप्रकार वेद शास्त्रों में भी लिखा है।

"तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः"। (इति श्रुते)

उस परब्रह्म के स्वरूप को स्थिरप्रज्ञ विचक्षण बुद्धि वाले धीरपुरुष ही देख पाते हैं, सब नहीं। कारण, ब्रह्मज्ञान जाग्रदवस्था सापेक्ष है। जिसमें स्वप्न और जाग्रत दोनों अवस्था का ज्ञान बना रहे, उसे तुरीयावस्था कहते हैं। यद्यपि ब्रह्म

कि—योगीकी इच्छामात्र से परमाणु झट एकत्रित होकर कार्य का सम्पादन कर देते हैं। प्रत्युत योगी की सृष्टि में इन सब (परमाणु, उपादान अथवा प्राकृत साधनों) की कुछ भी अपेक्षा नहीं रहती, किन्तु वह तो सब प्रकार से स्वतंत्र और निरपेक्ष होती है। कारण यह है कि—योगी की संवित् स्वतन्त्रतापूर्ण है जब उसमें इच्छा का उदय होता है तो उसकी अप्रतिघात रूप इच्छा के कारण अन्त स्थित (ज्ञानरूप में जो पदार्थ समूह है वह) पदार्थ समूह ज्ञेयरूप में अवभासित होने लगता है। जो प्रथम 'अहं' रूप में दृष्टा के साथ एकाकार था, वही सब 'इदं' रूप में पृथक् भाव में परिस्फुट हो जाता है। इस बात को सुरेश्वराचार्य भी मानते हैं। उन्होंने लिखा है कि—विश्वामित्र प्रभृति परिपक्व समाधि ऋषियों ने—उपादान, उपकरण और प्रयोजन के बिना भी केवल इच्छा मात्र से सब प्रकार की भोग सामग्री से परिपूर्ण स्वर्गलोक की सृष्टि रचना की थी। यह योगसृष्टि का दृष्टान्त है।

ईश्वर की सृष्टि भी इसी प्रकार की है। क्योंकि वह भी सृष्टि रचना में स्वतन्त्र और

Shri Prannath Ji Pustkalay

तुरीयातीत है तथापि वह तुरीयावस्थाके द्वारा जाना जा सकता है। अतः वेदमंत्र कहते हैं कि उस परब्रह्म स्वरूपको धीरपुरुष—जिन्होंने मायाब्रह्म के स्वरूपको जान लिया है और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तीनोंसे पर अवस्थाको प्राप्त हैं वे उसके स्वरूपको देख सकते हैं, सब मनुष्य नहीं। बस, इसी प्रकार ब्रह्मधामके सच्चिदानन्द स्वरूप सूक्ष्माति-सूक्ष्म पदार्थों को यहांके तर्कवागीश न समझ सकें तो आश्चर्य ही क्या ? अतएव छांदोग्य (८-४-१) श्रुति कहती है:—

सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्तेऽपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः।

परमात्माके इस ब्रह्मलोकको (सर्वे पाप्मानः) सब प्रकारके पाप्मा—पापात्मा नहीं प्राप्त कर सकते, प्रत्युत (अतो निवर्तन्ते) ब्रह्मलोक को समझ ही नहीं पाते अतएव उस मार्गपर चल नहीं सकते, किन्तु उलटे लौटकर विमुख बन जाते हैं। क्योंकि—(एषः हि ब्रह्मलोकः) यह ब्रह्मलोक निश्चय निर्मल पुरुषों को—विशुद्धात्माओं को प्राप्त होने की वस्तु है। अर्थात् किसी प्रकार का भी पापी पुरुष इस ब्रह्मलोक को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः श्रीजी कहते हैं:—"साथजो साफ हुए बिना क्यों कर पहुंचे धाम" (तारतम सागर)

सर्व शक्तिमान है। ईश्वर—कारक व्यापार के विना कर्ता, और प्रमाण व्यापार के बिना सर्वज्ञ है। क्योंकि वह स्वयं प्रकाश स्वरूप है। उसकी इच्छाशक्ति सर्व सामर्थ्य सम्पन्न है। वह अन्य-निरपेक्ष तथा अप्रतिहत है। इसी इच्छाशक्ति के बलसे वह — "कर्तुं अन्यथा कर्तुं, अ-कर्तुं" प्रवर्तन, परिवर्तन और विवर्तन सब कुछ करने में समर्थ है, यही उसकी स्वतंत्रता है।

अब विचार करिये कि—जब वेदान्तवादी विद्वानों का ईश्वर सब प्रकारके विनश्वर नट खट—प्रवर्तन परिवर्तन और विवर्तन करते हुए भी वह अद्वैत निर्लेप और निरपेक्ष बना रह सकता है, तब असंख्य ईश्वरों को क्षण मात्रमें उदय-लय करनेवाले जो अक्षर ब्रह्म हैं, उन अक्षर ब्रह्मसे भी परात्पर सर्वातीत पूर्णब्रह्म परमात्मा सर्वनियन्ता सर्वाध्यक्ष अपनी अचिन्त्य धारक शक्तिसे अपने वृहत्तम ब्रह्मस्वरूप में लीलामय चेतन पदार्थों को नित्य धारण किये हुए अद्वैत हो, तो किसीको आपति या शंका क्यों ?

एक स्वप्नद्रष्टा मनुष्य और नश्वर कलेवर वाला योगी, एवं सगुण ईश्वर—ये तो सब कुछ कर सकते हैं, सब कुछ भोग सकते हैं और सब कुछ सृष्टि रचना करने में संलग्न रहते हैं फिर भी निर्लेप और निरपेक्ष ! और जो सब ईश्वरों का ईश्वर, सब पतियोंका अधिपति है, एवं सर्वातीत, अनादि, अनन्त, पूर्णात्पूर्ण, अद्वैत, अखंड विराजमान है, वह अपने चेतन

Shri Prannath Ji Pustkalay

वास्तविक बात यह है कि–जहां तक मनुष्यके अन्तःकरण में ब्रह्म बुद्धिका विकास नहीं होता और आत्मा में दृढ़ निष्ठाका उदय नहीं होता, ब्रह्मतत्त्व हृदय में जमता ही [1] नहीं, फिर ब्रह्मलोक और परमधाम की बात कौन समझे ? "जो जाने जेहि देहि जनाई" इस अद्वैत ब्रह्मतत्त्वको तो वही जान पाता है जिसे परमात्मा स्वयं जनादे, जानने योग्य बना दे । जबतक सद्गुरु की कृपा नहीं होती, महापुरुषों की चरण रजका सेवन नहीं बनता, यह तत्त्व स्फुरता ही नहीं, जानना तो दूर रहा।

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।
न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकम् ॥

(भागवत ५–१२–१२)

परमहस जड़भरत रहूगण राजाके प्रति ब्रह्मतत्त्व की दुर्लभता वर्णन करते हुए कहते हैं कि–'हे रहूगण ! (एतत् तपसा न याति) यह परम तत्त्व, ब्रह्मका स्वरूप ज्ञान, न तो तपस्या से प्राप्त होता है और न अधिक पूजा पाठसे । संन्यास धारण कर लेने से भी यह प्राप्त नहीं होता । एवं विशेष वेदाध्ययन से भी

स्वरूपों सहित कि जो स्वयं सिद्ध और तद्रूप हैं नित्य लीला करे तो किस प्रकार द्वैत कहा जा सकता है ? यह समझ में नहीं आता ।

"निराकार को साकार कहे साकार को निराकार"

यह कितनी बड़ी भूल ! कितना विचित्र अज्ञान कि-जो परब्रह्म परमात्मा तीनों कालमें सदा सर्वदा बृहदानन्दमय चिद्घन पूर्ण है, सत्य सनातन अनादि है, उसे तो निराकार बताते हैं और जो विश्व और विश्वके पदार्थ (जिनमें स्वयं भी सम्मिलित हैं) जो स्वप्नवत मिथ्या हैं, केवल प्रतीत मात्र हैं एवं अस्तित्व हीन अनित्य हैं, उन्हें साकार कह कर विवाद करते हैं । इस प्रकार "अपनी छाया में आप विगूति" अपने में विद्यमान अज्ञान ही जब उन्हें आगे नहीं बढ़ने देता तब सर्वातीत पदको–ब्रह्मतत्त्व के मूल स्वरूपको ये वितण्डावादी किस प्रकार जान सकें । यही कारण है कि "खोज खोज खोजी थके" ढूंढ़ने वाले थक गये परन्तु परम तत्त्व हाथ न लगा , नहीं तो मन, वाणी से पर कहते ही किसलिये !

[1] उलूकस्य यथा भानुरन्धकारः प्रतीयते ।
स्वप्रकाशे परानन्दे तमो मूढस्य जायते ॥ (श्रुति)

उल्लू पक्षीको प्रकाश राशि सूर्य भी अन्धकार प्रतीत होता है । बस, यही दशा ब्रह्मज्ञान की है। स्वप्रकाश पूर्ण ब्रह्मानन्द का वर्णन सुन कर अनधिकारी को कुछ और ही भासने

Shri Prannath Ji Pustkalay

नहीं मिलता और न जल, अग्नि, सूर्यादि की उपासना से ही मिल पाता है। यह तो महापुरुषों की चरणरज के स्नान से अर्थात् महात्मा ब्रह्मज्ञों की चरण रजका सेवन करने से प्राप्त होता है।

ब्रह्म को निराकार, निरीह, निर्विशेष, आदि कह-कह कर ढिंढोरा पीटने वाले शंकराचार्यजी भी जब "ब्रह्मलोके" इत्यादि निम्नोक्त श्रुति का अर्थ करने बैठे तो निराकारवाद कपूर हो गया और झट ब्रह्मधाम हृदय में घुस पड़ा। लगे वन, बगीचा और सर सरोवरों का वर्णन करने। यथा:—

"ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि। तदेरं मदीयं सरस्तदश्वत्थः सोमसवनः"

(छान्दोग्योप० ९ खं. ५—३)

अर्थः— (इतः) यहां से (तृतीयस्याम् दिवि ब्रह्मलोके) तीसरा जो दिव्य ब्रह्म लोक है। (तद् ऐरम् मदीयम् सरः)वहां पर ऐर-अन्न वन है। 'मदीयं मदकरमिति' सबको प्रसन्न करने वाला सरोवर-ताल है (तद् अश्वत्थः सोमस वनः) वहीं पर अश्वत्थ-पीपल का वन है और सोमस-अमृत का वन है।

इस श्रुति में ब्रह्मधाम को तृतीय लोक बताया है। कारण श्रुति की दृष्टि में क्षर, अक्षर तथा अक्षरातीत तीन ही पुरुष हैं और तदनुसार तीन ही लोक हैं। अव्याकृत पर्यन्त अष्टावरण सहित यावत् विश्व है, वह सब नश्वर होने से 'क्षर' लोक है। उससे पर चतुष्पाद विभूति सहित यावत् अक्षरधाम है, वह 'अक्षर' लोक है और उससे भी पर जो सर्वातीत पूर्णब्रह्म परमात्मा का धाम है वह तीसरा लोक है। अतएव श्रुति ने 'तृतीयस्याम् दिवि' का प्रयोग किया है जो सुसंगत है।

रामानुज आचार्य ने इस श्रुति से ब्रह्मधाम में पीपल और सौम वन नाम के दो वन और हर्षवर्धक अमृत का एक सरोवर है, ऐसा माना है और 'ऐरं' का

लगता है। वह उसे लेने जाता है परन्तु अपनी दुर्बलता के कारण उस परम तत्त्वको नहीं ले पाता। श्वानके सामने दर्पण रख दीजिये तो वह यह समझने का प्रयास नहीं करता कि मैं इसमें किस प्रकार दृष्टिगोचर होने लगा, किन्तु अपनी अज्ञानतासे उसे अपना विरोधी समझ भौंकने लगता है। बस, जैसे ही उसके हृदय में विरोधीभाव का उदय हुआ नहीं कि तत्काल उसके हृदयमें क्रोधावेश बढ़ने लगता है। उसी प्रकार ब्रह्म तत्त्वको अनधिकारी पुरुष लेने जाता है तो उसके हृदय में संस्कारों की हीनता और विचारों की दुर्बलता से, एक प्रकारके भ्रम का कारण बन जाता है। अतः उसके विरुद्ध मत स्थिर करने में लग जाता है और उससे वंचित हो जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ अमृत किया है। 'इरयाऽमृतेन माद्यन्ते यस्मिंस्तदैरं मदीयममृतमयं सरः' अर्थात् 'इरा' नामके अमृतसे आनन्द को प्राप्त होते हैं जिसमें ऐसा मदीय–अमृतमय सरोवर है, ऐसा लिखा है। और शंकराचार्य जी इस श्रुति से ब्रह्मधाम में 'ऐर'–अर्थात् अन्नवन, पिप्पल वन और सोमवन–अमृतवन इस प्रकारके तीन वन और एक सरोवर बताते हैं। अस्तु, कुछ भी क्यों न हो, ब्रह्मधाम विविध सामग्री से भरपूर है, यह मत दोनोंके अर्थ से सिद्ध हो जाता है। एवं ब्रह्मको निराकार कहकर ब्रह्मधामको उड़ाने वालोंको मौन धारण कर लेना पड़ता है।

कुछ निराकारवादी जब ब्रह्मधामके स्वयं सिद्ध चेतन पदार्थों का विस्तरशः वर्णन पाते हैं तो लज्जित हो अपनी प्रतिष्ठा खड़ी रखनेके लिये कहने लगते हैं कि 'यह सब तो कार्यब्रह्म लोकका वर्णन है, परब्रह्म लोकका नहीं।' परन्तु यह भी उनका दुराग्रह मात्र है, यथार्थ नहीं। क्योंकि—

परं जैमुनिर्मुख्यत्वात् (ब्रह्मसूत्र ४–३–१२)

शांकरभाष्य–जैमुनिस्त्वाचार्यः स एनान् ब्रह्म गमयति (छाँ० ४–१५–५) इत्यत्र परमेव ब्रह्म प्रापयतीति मन्यते। कुतः। मुख्यत्वात्। परं हि 'ब्रह्म' शब्दस्य मुख्यमालम्बनम्, गौणमपरम्। मुख्यगौणयोश्च मुख्ये संप्रत्ययो भवति ॥"

दर्शनाच्च (ब्रह्मसूत्र ४–३–१३)

(शां. भा.) तयोर्ध्वमायन्नऽमृतत्वमेति (कठो २–३–१६) इति च गति पूर्वकममृतत्वं दर्शयति। अमृतत्वञ्च परस्मिन् ब्रह्मण्युपपद्यते, न कार्ये। विनाशित्वात्कार्यस्य। अथ यत्रान्यत्पश्यति तदल्पं तन्मर्त्यम् (छां ७–२४–१) इति वचनात्। परविषयैव चैषा गतिः कठवल्लीषु पठ्यते नहि तत्र विद्यान्तर प्रक्रमोऽस्ति। अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्माद् (कठ०) इति परस्यैव ब्रह्मणः प्रक्रान्तत्वात्।

व्यासजी ने अपने मीमांसा दर्शन (ब्रह्मसूत्र) में 'जैमुनि आचार्य के नाम से स्मरण किया है कि—छान्दोग्योपनिषद् में जो ब्रह्म प्राप्ति और ब्रह्म धामका वर्णन आता है, वह कार्य ब्रह्मलोक का नहीं है, किन्तु परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति का ही वर्णन है। क्योंकि ब्रह्म शब्दसे यहांपर मुख्य परब्रह्मका ही ग्रहण हो सकता है, कार्य ब्रह्मका नहीं। 'मुख्यगौणयोर्मुख्ये संप्रत्ययः' इस न्यायसे गौण और मुख्य दोनों जहां पर उपस्थित हों तो मुख्यको ही लिया जाता है, ऐसा सिद्धांत है। केवल 'गौणमुख्य' न्यायकी प्रबलता से ही परब्रह्मको लेते हैं इतना नहीं, किन्तु श्रुतियोंने भी ब्रह्मधाममें अमृत स्वरूप प्राप्त होनेका प्रतिपादन किया है। यथा—

यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति (कठोप० २–३–८)
तयोर्ध्वमायन्नमृततत्वमेति ॥ (कठो० २–३–१६)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ – अमृत स्वरूपकी प्राप्ति परब्रह्म परमात्माके धाममें ही सम्भव हो सकती है, कार्यब्रह्म के लोकमें नहीं। क्योंकि कार्य ब्रह्म का लोक तो नश्वर है। जो नश्वर है, मिथ्या है वह अल्प है मरणशील है। इसलिये कठोपनिषद में जो ब्रह्मधाम में अमृतत्व की प्राप्ति का वर्णन है वह परात्पर पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के धामका ही वर्णन है। एवं नचिकेताके द्वारा "अन्यत्रधर्मादन्यत्राधर्मात्" (कठ०) धर्म अधर्म से पर परब्रह्म के विषय में ही जिज्ञासा की गई है और उसके उत्तर में यमराज ने परब्रह्म तत्त्व का ही उपदेश दिया है, दूसरी किसी विद्या का नहीं।

इस प्रकार से व्यास जी और शंकराचार्य जी ने भी अमृतत्व की प्राप्ति और ब्रह्मधाम वर्णन को परब्रह्म धामपरक ही माना है।

"इतरलाभेपि व्यावृत्तिः [1] पञ्चाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः" (सांख्यदर्शन)

ब्रह्मलोकाच्च्युतश्चापि विष्णुलोकं स गच्छति।
विष्णुलोकात्परिभ्रष्टो रुद्रलोकं स गच्छति॥
तस्मादपि च्युतः स्थानाद् द्वीपान्तरेषु जायते।
स्वर्गेषु च तथान्येषु भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान्॥

(पद्मपु० सृष्टिखं० १५–२८–२९)

इत्यादि शतशः वचन इस बातको पुष्ट करते हैं कि—कार्य ब्रह्मलोकमें अमृतत्वकी प्राप्ति नहीं होती, प्रत्युत वहांसे तो कल्पान्तमें अथवा यथासमय पतन भी होता है। जो जन्म मरणका कारण बन जाता है। इसलिये 'स न पुनरावर्तते' इत्यादि अनेक श्रुतियोंमें 'परब्रह्मलोक' से ही पुनरावृत्ति नहीं होती, ऐसा प्रतिपादन किया गया है। यही कारण है कि – श्रुतियोंमें—

"ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुखमेवापियन्ति" (वृहदा० ४-४-१४)
'अनाद्यनन्तं महतःपरं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते' (कठ० १-३-१५)
"नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्"॥

(कठ० २–५–१२,१३)

[1] निर्गुणात्मन इतरस्याध्यस्तरूपस्य ब्रह्मलोकपर्यन्तस्य लाभेऽपि व्यावृत्तिरस्ति। कुतः देवयानपथेन ब्रह्मलोकं गतस्यापि 'असौ वाव लोको गौतमाग्नि इत्यादिना जन्मश्रवणात्।

Shri Prannath Ji Pustkalay

"य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ।" (श्वेता० ३-१०)

इस प्रकार परब्रह्म के स्वरूप को जानने वालों के लिये अमृतत्त्व की प्राप्ति लिखी है। अनादि अनन्त, अविनाशी ब्रह्म को प्राप्त होकर ही मृत्यु से छुटकारा पाने का विधान है। जो नित्यों का भी नित्य स्वामी है, जो नित्य चेतनों का भी नियन्ता प्रेरक है। जो बहुतों को अकेला ही आनन्दित करता है, उसके आत्मस्थ स्वरूप को जानने वालों को ही सच्ची शान्ति और शाश्वत—नित्य सुख प्राप्त होता है, औरों को नहीं। इस प्रकार अनेक श्रुतियों ने परब्रह्म के परमधाम में ही शाश्वत सुख बताया है। अविनाशी ब्रह्म के द्वारा ही ब्रह्मतत्त्व की प्राप्ति होना लिखा है, नश्वर कार्यब्रह्म तो स्वयं ही अद्वैत तत्त्व के लिये तरसते हैं और उसके लिये प्रयत्नशील हैं। यथा—

विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः ।
ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायन्तः कमपि ध्रुवम् ।।(देवीभाग० १-८-४५)
पञ्चविंशत्समुद्भूता देहास्तेषां न चान्यथा ।
काले मरणधर्मास्ते सन्देहः कोऽत्र ते नृपः।। (देवीभाग० ४-१३-१९)

भगवान विष्णु निरन्तर तप करने में लगे हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव अविनाशी ब्रह्म का ही ध्यान करने में तत्पर हैं। शरीर भी इनके पच्चीस तत्त्व से समुत्पन्न हैं, समय पाकर ये भी मृत्यु के अधीन होने वाले हैं। इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है, इसप्रकार व्यासजी ने स्पष्ट लिखा है। इसलिये श्रुतियों में भी ब्रह्मधाम को जो अनादि, अनन्त और चेतन् सामग्री सम्पन्न बताया है, वह परब्रह्म लोक का ही वर्णन है। परात्पर पूर्णब्रह्म परमात्मा के ब्रह्मधाम में ही शाश्वत सुख, ब्रह्मानन्द रस, और नित्य चेतन-विग्रह एवं अमृत स्वरूप, अविनाशी पदार्थों का स्वयंप्रकाश स्वरूप से शोभायमान रहना, यह सर्व प्रकार सिद्ध पाया जाता है। कार्यब्रह्म—ब्रह्मादि देव तो स्वतः नश्वर और परब्रह्म के स्वरूप को ढूंढ़ रहे हैं, इतना ही नहीं प्रत्युत ढूंढ़ते रहने पर भी प्राप्त नहीं होता, तथापि स्तवन[1] करने में लगे हैं।

[1] स्तोतुं नालमनन्तश्च सहस्रवदनैरहो ।
स्वयं विष्णुर्विश्वव्यापी नालं स्तोतुं जनार्दनः ।।
महाविराट्न शक्नोति यं स्तोतुं परमेश्वरम् ।
कम्पिता यस्य पुरतः प्रकृतिः परमात्मनः ।।
सरस्वती जड़ीभूता यं स्तोतुं परमेश्वरम् ।
महिमानं न जानन्ति वेदा यस्य च नारद ।। (ब्रह्मवै)

स्वयं भगवान नारायण जी नारद के प्रति उपदेश करते हैं कि—'हे नारद जी ! सहस्र मुख से निरन्तर स्तुति करने में लगे रहने पर भी उस परब्रह्म की स्तुति नहीं कर पाते। विष्णु,

Shri Prannath Ji Pustkalay

शंका:—परब्रह्म परमात्मा को धाम लीला आदि अनेक प्रकार की सामग्री सम्पन्न मानने से उसकी अवस्था स्वरूप आदि सभी मानने पड़ेंगे एवं उनके ब्रह्म लोक की लम्बाई चौड़ाई का प्रश्न भी उपस्थित हो जायेगा। क्योंकि जब परब्रह्म अपने शक्ति समूह के साथ लीला विहार करता है, सब प्रकार की सामग्री साधनों को उपयोग में लेता है, तब तो एक महान शक्तिशाली राजा की भांति एक देशीय, सापेक्ष, आदि, सान्त, देश कालाधीन हो जायेगा और वह अविनाशी न रहेगा एवं श्रुतियोंने ब्रह्मको देश, काल, साधन, अवस्था आदिसे रहित एवं निर्विशेष माना है तब तो परस्पर वचनों में भी विरोध होगा।"

समाधान:—देखोजी ! जब वेद, शास्त्र, उपनिषद, पुराण, इतिहास, आगम सभी आर्ष ग्रन्थ ब्रह्म को धामलीला आदि विविध प्रकार की सामग्री सम्पन्न प्रतिपादन करते हैं और श्रुतियां "यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति" (छां ८-१-३) जो कुछ पदार्थ इस विश्वमें विद्यमान हैं वे सब और जो पदार्थ इस विश्व में प्राप्त नहीं होते, केवल सुने जाते हैं वे सब, परब्रह्म के ब्रह्मधाम में मुक्तात्मा को प्राप्त होते हैं क्योंकि वे सब वहां पर अनन्त रूप से विद्यमान हैं, और संकल्प मात्रसे उपस्थित हो जाते हैं।

एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिताः।
एष आत्माऽपहत पाप्मा। "सत्यकामः सत्यसंकल्पः"

(छां० ८-१-५)

यह 'ब्रह्मपुर' सत्य है, सनातन है, स्वयं प्रकाशमान दिव्य स्वरूप है। इस

व्यापी विष्णु भगवान भी जिसकी स्तुति नहीं कर पाते। उस पूर्णब्रह्म स्वरूप परमेश्वर की स्तुति करते करते महाविराट भी थक जाते हैं परन्तु स्तुति नहीं कर पाते। जिस पुरुषोत्तम परमात्मा की स्तुति करते आदिशक्ति-प्रकृति घबड़ा जाती है। सरस्वती जो सब विद्याओं की अधिष्ठात्री देवी है वह भी जब परब्रह्म परमात्मा की स्तुति करने लगती है तो उसकी जीभ जड़ जैसी हो जाती है। वेद जिस तत्त्वको निरूपण करने में असमर्थता प्रकट करते हैं, उस तत्त्व को यथार्थतया कौन कह सके? ब्रह्मा, विष्णु, विराट, शेष, शारदा आदि यावत् देव हैं किंवा विभूति पुरुष हैं, वे सब तो उस परब्रह्मके स्वरूपको यथार्थ जानते भी नहीं, फिर उन्हें स्वयं ब्रह्म तो किस प्रकार मान लिया जावे। परन्तु हमें हमारी दुर्बलता आगे नहीं बढ़ने देती। अतएव हम इन्हीं अध्यस्त देवों को जो स्वयं नश्वर हैं और अपनी मुक्तिके लिये खुद प्रयत्नशील हैं उन्हें ब्रह्म मानने लग जाते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

ब्रह्मपुर परमधाम में सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त होते हैं। इस ब्रह्म धाममें स्थित आत्मा को जरा मृत्यु आदि दोष स्पर्श नहीं करते। यह तो सत्य कामना वाला ब्रह्मधाम है यहां पर मिथ्या कामना का उदय नहीं होता। यहां पर संकल्प मात्रसे सब सत्य पदार्थ उपस्थित होते हैं।"

ब्रह्मपुरे सर्वं समाहितं सर्वाणि भूतानि सर्वे च कामाः (छां ८-१-४)

ब्रह्मधाम में सब कुछ पदार्थ विद्यमान हैं। सब प्रकार के प्राणी-पशु पक्षी आदि वर्तमान हैं एवं सब प्रकार के यथेष्ट आनन्द सत्य स्वरूपमें विद्यमान हैं। ब्रह्मधाम के अन्तर्गत यदि किसी सत्यपदार्थ का अभाव ही विद्यमान होता तो उसे ब्रह्मधाम-ब्रह्मपुर 'परमधाम' आदि कहते ही क्यों ? ब्रह्मधाम में यदि इस विश्वकी भांति नश्वर अथवा क्षणभंगुर पदार्थों का उदय-लय होता रहे तब तो उसे सत्यकाम, सत्यसंकल्प एवं नित्य सनातन कहते हो किसलिये ? अतएव ब्रह्मपुर को नित्य सनातन, विविध सामग्री सम्पन्न, स्वयं सिद्ध, अनादि, चेतन पदार्थ पूर्ण मानने से किसी प्रकारका शास्त्र विरोध नहीं होता, प्रत्युत शास्त्रीय सिद्धान्तकी पुष्टि होती है, जो महान धर्म है।

"चैतन्यस्यैकरूपत्त्वाद् भेदो युक्तो न कर्हिचित्" (श्रुति)

चेतन पदार्थों का परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध और एकरूपता होने से उनमें भेदकी कल्पना ही अज्ञान है। वेद वचनों के प्रति अविश्वास करना अथवा उन्हें लौकिक बुद्धिके आधार से समझने की व्यर्थ चेष्टा करना, यही तो अज्ञानता है।

प्रत्येक्षणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायणाचार्यने अपने ऋग्वेद भाष्य में इस वचनको उद्धृत किया है। जो परोक्ष विषय अथवा आत्मतत्त्व जैसा उपादेय ज्ञान, प्रत्यक्ष अनुमान आदि लौकिक प्रमाणों के द्वारा नहीं जाना जाता, उसीको तो वेदके द्वारा जानते हैं। इसीलिये तो वेदको ज्ञानका भण्डार कहा जाता है।

शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति (श्रुति)

शब्द ब्रह्म जो [1] ज्ञानराशि है, उसके रहस्य को जानने वाला ही तो

---

[1] यद्यपि ब्रह्म स्वरूप की सभी बातें, ब्रह्मधाम के पदार्थों का स्वरूप, ज्ञान आदि शब्दातीत हैं तथापि उनका अनुभव संकेत रूपसे शब्दके द्वारा प्राप्त हो सकता है।

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते:।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन गम्यते॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

परब्रह्मके स्वरूप को प्राप्त करता है।" इस प्रकार श्रुतियों में प्रतिपादित विषय प्रत्यक्ष अनुमानसे चाहे सुसंगत न भी प्रतीत हो, किन्तु वह यथार्थ है और सनातन सत्य होने के कारण ही सद्वस्तुको प्राप्त कराता है। क्योंकि त्रिकालाबाधित ज्ञान ही आत्मकल्याण कर सकता है। आत्माकी निर्मलता के कारण आप्त पुरुषों को त्रिकालाबाधित यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अतएव वे यथार्थ ज्ञानके द्वारा ब्रह्म स्वरूपको बताते हैं, यह शक्ति लौकिक ज्ञान में नहीं होती।

आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषां वाक्यमसंशयम्।
सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः॥ (चरक सू. ११)

अर्थः— रजोगुण, तमोगुण, ममता आदिसे अलिप्त और तप, ज्ञान आदि बलसे पूर्ण जो आदर्श पुरुष हैं, उनके वचन संशय रहित और यथार्थ होते हैं। क्योंकि उनके अन्तः करण में मल, विक्षेप, आवरण आदिका पर्दा नहीं रहता, अतः वे कभी असत्य नहीं कहते। आप्त पुरुषों के अथवा आर्ष वचनों के विषयमें सन्देह करना ही अपनेको भुलावे में डालना है। हां, आप्त पुरुषों के वचनों को समझने में भूल न होने पाये, यह विशेषता है। सबसे बड़ी भूल तो यह है कि— जो विश्व मिथ्या है उसे तो साकार कहते हैं और जो तीनों काल में सदासर्वदा एक–रस एक रूप में विद्यमान है उसे निराकार कहने लगते हैं। जहां सब कुछ चेतन रूप में ही विद्यमान है। चेतन चेतन ही ओत–प्रोत है, उसे तो एकदम उड़ा देते हैं और स्वप्नवत् मिथ्या कल्पना को साकार कहने लग जाते हैं।

'चिदेव पञ्चभूतानि चिदेव भुवनत्रयम्'
न गच्छति स्वयं ज्योतिः स्वभावे परमात्मनि
अकर्तृविषय-प्रत्यक् प्रकाशं स्वात्मनैव तु॥
'विना तर्कप्रमाणाभ्यां ब्रह्म यो वेद वेद सः' (पाशुपत. श्रुति)

जिस ब्रह्मधामके जल–थल, गगन–गिरि, पत्र–पुष्प, फूल–फल, पशु–पक्षी, वन, उपवन, सभी चेतन स्वरूप हैं। जिस ब्रह्मधाम के त्रिविध पदार्थ सद्भाववाले चिद्भाववाले और आनन्दभाववाले सभी चेतन हैं। जहां पर जड़ दुःख और असत्

—विश्वका कोई भी अनुभव शब्द के बिना नहीं बताया जा सकता। क्योंकि सब प्रकार का ज्ञान शब्दके साथ लिपटा सा जान पड़ता है। इसलिये आप्तपुरुषों के द्वारा वर्णित ब्रह्म–विषय का यथार्थ स्वरूप समझना चाहिये। क्योंकि उनका ज्ञान निर्मल होता है। कारण :—

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपोज्ञानबलेन ये।
तेषां त्रिकाल्ममलं ज्ञानमव्याहतं सदा॥ (चरक सू० ११)

Shri Prannath Ji Pustkalay

भावका अस्तित्व ही नहीं, वहां पर मायाकी कल्पना करना, द्वैत भावको भावना लाना, इसीका नाम तो आत्माका अज्ञान है। जिस परब्रह्म स्वरूपको यहांका चेतन भी नहीं पहुंचता, यहां की चेतनशक्ति जिस तत्त्वको स्पर्श भी नहीं कर पाती उसको हम किस प्रकार पा सकें। जो कर्ताभाव से पर हो चुका है, जिसने आत्मासे उसे वर लिया है, उसीके परात्मा में उस तत्त्व का प्रकाश होता है। उस ब्रह्मतत्त्व को तक प्रमाण से नहीं जाना जा सकता। तर्क और प्रमाण तो केवल दिशा सुचक हैं, उसको बताने में उसके स्वरूप को यथार्थ कथन करने में तो सर्वथा असमर्थ हैं। जिस प्रकार मूक मनुष्य रस का स्वाद बताने जाता है तो लोग हंसते हैं, उसी प्रकार तर्क प्रमाण उसके स्वरूपको कथन करने जाते हैं तो कुछ का कुछ हो जाता है। मूक मनुष्य स्वाद को जानता है परन्तु वाणी में बोलने की शक्ति न होनेसे कह नहीं पाता। परन्तु श्रुतियां तो उसे जानती भी नहीं और बोलने में असमर्थ हैं। कारण, संकुचित वृत्तिवाले शब्द उस व्यापक वृत्तिवाले पदार्थ को किस प्रकार कथन कर सकें। यह तो जो कुछ वेद, शास्त्र, पुराणों में मिलता है उसीकी प्रेरणा से महान पुरुषोंको जो आत्मबल प्राप्त हुआ है, उसीके आधार पर कुछ-कुछ कथन किया है।

यही कारण है कि-मनुष्य सुलभ ज्ञानमें न भरने वाली ब्रह्मकी अवस्था तथा ब्रह्मधाम के नित्य चेतन पदार्थों को भी महर्षियों ने प्रतिपादन किया है। ब्रह्म की अवस्था का भी वर्णन वेदों में निम्न प्रकार से मिलता है।

आत्मानं धीरमजरं युवानम् (ऋग्वेद मंडल १०—८—४४)

परब्रह्म परमात्मा अमर, धीर और युवान हैं। निरतिशय ज्ञान पूर्ण होने से 'धीर' है। उसका स्वरूप अप्राकृत एवं चेतन विग्रह होने से कभी ह्रास, वृद्धि अथवा अवस्थान्तरको नहीं प्राप्त होता, इसलिये 'अजर है। एवं सत्, चिद्, आनन्द, अनन्त और अद्वैत- ये पांचों नित्य पूर्णापूर्ण उसके स्वरूप में अखण्ड वर्तमान हैं। वे कभी न्यून अधिक नहीं होते, किन्तु सदा सर्वदा एकरस शोभापूर्ण विराजमान हैं, अतएव उसे 'युवान' कहा गया है।

श्रुतो युवा स इन्द्रः (सामवेद १०—४—६)

वह परब्रह्म परमात्मा सदा युवा सुना जाता है।

"त्वं यविष्ठ दाशुषे नृन् पाहि (यजुर्वेद १३—५२)

हे युवान परमात्मा आप हमारी रक्षा करो। क्योंकि तुम अनन्त शक्ति सम्पन्न हो। "किशोराकृतिरच्युतः" जो सर्वशक्ति सम्पन्न है, जिसके बल, ऐश्वर्य शक्ति सामर्थ्य आदि कभी क्षीण होते ही नहीं, अतः उसे वृद्ध नहीं कहा गया। जिसके स्वरूपमें, जिसके ऐश्वर्य में, जिसके बलमें, न्यूनताका भाव उदय होता ही

Shri Prannath Ji Pustkalay

नहीं अतएव उसे बाल वय नहीं कहा गया। जब वह पूर्णातिपूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूप चिद्घन राशि है तब उसे युवा तो कहना ही चाहिये। यही कारण है कि वेद शास्त्रों ने परब्रह्म परमात्मा को युवा, युवान, किशोर स्वरूप, आदि विविध संज्ञाओं से सूचित किया है। परन्तु परमात्मा की युवावस्था हमारी युवावस्था जैसी दोषपूर्ण, नश्वर और प्राकृत नहीं है, किन्तु वह विलक्षण है।

चिदादित्यं किशोराङ्गं परे धाम्निविराजितम्।

स्वरूपं सच्चिदानन्दं निर्विकारं सनातनम्॥ (ब्रह्मवै० पु०)

परात्पर परमधाम में विराजमान चिद्घन, तेजराशि, सच्चिदानन्द स्वरूप वह परमात्मा 'किशोराङ्ग' है। उसकी किशोरावस्था का स्वरूप हमारा जैसा नहीं, किन्तु निर्विकार है कभी जरा व्याधि किंवा मृत्यु, जन्मका भय नहीं, अपितु सनातन सदा सर्वदा एकरस नित्य अविनाशी है। उसके अङ्ग, प्रत्यङ्ग भी चेतनघन नित्य विग्रह ब्रह्मरूप शोभायमान हैं, कल्पित नहीं।

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।

हानोपादान—रहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥ (महावाराहे)

उस परमात्मा के सम्पूर्ण अङ्ग, प्रत्यङ्ग, हस्त, पाद, मुख, आदि यावत् हैं, वे सब शाश्वत— अनादि और नित्य चेतन हैं। एवं हान— ह्रास, उपादान—उत्पत्ति से रहित हैं। उन्हें किसीने रचा नहीं, किन्तु अप्राकृत स्वयंसिद्ध दिव्य स्वरूप हैं। इतना ही नहीं किन्तु वे सब आनन्द स्वरूप, भेद रहित सर्वज्ञ भी हैं।

निर्दोषपूर्णगुणविग्रह आत्मतंत्रो निश्चेतनात्मकशरीरगुणैश्च हीनः।

आनन्दमात्र—करपादमुखोदरादिः सर्वत्र च स्वगतभेदविवर्जितात्मा (पंचरात्रे)

उस परमात्माके नित्य विग्रहमें मायाजन्य दोष नहीं हैं, किन्तु दिव्य गुणोंको पूर्णता है। उस परब्रह्म के अङ्ग प्रत्यङ्ग नित्य होने से सापेक्ष नहीं हैं। हम लोगों का शरीर भोजन, अन्न, पान आदिकी अपेक्षा रखता है, उसप्रकार उसके अङ्ग किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रखते, किन्तु आत्म तंत्र हैं। एवं अचेतनात्मक शरीर की भांति अनित्य गुण—दोषों से पर हैं। उनमें प्रकृति—जन्य दोष नहीं उपस्थित हो पाते, किन्तु हाड़, मांस, मज्जा, रक्त, आदि से रहित हैं। एवं वे सब आनन्द स्वरूप सर्वत्र भेद बाधा रहित, चेतन, स्वयंसिद्ध दिव्य स्वरूप हैं। इस प्रकार श्रुतियों ने परब्रह्म का स्वरूप विशिष्ट वर्णन करते हुए भी हमारे जैसे हाड़ मांस वाले प्राकृत अंगों से रहित, नित्य चेतन, आनंदस्वरूप—हाथ, पग, नेत्र, मुख, उदर

Shri Prannath Ji Pustkalay

आदि वाला वर्णन किया है।" जब परमात्मा हाथ, पग, नेत्र, मुख आदि सभी अंग प्रत्यंग और युवावस्था वाला है एवं नित्य-चेतन विग्रह है, तब तो उसकी कुछ न कुछ आकृति भी होगी, अतएव श्रुतियां कहती हैं:—

(क) "आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुष–विधः"। (वृहदारण्यक १-४-१)

(ख)"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसःपरस्तात्।"(यजुर्वेद अ० ३१)

(ग) "स वा एष पुरुषविध एवा तस्य पुरुषविधताम् अन्वयं पुरुषविधः"

(तैत्तिरीय ब्रह्मानन्दवल्ली अ० ५)

(घ) "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः"(योगदर्शन १-२४)

अर्थः-(क) "यह परब्रह्म परमात्मा ही प्रथम पुरुष स्वरूप था।

(ख) प्रकृति से भी पर सूर्य के समान प्रकाश राशि पुरुष स्वरूप इस महान परमात्मा को मैं जानता हूं।

(ग) निश्चय ही परब्रह्म परमात्मा पुरुष स्वरूप है। उसके इस पुरुष स्वरूप को जानने के लिये ही उसने अपने अनुरूप बुद्धि प्रधान मनुष्य को, भी पुरुष स्वरूप रचा है। अतएव "तासां मे पौरुषी प्रिया" भागवत में नरदेह को प्रिया कहा है।

(घ) "क्लेश, कर्म-शुभाशुभ फल देने वाले, विपाक जन्म-मरण स्वरूप आदि परिणाम जिसको स्पर्श नहीं करते-ऐसा सबका नियन्ता परमात्मा पुरुष स्वरूप है।" परमात्मा ने मनुष्य को अपने अनुरूप स्वरूप प्रदान कर इसे कितना महत्त्वपूर्ण बना दिया है, इस गहन और अपूर्व तत्त्व को आत्मदर्शी पुरुष ही[1] यथार्थतः हृदयंगम कर सकते हैं, सब नहीं।

---

[1] जिस प्रकार मान चित्र (नक्शा) के द्वारा भूगोल के माप को सुगमता से जान लेते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म के प्रतीक–स्वरूप इस मानव देह से भी ब्रह्म स्वरूप को सुगमता से जान लिया जाय। इस कारण परमात्मा ने मनुष्य को महत्त्वपूर्ण अपना प्रतीक रूप प्रदान किया है। अन्य योनि के जीवों को न तो उसने अपना बुद्धिबल ही प्रदान किया है और न अपने स्वरूप का गौरव। यही कारण है कि वे सब प्राणी ब्रह्म के स्वरूप-ज्ञान के अधिकारी पात्र नहीं बन पाते। परन्तु मनुष्य को परमात्मा ने उक्त दोनों (स्वरूप सादृश और विशेष बुद्धि) विशेषताएं प्रदान कर इसे महत्त्वपूर्ण गौरवशाली बना दिया है, तथापि मनुष्य अपने इस महत्त्व को भूलकर मानव शरीर को व्यर्थ में खो देता है, यही दुर्भाग्य की बात है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

—जब परब्रह्म 'पुरुष' स्वरूप है और उसके अखण्ड विग्रह में हाथ, पग, नेत्र, मुख आदि सब अंग प्रत्यंग विद्यमान हैं एवं वह शक्ति समूहके सहित लीलामय युगल स्वरूप शोभायमान है, तब उनके विराजमान होनेका 'दिव्यस्थान' और उस दिव्य स्थान की शोभा भी विशेष जानने योग्य होगी, अतः इस रहस्यको दहर [1] विद्याके नामसे छान्दोग्य उपनिषद में उपनिबद्ध किया है। यथा:—

"अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म
दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्वेष्टव्यम्।
तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति "(छां० ८-१-१)

अर्थ :—(अथ) अब (अस्मिन्ब्रह्मपुरे) इस परात्पर 'ब्रह्मपुर'—परमधाम में (यद् इदम्) जो यह (दहरम्) आत्म स्वरूप—सूक्ष्म (पुण्डरीकम्) कमल पुष्पके सदृश गोलाकृत (वेश्म) वेश्म—मूलमन्दिर है (अस्मिन्) इसमें (दहरः [2] अन्तराकाशः)

---

[1] मनुष्य का शरीर देखने में तो कुछ विचित्र-सा लगता है, किन्तु यह ब्रह्मका और ब्रह्माण्ड का यथेष्ठ प्रतीक है। 'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' जो कुछ भी इस विराट विश्वमें विद्यमान है उसको पूर्णतया सूक्ष्मरूप से इस मानव देहमें समावेश किया गया है। यही कारण है कि 'योगी पुरुष समस्त विश्व विभूतियों का साक्षात्कार अपने मानव देहमें ही कर लेते हैं।'

जिस प्रकार योगी सारे ब्रह्माण्ड को इस देहमें देख सकता है, उसी प्रकार ब्रह्मविद् पुरुष ब्रह्मधाम के भीतर जो कुछ ज्ञातव्य है, उसे आत्मानुभव द्वारा जान लेता है। जो पुरुष इस त्रिधा रहस्यको जानता है, वह तो कभी सन्देह में नहीं पड़ता। परन्तु जिनको यह रहस्य (ब्रह्मने अपने स्वरूपानुरूप ही पिण्ड ब्रह्माण्डको रचा है) अवगत नही है, वे ब्रह्मधामके वर्णन को मनुष्य देहमें घटाकर ब्रह्मधाम के रहस्य से वंचित रह जाते हैं। ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और पिण्ड—इन तीनों तत्त्वों को अवगत कराने के लिये परमात्मा ने अपने स्वरूपानुरूप दोनों को रचा है। इस रहस्य का ही नाम दहर,गुप्त, सूक्ष्म, अतिनिर्मल व्यापक विद्या है।

[2] "दहर और अन्तराकाशः" शब्द वस्तुतः मूल मिलावामें स्थित स्वरूप के लिये आये हैं। इस मूल मिलावा में अधिष्ठित श्री पूर्ण ब्रह्म परमात्माको जानने की बात पर जोर दिया है। जैसा कि नीचे वर्णन है :—

चतुः षष्ट्या मणिस्तम्भैश्चतुर्दिक्षुविराजितम्।
तत्र सिंहासने ध्यायेत् कृष्णं कमललोचनम्॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

जो सूक्ष्म – अतिनिर्मल अधिष्ठान है (तस्मिन् यद् अन्वेष्टव्यम्) उसमें जो परात्पर पूर्ण ब्रह्म विराजमान है, उसका ही अन्वेषण करना चाहिये और उसी की जिज्ञासा करनी चाहिये ।

"तं चेद् ब्रूयुःयदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यम् । यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति" (छां० ८–१–२)

श्रुति निर्देश करती है कि – (तम् चेद् ब्रूयुः) ब्रह्मविद् गुरुसे यदि शिष्यगण कहें कि – (अस्मिन् ब्रह्मपुरे) इस ब्रह्मपुरमें (यद् इदम्) जो यह (दहरम्) सूक्ष्म – अतिनिर्मल आत्म स्वरूप (पुण्डरीकं वेश्म) कमलके सदृश – कमलाकार गोल (वेश्म) मन्दिर है (तस्मिन्) उसके भीतर (दहरः अन्तराकाशः) जो सूक्ष्म अति निर्मल चेतन ब्रह्मस्वरूप अन्तराकाश [1] है (अत्र तद् किं विद्यते) उसके

रत्नखचित चौंसठ स्तम्भोंके मध्यमें सिंहासन पर विराजित श्री परब्रह्म परमात्माके युगल स्वरूप श्रीराज श्यामाजीको ध्यानमें रखें" श्रुतिने मूल मंदिरके अन्तः आकाशको विशेष रूपसे जाननेको कहा है । कारण, वह परात्पर परब्रह्मकी प्रेमलीलाका केन्द्र है । वहांके प्रेमविहार को श्रुतियां शब्द द्वारा प्रकट करनेमें अपनेको असमर्थ पाती हैं, अतः उसे ढूंढ़ो, खोजो कह कर पुकारती फिरती हैं ।

अक्षरातीतके महलमें, प्रेम इसक बरतत ।
सो सुध अक्षरको नहीं, किन विध केलि करत ।। (तारतम सागर)

पूर्णब्रह्मकी जिस प्रेमलीलाको–ब्रह्मानन्द सन्दोहको अक्षरब्रह्म नहीं जान पाते, उसे श्रुतियां किसके बलसे कहें । 'अन्तः आकाश' 'अन्तः हृदयाकाश' शब्द परमात्माके लिये आए हैं । मूल मन्दिरके भीतर विराजमान परब्रह्मके स्वरूपमें क्या-क्या वस्तु निहित हैं, यह जिज्ञासाका विषय है जिसे शंकराचार्य, भास्कराचार्य, रामानुचार्य, निम्बार्क आचार्य आदि सबने अपने-अपने भाष्यमें लिखा है । परन्तु 'अन्तराकाशः' भी ब्रह्म है तो उसके भीतर क्या वस्तु है ? यह संगति नहीं बैठती । अतएव कुछका कुछ कहने लग जाते हैं । नहीतो श्रुतिने स्पष्ट लिख दिया है कि 'आकाश, पृथिवी, नक्षत्र, प्राणी, चन्द्र, सूर्य सब कुछ इस अन्तराकाश स्वरूप ब्रह्ममें विद्यमान हैं, श्री प्राणनाथ प्रभुने भी कहा है कि 'आठों सागर और २५ पक्षकी जितनी जोगवाई (सामग्री) हैं, वे सब श्रीराजजीके स्वरूपसे ही विकाश पा रही हैं । तभी तो अक्षरातीतके स्वरूपसे आठों सागरों की शोभा का वर्णन किया है ।

[1] आकाशका अर्थ प्रायः लोग पोल समझ लेते हैं, अतः अर्थका अनर्थ कर बैठते हैं । वस्तुतः आकाश एक तत्त्व है जो सत्ता वच्छिन्न है । "चिदाकाश, सदाकाश, परमाकाश और

Shri Prannath Ji Pustkalay

भीतर क्या वस्तु है (यद् अन्वेष्टव्यम्) जिसका अन्वेषण (खोज) करना चाहिये। (तद्वाव विजिज्ञासितव्यम्) और उसकी विशेष जिज्ञासा करनी चाहिये। इस प्रकार पूछें तो इसके उत्तर में:—

"स ब्रूयाद् यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदयाकाशः।
उभे अस्मिन् द्यावा पृथिवी अन्तरेव समाहिते।" (छां० ८–१–२)

(सः) ब्रह्मज्ञ गुरु (ब्रूयात्) समझावे कि 'हे शिष्यों! (यावान् वै अयम्) जितना यह (आकाशः) ब्रह्मधाम का चिदाकाश है उतना ही श्रीपरब्रह्म के अन्तः

ब्रह्माण्डाकाश—इस प्रकार आकाश विविध हैं। जहां तक ब्रह्म की चेतनसत्ता पूर्ण ब्रह्मधाम का विस्तार है वह अनन्त और असीम है जिसे अद्वैत ब्रह्मस्वरूप भी कहते हैं, वह सब चिदाकाश में गिना जाता है। इसी को ब्रह्म की महिमा, ब्रह्मैश्वर्य आदि नामों से भी कहते हैं। वस्तुतः यह सब चिदाकाश है।" त्रिपाद विभूति का क्षेत्र सदाकाश कहा जाता है। परमाकाश—अक्षर ब्रह्म की चतुष्पाद—विभूति का वह अव्यक्त स्वरूप, अथवा असंख्य विश्वों की अन्तःसमष्टि है, जिसमें असंख्य ब्रह्माण्डों का उदय-लय होता रहता है।

यथा सूर्योदये गेहे भ्रमन्ति त्रसरेणवः।
तथेमे परमाकाशे ब्रह्माण्डत्रसरेणवः॥

(योगवा० उ०प्र० २८–३७)

जिस प्रकार सूर्योदय के बाद गृह के भीतर असंख्य त्रसरेणु दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार परमाकाश के मध्य असंख्य ब्रह्माण्ड रूपी त्रसरेणु प्रतीत होते हैं। इस प्रकार से परमाकाश का वर्णन भी मिलता है।

ब्रह्माण्डाकाश—विश्वविभूतियों के कार्यक्षेत्र को अथवा विश्वाभिमानी विराट पुरुष के स्थूल सूक्ष्मरूप में जो कुछ व्यष्टि समष्टि विद्यमान है, वह सब ब्रह्माण्डाकाश के ही अन्तर्गत है। उसके अन्तर्गत मठाकाश, घटाकाश आदि अनेक लघु आकाशों का व्यवहार भी होता है। इस प्रकार आकाशों का वर्णन शास्त्रों में मिलता है। यह तीनों आकाश—क्षर, अक्षर और अक्षरातीत सत्ता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सत्ता तीन प्रकार की है व्यावहारिकी, प्रातिभासिकी और वास्तवी।

ब्रह्मसत्ता तु देवेशि! वास्तवी परिकीर्तिता।
ब्रह्मसत्तावशाद्देवि! लीला वै सत्यमुच्यते॥

वास्तवी ब्रह्मसत्ता के द्वारा चिदाकाश के जितने भी पदार्थ हैं, वे सब सत्यस्वरूप और सदा चेतन, लीलामय प्रतीत होते हैं। सत्य का अभाव नहीं होता, अतएव वहां की ब्रह्मलीला भी सदा सनातन अखण्ड शोभायमान है। इस प्रकार शिवजी ने वर्णन किया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

स्थित हृदयाकाश है। (अस्मिन् द्यावा पृथिवी उभे) जिस प्रकार ब्रह्मधाम के चिदाकाश में आकाश और पृथिवी दोनों के सम्पूर्ण पदार्थ समाए हुए हैं उसी प्रकार परब्रह्म के हृदयाकाश में भी सम्पूर्ण आकाश और ब्रह्मधाम की आठों जिमी आठों सागर और जितने भी पदार्थ शोभा और सामर्थ्य हैं, वे सब उसमें अन्तर्गत विद्यमान हैं। सम्पूर्ण ब्रह्मधाम जिस प्रकार ब्रह्म के चिदाकाशमें शोभायमान है उसी प्रकार बीजरूप से परब्रह्म के अन्तर ब्रह्माकाश में भी विद्यमान है। बल्कि अन्तः आकाश से ही चिदाकाश में उदय पा रहे हैं। निरतिशयं तत्र सर्वज्ञ बीजम् (योगदर्शन १–२५)" जिस प्रकार बटके वृक्षका स्वरूप और शक्ति उस के बीजमें विद्यमान है, परन्तु उसको सब नहीं समझ पाते। उसी प्रकार पूर्णब्रह्म के अन्तराकाश में सब कुछ विद्यमान है। उसीको वृहद् रूपमें पच्चीस पक्षके नाम से बाहर भी देखते हैं। परन्तु वह सब श्री राजजीके स्वरूप मेंअन्तर्गत भी विद्यमान है। उक्त सूत्र और पूर्वोक्त श्रुतिके सीधे सादे शब्दों पर निष्पक्ष भाव से विचार करें तो 'ब्रह्मपुर' के अन्तर्गत जो अत्यन्त निर्मल कमल के आकारका 'वेश्म' मूल मन्दिर है, उसको और उसके मध्य विराजमान श्री पूर्णब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को ही विशेष रूप से जानने का आदेश है, यह सुतराम् स्पष्ट हो जाता है। उपरोक्त कथनको नीचे लिखी श्रुति अक्षरशः सिद्ध कर देती है यथा :—

"अस्मिन्ब्रह्मपुरे वेश्म दहरं यदिदं मुने।
पुण्डरीकं तु तन्मध्ये आकाशो दहरोऽस्ति तत् ॥
स शिवः [1] सच्चिदानन्दः सोऽन्वेष्टव्यो मुमुक्षुभिः (पंच ब्रह्मोप०)"

---

1 इस श्रुति में निर्दिष्ट "शिव" शब्द पार्वतीपति शिव के लिये नहीं आया किन्तु यौगिक होने से ब्रह्म परक है। मुख्यार्थ तो शिवका जो विवक्षित होता है वही माना जाता है गौण रूपसे चाहे कोई कहीं भी संगति लगा दे। आजकल त्रिगुण प्रधान देवों की उपासना अधिक प्रचलित है अतः अधिकतर मनुष्य उसीमें संलग्न रहते हैं। नहीं तो आज जितने नाम त्रिगुणात्मक देवों में घटाये जाते हैं वे श्रुतियों में ब्रह्मके लिये प्रयुक्त हुए हैं।

'शिव' के यों तो अनेक अर्थ होते हैं। परन्तु "यत्परः शब्दः सः शब्दार्थः" सिद्धान्त यह माना गया है कि जिस अर्थ में जहां पर जो शब्द प्रयुक्त होता है उसका वही अर्थ माना जाता है, वेदों में 'पशु और 'असुर' शब्द परमात्मा के लिये भी प्रयुक्त हुए हैं। अतः वहां पर पशु शब्द का अर्थ बैल गाय न करके परमात्मा किया जाता है। इसी प्रकार उपरोक्त श्रुति में प्रयुक्त 'शिव' शब्द ब्रह्मका विशिष्टगुण बोधक है, पार्वतीपति का नहीं यथा—

समेवयति यन्नित्यं सर्वार्थान् सर्वकर्मसु।
शिवमिच्छन् मनुष्याणां तस्माद् देवः शिवः स्मृतः ॥ (महाभा०)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ :—हे मुनीश्वर ! इस ब्रह्मपुर-परमधाम में जो यह निरतिशय सूक्ष्म अतिनिर्मल आत्मस्वरूप वेश्म—मूल मन्दिर है, जिसको विकसित कमल पुष्पके सदृश वर्णन किया गया है। उसके मध्य आकाश के समान अनन्त, अपार धर्मविच्छिन्न जो निर्मल स्वरूप परमात्मा विराजमान है। वही कल्याण कर्ता सच्चिदानन्द स्वरूप है। मुमुक्षुओं को उसीका अन्वेषण करना चाहिये। इस प्रकार अनेक श्रुतियों में 'दहर' और 'आकाश' शब्द से ब्रह्मको ही लिया है।

छान्दोग्य श्रुति के इसी 'दहर' प्रकरण में यह भी लिखा है कि यह ब्रह्मपुर जरा, व्याधि, मृत्यु आदि से रहित है। यह ब्रह्मपुर सत्य कामनाओं से परिपूर्ण है। यहां पर सम्पूर्ण कामनाएं संकल्प मात्रसे पूर्ण हो जाती हैं। इस ब्रह्मपुर में आत्मा जो जो कामना करता है, वे सब सत्यरूपमें संकल्प मात्रसे प्राप्त होते हैं। इत्यादि अनेक बातों को देखने से निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि यह सब वर्णन परमधाम के मूल मंदिर का है। क्योंकि कमलके सदृश जो वेश्म बताया गया है, वह भी मूल मंदिरकी आकृति से ठीक मिल जाता है। इस मूल मंदिर के भीतर जो 'दहराकाश' निर्मल ब्रह्म स्वरूप परमात्मा विराजमान है, उसीको अन्वेषण करो, उसी को विशेष रूपसे जानो, यह श्रुति का निर्देश है।

श्रुतियों में ब्रह्मधाम के मध्य कमल के आकार वाले 'वेश्म' मूल मन्दिर में विराजमान ब्रह्म को जानने को लिखा है, इस तथ्य को भास्कराचार्य [1] रामानुज

अर्थ—दिव्य गुणोंका केन्द्र होनेसे परमात्मा ही सबको बढ़ाता है, सबको दिव्य प्रेरणा भी उसीके द्वारा प्राप्त होती है। सबके लिये कल्याण कामना प्रदान करने के कारण उस दिव्य स्वरूप सच्चिदानन्द को 'शिव' भी कहा जाता है। इस प्रकार महाभारत के निर्वचन से सुतराम् स्पष्ट होता है कि उपरोक्त श्रुति में सच्चिदानन्द शब्दका विशेषण जो 'शिव' शब्द को लगाया है, वह ब्रह्मके कल्याणमय गुणों का उत्कर्ष बताने के लिये है, जो यथार्थ और मनन करने योग्य हैं। यह तो सब जानते हैं कि नश्वर 'शिव' ब्रह्मादि देव सच्चिदानन्द स्वरूप नहीं हैं, किन्तु २५ तत्त्वके शरीर वाले होनेसे नश्वर हैं। देखो पृष्ठ (२५०)

[1] 'दहर' अन्तराकाश स्वरूप परमात्मा का नाम है, वही सब ब्रह्मधाम को धारण किये है। वही उसमें शक्ति समन्वित युगल स्वरूपसे भी विराजमान है। अतएव उसके स्वरूप को ढूढ़ना चाहिये। क्योंकि 'अस्मिन्कामाः समाहिताः, (छां० ८—१—५) इसी परब्रह्म के दहर में ब्रह्मधाम में सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्त्ति निहित है। जो जो कामना मुक्तात्माओं को होती है तत्काल पूरी हो जाती है। कारण, परमधाम सत्य सनातन है। वहाँ के संकल्प भी सत्य होकर

Shri Prannath Ji Pustkalay

निम्बार्क आदि ने तो अपने अपने वेदान्त दर्शन के भाष्य में माना ही है, परन्तु आश्चर्य है कि ब्रह्मको निर्विशेष निराकार कहने वाले शंकराचार्य ने भी इस प्रकरणको जैसा का तैसा स्वीकार कर लिया है। और बड़े ऊहापोह के साथ सिद्ध किया है कि 'दहराकाश' परब्रह्म ही है, हृदय कमल नहीं। उदाहरणार्थ यहां पर उनके भाष्य की कुछ पंक्तियां उपस्थित की जाती हैं। यथा—

शंकराचार्य जो अपने भाष्यमें पूवपक्ष का उपस्थान करके उसका उत्तर देते हैं 'परमेश्वर एवात्र दहराकाशो भवितुमर्हति न भूताकाशो जीवो वा। कस्मात्? उत्तरेभ्यो वाक्यशेषगतेभ्यो हेतुभ्यः। तथाहि—अन्वेष्टव्यतयाभिहितस्य दहराकाशस्य 'तं चेद् ब्रूयुः' इत्युपक्रम्य 'किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यम्' इत्येवमाक्षेपपूर्वकं प्रतिसमाधानवचनं भवति। स ब्रूयाद् यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाशः। उभे अस्मिन् द्यावा पृथ्वी अन्तरेव समाहिते' इत्यादि। 'तत्र पुण्डरीक–दहरत्वेन प्राप्तदहरत्वस्याकाशस्य प्रसिद्धाकाशौपम्येन दहरत्वं निवर्तयन् भूताकाशत्वं दहरस्याकाशास्य निवर्तयतीति गम्यते।'

रहते हैं। वहां जो कामना हुई नहीं कि उसे भी पूर्ण होना ही चाहिये। क्योंकि वह "सत्यकामः सत्यसंकल्प" (छां ८–१–५) सत्य कामना वाला है। वहां की कामना, वहां का संकल्प भी सत्य हो जाता है। जो कुछ यहां देखा सुना जाता है वह सब वहां है, जो नहीं देखनेको मिलता वह भी वहां विद्यमान हो जाता है। 'सर्वं तदस्मिन्समाहितम् (छां ८–१–३) रामानुज आचार्य तो ब्रह्मधाम में माता, पिता, पुत्र, कलत्र आदि का भी संकल्प मात्र से उपस्थित होना मानते हैं। (छांदोग्ये ८–५–१) यथा—

'स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः।
समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते॥'

रामानुजभाष्य—स मुक्तः सन्यदि प्राचीनानेकजन्म सम्बन्धि पितृवर्गं दिदृक्षेत, तदा स पितृवर्ग एतस्य संकल्पमात्रात्समुत्थितो भवति तेन सहितः पूज्यते।

मुक्त पुरुष यदि अपने पूर्व जन्मों में देखे सुने माता पिता बन्धु पुत्र, कलत्रादि को देखने की इच्छा करता है तो उसके संकल्प मात्र से वे सब उपस्थित हो जाते हैं और वह उनसे युक्त अपने को महत्त्वपूर्ण मानता है। संकल्प के अतिरिक्त वहां कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

संकल्पादेव तु तच्छ्रुते। (ब्रह्मसू ४–४–८)

ब्रह्मधाम में सब कुछ संकल्प मात्र से उपस्थित होता है, ऐसा सिद्ध किया है। ल्पमात्रादेवसृष्टे न प्रयत्नान्तरसापेक्षा, कुतः। संकल्पादेव पितरः समुत्तिष्ठन्तीत्येवकार श्रुतेः।

Shri Prannath Ji Pustkalay

यद्यप्याकाशशब्दो भूताकाशे रूढः। तथापि तेनैव तस्योपमा नोपपद्यते—इति भूताकाश शंका निवर्तिता भवति। ..... एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः, इति चात्मत्वापहृतपाप्मत्वादयश्च गुणा न भूताकाशे सम्भवन्ति। यद्यप्यात्मशब्दो जीवे सम्भवति तथापीतरेभ्यः कारणेभ्यो जीवाशकापि निवर्तिता भवति। न ह्युपाधिपरिच्छिन्नस्याराग्रोपमितस्य जीवस्य पुण्डरीक वेष्टनकृतं दहरत्वं शक्यं निवर्तयितुम् ..... इत्यादि।

'दहराकाश' पद से जिस आकाश की गवेषणा करनी चाहिये, वह 'दहर' पद वाच्य भूताकाश नहीं हो सकता, और न जीवात्मा ही हो सकता है। क्योंकि इसी प्रकरण में आगे के वाक्य में इस दहराकाश को भूताकाश की उपमा देते हैं। एक ही पदार्थ उपमान और उपमेय दोनों नहीं हो सकता। नेत्रों को कमल की उपमा दी जाती है। कमल और नेत्र भिन्न-भिन्न वस्तु हैं, तभी उपमान उपमेय कहे जाते हैं। यदि दहराकाश का अर्थ भूताकाश होता तो भूताकाश की उपमा न दी जाती। काल्पनिक भेद मानकर भी उपमान उपमेय भाव का निर्वाह नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह तो अगतिकगति है—जहां पर किसी प्रकार गति न हो, वहीं पर माना जाता है। कदाच बाह्य और आन्तर उपाधि से आकाश के दो भेद मान भी लेवें तो वह भी संगत प्रतीत नहीं होता। कारण, आन्तर आकाश अल्प और परिछिन्न है एवं बाह्य आकाश अपरिच्छिन्न और व्यापक है। इसलिये यही मानना चाहिये कि—दहराकाश शब्द भूताकाश के लिये नहीं आया, किन्तु परमात्मा का ही बोधक है। वेदान्त वाक्यों में बारम्बार परमात्मा को आकाश की उपमा दी भी जाती है 'आकाशवत् सर्वगतश्च गूढ़ः,। आकाश पृथ्वी एव ग्रह, नक्षत्र, सब प्राणी दहराकाश के भीतर विद्यमान हैं। इस कथन से भी दहराकाश का अर्थ परमात्मा ही ठीक लगता है। क्योंकि आकाश-आकाश में किस

—ब्रह्मधाम को चिन्तामणि भूमिका भी माना है। अतः चिन्तवन करते ही पदार्थों का आविर्भाव तिरोभाव हो जाता है। वहां संकल्प के सिवा और कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ता। श्रुति ने 'एव' शब्द लगाया है सूत्रकार ने उसे पुनः दृढ़ करके वर्णन कर दिया है। श्रीजी ने तो इस तत्त्व को प्रथम ही दृढ कर दिया था।

जब कृष्णजी की इच्छा मात्र से ग्वाल-बाल, गौ-वत्स, सब यहां भी बन जाते हैं और इच्छा मात्र से तिरोभाव हो जाता है तब सत्य संकल्प भूमिका में हो जावे तो आश्चर्य ही क्या? जो इच्छा हुई आ गया, इच्छा पूर्ण होते ही वह पदार्थ तिरोहित हो गया। इस प्रकार आविर्भाव तिरोभाव की लीला वहां होती ही रहती है। फिर अमुक पदार्थ का होना न होना क्या? वहां तो सब कुछ हो जाता है पर वह सत्य भूमिका है अतः असत्य संकल्प उठते ही नहीं। यही कारण है कि वहां कोई वस्तु घटती बढ़ती नहीं, किन्तु सदा एकरस वर्तमान है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्रकार रह सकता है, वह तो असीम, अनन्त परब्रह्म के स्वरूप में ही समा सकता है। और फिर निरवधिक आत्मत्व एवं अपहत पाप्मात्व, विजरत्व, अमरत्व, विशोकत्व, सत्यकामत्व, संकल्प सिद्धत्व आदि गुण भी भूताकाश में नहीं रहते, अपितु परब्रह्म में ही रहते हैं। इसलिये भी 'दहर' का अर्थ जो आकाश किया है, वह परब्रह्म ही हो सकता है।

यद्यपि आत्मत्व जीव में घट सकता है, तथापि आगे के अन्य वचनों की संगति जीव के साथ नहीं लगती। उपाधि परिच्छिन्न जीव को भी जिसे "आराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः" श्रुतियां अणुस्वरूप, उपाधि परिच्छिन्न एवं आभास मात्र वर्णन करती हैं, उसे दहराकाश नहीं कह सकते, न अणुमात्र जीव को पुण्डरीक वेश्म-कमलाकार मन्दिर का वेष्टन ही संगत प्रतीत होता है। इसलिये 'दहर शब्द का अर्थ परमात्मा परक ही मानना उचित है। इस प्रकार से शंकराचार्यजी ने उपरोक्त भाष्य में लिखा है। जो विस्तार भय से सब नहीं उतारा गया। जिनको विशेष देखना हो, वे "दहर उत्तरेभ्य" "गति शब्दाभ्यां तथाहि दृष्टं लिङ्गञ्च" इत्यादि सूत्रों से लेकर वेदान्त दर्शन में "अपि स्मर्यते" पर्यन्त नौ सूत्रों द्वारा 'दहर विद्या का प्रमेय परब्रह्म परमात्मा ही है' इस प्रकार सुतरां स्पष्ट किया गया है। उसे देखकर सन्तोष कर लेवे। पूरा विश्वास हो जायेगा कि दहराकाश की प्रसिद्धि परमात्मा में ही है, जीवात्मा में नहीं।

केवल छान्दोग्य के 'दहर' प्रकरण में ही ब्रह्मधाम का वर्णन और ब्रह्मधाम के मध्य पुण्डरीक वेश्म कमल पुष्प के आकार का मूल मन्दिर बतलाया गया है, ऐसा नहीं। किन्तु अनेक श्रुतियों में और बहुशः स्मृतियों में भी उपरोक्त वर्णन से मिलता जुलता तादृश ब्रह्मधाम का वर्णन मिलता है। यथाः—

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनाऽऽवृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्रह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥

(अथर्ववेद कांड १० सूक्त २ मंडल २९)

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः॥

(मुण्डक २-२-९)

इत्यादि अनेक श्रुति ब्रह्मधामका तथा ब्रह्म के स्वरूप का स्पष्ट प्रतिपादन करती हैं। इनका अर्थ भी पीछे आ चुका है। और भी नीचे लिखे प्रमाण देखिये।

"तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितं हिरण्मयम्" (छां० ८-५-३)

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—(तद् अपराजिता) उस ब्रह्मधाममें "अपरैः कालकर्म स्वभावकृत दोषैः अजिता–अतिरस्कृता इति यावत्" कालकर्म स्वभावकृत–जरा मरण आदि दोषों से अतिरस्कृत अतएव अखण्डा (ब्रह्मणःपूः) ब्रह्मकी पुरी है। (प्रभुविमितम्[1]) जो परब्रह्मके द्वारा ही ज्ञेय है और (हिरण्मयम्) वह प्रकाशमय देदीप्यमान है। इस प्रकार श्रुति ब्रह्मधाम को अपराजित पुरीके नामसे पुकारती है।

अपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः (छां ८–१)

यह सम्पूर्ण ब्रह्मलोक–परमधाम अपहत पाप्मा–निर्मल आत्मा पुरुषोंको ही प्राप्त होता है। क्योंकि—'सत्यकामः सत्य संकल्पः' सत्य कामना और सत्य संकल्पों का भण्डार यह सत्पुरुषोंको प्राप्त होनेकी वस्तु है।

वस्तुतः परब्रह्मके मूलस्वरूप में सम्पूर्ण ब्रह्मधाम ही रहस्य पूर्ण संनिहित है। इस रहस्यको स्पष्ट करने के लिये ही "ब्रह्मपुरके पुण्डरीक वेश्म–मूल मन्दिर के भीतर जो वस्तु है उसे विशेष रूपसे जाननेको कहा गया है"। "ब्रह्मस्वरूप पुण्डरीक वेश्म–मूल मन्दिर किन किन अचिन्त्य अलौकिकताओं से परिपूर्ण है, उसे भी जरा श्रवण कीजिये"।

स्वयं प्रकाश स्वरूप, अनादि सिद्ध, सच्चिदानन्द शोभा परिपूर्ण परात्पर श्री परमधामका वर्णन करते हुए श्री प्राणनाथ प्रभुने ब्रह्मपुरस्थ 'पुण्डरीक वेश्म–'मूल मन्दिरको एक भूमिभर ऊंचे चबूतरे (चतुष्क) पर शोभायमान कहा है। जो दो सौ एक पहल (पंखुरी) का गोलाकृत विकसित कमल पुष्पके समान अनुपम शोभापूर्ण देदीप्यमान हो रहा है।

मूल मन्दिर के अन्तर्गत सब ओर फिरते—चक्रावृत छः छः सहस्र मन्दिरों (प्रकोष्ठों) की दो पंक्ति (कतार हार) हैं। इसी प्रकार भीतर की और भी गोल चौकोर (चोरस) मन्दिरों की चारों और फिरती (चक्रावृत) कितनी ही पंक्ति हैं। उन्हीं गोल मन्दिरों की पंक्तियों में से एक गोल मन्दिर जो मुख्य प्रवेश द्वारके सामने पांचवीं पंक्ति में प्रथम शोभा ले रहा है और चौंसठ स्तम्भों की दो पंक्तियों (हारों) से आवृत–घिरा हुआ है, इसी मंदिर को 'मूलमिलावा' कहते हैं। इसके मध्य भाग में सुतप्त कांचनके रंगका अनेक रत्नखचित सुदिव्य एक सिंहासन है। जिस पर युगल स्वरूप श्रीराज श्यामाजी (पूर्णब्रह्म परमात्मा) विराजमान होकर इस दृश्य जगतके मिथ्या मोह मायाके रहस्यको ब्रह्मसृष्टियों को (शाश्वती समा) दृष्टिगोचर

[1] प्रभु विमितम्—प्रभुणा पूर्णब्रह्मणा विशेषतया मितं ज्ञातं नान्यैः ज्ञेयमिति यावत्। यह ब्रह्मलोक परमात्मा के कृपा साध्य है, अतः उसको उक्त विशेषण लगाया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

करा रहे हैं। उक्त सिंहासन के चारों ओर शक्तिसमूह (ब्राह्मीप्रजा[1]) अपने-अपने स्थान में विराजमान इस कौतुक को देखने के लिये उत्सुक है—

परमधाम के मध्य मूलमन्दिर (पुण्डरीक वेश्म) में श्री पूर्णब्रह्म परमात्मा के स्वयं विराजने का जो स्थान है, उसकी शोभा और उपमा शब्दातीत होने से वर्णन में नहीं आती एवं अप्राकृत अनादि होने से वह मन वाणी के पर है।

जिसको अक्षरातीत परमात्मा के विराजने का सौभाग्य प्राप्त है, ऐसा सुदिव्य यह मूल मन्दिर दश भूमिका वाला है। जिसका वर्णन श्री तारतम सागर में विस्तरश किया गया है। वेद शास्त्र पुराणों में भी जिसको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जिसक उल्लेख श्रुतियों द्वारा किया जा चुका है। स्मृतियों द्वारा भी दिग्दर्शन कीजिये।

"मूल मन्दिरमेतत्तु हृद्यद्भुतं सुरसुन्दरि !
नव भूम्यात्मकं यत्तु दशमी चित्रशालिका ॥
मूलभूमिस्तु प्रथमा द्वितीया मतिविभ्रमा ।
तृतीया भोगरूपा च नृत्यभूमिश्चतुर्थिका ॥
पञ्चमी शयनाख्या च षष्ठी वैमानिकीति च ।
सप्तमी हृद्यष्टमी चोभे दोलाभूमी निरूपिते ॥
नवमी दूरलक्षा च दशमी चन्द्रभूमिका ।
इत्येता दश चाख्याताः भूमयो निजवेश्मनः ॥"

(माहेश्वर तंत्र पटल ४५)

---

[1] सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः। (छां० ६-८-४)

छांदोग्योपनिषद में उद्दालक और पुत्र श्वेतकेतुका सत्सङ्ग चल रहा है। उद्दालक आरुणि कहते हैं"हे सोम्य श्वेतकेतु ! ये परब्रह्म की प्रजा स्वरूप जो ब्रह्मसृष्टि हैं वे सन्मूला-सनातन मूल से आये हैं। इनका आयतन परमधाम भी सनातन है, अतः इन्हें सदायतना कहा जाता है। इनकी प्रतिष्ठा भी सनातन है। ये माया के जीवों की भांति मिथ्या नहीं हैं। अथवा 'अन्ते च सत्प्रतिष्ठाः सदेव प्रतिष्ठा लयः समाप्तिरवसानं परिशेषो यासां ताः सत्प्रतिष्ठाः' (शांकरभाष्य) शंकराचार्यजी कहते हैं कि अन्त में इनका लय भी सनातन होगा अर्थात् अन्त में अपने सनातन ब्रह्मधाम को प्राप्त होकर इस विश्व को समाप्त कर देवेंगे, वह समाप्त करना भी सनातन होगा। अर्थात् विश्व के जीवों को मोक्ष मिलने से इनका चला जाना भी विश्व को सनातन बनाता जायेगा। इस प्रकार उद्दालक ने श्वेतकेतु को ब्रह्मसृष्टि के आने का और ब्रह्मधामको जानेका महत्त्व कहा है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सदाशिवजी ने 'त्रिपाद विभूति' के अन्तर्गत 'चिदानन्द लहरी' द्वारा ब्रह्मधामका जो कुछ वर्णन पाया था और जो कुछ भी आभास उनको मिला था उसको पार्वतीके प्रति संकेत मात्र कहते हैं। हे सुर सुन्दरी ! पूर्णब्रह्म परमात्मा को 'अपराजिता' नाम की पुरी जो ब्रह्मधामके मध्य शोभायमान है, जिसको 'कमलाकृत' होनेके कारण श्रुतियोंने 'पुण्डरीक वेश्म' नामसे स्मरण किया है। सब लीलाओंका केन्द्रभूत मूलस्थान होनेसे उसको 'मूलमन्दिर' कहते हैं। यह मूलमन्दिर दश भूमिका है। प्रथम भूमिका को 'आधार भूमिका' कहते हैं।

'प्रथम भूमि शोभा अतिभारी' प्रथम भूमिका ही दशों भूमिका की शोभा और सामग्री का आधार है, अतएव इसे आधार भूमिका कहना अन्वर्थक है। दूसरी भूमिका को 'मतिविभ्रमा' कहते हैं। कारण, मूल मन्दिर के प्रवेश द्वार से दाहिनी तरफ चौरस 'षोड़श वेश्म' दर्पण सदृश बने हैं। जिनमें नीचे ऊपर सर्वत्र सबका प्रतिबिम्ब अनन्त रूप से दृष्टिगोचर होता है। ब्रह्मधाम चेतनघन होने के कारण वे प्रतिबिम्ब भी चेतनतापूर्ण होकर मति में विभ्रम पैदा करने लगते हैं। यद्यपि ब्रह्मधाम में भ्रम तो है ही नहीं, सब पदार्थ ब्रह्म स्वरूप होने से नित्य ज्ञान-पूर्ण हैं, तथापि प्रतिबिम्बों की चेतनतामूल बिम्ब कौन है ? इस बात का पता नहीं लगने देती। क्योंकि बिम्ब प्रतिबिम्ब का ज्ञान तो भेद के द्वारा होता है। ब्रह्मधाम में सभी पदार्थ भेद रहित अद्वैत हैं भेद तो केवल लीला मात्र है अतएव प्रतिबिम्ब को बिम्ब जैसा चेतन देखकर उससे बात करने लगते हैं तो एक दूसरे को परस्पर हास्य करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। एक ब्रह्मसृष्टि दूसरे बिम्ब के साथ बोले अथवा प्रतिबिम्ब के साथ बात करे, पता नहीं लगता। क्योंकि दोनों तो एक रूप प्रतीत होते हैं। इसका निर्णय सर्वज्ञता के बल पर ही हो पाता है। अन्यथा विभ्रम-सा ही बना रहता है। इसलिये इस भूमिकाको 'मतिविभ्रमा' नामसे पुकारते हैं। इस भूमिका में भुलवनी की लीला करते समय अद्वितीय हास्य रस का आनन्द प्राप्त होता है।

'तीसरी भूमिका'—मूलमन्दिर के मुख्य प्रवेशद्वार के ऊपर तीसरी भूमिका में एक बड़ी बैठक है। जो छज्जा और मूल मन्दिर की दीवाल का कुछ स्थान लेकर शोभित है। जिसे पड़साल कहते हैं। यहां पर प्रातः से लेकर तीन प्रहर तक श्री पूर्णब्रह्म परमात्मा तथा शक्ति समूह सुन्दर साथ अनेक प्रकार के आनन्द लेते हैं। यहीं पर ब्रह्मधाम के पशु पक्षियों को दर्शन देते हैं। अक्षरब्रह्म[1] भी यहां नित्य ही

[1] कूटस्थ एव तद्धाम्नि ब्रह्मदर्शनलालसः।
नित्यं प्रयाति परमः प्रेमपूरित-मानसः॥
प्रविष्टमात्रः पुरुषः कूटस्थो ब्रह्मधाम्नि वै।
आनन्दावरणव्याप्तः चित्प्रकाशोऽधितिष्ठति॥ (माहेश्वर तन्त्रे)

Shri Prannath Ji Pustkalay

श्री पूर्णब्रह्म के दर्शनार्थ आते हैं । यहां पर परस्पर सुन्दरसाथ और मूलस्वरूपके मध्य प्रेम सम्वाद भी होता है । नाना प्रकार के पदार्थों के आरोगने की लीला भी यहां पर होती है, अतएव इसको 'सम्वादभूमिका' किंवा 'भोगभूमिका' कहते हैं ।

चौथी भूमिका—यहां पर चौरस हवेली में प्रहर रात्रि पर्यन्त नाना प्रकार के नृत्य, गान, कला, राग, रागिणी के आनन्द का उदय होता रहता है, अतएव इसे 'नृत्यमयीभूमिका' कहते हैं ।

पांचवीं भूमिका—मूल मन्दिर के मध्य प्रवाली रंगके मन्दिर में शयन लीला का स्थान है । यद्यपि ब्रह्मधाममें पूर्णात्पूर्ण चिद्घन ज्ञान और आनन्दकी स्फूर्ति के कारण नित्य ही जाग्रदवस्था [1] है । तमोरूप निद्रा का अत्यन्ताभाव है, तथापि परमधाम में शयन होता है । वहां का शयन यहां की शयन की भांति निद्रा सापेक्ष नहीं है, श्रम दूर करने के लिये भी नहीं है, अपितु ब्रह्मानन्द पूर्ण है, यहां के शयन में निद्रा की सत्ता है । ब्रह्मधाम के शयन में मुक्त—दशा के आनंद का अनुभव है अतएव उसे 'मुक्ति भूमिका' कहते हैं । "मुक्ति भूमिस्तु शयनी" इत्यादि शिवसंहिता के वचन से उक्त भाव और भी पुष्ट हो जाता है ।

छठी भूमिका:—यहां पर प्रकोष्ठ नहीं हैं किन्तु सीधे दहलान हैं, जहां पर विमान और शिविका (सुखपाल) आदि के स्थान हैं । यहां से इच्छाचारी मनवेगी विमानों पर बैठकर वनोपवन की शोभा और सर्वत्रका आनन्द लेने के लिये श्रीराज श्यामाजी तथा सुन्दर साथ वन में पधारते हैं । और यहीं पर आकर इन्हें पुनः छोड़ देते हैं । इसलिये इसको शिविका अथवा 'विमानभूमिका' कहते हैं ।

सातवीं भूमिका:—इस भूमिका में झूलने की लीला का आनन्द है । नाना प्रकार के चित्र विचित्र हिंडोलों पर आमने सामने ताली दे दे कर झूलते हैं । यहां पर ब्रह्मानन्द लीलाका जो बृंहण होता है, उसे लौकिक दृष्टिवाले सब मनुष्य नहीं जान सकते । इसको दोला भूमि किंवा हिंडोला भूमिका कहते हैं ।

आठवीं भूमिका:— यहां पर भी दोला हिंडोलाओं पर झूलते हैं । अन्तर

---

[1] न वै देवाः स्वपन्ति (शतपथ० ३-२-२-३२)
दिव्य ब्रह्मपुरके ब्रह्मात्मा दिव्यस्वरूप स्वयंसिद्ध होते हैं, अतः वे सोते नहीं हैं ।
जाग्रति देवाः (शतपथ० २-१-४-६)
दिव्याकार सच्चिदानन्द धर्मयुक्त हैं, अतः सदा जाग्रदवस्था में रहते हैं ।
अमृता देवाः (शतपथ० २-१-३-४)
सनातनसिद्ध कलेवर होने से ब्रह्मस्वरूप हैं, अतः वे सदा अजर अमर रहते हैं ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

केवल इतना ही है कि सातवीं भूमिका में आमने सामने दो दो हिंडोलों की ताली पड़ती है और इसमें चार चार हिंडोलों की ताली पड़ती है, अत एव इसको अष्टशल्या हिंडोला भूमिका कहते हैं ।

नवमी भूमिका:— यह मूल मन्दिर के नववें उच्च भाग में है चारों ओर बड़े बड़े विशाल दिव्य छज्जे हैं जिन पर सब ओर भांति भांति के सुन्दर सिंहासन और अनेक भांति की चित्र विचित्र रत्न खचित कुर्सियां, बैठकें पड़ीं हैं । जहां पर बैठकर युगल स्वरूप और सुन्दरसाथ सुदूर दूर सच्चिदानन्द स्वरूप अप्राकृत—स्वयं सिद्ध दृश्यों का अवलोकन करते हैं । ब्रह्मधाम के दृश्यों का दूसरे ही आनन्द करा देने वाली इस भूमिका को 'दूरलक्षा' अथवा सिंहासन प्रधान होने के कारण सिंहासन भूमिका भी कहते हैं ।

दशमी भूमिका :— यह मूल मन्दिर—पुण्डरीक वेश्म की ऊपरी खुली छत है। जहां पर भांति—भांति के पुष्प विकसित हो ब्रह्मानन्दको बढ़ाते रहते हैं । फुलवारियोंके बीच—बीच में अनेक अमृतकुण्ड नहर तथा फुव्वारों से युक्त एक चबूतरा[1] हैं जहां पर मध्यमें स्थान-स्थान पर सिंहासन बैठक, कुर्सी आदि शोभित हैं। जिन पर बैठकर युगल स्वरूप तथा सुन्दर साथ आकाशीय दृश्यों का आनन्द लेते हैं। इस दशमी भूमिकासे परमधाम के २५ पक्षों का कौतुहल पूर्वक निरीक्षण होता है । पूर्व में दृष्टिपात करें तो श्री यमुनाजी के दोनों तट तथा दोनों तटों के सात सात घाट और सात सात बनों का एवं अक्षर ब्रह्म के धामका दृश्य और अक्षर धामके आगे कुँज निकुँज बनका आनन्द पूर्ण दृश्य उपस्थित होता है । उसी दिशा में और आगे दृष्टि निक्षेप करें तो रत्न खचित उभय तटबद्ध जलकी धाराएं जिनको जवेरों की नहर कहते हैं, वे सब देखने में आती है । उनके आगे बन की नहर छोटा आवरण तथा सर्वरस सागर तथा वृहद् दुर्ग भित्ति (बड़ा आवरण) का अनुपम दृश्य उपस्थित होता है, जो आनन्द विभोर किये रहता है ।

---

[1]आधारभूमिका चैव भ्रमी नृत्यमयी तथा ।
मुक्तिभूमिस्तु शयनी शिविका हिण्डोलिका तथा ॥
अष्टशल्या सिंहासना दशमी चित्र शालिका ।
कक्षोच्छायोमहांस्तत्र चतुष्कं चापि दृश्यते ॥
(पुराण संहिता)

उपरोक्त कथनके समान ही पुराण संहिताके इन पद्यों में भी दशों भूमिका का वर्णन मिलता है । केवल नाम मात्र अन्तर है । प्रत्युत दशमी आकाशी भूमिकाके ऊपर कमर भर ऊंचा एक चबूतरा भी विद्यमान है, यह भी वर्णन किया है जो परमधाम के वर्णन से मिलता है ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

आग्नेय कोण—की ओर देखें तो कुंज निकुञ्जवन, जवेरों की नहरें तथा वन की–नहरों का दृश्य विशेष आनन्द उपस्थित करता है। इनके आगे और दूर दृष्टि फेकें तो छोटा दुर्ग (आवरण) एवं 'अमृतसागर' जिसे नूरसागर कहते हैं, देखने में आते हैं। इसके आगे बड़े दुर्ग (आवरण) की शोभा और महल मन्दिर हैं।

दक्षिण दिशा का दृश्य देखें तो 'वट पीपल की चौकी, कुंज निकुंज बन, तथा सुधासर (हौज कौसर ताल) चौबीस पांखुरी के भवन (चौबीस हांसकी महलात) माणिक गिरि, रत्नखचित उभयतटी जलकी धाराएं (जवेरों की नहरें) तथा वनकी नहरें तथा चक्रावृत जल धाराएं (फुव्वारे), छोटा आवरण (दुर्ग) और उसके आगे नीरसागर' और महल मन्दिर आदि विविध दर्शनीय आनन्द उपस्थित होते हैं।

नैऋत कोण—की ओर देखिये तो वृक्षपंक्ति (जिन्हें पांच पेड़ों की पंक्ति कहते हैं) कुञ्ज निकुंज वन, बड़ा चौगान (क्रीड़ा स्थल) जवेरों की नहरें तथा वनकी नहरें एवं छोटा दुर्ग उसके आगे क्षीर सागर [1] और बड़ा दुर्ग–आवरण, एवं महल मन्दिर अनन्त शोभासे भरपूर दृष्टि गोचर होते हैं।

पश्चिम दिशा की ओर देखिये तो—फूलवाग, नूरगार, दूब दुलीचा–दूर्वाक्षिति, वृक्ष पंक्ति, अन्नवन, चौगान (क्रीड़ा स्थल), रत्नखचित तटवद्ध नहरें, उसके

---

[1] घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः॥
(अथर्व ४–३४–६)

इस वेद मंत्र में ब्रह्मलोक के आठों समुद्रों को एक ही साथ वर्णन कर दिया है। हम प्रथम लिख चुके हैं कि पिण्ड ब्रह्माण्डको परमात्माने अपने अनुरूप रचा है। यही कारण है कि ब्रह्मधाम के नामों की वस्तु इस विश्व में और इस शरीर में सूक्ष्म रूप से मिलेंगी। विश्व में जिन जिन पदार्थों के नाम हैं, इस शरीर में उनका वर्णन मिलता है। इस प्रकार वेदने एक मंत्र द्वारा विश्वके और परमधामके आठों समुद्रों का भी निर्देश किया है। यथा–घृतसागर, मधुसागर, इक्षुरस सागर, क्षीरसागर, नीरसागर, दधिसागर, 'पूर्ण' रस सागर। वेदमंत्र में 'पूर्ण' शब्द सांकेतिक अर्थात सब रस जिसमें एकत्रित होकर पूर्ण हैं। इस प्रकार सात सागरों का वर्णन कर आठवें को 'मधुमत्' अमृतशब्दसे पृथक् व्यक्त कर दिया है। श्रीजीने इन सागरों के विषयमें विशेष प्रकाश डाला है, जो ध्यान में रखने योग्य है, लोकमें सात समुद्र प्रसिद्ध हैं। अतः वेद मंत्र में सातोंको एकत्रित लिख कर ब्रह्मधामके आठवें विशिष्ट सागर गर्भित करके पृथक निर्देश किया है, यह भी अन्वेषणीय रहस्य है, जो सबकी बुद्धि में नहीं भरता।

Shri Prannath Ji Pustkalay

आगे वनकी नहरें, छोटा दुर्ग-आवरण, दधि सागर और वृहद् दुर्ग-आवरण हैं। जहां पर असंख्य महल मन्दिर सच्चिदानन्दमयी शोभा से परिपूर्ण उदित हो रहे हैं।

वायव्य कोण—इस ओर दृष्टिपात करने से वृहद्वन, मधुवन, महावन जवेरों की नहरें तथा आगे वनको नहरें, छोटा दुर्ग और घृत सागर का अनुपम दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसके आगे इसी दिशा में वड़ा दुर्ग और उसके महल मन्दिर असीम शोभा को लिये उदीयमान हैं।

उत्तर दिशा—की शोभा का निरीक्षण करें तो—लाल चवूतरा (रक्त चतुष्क लाल रंग का है) ताड़वन, मधुवन, महावन, पुष्पराज गिरि (पुखराज पहाड़), जवेरों की नहरें, उसके आगे वनकी नहरें तथा लघु दुर्ग (आवरण), उसके आगे मधु सागर और बड़ा दुर्ग—आवरण है। यहां पर भी अनन्त, अपार महल मन्दिर की शोभा अनुपम दृश्य उपस्थित कर देती है।

'चिदानन्दमयी वापी मणि मण्डप मण्डिता'

ईशान कोण—इस दिशा में दृष्टि निक्षेप करें तो—चिदानन्दमयी वापी अर्थात् खड़ोकली, ताड़वन, वड़ावन, मधुवन, महावन, यमुनाजी, जवेरों की नहरें, उनके आगे वनकी नहरें और छोटा दुर्ग आता है। जहां असंख्य पशु, पक्षी, ब्रह्म स्वरूप लीला विहार का अनुभव लेते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इसके आगे 'रससागर' और वड़ा दुर्ग आता है, जो असंख्य महल मन्दिरों को अपने अंचल में लिए हुए प्रकाश स्वरूप किरणों से सुदीप्त दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार मूल मन्दिरकी दशमी भूमिकाके ऊपरसे सम्पूर्ण ब्रह्मधाम का दृश्य देखने में आता है, जो शब्दातीत होने से यथार्थ नहीं कहा जा सकता।

इस मूल मन्दिर (पुण्डरीक वेश्म) के उत्तर की ओर पुष्पराज गिरि है, जो साढ़े चार लाख कोश के अन्तर से स्थित है। इसी पुष्पराज गिरि से श्री यमुनाजी की धारा का प्रवाह चलता है जो साढ़ चार लाख कोस पूर्व को चल कर दक्षिण की ओर को हो जाता है। वह प्रथम साढ़े चार लाख कोश पर्यन्त ढका खुला चलता है। उसके बाद दक्षिण की ओर को नौ लाख कोश तक खुला जाकर पश्चिम की ओर को घूम जाता है। फिर पश्चिम को साढ़े चार लाख कोश चलकर सुधासर[1] (मदकर सरोवर) में जाकर समा जाता है। मूलमन्दिर के

[1] वह सुधा सरोवर जिसे तालपाल भी कहते हैं। इसके मध्य भाग में चौंसठ पाँखुरी के रत्नका एक सुन्दर भुवन बना है जो तीन भूमिका ऊंचा है। इस सुधा सरोवर के चार घाट हैं। किनारे अनेक रत्नों से खचित गुमटियों से युक्त शोभायमान हैं। इसको श्रुतियों ने वड़े गौरव के

Shri Prannath Ji Pustkalay

सामने पूर्वकी ओर यमुनाजी के दोनों तटों पर, सात सात घाट और सात सात वन हैं जिनमें नाना प्रकार के असंख्य पुष्प, फल एवं पशु पक्षी शोभा ले रहे हैं।

'यमुनाजी सातों घाट बनी, और बन फूली फुलवारी है।
जीवन सद्गुरु से जान लिया, यह मता अपरबल भारी है॥ (मस्तान जी)

यमुनाजी के सातों घाटों पर सात वन शोभा ले रहे हैं। जो 'केल, निम्बू, अनार, अमृत (आमके वृक्ष), जाम्बूफल, नारंगी और बट' के नामसे प्रसिद्ध हैं। मूल-मन्दिर से पूर्व में नौ लाख कोशके अन्तर पर श्री अक्षर ब्रह्मका धाम है जहां पर अक्षर ब्रह्मके विराजनेका दिव्यस्थान है। परमधाम और अक्षरधाम के मध्य यमुनाजी बहती है, जिसके दोनों तटों पर सात सात घाट हैं और घाटों के दायें बायें दो पुल हैं।

मूल मन्दिर के पूर्व द्वारके सामने एक विशाल चाँदनी चौक है। जिसमें उत्तर की ओर दक्षिणकी ओर हरे वृक्षों से सुशोभित दो वेदिका (चबूतरा) हैं। प्रातःकाल जब श्रीराजश्यामाजी पांचमी भूमिका से उठकर तीसरी भूमिका के छज्जे पर आकर विराजते हैं, परमधाम के पच्चीसों पक्षोंके असंख्य पशुपक्षी इसी चौकमें होकर दर्शन और अभिवादनकी तत्परता दिखाते हैं। अपने अपने भक्तिभाव भरे नवीन नृत्य कला आदि करके अपने प्रभुको प्रसन्न करते हैं। "ये जाने सोई जो हिरदे धरत" इस अद्वैत रहस्य की लीला के आनन्दको वे ही भाग्यशाली ले पाते हैं, जिन्होने ब्रह्मस्वरूप हृदय में धारण किया है। मोर, चकोर, शुक-सरिका आदि अपने अपने कृत्यों से परमात्माको प्रसन्न कर अपने को भाग्यशाली बनाते हैं।

इस चांदनी-चौक से सौ सिढ़ी ऊपर चढ़ने पर श्री परमधाम की प्रथम भूमिका में प्रवेश होता है। मूल मन्दिर के अन्दर की लीलाओं को विस्तार भयसे नहीं लिखते। ये तो नाम मात्र पदार्थों का और स्थानों का उल्लेख कर दिया है स्वरूपतः वे सब मन वाणी से पर अगम अगोचर हैं, उन्हें कहा नहीं जा

साथ वर्णन किया है। 'मदीयं सरः' हर्षोत्पादक इस सरोवर को जो जान लेते हैं 'तेषामेवैष ब्रह्मलोकः' (छां० ८-५-४) उन्हीं को इस ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। आचार्य रामानुजने 'ऐरं मदीयं सरः' (छां० ८-५-३) इतना समानाधिकरण वाक्य माना है। वे इसका अर्थ अमृत करते हैं। 'इस्या अमृतेन माद्यन्ते यस्मिन्' इस प्रकार निर्वचन कर इस सरोवर को अमृतका मानते हैं। शंकराचार्यने "मदीयं मदकरं हर्षोत्पादकं सरः" मदीय-हर्षको उत्पन्न करने वाला सरोवर बताया है। इस भांति सरोवर है, इसे सब मानते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सकता। कारण 'नित्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' की कोई इयत्ता नहीं है। वह सदा अनन्त अपार और असीम है। वह 'भूमा' है अपार आनन्दों का सागर है। अनन्त प्रकाश राशियों का प्रकाश पुंज है। अनन्त लीला समूहों का अद्वितीय केन्द्र स्थान है। असीम अपार अखंड ब्रह्मानन्द-स्वरूप निरतिशय दिव्य सामग्रीका आश्रय है तथापि मनुष्य सुलभ-बुद्धि में उसके स्वरूपको भराने के लिये—

"हुकमे[1] वेद कतेब में लाखों लिखे निसान"

स्वयं परमात्मा ने ही वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि अनेक ग्रन्थों में अनेक प्रकार के संकेतों द्वारा अपने स्वरूप का प्रत्यय कराया है। जिसे तत्त्वतः जानकर "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" मनुष्य 'ब्रह्म स्वरूप' ही बन जाता है। इसलिये जहां कहीं भी ब्रह्मके स्वरूप का संकेत मिले, उसे ग्रहण कर अपने मार्ग (को ध्येय पथको) सरल और सुगम बनाना चाहिये। और ब्रह्म मुनियों के आतम मार्ग को सुगम बनाने वाले संकेतों को पाकर आनन्दित होना चाहिये।

'अथात[2] आत्मादे : । आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्ठादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' (छां० ७-२५)

---

1 वाणी लिखने का समय यवनशासन काल था अतः प्रायः यवन भाषाका प्रचार और गौरव था। यही कारण है उक्त समय के महात्मा पुरुषों के ग्रन्थों में यवन भाषा के शब्दों की छाया देखनेमें आती है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि उन शब्दों को उसी रूप में भविष्यमें प्रयोग करना चाहिये। भाषा तो भाव व्यक्त करनेका कलेवर है। वह देश, काल और आवश्यकता अनुसार बदला करता है। यवनकाल में यवन भाषा का महत्त्व रहा। अंग्रेजों के समय में उनकी भाषा रही। अब राष्ट्रभाषा का युग चल रहा है। अतः इसे अपनाना चाहिये।

2 'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा।'
यो वै भूमा तदमृतम्। स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नि इति॥ (छां० प्र० ७-खण्ड २४)

जहां पर ब्रह्मस्वरूप ही सब पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, ब्रह्मस्वरूप ही सुने जाते हैं। ब्रह्मरूप ही सब लगते हैं, वही तो भूमा है। जो भूमा है वही अद्वैत स्वरूप है। वह किसमें स्थित है, अपनी महिमा में। अथवा महिमा में नहीं भी है, किन्तु अपने दिव्य स्वरूप में स्वयं प्रकाश पूर्ण अवस्थित है। श्रुतिमें परब्रह्म को अपनी महिमा में स्थित बताकर फिर नहीं भी क्यों कहा?

Shri Prannath Ji Pustkalay

—अब परमात्मा के आत्म स्वरूप की विशेषता बताते हैं। आत्मा ही नीचे पृथ्वी रूप है। आत्मा ही ऊपर आकाश नक्षत्र चन्द्र सूर्य रूपमें है। आत्मा ही पश्चिम की ओर है, आत्मस्वरूप ही आगे की ओर है। आत्मस्वरूप ही दायीं ओर के पदार्थ हैं। आत्मस्वरूप ही वायीं ओर के सब पदार्थ हैं। और कहां तक कहें वहां पर जो कुछ भी विद्यमान है वह सब आत्मस्वरूप ही है। जो इस प्रकार देखने वाला है, जो इस प्रकार मानने वाला है, वही आत्मानन्द को प्राप्त होता है। जो इससे विपरीत जानता और मानता है वह नश्वर लोकों को–वारम्वार जन्म मरण को प्राप्त होता है।

जहां पर पृथ्वी, आकाश, पूर्व-पश्चिम, दायें-वायें, जो कुछ भी वस्तु मात्र है, वह सब ब्रह्मस्वरूप ही अवस्थित है, तब वहां के पदार्थों को, वहां के स्वरूपों को किस प्रकार वर्णन किया जाय ? क्योंकि हीरा, माणिक कहने से हमारी बुद्धि के सामने लोक में देखे गए 'हीरा मणियों का' स्वरूप ही उपस्थित होता है। ब्रह्मस्वरूप हीरा माणिक तो इससे विपरीत, विलक्षण और चेतन ही होंगे, उन्हें तो बुद्धि ग्रहण कर पाती नहीं, फिर कहा किस प्रकार जावे और कहे कौन ? क्योंकि शब्द भी तो लौकिक पदार्थों के अर्थ में रूढि अर्थ वाले हैं, वे परमधामके ब्रह्मस्वरूप पदार्थों का बोध किस प्रकार करा सकें ? अतएव श्रुति ने सबको ब्रह्मस्वरूप कह दिया है। साथ ही यह भी चेता दिया है कि जो ऐसा नहीं मानते, इस प्रकार नहीं जानते, प्रत्युत इससे विपरीत अपनी बुद्धि लड़ाते हैं, वे जन्म–मरण के चक्कर से कभी नहीं छूट पाते।

वस्तुतः श्रुति का कथन है भी यथार्थ ! क्रान्तदर्शी वेद के नित्य ज्ञान के विरुद्ध कोई कलुषित बुद्धि की दासता स्वीकार करने लगे, वह अधोगति के लायक तो है ही। तभी तो तुलसीदासजी ने "कल्प-कल्प भर इक-इक नरका, परहिं जो दूषहि श्रुति, करि तरका" चौरासी कल्प पर्यन्त की सजा इनके (श्रुति दूषकों के) लिये तजवीज की है। जब ब्रह्मधाम के पशु पक्षी, वन उपवन, गिरि, नदी–सभी ब्रह्म स्वरूप हैं, तब तो उनका सामर्थ्य, ऐश्वर्य, ज्ञान, प्रकाश, आनन्दप्रद शक्ति सर्वज्ञता, अनादित्व, चेतनत्व आदि ब्रह्म के गुण भी उनमें होना स्वाभाविक है। यही कारण

इसका रहस्य यह है कि—वेदों में चतुष्पाद विभूति को ब्रह्म की- महिमामात्र वर्णन कर परमात्मा को उससे कहीं अधिक महान और असीम अनन्त प्रतिपादन किया है। जो अनन्त है और अपनी महिमा से अनन्त गुना अधिक है वह अपनी महिमा में ही रहे तो सापेक्ष हो जावे एवं वह अनन्त अपार ब्रह्मानन्द स्वरूप अपने सापेक्ष क्षेत्र (चतुष्पादविभूति) में स्थित होने से निरपेक्ष नहीं रह पावे। इसलिये श्रुति निर्देश करती है कि—वह भूमा—ब्रह्म अपनी महिमा में भी है और उसके क्षेत्र के अतिरिक्त अपने अनन्त दिव्य स्वरूप में स्वतन्त्र भी विद्यमान है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

है कि—ब्रह्मधामके वन, वृक्ष, जल, थल, पशु, पक्षी, सभी सत्, चिद्, आनन्द, अनन्त अद्वैत आदि दिव्य गुणयुक्त भेद रहित सदा चेतन माने गए हैं। यथा:—

"लता गहरि गिरि गहन गंभीरा, ताल पाल यमुना वर नीरा।
कुञ्ज निकुञ्ज गुल्म द्रुम जाती, चित्र मनोहर अद्भुत भांती॥
रेनि दिवस रितुरंग अनेका, रवि शशि नखत विचित्र विवेका।
तेजवंत बलवंत अपारे, समय समान सुचेतन सारे॥
आज्ञा रूप सदा अनुकूला, थिर चर सकल सुचेतन मूला।
रवि शशि कोटि प्रकाश अनूपा, शशि शत कोटि सुशीतल रूपा॥
नित्य नवीन प्रवीन पुराने, जल चर थल चर अचर समाने।
पशु पक्षी सब वन नभचारी, सदा सुचेतन आज्ञाकारी॥
मन अनुकूल सेव्य रूख जानी, सेवा सुमुख सदा सुख मानी।"

ब्रह्मधाम के स्थावर जंगम संज्ञा वाले सभी पदार्थ करोड़ों सूर्यों के प्रकाश युक्त, करोड़ों शशियों की शीतलता धारण किये हुए, सदा चेतन गुण पूर्ण प्रकाश स्वरूप, आनन्द स्वरूप और ज्ञान रूप होते हुए भी सदा सेवा में तत्पर हैं। ब्रह्म स्वरूप और सच्चिदानन्द गुण पूर्ण होते हुए भी आज्ञा की प्रतीक्षा में दत्तचित्त शोभायमान हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत सत्, चिद् और आनन्द भावका त्रिवृत्करण होने के कारण प्रत्येक पदार्थ सभी भावों को पूरा करने में समर्थ है। जिस प्रकार विश्व के प्रत्येक पदार्थको पंच भौतिक और पंचीकरण युक्त पाते हैं। उसी प्रकार ब्रह्मधाम के सभी पदार्थ त्रिवृत करण युक्त और सच्चिदानन्द स्वरूप चेतनघन विद्यमान हैं। यथा :—

"आनन्दके सत भाव संभारा, सत्य अखंडानन्द विहारा।
सतमें सत चिद आनंद भावा, चिदमें त्रिविध भाव श्रुति गावा॥
आनन्दमें पुनि त्रिविध विवेका, एक एकमें भेद अनेका।
एक अनेक भेद बहुतेरे, सत चिद आनन्द भाव घनेरे॥
इहि विध सब अद्वैत अभेदा, जलतरंग इव वरनत वेदा"

यों तो ब्रह्मधाममें किसी भावकी इयत्ता नहीं है, सभी अद्वैत और अनन्त रूपमें उल्लास पा रहे हैं, तथापि लीला वैचित्र्य को सिद्धिके लिये शुद्ध साकार रूपमें नित्य चेतन पदार्थों का अस्तित्त्व पृथक पृथक भी लक्षित होता है। यदि ऐसा न होता तो ब्रह्मानन्द लीला सको सेव्य सेवक भावमें, भोग्य भोक्ता रूपमें जान ही

Shri Prannath Ji Pustkalay

नहीं पाते। परन्तु ब्रह्मधाम के सभी पदार्थ भोग्य भी हैं[1] और भोक्ता भी हैं। यही तो ब्रह्म स्वरूप पदार्थों की विलक्षणता है। सभी गुण पूर्ण न हों, तो ब्रह्म स्वरूप होने का महत्त्व ही न रहा। जब वे समस्त ऐश्वर्य और सामर्थ्य युक्त न हों तो उन्हें ब्रह्म स्वरूप कहे कौन ?

त्रिवृत्करण की यही तो विशेषता है। आनन्द में सत्, चिद्, आनन्द भाव विद्यमान है, सत् में भी सत्, चिद्, आनन्द पूर्ण हैं एवं चिद् भी सत्, चिद्, आनन्द रूप में उल्लास पा रहा है। एक में अनेक और अनेक में एकत्वका दर्शन यही तो अद्वैत भूमिका का महत्व है। इसीको सर्व शक्तिमान कहते हैं। सर्व ऐश्वर्य होने का अर्थ यह होता है कि प्रत्येक वस्तु सब ऐश्वर्य पूर्ण हो। पूर्णात्पूर्ण कहना तभी शोभा पाता है जब वहां पर किसी भाव की न्यूनता न हो, सब को सर्वत्र बल, ऐश्वर्य, आनन्द, सामर्थ्य, प्रकाश, सब बातें यथेष्ट रूप में प्राप्त हों। निरपेक्षता के लिये सापेक्ष तो कुछ है ही नहीं, वहां पर तो जो कुछ भी किसीको कामना भी है तो परस्पर आनन्द पहुंचाने के लिये, न कि अपने लिये। जहाँ अपना पराया भेद ही सिद्ध नहीं हो पाता, वहां पर जो कुछ भी है– सब प्रेमानन्द लीला की वैचित्र्य सिद्धि के लिये है।

ब्रह्मधाम के–पुष्प फल अथवा पशु, पक्षी किसी भी पदार्थको ले लीजिये वह लीलामय पात्र के रूप में भोग्य है। लीला वैचित्र्य सिद्धि के लिये है अतः वह सेवक भी है परन्तु चिद्भाव के द्वारा वह ब्रह्मानन्द का भोक्ता भी है।

---

[1] चेतनघन पदार्थों में यही तो विशेषता है। कारण वे सच्चिदानन्द स्वरूप होनेसे अनन्त आनन्द और अनन्त सौन्दर्य के सागर हैं। अनन्त सुगन्धित गुण जिनमें विद्यमान हैं, जो अनन्त प्रकारसे विविध रूप, रस, गन्ध, स्पर्श के महत्त्व से परिपूर्ण हैं और फिर जो चेतन हों वे कितने आनन्दप्रद हो सकते हैं। जो चेतन भोक्ता हैं और भोग्य भी हैं उनके महत्त्वको, उनके आनन्दको कौन कह सके ? संसार में मिथ्या रूप में भी स्त्रीके स्वरूप में दोनों गुण हैं। वह भोग्य भी है और भोक्ता भी है। यदि सर्वगुण सम्पन्न हो तो मनुष्य उसके पीछे पागल बन जाता है। परन्तु फिर भी वह एक रूप में स्थायी नहीं रहती और विकारयुक्त हैं। अनन्त गुण भी उसमें नहीं हैं तथापि आकर्षक है। ब्रह्मधामके प्रत्येक पदार्थ सच्चिदानन्द स्वरूप होने से सदा चेतनघन हैं। अतः प्रत्येक दशामें भोग्य भोक्ता दोनों भावों को धारण किये हैं। अतः सर्वदा सर्वत्र सबको ब्रह्मानन्द प्रद हैं। अतएव श्रुति कहती है कि—

"एकं ब्रह्मचिदाकाशं सर्वात्मकमखण्डितम्" (श्रुति

Shri Prannath Ji Pustkalay

आनन्द भाव की पूर्णता के कारण वह स्वयं भी आनन्दित होता है और परस्पर दूसरों को भी आनन्दित किये रहता है। सद्भाव की विशेषता से दिव्य शोभापूर्ण अनादि विराजमान है और परस्पर दूसरों को भी शोभित बना रहा हैं। चिद्भाव के द्वारा प्रकाशपूर्ण, सर्वज्ञ और सबकी अनुकूलता को धारण किये है। आनन्दभाव के द्वारा सबको सुखदाई, आकर्षक परस्पर अद्वैत आनन्द को उपबृंहण कर रहा है। सद्भाव के कारण लीलामय होते हुए भी सदा सर्वदा एकरस, एकरूप, सनातन, अखंड विराजमान है। इस प्रकार ब्रह्मधाम के प्रत्येक पदार्थ में अनन्त गुण, अनन्त[1] प्रकाश, अनन्त भाव, अनन्त लीलामय रूप, अनेक में एक और एक में अनेक भावों का उदय प्रतिक्षण होता रहता है। जो शब्दातीत और मन वाणी से पर होने के कारण यथार्थ व्यक्त नहीं किया जा सकता।

जिस ब्रह्मधाम के एक परमाणु के समक्ष इस विश्व के करोड़ों सूर्यों का प्रकाश[2] निस्तेज हो जाता है, जहां के एक रज कण की शोभा यहां के स्वर्ग वैकुण्ठ के करोड़ों सौन्दर्य नहीं पा सकते। जिस ब्रह्मानन्द के क्षण मात्र के आनन्द के समक्ष, स्वर्ग वैकुण्ठ के असंख्य आनन्द, सुख एकत्रित किये जावें तो भी तुच्छ प्रतीत हों, उस ब्रह्मानन्द का वर्णन और अनुभव यहां पर यथार्थ हो पाता ही नहीं। तथापि समझने के लिये—

'बेसुमार लाये सुमार में, सो भी साथ कारन।'

---

[1] नित्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इति श्रुतेः परब्रह्म में चिद्घनत्व नित्य है, अनन्तत्व भी नित्य है और बृंहण धर्म तो नित्य है ही। इसलिये ब्रह्मधाम के सभी पदार्थ ब्रह्मस्वरूप में अन्तर्भाव पाते हैं। वे सब चाहे कितनी ही संख्या में क्यों न हों, अनन्त संख्या के भीतर ही रहेंगे। वे चाहे जितना भी ब्रह्मानन्द के उल्लास को प्राप्त करें ब्रह्मभाव के बाहर नहीं जा सकते। वे सब सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होते हुए भी नित्य चिद्घन के स्वरूप के पर नहीं जा सकते, इस प्रकार नित्य, अनन्त ज्ञान के अन्दर में ही सबका समावेश होता है, अतएव सबका सब परमधाम ब्रह्मस्वरूप माना जाता है।

[2] वस्तुतः बात यह है कि यहां के पदार्थों की उपमा ही नहीं दे सकते। यहां के सूर्य की उपमा ब्रह्मधाम के प्रकाश के लिये दी जावे तो यही प्रतीत होने लगता है कि वहां पर बहुत सा प्रकाश भरा पड़ा होगा, पर ऐसा नहीं है। यह सूर्य जड़ है, इसका प्रकाश भी जड़ है और फिर यह है भी—प्रतिद्वन्द्वी। वहां का प्रकाश नित्य, चेतन, सर्वज्ञता गुणपूर्ण, सुखद, भोक्ता, अन्तर्यामी ज्ञापक, साधक, प्रापक, शीतल, आकर्षक, मनमोहक, सर्व ऐश्वर्यपूर्ण और परात्पर है, अतः उसके लिये उपमा नहीं दी जा सकती। तभी तो 'श्रीजी' ने लिखा है:—

Shri Prannath Ji Pustkalay

वेद, शास्त्र, पुराण आदि विश्व के यावत् ग्रन्थों में ब्रह्म विषय में जो कुछ भी लिखा गया है वह ब्रह्मकी 'इयत्ता' नहीं है, केवल जाननेके लिये कहा गया है।

"सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति। युवा स्यात्साधु युवाध्यापकः। आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः। तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः। ते ये शतं मानुषा आनन्दाः। स एको मनुष्यगन्धर्वाणा–मानन्दः। ते ये शतं... स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः। ते ये शतं .. स एक : पितृणां चिरलोक लोकानामानन्दः। ते ये शतं ००० स एक आजानजानां देवानामानन्दः। ते ये शतं ००० ए एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः। ये कर्मणा देवानपियन्तिः ते ये शतं ००० स एको देवानामानन्दः। ते ये शतं ००० स एक इन्द्रस्यानन्दः। ते ये शतं ००० स एको बृहस्पतेरानन्दः। ते ये शतं ००० स एक प्रजापतेरानन्दः। ये ते शतं प्रजापतेरानन्दः। स एको ब्रह्मण आनन्दः। (तैत्तिरीय० ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवाक ८)

अब आनन्द के स्वरूप की मीमांसा का सूक्ष्म भेद बताते हैं:— कोई मनुष्य युवा हो। वह भी ऐसा वैसा नहीं किन्तु सदाचारी युवक हो और वेदों का ज्ञाता हो, शासन में अत्यन्त कुशल हो और उसके अंग प्रत्यग भी सब हृष्ट पुष्ट हों और वह सब प्रकारसे बलवान हो। और फिर उसे यह सारी पृथिवी धन से भरी हुई मिल जाय। एवं उसका उपभोग करता रहे तो वह मनुष्यलोक का एक आनन्द होता है। ऐसे मनुष्य लोकके सौ आनन्दों के बराबर मनुष्य—गन्धर्वों का जो मनुष्य योनिसे शुभकर्म द्वारा गन्धर्व योनिको प्राप्त हुए हैं, उनका एक आनन्द होता है।

"नूर नाम रोशन का दुनी जानत यों कर
सो तो रोशन जिद अंधेर का दुनी क्या जाने लुदन्नी विगर"

विश्व में यावत् प्रकाश दृष्टिगोचर होता है—चाहे सूर्य का हो या अन्य किसीका हो, वह अन्धकार का जिद–प्रतिद्वद्वी और प्रतियोगी ही मिलेगा। यदि अन्धकार न हो तो हमें प्रकाश का ज्ञान ही नहीं होता। सम्पूर्ण विश्व अन्धकार के प्रतियोगी पदार्थ का प्रकाश कह कर पुकारता है। परमधाम में जब यह अन्धकार ही नहीं तो उसका प्रतिद्वन्द्वी (विरोधी) प्रकाश भी किस प्रकार हो सकता है। यह ग्रीष्म तथा शीत काल में भिन्न भिन्न रूप धारण कर लेता है। सूर्य का उष्ण है, चन्द्रका शीतल है, अग्निका दाहक, जठराग्नि का पाचक, दीप एवं बिजली का प्रकाशक, भिन्न ही प्रकार का है। परमधाम का प्रकाश पूर्वोक्त सबसे विलक्षण और ज्ञानपूर्ण, सदा सुखदाई, चेतन, सर्वत्र एकरस, निरपेक्ष है और प्रतियोगी कारण नहीं रखता। इसीलिये श्री जी निर्देश करते हैं— तारतम्य ज्ञान के बिना विश्व के मनुष्य प्रकाश के स्वरूप को क्या समझें? अतः रोशनी कहा करते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

इसी प्रकार मनुष्य गन्धर्वों के सौ आनन्दों के बराबर देवयोनि के गन्धर्वों का एक ही आनन्द हो जाता है। देवगन्धर्वों के सैंकड़ों आनन्दों के बराबर—चिरस्थायी पितृलोक को प्राप्त हुए पितरों का एक ही आनन्द हो जाता है। चिरस्थायी पितृलोक के पितरों के ऐसे पूर्वोक्त सैंकड़ों आनन्दों के बराबर आजानज देवों का एक ही आनन्द हो जाता है। आजानज देवों के सैंकड़ों आनन्दों के बराबर कर्म से देवयोनि को प्राप्त हुए देवों का एक ही आनन्द हो जाता है। कर्मदेवों के सैंकड़ों आनन्दों के बराबर देवताओं का एक ही आनन्द हो जाता है। देवताओं के सैंकड़ों आनन्दों के बराबर इन्द्रदेवका एक ही आनन्द हो जाता है। इन्द्र के सैंकड़ों आनन्दों के बराबर बृहस्पतिका एक ही आनन्द हो जाता है। बृहस्पतिके सैंकड़ों आनन्दों के बराबर प्रजापतिका एकही आनन्द हो जाता है। प्रजापति के सैंकड़ों आनन्दों में जो सुखानुभव प्राप्त होता है वह ब्रह्मके एक ही आनन्द में प्राप्त हो जाता है। स्मृतियो में भी ब्रह्मानन्दको अन्य आनन्दों की अपेक्षा बहुत ऊंचा माना है—

वैष्णवानन्द—शतकं रुद्रानन्दस्तु चोच्यते ।
रुद्रानन्दशतेनोक्तः शैवानन्दो परो महान् ॥
शिवानन्दशतेनोक्त ईश्वरानन्द संज्ञकः ।
तच्छतेन भवेदेवि ! प्रकृत्यानन्द उत्तमः ॥
प्रकृत्यानन्द शतकं पुरुषानन्द उच्यते ।
पुरुषानन्दशतकमक्षरानन्द उच्यते ॥ (माहेश्वरं तन्त्र)

भगवान विष्णु के वैकुण्ठ लोक के सौ आनन्दों के बराबर भगवान रुद्रका एक ही आनन्द पर्याप्त हो जाता है। रुद्रके सौ आनन्दों के बराबर ज्योति स्वरूप (शिव) का एक ही आनन्द हो जाता है। शिव (ज्योति स्वरूप) के सौ आनन्दों के बराबर ईश्वर का एक ही आनन्द पर्याप्त होता है। ईश्वर के सौ आनन्दों के समकक्ष—बराबर प्रकृति का एक ही आनन्द अधिक प्रतीत होता है। प्रकृति के सैंकड़ों आनन्दों के बराबर पुरुषका—अव्याकृत का एक ही आनन्द विशेष प्रतीत होता है। पुरुष(अव्याकृत)के सैंकड़ों आनन्दों के बराबर अक्षर ब्रह्मका एकही आनन्द अधिक महत्त्वपूर्ण दृष्टिगोचर होता है।

अब आप विचार कीजिये कि अक्षर ब्रह्म के आनन्द तक इस विश्व के असंख्य आनन्द एकत्रित हो जाते हैं, फिर भी उसकी तुलना में तुच्छ रह जाते हैं। जिस प्रकार कूप के अन्दर रहने वाला मेढक कुआँ की दीवारों के सीमित क्षेत्र में रहने के कारण उसकी बुद्धि भी दीवारों के आगे नहीं दौड़ पाती और वह समुद्र के जल को, उसकी विशाल जलराशि को, समझने का पात्र नहीं रहता।

Shri Prannath Ji Pustkalay

इसी प्रकार विश्व के मनुष्यों की बुद्धि असत् जड़ दुःखरूप पदार्थों को देखते-देखते यहां के सीमित तुच्छ भावों को अनुभव करते-करते उनकी बुद्धि भी-अनन्त असीम अखंड भाव-पूर्ण सत्, चिद्, आनन्दस्वरूप पदार्थों की अद्वैत भावना को नहीं ग्रहण कर पाती। जब मनुष्य बुद्धि में स्वर्ग, वैकुण्ठ के कल्पवृक्षों के ऐश्वर्य, बल और सामर्थ्य ही नहीं समाते तब ब्रह्मधाम के ब्रह्मस्वरूप पदार्थों का आनन्दानुभव तो असम्भव होगा ही। यही कारण है कि–ब्रह्मस्वरूप पदार्थों का अनुभव ब्रह्म–बुद्धि के बिना नहीं बनता।

कहां मृत्युलोक का तुच्छ क्षणिक आनन्द,कहां ब्रह्मलोक का पूर्णात्पूर्ण नित्यानन्द उसे यहां के शब्द और साधनों द्वारा बताना केवल अनधिकार चेष्टा करने के बराबर है। अरे ! हिमालय पर्वत के गुरुत्व को रुई के रेसा (परमाणु)से समझाना जिस प्रकार असम्भव है, उसी प्रकार ब्रह्मधाम के अनन्त, अपार,असीम पदार्थों को–जो सदा एकरस, चेतन, दिव्यस्वरूप, अखण्ड और अविनाशी वर्तमान हैं–शब्दद्वारा कहना, यहां के साधनों से व्यक्त करना असम्भव है। इसीलिये श्रुतियों ने "ब्रह्मैवेदं सर्वमिति" वहां पर जो कुछ भी है सब ब्रह्मस्वरूप ही है, इस प्रकार कह कर सन्तोष मान लिया है।

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्तान् अनुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः ।
रजांसि भूमेर्गणयेत्कथञ्चित् कालेन नैवाखिल—शक्तिधाम्नः ॥

(भाग० ११–४–२)

अर्थ—कदाचित् अनन्तकाल तक गिनता ही चला जाय तो धूल के कणों को भी गिना जा सकता है। परन्तु अखिल शक्ति के समुद्र उस परब्रह्म परमात्मा के गुणों को, उसकी महिमा को, उसके सामर्थ्य को नहीं गिना जा सकता। कदाच कोई गिनती में लाना चाहता है तो उसे बालबुद्धि–अज्ञानी कहना चाहिये।

एक गूलर के वृक्ष पर लाखों गूलर के फल लगते हैं और ऐसे गूलर के वृक्ष तो पृथ्वी पर असंख्य हैं। उन गूलरों के कीड़ों को ब्रह्माण्ड के दूसरे कीड़े ब्रह्माण्ड के स्वरूप को नहीं समझा सकते। यदि समझायें भी तो वह कीड़ा समझ भी नहीं सकता। क्योंकि"जो कभी कानों ना सुनी सो क्यों जीव हिरदे समाय" जिसको कभी देखा सुना नहीं, जो जीव की तुच्छ बुद्धि में समाता ही नहीं वह उसके हृदय में किस प्रकार जमे। बस इसी प्रकार वह ब्रह्मस्वरूप तथा ब्रह्मधाम के ब्रह्मरूप पदार्थ जिनको कभी कानों से सुना नहीं, नेत्रों से देखा नहीं, वह सब अनन्त-अपार तत्त्व मनुष्य तुच्छ ज्ञान में किस प्रकार समा सके। इस तत्त्व के न समाने का एक कारण और भी है, वह यह कि—

Shri Prannath Ji Pustkalay

'असलैं आत्मा ना पहुंचे तो क्यों पहुंचे जीव मन'
'जो सुख पर—आतमको, सो आतमा न पहुंचत।
जो अनुभव होत है आतमा, सो नाहीं जीवको इत ॥
जो कुछ सुख जीवको, सो बुध ना अन्तस्करन।
सुख अन्तस्करन इन्द्रियन को,[1] उतर पहुंचावे मन ॥
जो सुख मन में आवत, सो आवे ना जुवा मों।
जो सुख जुवां से निकसे, सो क्यों पहुंचे आतमको।'

(श्री तारतम सागर)

वस्तुतः जैसा कुछ ब्रह्मानन्द का अनुभव ब्रह्मधाम में होता है। उसे इस विश्व के अन्तर्गत नहीं अनुभव किया जा सकता। क्योंकि विश्व में आत्मा आवरण से आच्छादित है। वह आवरण किसी रूप में क्यों न हो, निदान आवरण तो आवरण ही होगा। गुरुकृपा और सत्संग के द्वारा मल, विक्षेप और आवरण के हट जाने पर भी आवरण का प्रभाव कुछ न कुछ तो रहता ही है।

बिजली का प्रकाश चाहे किसी रंग का भले ही न हो, तथापि वह आवरण सापेक्ष तो रहेगा ही। बल्ब के बिना प्रकाश नहीं फैलता और बल्ब एक प्रकार का आवरण है। इसलिये शहर की रोशनी आवरण सापेक्ष है, यही मानना पड़ेगा। जो आवरण सापेक्ष होगा, वह सीमित और शान्त होगा। नगर की बिजली के सीमित प्रकाश की अपेक्षा आकाश को विद्युत् (बिजली) का प्रकाश अथवा चांद-सूर्य का प्रकाश बहुत कुछ विचित्र विलक्षण होता है। एवं वह आवरण (बल्ब) सापेक्ष नहीं होता, अतः उसका प्रकाश कुछ विशुद्ध होता है, बस इसी प्रकार ब्रह्मधाम में जो आनन्द, ज्ञान और अनुभव होता है, वह अनादि, अखण्ड और नित्य

---

[1] इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादपि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च।
यज् ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥ (कठोप० २—८)

इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि उत्तम है और बुद्धि से उसका स्वामी जीवात्मा श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे सब उसके वश में हैं। और वह सबसे विलक्षण भी है। जीवात्मा से भी अव्यक्त (अव्याकृत) श्रेष्ठ और महान है जिसने इन सबको बन्धन में डाल रखा है। उस अव्याकृत से भी पर परमात्मा तो इनसे विलक्षण है ही, जिसे जानकर मनुष्य अविनाशी बन जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

चेतन गुण पूर्ण होनेसे अद्वैत रूपमें भासता है । परन्तु वही ब्रह्मानन्द जब विश्वके आत्मानुभव द्वारा देखा जाता है तो उसी रूपमें प्राप्त नहीं होता, किन्तु देह सापेक्ष होनेसे सीमित और सान्त हो जाता है। जो आत्मा को जाग्रदवस्था में यहां पर अनुभव होता है उसे जीव दशामें नहीं ग्रहण किया जा सकता। जिस वस्तुको जीव भी यथार्थ रूपमें नहीं पा सकता, उसे बुद्धि, मन और इन्द्रिय ज्ञान - जो यथाक्रम एक दूसरे की अपेक्षा निकृष्ट और निम्नकोटि को प्राप्त हो चुके हैं, वे किस प्रकार ब्रह्मानन्दको ग्रहण कर सकें। जब ग्रहण नहीं कर पाते तब शब्द द्वारा उसे किस प्रकार व्यक्त किया जाय। इसलिये श्रीजी यथाक्रम सबको बताते हुए निर्देश करते हैं।

"ये जुवां मेरी इन हद की, इसी जिमी की अकल ।
धाम धनी सुख वरनन, करना चाहे असल ।।"

"इस मिथ्या कलेवर की मेरी जीभ मिथ्या जगत की बुद्धिके बल पर परमधाम के ब्रह्मानन्द सुखको वर्णन करना चाहती है, अतः वह यथार्थ बनता ही नहीं।" ब्रह्मस्वरूप को यथार्थ नहीं कहते[1] बनता इसका एक कारण यह भी है कि-ब्रह्मधाम के पदार्थों में और विश्वके पदार्थों के स्वरूपमें विचित्र, विलक्षण और शब्दातीत असमानता है। विश्व के पदार्थ सोपाधि और सावयव साकार हैं, मिथ्या अधिष्ठान कल्पित और स्वप्नवत् प्रतीतिमात्र हैं तो ब्रह्मधाम के पदार्थ निरुपाधिक और निरवयव, शुद्ध साकार स्वरूप हैं। वे नित्य एकरस अनादि और वास्तविक स्वरूप वाले हैं। यथा:—

"नित्य साकारस्त्वद्यान्तशून्य श श्वतः । ..... अद्वैताखंडपरिपूर्ण निरतिशयपरमानन्दशुद्ध-बुद्धमुक्तसत्यात्मक ब्रह्म चैतन्यसाकारत्वाद् निरुपाधिक साकारस्य नित्यत्वं सिद्धमेव। निरवयवं ब्रह्म चैतन्यमिति सर्वोपनिषत्सु सर्वशास्त्रसिद्धान्तेषु श्रुयते" (त्रिपाद विभूति० २)

"वेद, शास्त्र, उपनिषदादि सभी आर्ष ग्रन्थों में निरवयव ब्रह्म चिद्घनराशि है,

---

[1]जब स्वयं श्री जी उक्त ज्ञानकी दुर्ज्ञेयता सूचित करते हैं तो फिर उसे उन्हों ने कथन किस प्रकार किया ? इसका उत्तर इतना ही पर्याप्त होगा कि—

यो वाचमनुदितां चिकेत (अथर्व ५-१-२)

वे उस अनुदित वाणी को जानते थे जो कभी उदय को प्राप्त नहीं हो पायी थी उसी अनुदित वाणी के ज्ञान से परब्रह्म को बता सके। परन्तु फिर भी जितना यथार्थ चाहिये उस रूप में लौकिक भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता, अतएव इस ब्रह्मतत्त्वको अकथनीय और अगम्य कहा गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

ऐसा सुना ही जाता है । अतएव सच्चिदानन्दात्मक शुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव ब्रह्म का स्वरूप आकार विशिष्ट सिद्ध हो जाता है। और उपाधि रहित होनेसे वह नित्य अविनाशी भी बना रहता है।" इस प्रकार श्रुति नें ब्रह्मके स्वरूप को, ब्रह्मधामके पदार्थोंको निरवयव निरुपाधि शुद्ध साकार प्रतिपादन किया हैं । इस विश्वके पदार्थों का स्वरूप उपाधि युक्त है, एवं सावयव होनेसे अनित्य है। अतः उसकी उपमा ब्रह्मधामके स्वरूपों के साथ यथार्थ नहीं घट पाती। बस यही भेद हमें आगे नहीं बढ़ने देता। इस भेद को संकुचित बुद्धि उल्लंघन नहीं कर पाती। इसलिये जन समाज ब्रह्मतत्त्व को नहीं समझ पाता, अतएव श्रुति निर्देश करती है ।

यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह ।

इस ब्रह्मतत्त्वको यथार्थ वर्णन करनेमें मन और वाणी अपनेको असमर्थ पाते हैं, अतएव नहीं वर्णन कर पाते। जो परम तत्त्व मन वणींमें नहीं समाता उसका वर्णन किस प्रकार हो, अतः निराश होकर लौट आते हैं। बस, यही कारण है कि ब्रह्मतत्त्व यथातथ्येन-जैसाका तैसा कथनमें नहीं आ पाता ।

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥

(कठोपनि० १-२-७)

"अक्षर से भी परात्पर पूर्ण ब्रह्म स्वरूप परम तत्त्वको बहुत कुछ श्रवण करने पर भी अनधिकारी जीव प्राप्त नहीं कर पाते । बहुतसे जीव सुनते हुए मनन करते हुए भी उसे नहीं जान पाते उस परम तत्त्व को तो कोई विलक्षण महान पुरुष ही कह पाता है। कोई ब्रह्मरूप तत्त्वज्ञ पुरुष ही जान कर ग्रहण करता है, जो किसी ब्रह्मज्ञ पुरुषके द्वारा उस आत्म स्वरूप को श्रद्धा और भक्ति से प्राप्त कर चुका है।" इस प्रकार श्रुतियों में बहुधा संकेत किया गया है कि ब्रह्मत्त्व अत्यन्त दुर्लभ है । उसके वक्ता और श्रोता दोनों भी अति दुर्लभ हैं।

आश्वलायनो भगवन्तं परमेष्ठिनमुपसमेत्योवाच । अधीहि
भगवन्ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां सदा सद्भिः सेव्यमानां निगूढाम् ॥
यथाऽचिरात्सर्वपारां व्यपोह्य परात्परं पुरुषं याति विद्वान् । (कैवल्योप०)

आश्वलायन नामक एक ऋषि पितामह ब्रह्माजी के पास जाकर प्रार्थना करने लगे । हे भगवन् ! सत्पुरुषों के द्वारा धारण की गई जो गूढ़ातिगूढ़ ब्रह्म-विद्या है उसे पढ़ाने की कृपा कीजिये । जिसके अध्ययन से तत्काल सब पापों से

Shri Prannath Ji Pustkalay

छुटकारा पाकर विद्वान मनुष्य परात्पर [1] विशुद्ध स्वरूप परब्रह्म पुरुषको प्राप्त हो जाता है, इस प्रकार प्रार्थना की।

तस्मै सहोवाच पितामहश्च ब्रह्मा—श्रद्धाभक्तिध्यान योगादवैहि।
न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।
परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति॥ (कैवल्य)

ब्रह्माजीने कहा— हे आश्वलायन ! ब्रह्मतत्त्व अत्यन्त दुष्प्राप्य पदार्थ है, उसे तुम ब्रह्मविद्या से प्राप्त करना चाहते हो, तो श्रद्धा, भक्ति और ध्यान इन तीनों के योग द्वारा प्राप्त कर सकते हो। कारण, ब्रह्मतत्त्व न तो कर्माचरण से प्राप्त होता है,न अधिक ज्ञान से मिलता है। अधिक धन से भी वह नहीं मिलता। उसे तो केवल त्यागपूर्वक श्रद्धा, भक्ति और ध्यान—इन तीनों के योग से प्राप्त किया जा सकता है। कारण वह परम तत्त्व तो परात्पर ब्रह्मधाम के अन्तर्गत दहराकाश में प्रकाशित हो रहा है। वहां पर तो वीतराग परमहंस ही प्रवेश पाते हैं, सब नहीं। बिना त्याग श्रद्धा नहीं आती, श्रद्धा बिना की भक्ति केवल प्रदर्शन मात्र ही रह जाती है। जब श्रद्धा और भक्ति दोनों ही यथार्थ रूप में प्राप्त नहीं होती, तब ध्यान में तो वस्तु आने कब लगी ? इसलिये श्रद्धा, भक्ति और ध्यान इन तीनों के योग को बतलाया है। ये तीनों प्राप्त होते हैं त्याग से। बिना धन खर्च किये, बिना निछावर हुए श्रद्धा, भक्ति और ध्यान प्राप्त नहीं होते, इस प्रकार श्रुति ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है। बस, अब निश्चित हो गया कि—

"कामी क्रोधी लालची इनसे भक्ति न होय"

जिसे संसार की कामना घेरे है, जिसे महत्त्वाकांक्षा का प्रलोभन है। जो लालच के चक्कर में फंसा है वह परम तत्त्वको नहीं पा सकता यह सिद्धान्त निकला।

---

[1] **निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।**
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्॥ (श्वेता०–१८)

परमात्मा में ह्रास वृद्धि नहीं है, अतः उसे निष्कल कलारहित कहा है। स्थूल, सूक्ष्म के आगे कारण, महाकारण स्वरूप में ही क्रिया का अभाव हो जाता है। तब परमात्मा तो तुरीयातीतसे भी पर है उसके स्वरूप में विकार नहीं हो सकता,तब क्रियाकी क्या आवश्यकता है। अतएव उसे निष्क्रिय कहा है। चेतन स्वरूप में अशान्ति की तो कभी सम्भावना ही नहीं। अतः उसे शान्त कहा है। सब दोषों से पर है अतः निरवद्य–विशुद्ध है। किसी प्रकार भी हम चेतन स्वरूप को इन मिथ्या इन्द्रियों के द्वारा नहीं देख पाते, अतः निरञ्जन कहा गया है। अमृत का अविनाशी तत्त्वका जो सेतु हैं उसे पाकर भवसागर का चक्कर छूट जाता है। अतः वह सेतु है। निर्दोष एवं गुणातीत विग्रह होने से अग्नि के समान प्रकाश पूर्ण कहा है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ।
समस्त साक्षि सदसद्विहीनं प्रयाति शुद्धं, परमात्मरूपम् ॥ (कैवल्य)

जो तत्त्वज्ञ-श्रद्धा, भक्ति और निरन्तर चिन्तवन के द्वारा ह्रास वृद्धि रहित ब्रह्मधाम में स्थित अद्वितीय परब्रह्म के स्वरूप को जान कर सबके साक्षीभूत, सत्-असत् से पर विशुद्ध स्वरूप को भजता है, वही उसके परमात्म स्वरूप को प्राप्त होता है। इसलिये प्राणनाथ प्रभु निर्देश करते हैं कि-जिन्होंने केवल ज्ञान के द्वारा माया को मिथ्या किया है, उन्हें चाहिये कि आचरण से भी माया को मिथ्या कर दिखावें, तभी उन्हें यथार्थ ब्रह्मानन्द का अनुभव हो सकता है। "बिन रहेनी, कहेनी कछुये नहीं" केवल शब्द से कहना और उसको आचरण में न लाना, फिर उसका मूल्य ही क्या ?

इसलिये ब्रह्मधाम के तत्त्वज्ञों का कर्त्तव्य है कि ब्रह्मतत्त्व को यथार्थ स्वरूप में उपस्थित कर उसे हृदय से आचरण में उसी प्रकार धारण करें। जो इस प्रकार ब्रह्मतत्त्व को नहीं ले सकते उनके विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है। "कई गये हाथ पटक शिर मार" वे खाली हाथ ही जाने वालों में होंगे। यों तो—

"ये वानी गरजत माँझ संसार, खोजी खोज मिटावे अन्धार ।
मूढ़मति न जाने विचार, महामति कहे पुकार पुकार ॥"

यह परम तत्त्व ब्रह्म में निष्ठा रखने वाले जिज्ञासु को ब्रह्मनिष्ठ गुरु के सत्सङ्ग द्वारा ही प्राप्त होता है। ब्रह्म तत्त्व को जो जानता है उसके स्वरूप में नीचे लिखी बातें होनी चाहिये—

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति । (श्रुति)

उन्हीं निमल पुरुषों को इस परमधाम की प्राप्ति होती है जिनके स्वरूप से छल कपट निकल गया है, असत्यसे—मिथ्या से जिन्हें प्रेम नहीं रह गया एवं माया को जो अधम से अधम बाधक मानकर उससे अलिप्त रहते हैं। इस प्रकारका पुरुष हो, चाहे स्त्री हो, गृहस्थ हो अथवा विरक्त हो, वह परमहंस रूप में है ऐसे ही महान पुरुषों का सत्सङ्ग ब्रह्मधाम पहुंचा सकता है। बाकी तो—

"भेष बनाय पूजावत जग में भेद बिना सब रद्दी है ।"

जिस प्रकार कोई सूरदास होकर किसी को मार्ग बतावे तो वह यथार्थ नहीं होता। उसी प्रकार "आपुन अन्ध पंथ ना सूझे औरन को भटकायो। साधो अन्धरन जग भरमायो" तत्त्वहीन गुरु का बताया मार्ग आत्मकल्याण साधक नहीं

Shri Prannath Ji Pustkalay

होता, यह भी ध्यान रखने योग्य है। इसी प्रकार जो शिष्य गुरु का यथार्थ भक्त नहीं, गुरु वचन पर पूर्ण विश्वास नहीं रखता एवं नम्रता पूर्वक तत्त्व को ग्रहण नहीं करता, वह शिष्य भी ब्रह्मतत्त्व का अधिकारी नहीं बन पाता।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः (गी० ४–३४)

भगवान श्री कृष्णजी अर्जुन को इसका रहस्य समझाते हैं: 'हे अर्जुन! जो तुम परम तत्त्व को जानने की इच्छा रखते हो तो उसे सेवा से, विनम्र भाव से और कथनोपकथन द्वारा जानने की चेष्टा करना।' यदि तुम्हारे में सेवाभाव न होगा तो समझ लो कि तुम्हें उस तत्त्व की चाहना नहीं, उसके प्रति प्रेम नहीं। प्रणिपात कहते हैं निष्ठापूर्ण विनम्रभाव को। जिसके हृदय में सन्निष्ठा है, विनीत भाव है वह सेवा के द्वारा ब्रह्मतत्त्व को लेता है, उसीके आत्मा में ब्रह्मतत्त्व उदय पाता है। अतः भगवान कहते हैं कि 'वे तत्त्व दर्शी पुरुष उपदेश करेंगे।' भगवान का संकेत कितना महत्त्व पूर्ण है कि उस ब्रह्मतत्त्व को कथन करने वाले भविष्य में कथन करेंगे। अभी वह तत्त्व तुम्हें प्राप्त नहीं हो सकता। इसी बात को–

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

श्वेताश्व० श्रुति कहती है कि–जिसकी परमात्मा और गुरु दोनों में परा भक्ति है, उसी के हृदय में ये ब्रह्मतत्त्व के भेद उदय पाते हैं। इस प्रकार–छल कपट रहित, सत्यनिष्ठ, एवं अनन्य गुरुभक्त के हृदय में ब्रह्मधाम और ब्रह्मतत्त्वका उदय होता है, अन्यके नहीं, ऐसा सिद्धान्त है। आज सिद्धान्तहीन मनुष्य उसे लेने जाते है, वह यथार्थ मिलता नहीं, तो विमुख हो नास्तिकताका सेवन करने लगते हैं। अतः निवेदन है कि ब्रह्मतत्त्व के जिज्ञासुओं को चाहिये कि गुरुतत्त्वको यथार्थ समझने का प्रयत्न करें तभी आत्मकल्याण होगा। जो जान लेता है, मुक्त हो जाता है।

"इत्थमेव सर्वे मनुष्या अमृता भविष्यन्ति।" (शतपथ १०)

गहि अद्वैत अखण्ड पद, जो चाहत भवपार।
गुरु सरोजपद राखु रति, निशदिन ब्रह्म विचार॥

इतिश्री सद्धर्मसिद्धान्तवागीश श्री कृष्णदत्तशर्मशास्त्रि विरचिते विराटपट–दर्शने, परब्रह्म तथा परमधाम निरूपणं नाम द्वादशं पर्व परिपूर्णम्॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

मोक्षपर्व

(यह जीवात्मा आदि कालसे कर्मबन्धनके चक्करमें फँसा है। उक्त बन्धनसे सदाके लिये मुक्त हो जानेका नाम मोक्ष है। वह मोक्ष किस प्रकारसे हो, यहां उसीपर विचार किया जाता है)

भौतिक दुःखों से-जन्ममरणके बन्धनसे सदाके लिये छुटकारा पा जानेका नाम मोक्ष, मुक्ति, परम पुरुषार्थ, निःश्रेयस, आदि से प्रसिद्ध है। यही कारण है कि-आदि कालसे संसारमें यह प्रकृति अटलसी चली आ रही है कि—सभी विचारशील विद्वान् पुरुष त्रिविध दुःखों से छुटकारा पाने और स्थायी सुखको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्नशील होते चले आ रहे हैं। तथापि उन्हें ये दोनों (दुःखोंसे छुटकारा और स्थायी-शान्ति) बातें यथेष्ट रूपमें प्राप्त नहीं हो पातीं। कारण, सुखको चाहते तो सब हैं, उसके इच्छुक तो हैं; परन्तु उसके स्वरूपको समझनेका यथेष्ट प्रयास नहीं करते। यही कारण है कि माताके स्तनसे बिछुड़े हुए गायके बच्चेकी भांति, इधर उधर भटकते रहते हैं और फिर भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाते।

वास्तविक सुख—जिसे परमपुरुषार्थ किंवा मोक्ष, मुक्ति आदि नामों से पुकारते हैं, इस भौतिक सुखसे पर है। जिसे अधिकतर मनुष्य तो जानते ही नहीं, कुछ मनुष्य जानने की इच्छा भी रखते हैं तो उसे ढूँढ़ ही नहीं पाते।

भौतिक दुखों से सदाके लिये छुटकारा पाना और स्थायी नित्यसुखको प्राप्त करना—बस, इसीका नाम परम पुरुषार्थ है, यही तो मनुष्यका चरम (अन्तिम) लक्ष्य है। जिसके लिये ज्ञात, अज्ञात रूपमें सम्पूर्ण विश्व भटक रहा है। संसारके दुःखों से यह जीवात्मा इतना ऊब गया है कि-स्वप्नमें भी उन्हें देखना नहीं चाहता। परन्तु अज्ञानवश उन्हीं के साथ यह लिपटा भी इस प्रकार है कि दुःखों से छुटकारा पाना असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य है।

हाय दुनियांकी पाबन्दी, अजब दिलगीर है।
खुद पहनता है जिसे, इन्सां ये वह जंजीर है॥

अफसोस तो बस, इसी बातका है कि-जिन दुःखों से यह प्राणी घबड़ाता है,

Shri Prannath Ji Pustkalay

उन्हीं दुःखोंकी जंजीर को जान बूझकर गले में डालता भी बड़े प्रेमके साथ है। यों तो जब सारा विश्व ही [1] दुःखरूप है तब दुःखों की संख्या ही क्या ?

'तथापि सिद्धान्त रूप से "जन्ममृत्युजराव्याधिनाशनम्" (श्रुति) जन्म [2] मरण [3] जरा और व्याधि - ये चार प्रधान दुःख माने गये हैं। जिसका जन्म है मरण अवश्य होगा "अद्य वाऽब्द शतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवम्" जो जन्मेगा वृद्ध [4] (क्षीण) दशाको भी अवश्य प्राप्त होगा। इस प्रकार तीन दुःख तो अनिवार्य रूपसे सबको प्राप्त होते ही हैं। चौथा व्याधि रूप [5] दुःख सबसे महान है जो न्यूनाधिक प्रमाण में मिला करता है। दुःखों के और भी बहुत से

---

[1] झूठे दुखको सुख कहैं मान लिया मनमोद।
जगत चबेना कालका कुछ मुखमें कुछ गोद ॥

[2] जन्मदुःख :— अपवित्र रज वीर्यसे पिंडका बनना और फिर मलमूत्र और दूषित रक्त से भरे हुए जरायुज (गर्भाशयस्थित गर्भकोश) में नौ दश मास तक उलटे टँगे रहना, न बोल सकना, न श्वास ले सकना, गर्भजन्तु काटते हैं तो तड़प-तड़प के रह जाना; न भोजन है, न जलपान है ; इस प्रकारके गर्भयंत्रकी घोर यातनाका नाम है जन्मदुःख। "यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं ध्याये ब्रह्म सनातनमिति श्रुतेः" अब की गर्भ योनिसे छूट जाऊ तो ब्रह्मका ध्यान करूंगा।

[3] मरण दुःख :— सारे जीवनभर जिनको अपना — पुत्र,कलत्र, धन - धाम, ऐश्वर्य, वैभव, भोग, विलास समझा जन्मभर छल - कपट करके जो कुछ अपने सुखके लिये कमाया वह सब पुत्र परिवार सहित क्षणमात्र में छिना जा रहा है और उसके बदले चौरासी लाख योनिके दुःख सामने खड़े हैं अथवा नरकों के भयंकर दुःख सामने आ रहे हैं। इस भांति मरण समयका दुःख भी महाभयंकर प्रतीत होता है।

[4] जरा दुःख — जब मनुष्य क्षीण हो जाता है, न चलने की शक्ति रहती है, न भोजन पचता है, न नींद आती है, सारा शरीर दर्द करता है। आशा तृष्णा बढ़ती जाती है और स्वयं सब प्रकार से असमर्थ बन जाता है। घरके लोग साथ नहीं देते। न कोई आदर करता है, बल्कि क्षण-क्षण पर अपमान सहन करना पड़ता है, इस प्रकार जराका दुःख भी घोर दुःख है।

[5] व्याधि दुःखका अनुभव तो सामने है। हजारों को दीन हीन दशामें देखते हैं। कोई कोढ़ी हैं, अंधा है, लूला है; कीड़े पड़ रहे हैं। किसी को पुत्र का दुःख है, किसी की स्त्री नहीं

Shri Prannath Ji Pustkalay

भेद हैं जो किसी न किसी प्रकार से व्याधि रूप होनेसे व्याधिके अन्तर्गत माने जा सकते हैं। नरक आदिके दुःख तथा चौरासी लक्ष योनिका दुःख भी अमुक प्रकार के अशुभ कर्मों का फल स्वरूप व्याधि ही है। अतएव इन सब दुःखों को व्याधिरूप दुःखके अन्तर्गत माना जा सकता है।

जन्म, मरण और जरा (क्षीणदशा) का तो कोई समय भी नियत होता है, परन्तु व्याधि रूप दुःखका पंजा तो प्रतिक्षण अपने आने की आशंका दिखाया करता है। न जाने कब किस दुःख का पहाड़ आ टूटे, यही आशंका मनुष्यको सदा चिन्तित बनाये रहती है। इस प्रकार दुःखों की यह शृंखला सबके शिरपर प्रतिक्षण लटकती प्रतीत होती है। जो कभी-कभी तो निरन्तर वज्र प्रहार करने में जरा भी नहीं चूकती।

बस, इन्हीं सब दुःखों से छुटकारा पाने को और स्थायी सुख प्राप्त करने को सभी, किसी न किसी रूप में प्रयत्नशील हो रहे हैं। कतिपय मनुष्य तो भौतिक साधनों से ही दुःखों को दूर करके सुखी होना चाहते हैं, अतएव अहर्निश भौतिक साधनों को समेटने में ही संलग्न हो रहे हैं। यद्यपि भौतिक साधनों से सुख प्राप्त किया जा सकता है और सुखों का अनुभव भी होता है, परन्तु वह क्षणिक और तत्काल ही रमणीय लगता है, परिणाम में तो अनेक दुःखों का[1] कारखाना बन कर हमारी दुःख शृखला को और भी दृढ़ बनाता चला जाता है। कभी-कभी तो क्षणिक

है। कोई धन हीन है, कोई रोगी है। कोई दिनभर सताया जाता है। कोई व्याधि से चिल्लाता है। कोई अधमरा पड़ा है, किसी को किसी ने जीते ही मरण समान दुःख दे रखा है। किसी का सर्वस्व लुट गया। कोई विधवा हो गई, किसी को प्रदर उदर आदि के रोग सता रहे हैं। इस प्रकार व्याधि दुःख तो असंख्य हैं, देखने से ही अनुभव होता है।

[1] **परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः** (योग २-१५)

महर्षि पतंजलि अपने योगदर्शन में लौकिक सुखों को दुःख रूप ही वर्णन करते हैं। जिस प्रकार दाद, खाज आदि कई रोग हैं जिनको हम दूर करने को यत्न किया करते हैं, तथापि दाद खाज को खुजलाने में बड़ा सुन्दर आनन्द प्रतीत होता है। फिर भी उस आनन्द को बुद्धिमान अच्छा नहीं समझते। क्योंकि तत्काल तो आनन्द मिलता है परन्तु परिणाम में उससे दुःख मिलता है। उसी प्रकार विश्व के क्षणिक सुख तत्काल तो मनुष्य को अच्छे लगते हैं जिससे प्राणी उनकी तरफ आकर्षित होता है परन्तु परिणाम में तो वे महान दुःख की परम्परा खड़ी कर देते हैं। जिसके फलस्वरूप मनुष्य को कभी जन्म-मरण के चक्कर से

Shri Prannath Ji Pustkalay

सुखोंका मोह हमें ऐसे गर्त्त (खंढक) में ले जाता है कि जहांसे उद्धार की आशा दूर चली जाती है। कभी कभी तो क्षणिक सुख दूसरे ही क्षण में दुःख के रूप में परिणत होकर हमें स्थायी सुखसे बहुत दूर ले जा पटकता है। जिससे हमारी सभी आशाओं पर तुषारापात हो जाता है। इसलिये महापुरुषों ने भौतिक साधनों को विशेष महत्व नहीं दिया। बल्कि "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" भौतिक साधनजन्य सुखों को त्याग पूर्वक सीमित रूप में ही भोगने का विधान कर स्थायी — नित्य अखंड सुखको जीवन का लक्ष्य बनानेको आज्ञा प्रदान की है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वास्तविक स्थायी शान्ति और अनन्त अखंड सुख तो मनुष्य को परलोकमें ही प्राप्त हो सकता है। निरन्तर शांतिका स्रोत, आनन्दकी राशि और सुखोंका भण्डार तो एक परब्रह्म परमात्मा ही है, दूसरे तो सब उसीके सुखसे सुखी और उसी के आनन्द से आनन्द मना रहे हैं। बस, इसी अनन्त आनन्द को प्राप्त करना, स्थायी सुखको ढूंढना और दुःखों से सदाके लिये छुटकारा पाना — इसीका नाम परम पुरुषार्थ है। इसीको मनुष्य जीवनका चरम लक्ष्य कहते हैं। मोक्ष, मुक्ति, अनावृत्ति, निःश्रेयस, परमपद आदि सब इसी के नाम हैं।

विश्वके ऋषि महर्षि महापुरुषों ने, पीर–पैगम्बर तथा अवतार कोटि के पुरुषों ने इसी स्थायी सुखको, इसी चिरशान्तिको पाने के लिये उत्तमोत्तम आदर्श और कर्त्तव्यनिष्ठाके परोक्ष परिणामों का समन्वेषण करके आत्मोन्नतिके मार्ग को सुदृढ़ और समुज्वल बनानेकी शक्तिभर चेष्टा की है। जिसमें उन्हें बहुत अंश तक सफलता भी मिली और ब्रह्मानन्द के मार्ग पर आगे बढ़ने का श्रेय भी प्राप्त किया। फिर भी केन्द्रस्थान तक नहीं पहुंच सके। कारण "इत पंथ पैड़े कै चलही"

छुटकारा नहीं मिल पाता। एवं जिस क्षण सुखों को भोगते हैं आनन्द प्रतीत होता है पश्चात् वही दुख रूप हो जाते हैं और हमारे स्वभाव को भी व्यसनी बना देते हैं। इसलिये विवेकी पुरुष जगत के सुखों को मिथ्या तथा परिणाम में दुखदाई मानकर, उनसे सदा अलग रहने की चेष्टा किया करते हैं। कुछ असमर्थ पुरुष किंवा अज्ञ पुरुष उन सुखों को ही परमपद समझ उन्हीं के पीछे मर मिटते हैं तो कुछ महात्मा त्यागपूर्वक सुख भोगने को आज्ञा देते हैं। जैसे दाद खाज के रोगी को कहा जाता है कि 'अरे भाई न रहा जाय! तो कपड़ा के सहारे थोड़ा सा हाथ लगाकर उसे शान्त कर लिया करो, इस प्रकार से विचार पूर्वक देखें तो उपरोक्त पतंजलि का वचन अक्षरशः सत्य है और जो युक्ति उन्होंने पेश की वह अकाट्य प्रतीत होती है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

कितने ही मतमार्ग खोजनेमें तो लगे हैं परन्तु स्वयं सिद्धान्तका अंधेरा [1] नहीं छूटता।

वर्तमान विश्वमें जितने भी मत मार्ग, संप्रदाय किंवा पंथ, धर्म, मज़हब आदि के नामसे प्रसिद्ध मानव समाजके दल हैं, वे सभी किसी न किसी महापुरुषोपदिष्ट मार्गसे अलौकिक वस्तु, लोकोत्तर अपूर्व लाभ अथवा स्थायी नित्य आनन्दको प्राप्त करने के लिये ही उन-उन संप्रदाय किंवा धर्म मार्गों में दीक्षित होकर अथवा सम्मिलित होकर पूर्वोक्त (दुखों से छुटकारा पाने और नित्य स्थायी सुखको प्राप्त करने रूप) ध्येयकी ओर अग्रसर होते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इन सब को सामान्यतया देखा जाय तो ये सबके सब स्थायी सुखको प्राप्त करने के लिये और जन्म मरणके भयंकर दुःखों से सदा के लिये छुटकारा पाने के लिये अपने-अपने अभीष्ट संप्रदायों में दीक्षा लिया करते हैं। वे सब हिन्दू हों अथवा गैरहिन्दू हों, आर्य हों, अथवा अनार्य, किसी न किसी ध्येयको लेकर ही अपने अभीष्ट संप्रदायों में सम्मिलित हुए हैं।

उपरोक्त आस्तिक समाजको अथवा संप्रदाय विशेषोंको मुख्यतया दो दलों में विभक्त किया जा सकता है। एक तो निर्गुण निराकारवादी दल है जो परमात्माको, ब्रह्मको अथवा अपने मालिकको – अलख, निरंजन, निराकार, निर्गुण, व्यापक निर्विशेष, निरीह, अचिन्त्य पुरुष, अल्ला, खुदा, आदि नामोंसे निर्देश कर उसके

---

[1] अन्धकार दो प्रकार का होता है। अन्धकार का अर्थ होता है अज्ञान। वह अज्ञान चाहे तिमिर का हो चाहे तेजका, दोनों ही दृष्टि के बाधक होकर वास्तविक तत्त्वसे वंचित कर देते हैं। उल्लू पक्षी को सूर्य तेज ही देखने नहीं देता। मत मतान्तरों में भी एक प्रकार का चकाचौंध है। जिसके कारण बड़े-बड़े विद्वान भी उन्हीं में आखों को तिलमिलाते रहते हैं पर उससे निकल नहीं पाते। 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्' यजुर्वेद में लिखा है कि हिरण्मय—ज्योतिर्मय पात्रों ने नाना मत मतान्तरों की अनेक देवोपासनाने सत्यवस्तु—परब्रह्म के स्वरूप को ढक लिया है। माया के अज्ञानरूपी अन्धकार से तो कदाच निकल भी जावे, पार होनेका साधन भी मिल जावे। परन्तु मत मतान्तरों के आधारसे निकल जाना बहुत कठिन है। उनमें इतना चकाचौंध है कि मनुष्य देखता हुआ भी अन्धा बन जाता है। अतः श्रीजी कहते हैं :—

इत पंथ पैंड़े कई चलहीं कई भेष दर्शन।
ता बीच अंधेरी ज्ञानकी कोइ पावे न निकसन॥ (तारतम सागर)

बस, यही हिरण्मय पात्र है जो नाना प्रकारकी उपासनाका प्रकाशमय मोह है। वह सत्य धर्मको देखने नहीं देता। यदि यह मोह हट जावे तो मनुष्य अपने स्वरूपको समझनेमें सफलता प्राप्त कर लेवे।

Shri Prannath Ji Pustkalay

स्वरूप को सर्वत्र व्यापक हाजिर नाजिर आकाशवत् निर्लेप सर्वान्तर्यामी मानता है। इस दल में योगी, यति, संन्यासी, उदासी, समाजी,नमाजी,किरानी, कुरानी कुछ निर्गुण पंथवाले–कबीर, नानक, दादू, सूफी आदि सभी हैं।

दूसरा दल—सगुणोपासकों का है जो परमात्मा को अथवा अपने इष्टदेव को सगुण–साकार स्वरूपविशिष्ट मानता है। इस दल में शैव, वैष्णव, सौर, शक्ति, नागा, त्यागी, वैरागी आदि सम्प्रदाय वाले हैं, तथा भक्ति मार्ग के प्रवर्तक जितने भी धर्माचार्य हुए हैं वे सभी ब्रह्म को किसी न किसी विशिष्ट रूप में अपने-अपने धाम विशेषों में स्थित मानते हैं। अतएव उन्हें भी इस दल में लिया जा सकता है।

इनमें अधिकतर सम्प्रदाय ऐसे भी हैं जो अपनी-अपनी उपासना अनुसार अपने-अपने इष्ट देवों के धाम में चार प्रकार की मुक्ति व्यवस्था भी मानते हैं और तदनुसार उसे प्राप्त करने की चेष्टा भी करते हैं। यथा:—

मुक्तिश्चतुर्विधा प्रोक्ता श्रूयतां कथयामि वः ।
सारूप्या चैव सायुज्या सालोक्या सार्ष्टिरेव च (शिवपु० ७४-२)
मोक्षश्चतुर्विधो विप्र ! सालोक्यं तपसोद्भवम् ।
सामीप्यं भक्तितो जातं सारूप्यं ध्यानसम्भवम् ।।
सायुज्यं ज्ञानतो ज्ञेयं तेषां स्वामी परः पुमान् ।

(भविष्यमहापु० प्रतिपर्वसर्ग अ० ७-२६,२७)

सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य नाम से मुक्ति के चार[1] भेद माने गए हैं। इष्टदेव के लोक में जाकर मनुष्य के मुक्तिसुख प्राप्त करने को सालोक्य मुक्ति कहते हैं, जो विशेष तप के द्वारा प्राप्त होती है। भक्ति की विशेषता से सामीप्य मुक्ति मिलती है। इष्टदेव के समीप में जाकर रहने का नाम सामीप्य मुक्ति है। ध्यान की अधिकता से सारूप्य नाम की मुक्ति मिलती है। सारूप्य मुक्ति में अन्य विशेषताओं के साथ-साथ रूप भी अपने इष्टदेवका-सा ही मिलता है। एवं ज्ञान की विशेषता से सायुज्य मुक्ति मिलती है। सायुज्य मुक्ति में समान योग प्राप्त हो जाता है अर्थात् स्वरूप लय भी प्राप्त हो जाता है और इष्टदेव के आनन्द का अनुभव भी हुआ करता हैं। यह सबसे उत्तम मानी गई है, ये चारों मुक्ति सभी सगुण देवों के उपासकों को अपने-अपने इष्टदेव के धाम में प्राप्त हो सकती हैं।

[1] भागवत में सार्ष्टि नाम की एक पांचवीं मुक्ति का भी उल्लेख है। जो इन्हीं मुक्ति के न्तर्गत है और इन्हीं का उपभेद है। यही कारण है कि मुक्ति को चतुर्विध माना है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

उपरोक्त चारों प्रकार की मुक्तियों का क्रम एकसा देखने में आता है। भगवान विष्णु के भक्त जन वैकुण्ठ में चारों मुक्तियों को मानते हैं। शिवजी के भक्त-कैलाशपुरी में इसी प्रकार चारों मुक्ति का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार इनके आगे जो महाविष्णु आदिनारायण आदि देव हैं, इनके लोक में भी उक्त चार प्रकार की मुक्ति का क्रम माना जाता है। श्री कृष्ण के भक्त गौलोक में और राम के भक्त साकेत धाम में भी इसी प्रकार का क्रम मानते हैं। परन्तु निर्गुण मत इस मुक्ति क्रम को न मानकर एक कैवल्य—मुक्ति को ही मानता है। यथा—

सालोक्यादि विभागेन चतुर्धा मुक्तिरीरिता।
कैवल्यमुक्तिरेकैव पारमार्थिक रूपिणी ॥ (मुक्तिकोप०)

ब्रह्म को निर्गुण निराकार मानने वाले भी मुक्ति का वर्णन करते हैं, परन्तु वे धाम विशेष का बन्धन नहीं मानते, और न मुक्ति के भेदों को स्वीकार करते हैं। निर्गुण रूप में जब ये सब बातें घटती ही नहीं, तब भेद किस लिये माने? इस कारण केवल मोक्ष ही मान्य है। जिसे वे 'कैवल्य' मोक्ष कहते हैं। परन्तु इनमें भी दो भेद हैं। कुछ आचार्य तो मुक्ति में जीवात्मा का पृथक्[1] रहना मानते हैं और कुछ आचार्यों का कहना है कि—जिस प्रकार घड़ा के फूट जाने पर घटाकाश की उपाधि नहीं रहती केवल आकाश ही आकाश रह जाता है। उसी प्रकार जीवात्मा तो अन्तःकरण की उपाधि से है। जब अन्तःकरण की उपाधि हो न रही, तब जीवात्मा का पृथक् अस्तित्व किस प्रकार रह सकता है। इसलिये मोक्ष का अर्थ ही उपाधिसे मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाना। जब मुक्तात्मा परमात्मा दोनों एक रूप हो गए तब भेद कैसा? वह तो सर्वत्र सर्वगत, सर्वान्तर्यामी रूप से स्थित है, फिर भेद किसके साथ माना जावे। जैसे समुद्र में जल की बूंद पृथक् नहीं रह सकती, उसी प्रकार इनके मत से मुक्तात्मा ब्रह्मरूप में लीन होकर तन्मय हो जाता है। इस प्रकार की धारणा रखने वालों में शंकराचार्य, योगी, यति, अद्वैतवादी, केवलाद्वैतवादी आदि मत मुख्य हैं।

---

[1] **यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं ब्रह्मयोनिम्।**
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ (मुंडक)
"सोऽश्नुते सर्वान् कामान् ब्रह्मणा सह विपश्चिता।"
भोगमात्र – साम्यलिङ्गाच्च (ब्रह्मसू० ४–४–२१)

इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म से मुक्तात्मा का पृथक् रहना स्पष्ट वर्णन किया गया है। मुक्ति में आत्मा पृथक् न रहे तो मोक्ष के आनन्द का महत्त्व ही नहीं रह जाता। सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के पूर्णात्पूर्ण प्राप्त होने का नाम मोक्ष है, अतः वे इस बात को मानते हैं कि मुक्तदशा में भी जीवात्मा अलग रहता है, तभी तो "स द्विधा भवति त्रिधा भवति" लिखा है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

कुछ भी हो, जिन मुक्तियों को हम वर्णन कर चुके हैं, वे सब नित्य नहीं किन्तु अनित्य भी हैं। कारण जब सगुण–निर्गुण का, सत-असत् का, कार्यकारण का, व्यक्ताव्यक्त विश्व का लय हो जायगा, तब उक्त वैकुण्ठ कैलास किंवा आदिनारायण–महाविष्णु प्रणव-ओंकार, निर्गुण–निराकार का भी नाश हो जायगा। बस, उनके मूलस्थान ही न रहे, तब उनके मुक्ति स्थान कहां रह सकते हैं? "मूलं नास्ति कुतः शाखा" जब मूल ही उड़ गया, मूल विश्वका अस्तित्व न रहा, तब उनके मुक्ति–स्थान कहां रह सकते हैं? जब नारायण ही न रहे, निरंजन निराकार का भी लय हो गया, तब उनके उपासक जीवात्मा भी नहीं रह सकते, यह तो स्पष्ट ही है। यही कारण है कि–विष्णु, शिव आदि भी अपने-अपने इष्टदेव के ध्यान में लगे हुए हैं। यथाः—

विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः ।
ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायन्तः कमपि ध्रुवम् (देवीभा० १-८-४५)
पंच विंशत्समुद्भूता देहास्तेषां नचान्यथा ।
काले मरणधर्मास्ते सन्देहः कोऽत्र ते नृप !
(देवीभाग० ४-१३-१८)

व्यास जी कहते हैं कि 'हे नृप ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नारायण जितने भी देव हैं, वे सब २५ तत्त्वके शरीर को ही धारण किये हैं। उन्हें अपने मृत्युका भी भय है, अतएव उससे बचने के लिये परब्रह्मकी उपासना में भी लगे हैं। ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिवजी किसी अविनाशी तत्त्वके चिन्तन में लगे हैं। भगवान विष्णु भी उग्र तप करने में डटे हैं। ये सब अपने-अपने मोक्ष की चिन्ता में लगे हैं और छल कपट नहीं छूटता, तब साधारण जीवों से तो छल छूटने की आशा ही क्या ?

हरिर्ब्रह्मा शचीकान्तस्तथाऽन्ये सुरसत्तमाः ।
सर्वे छलविधौ दक्षा[1] मनुष्याणां च का कथा ॥
किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः ।
देहवान्प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा ॥

[1] कामक्रोधाभिसंतप्ता लोभोपहतचेसः ।
छले दक्षाः सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥ (देवीभा० ४–१३–११)

जब विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वृहस्पति जितने भी बड़े-बड़े देव कहलाते हैं, वे बड़े-बड़े महात्मा भी काम क्रोध के शिकार बनते हैं, जब त्रिदेव भी काम, क्रोध, लोभ, मोह से उपहत चित्तवृत्ति हो रहे हैं, तब उनके धाम से मोक्ष की आशा रखना व्यर्थ नहीं तो क्या है ?

Shri Prannath Ji Pustkalay

रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्मापि रागसंयुतः ।

(देवी भा० ४—१३—१०, १५, १६)

जब भगवान विष्णु, शिव, ब्रह्मादि देव ही छल कपट से दबे पड़े हैं । राग, द्वेष, काम, क्रोधने जब ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिके चित्तों को उपहृत कर लिया है, तब उनसे अथवा उनके धाम से मोक्षकी किंवा अनावृत्ति की आशा रखना आकाश कुसुमके सदृश कल्पना मात्र नहीं तो और क्या ? जब वे स्वयं ही काम, क्रोध, लोभ, मोह और अपने छल कपटको मिटाने के लिये अविनाशी ब्रह्म की उपासना में लगे हैं। लाखों करोडों वर्ष से तप करने में डटे हैं तब दूसरों की कौन कहे, जो उनके धाम से मोक्ष की आशा लगाए बैठे हैं। जो स्वयं नश्वर हैं, जो स्वयं मुक्ति सुख के लिये भटक रहे हैं, वे दूसरों को मोक्ष किस प्रकार दे सकेंगे ? यह तो विवेकशील पुरुष ही समझ सकते हैं।

'नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगुणान्बहून् ।
महद्विष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः ॥
महाविष्णुः [1] प्रकृत्यां च सा चैव परमात्मनि ।' (ब्रह्मवै प्र० खं०)

महाविष्णु सहस्राणि महाशम्भुशतानि च ।
नेत्रभ्रमणमेवास्य तदक्षरं परं पदम् ॥ (पद्मपु० उ० खं०)

बोलिये ! आप शिव, ब्रह्मा, विष्णु के धाम से ही परम पद को पहुंचे जा रहे थे, यहां महाविष्णु भी उड़े जा रहे हैं । अब मोक्ष कौन देगा ! पर क्या करें बेचारे जीव ! जो माया में बद्ध हैं, वे माया के देवों के सिवा आगे बढ़ भी तो नहीं पाते। नहि तर नारायण, महाविष्णु आदिका उक्त प्रकार से नाश भी लिखा ही है ।

---

[1] महाविष्णु अक्षरब्रह्म के मन स्वरूप हैं। "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य । सच्च त्यच्चाभवत् । निरुक्तं चानिरुक्तं च ।" उस अक्षर के मनरूप महाविष्णु ने उस महामोह रूप निद्राको रचा, महामाया को फैलाया । महाशून्य रूप अपनी व्यक्ताऽव्यक्त रूपा प्रकृतिको व्यक्त रूप प्रदान किया और फिर उस में प्रविष्ट होकर आदिनारायण बना ।

महाविष्णोश्च लोम्नां वै बिवरेषु च शौनक ।
प्रतिविश्वेषु दिक्पाला ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ (ब्रह्मवैवर्त पु०)

यही महाविष्णु अण्डस्थ रूप में होकर जब प्रकटे तब आदिनारायण हुए शेषशायी, रमा वैकुण्ठवासी, ये भी इन्हीं के रूप हैं । यों तो त्रिगुणात्मक सारा विश्व ही विष्णु रूप है ।

Shri Prannath Ji Pustkalay

नारायण, शम्भु और अनेकों ब्रह्माण्डों के विष्णु-ये सब अपने-अपने अधिष्ठान सहित नाश को प्राप्त होकर महाविष्णु में लीन हो जाते हैं। एवं महाविष्णु भी अपनी व्यष्टि समष्टिको समेटकर प्रकृति में लयको प्राप्त हो जाते हैं। प्रकृति जो व्यक्ताऽव्यक्त रूपसे दो प्रकारकी है, एवं जो निर्गुण-निराकारके नाम से प्रसिद्ध है, वह भी अक्षर ब्रह्म में जाकर समा जाती है। इसी अक्षर ब्रह्मके नेत्रभ्रमण मात्र में सहस्रों महाविष्णु सैकड़ों महाशम्भु प्रकट होकर मिट जाया करते हैं। इसी अक्षर ब्रह्म के अव्याकृत पाद में असंख्य विश्वों का उदय-लय होता रहता है। इस प्रकार से विष्णु, महाविष्णु की कौन कहे प्रकृति पुरुष तक तो सब नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

जब प्रकृति पुरुष का ही रूप नहीं रहता, तब प्रकृति से उत्पन्न होने वाले ये विभूति देव किस प्रकार रह सकते हैं। और फिर ये देव भी दो चार दश ही तो नहीं जिनके भक्तों को मोक्ष मिलता रहे। जब नेत्रभ्रमण काल में ही असंख्य ब्रह्माण्ड बनते बिगड़ते रहते हैं, तब किस किस ब्रह्माण्ड के जीवों को कहां तक मोक्ष दिया जाय ?

यथा तरंगा जलधौ तथेमाः सृष्टयः परे।
उत्पत्त्योत्पत्त्य लीयन्ते रजांसीव महानिले॥
यथा सूर्योदये गेहे भ्रमन्ति त्रसरेणवः।
तथेमे परमाकाशे [1] ब्रह्माण्डत्रसरेणवः॥

(योगवासिष्ठ उत्पत्ति प्र० २९)

जलके तरंगों की भांति और सूर्योदय के समय प्रकाश परमाणुओं की भांति ये असंख्य ब्रह्माण्ड प्रतिक्षण उदय-लय पा रहे हैं। महापवन में जिस प्रकार धूलिके कणोंको नहीं गिना जा सकता, उसी प्रकार परमाकाश के मध्य में प्रतिक्षण उदय-लय पाने वाले असंख्य विश्वों को नहीं गिना जा सकता।

---

[1] अण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः।
दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत्
लक्ष्यन्तेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः॥ ४०॥
तमाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारण-कारणम्॥ (भा० ३-११,४०)

दश दश गुने आठ आवरणों सहित यह पचास करोड़ योजन का अण्डकोश (विश्व) जिस के स्वरूप में परमाणुवत् प्रविष्ट है और भी असंख्य अण्डराशि जिसके अन्तर्गत लक्षित होती हैं सर्व कारणों के कारण उसको अक्षरब्रह्म कहते हैं। इस प्रकार असंख्य विश्व और असंख्य ब्रह्माण्डपति-शिव, विष्णु, आदि जहां परमाणुवत् लक्षित होते हैं। जहां से ऐसे असंख्य शिव

Shri Prannath Ji Pustkalay

संख्या चेद्रजसामस्ति न विश्वानां कदाचन ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते ।।
(देवी भा० ९–३–७)

धूलि के कणों को कदाच कोई गिन भी सके, परन्तु विश्वों के उदय-लय की संख्या नहीं की जा सकती। जब धूलि के कणों की भांति असंख्य विष्णु, असंख्य ब्रह्मा, असंख्य शिव, असंख्य ब्रह्माण्डों के साथ ही उदय-लय पाते रहते हैं, तब उनको मोक्ष कैसा ? और फिर जब उन्हीं को मोक्ष नहीं मिल पाता तब उनके भक्तों को किस प्रकार आवागमन से छुटकारा पाने वाला मोक्ष मिल सकता है ? इस प्रकार प्रमाणों से पुष्ट होता है कि वैकुण्ठ, कैलाश आदि में जो मुक्ति मिलती है, वह अधिक से अधिक कल्पान्त तक स्थायी हो सकती है, उसे नित्य नहीं कह सकते, तभी तो व्यास जी लिखते हैं कि—

ब्रह्मलोके वसेत्तावद्यावत्कल्पक्षयो भवेत् ।
ब्रह्मलोकाच्च्युतश्चापि विष्णुलोकं स गच्छति ।।
विष्णुलोकात्परिभ्रष्टो रूद्रलोकं स गच्छति ।
तस्मादपिच्युतः स्थानाद् द्वीपेषु स हि जायते ।।
स्वर्गेषु च तथान्येषु भोगान् भुक्त्वा यथेप्सितान् ।
(पद्मपु० सृष्टिखंड १५–२२८,२२९)

सत्यलोक अथवा त्रिदेवों की पुरियों को प्राप्त होकर भी पुनः पुनः जन्म-मरण तो बना ही रहता है। ब्रह्मा के लोक से च्युत होकर विष्णु लोक को चला गया तो विष्णु लोक से भी च्युत होकर रूद्रलोक को चला गया। उक्त लोकों में ईप्सित (इच्छित) भोगों को भोगकर स्वर्गलोक में अथवा द्वीपान्तर में चला जाता है। वहां से भी जब खाली हाथ रह गया, तब मृत्युलोक में चौरासी लक्ष योनियों में कर्मानुसार जन्म-मरण के दुःखों को भोगता फिरता है। इस प्रकार वैकुण्ठ, कैलाश आदि लोकों को पाकर भी जन्म-मरण के चक्कर से नहीं छूट पाता। भगवान 'कपिलदेवजी' भी अपने सांख्यदर्शन में इसी प्रकार लिखते हैं। यथा—

विष्णु प्रकट होकर लय हो जाते हैं ऐसे महाविष्णु को भी जब अखण्ड मोक्ष नहीं प्राप्त है, तब शिव, विष्णु, ब्रह्मादि देव किस गिनती में हैं कि जिन्हें मोक्ष मिल सके। जब ब्रह्माण्ड पतियों को ही मोक्ष नहीं तब उनके भक्तों को कहां से अखण्डपद प्राप्त हो सकता है, यह तो सुतरां स्पष्ट है। तथापि किसी विद्वान को शंका बनी रहे तो उसके सौभाग्य की बात है। जान बूझकर भी शास्त्र पर विश्वास न हो तब किसका दोष ?

Shri Prannath Ji Pustkalay

'अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव' (सांख्यदर्शन ४-२१) विज्ञानभिक्षुकृतभाष्य–"अध्यस्तरूपैः पुरुषाणां ब्रह्मविष्णुहरादीनामुपासनात्। पारम्पर्येण ब्रह्मादिलोकप्राप्तिक्रमेण सत्त्वशुद्धिद्वारा वा ज्ञाननिष्पत्तिर्न साक्षात्। यथा याज्ञिकानामित्यर्थः।"

अर्थ—अध्यस्तरूपसे–ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, गौरी आदि की उपासना से परम्परया अथवा तो सत्त्वशुद्धि द्वारा धीरे-धीरे ज्ञान की निष्पत्ति–सिद्धि होती है, परन्तु साक्षात् ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। कदाच ज्ञान की सिद्धि प्राप्त हो जाय और ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के लोक को प्राप्त भी कर ले तो भी जन्म–मरण तो बना ही रहता है।

यथा—इतरलाभेऽपि व्यावृत्तिः पंचाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः (सांख्यद० ४–२२) विज्ञानभिक्षुभाष्य—"निर्गुणात्मन इतरस्याध्यस्तरूपस्य ब्रह्मलोकपर्यन्तस्य लाभेऽपि व्यावृत्तिरस्ति। कुतोदेवयानपथेन ब्रह्मलोकं गतस्यापि द्युपर्जन्यधराऽमरयोषिद्रूपाग्निपञ्चके पंचाहुतितो जन्मश्रवणात्। छान्दोग्य पंचमप्रपाठके "असौ वाव लोको गौतमाग्निरित्यनेनेत्यर्थः।"

अर्थः–निर्गुण से इतर अध्यस्तरूप–हिरण्यगर्भस्वरूप ब्रह्मलोक पर्यन्त ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि लोक की प्राप्ति होने पर भी जन्म-मरण तो बना ही रहता है। क्योंकि देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर भी द्यु पर्जन्य, धरा अमरयोषिद्रूपाग्नि आदि का जन्म होना छान्दोग्य श्रुति में लिखा है।

सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव तु।
भारतं पुनरायान्ति तेषां जन्मद्विजातिषु॥
तीर्थाश्रिता द्विजा ये च तपस्या निरताः सदा।
ये यान्ति ब्रह्मलोकं च[1] पुनरायान्ति भारते॥

---

[1] ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे। (महानारायणो०)
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः॥
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे। (कैवल्य)

सत्त्वगुण की प्रधानता के कारण तपस्वी मनुष्य ब्रह्मलोक–ब्रह्माका लोक, वैकुण्ठ लोक किंवा कैलाश, हिरण्यगर्भ आदि जितने भी लोक हैं, उनमें परान्तकाल तक-प्राकृत प्रलय या तो कल्पान्त पर्यन्त निवास करते हैं। जब परान्तकाल समाप्त होता है तब उन लोगों का लय हो जाता है अतएव वहां से पतन हो जाता है, ऐसा लिखा है। कुछ आचार्यों का कथन है कि 'कार्य ब्रह्म'

Shri Prannath Ji Pustkalay

स्वधर्मे निरता भक्ताः शैवाः शाक्ताश्च गाणपाः ।
ते यान्ति शिवलोकं च पुनरायान्ति भारते ।।

(देवीभा० ९—२९—२८, ३१, ३५)

उपरोक्त रूपसे 'देवी भागवत' में इस बातको और भी स्पष्ट कर दिया है कि— वैकुण्ठलोक, ब्रह्मलोक अथवा शिवलोकसे पुनः भारत वर्ष में ही जन्म लेना पड़ता है।' इस प्रकार दृष्टिपात करें तो शास्त्र, पुराण और सूत्र-ग्रन्थ सभी एक स्वर से इस तथ्यको स्पष्ट करते हैं कि — वैकुण्ठ, कैलाश आदि जितने भी लोक हैं उनकी मुक्ति से पुनरागमन—जन्म मरणका बन्धन सदा के लिये नहीं छूटता, किन्तु पुनः पुनः जन्म मरण बना रहता है।

जिस प्रकार वैकुण्ठ कैलाश की सगुण मुक्ति अनित्य है, उसी प्रकार निर्गुण निराकार शून्य निरंजन ओहं सोहं आदि निर्गुण स्वरूपों की मुक्तिको भी अनित्य वर्णन किया है। क्योंकि जब सगुण उपाधिका नाश है तो निर्गुण उपाधिका भी

लोक से आवागमन तो होता है पर सायुज्य मुक्ति वालोंका नहीं। क्योंकि जो विष्णु के स्वरूप में लीन हो गये उनका पतन किस प्रकार होगा। अतः सायुज्य के अतिरिक्त सालोक्य, सामीप्य, सारूप्यका पतन हो सकता है, पर सायुज्यका नहीं। यही कारण है कि व्यासजी ने "कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात्" इस सूत्रमें यह माना है कि—कार्य ब्रह्मके नाश होने पर अपने अध्यक्षके साथ अनित्य विष्णुपद से परविष्णुके स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं।'

'कार्यात्यये' इत्यादि सूत्रमें कार्यका अध्यक्ष किसको मानना यह प्रश्न भी जटिल है। क्योंकि कार्यरूप विश्वका अध्यक्ष तो महाविष्णु ही हो सकते हैं। जो जीवात्मा महाविष्णु पद को प्राप्त हो जाते हैं, वे उसके नाश के बाद परविष्णु ही किंवा अव्याकृत के कारण स्वरूप में जा मिलें, यह तो हो सकता है, परन्तु वैकुण्ठ, कैलास से भी जीवोंको कल्पान्त में परम पद मिल जाता है, ऐसा कहना साहस मात्र है। क्योंकि जिस प्रकार वायु के रजकण उड़ उड़कर अपने अनन्ताकाश में संख्यातीत मिल जाते हैं उसी प्रकार निमेषमात्र काल में असंख्य विश्वोंका उदय लय अविद्यापाद में होता रहता है। स्वप्न के जीवों के नित्य होने का प्रश्न जिस प्रकार असंगत है, उसी प्रकार स्वप्नवत् विश्व के अनित्य जीवों के मोक्ष का प्रश्न भी जटिल हो जाता है। हां, इस ब्रह्माण्ड के जीवों को मोक्ष हो सकता है। क्योंकि ब्राह्मी प्रजा सनातन आत्माओंने इस विश्वको सौभाग्यशाली बना दिया है, अतएव व्याससूत्र में यह बात कही गई है। परन्तु सिद्धान्त रूप से सब विश्वों के लिये लागू करना उचित नहीं हो सकता।

Shri Prannath Ji Pustkalay

नाश होगा। उपाधि चाहे सगुण हो अथवा निर्गुण उपाधि तो उपाधि है, वह तो नित्य रह ही नहीं सकती। भगवान के सगुण निर्गुण स्वरूपका वर्णन करते हुए व्यासजी लिखते हैं। यथा :—

निर्गुणे सगुणं चैव सगुणे निर्गुणं तथा।
परस्परं च संलग्नं रूपद्वयमथापि च॥
यथा च मणिसूत्रे वै संलग्ने च परस्परम्।
विवेकिनो हि जानन्ति तत्त्वभागविचक्षणाः॥ (शिवपु० ४८-३२-३३)

माला के दानें और सूत्र (धागा) दोनों जिस प्रकार परस्पर लगे हुए हैं उसी प्रकार भगवान के सगुण निर्गुण दोनों स्वरूप परस्पर अनुस्यूत हैं। दोनों सापेक्ष हैं। एक के बिना दूसरे का स्वरूप खड़ा ही नहीं होता। पर ये दोनों ही अनित्य और माया से कल्पित उपाधि हैं। अतः विवेकी पुरुषोंका कर्तव्य है कि इनको ब्रह्मका यथार्थ स्वरूप न समझें। क्योंकि—

"न स्थानतोऽपि[1] परस्योभयलिङ्गं—सर्वत्र हि" (ब्रह्मसूत्र ३—२—११)

वेदान्त दर्शनमें व्यासजी ब्रह्म के उपरोक्त दोनों स्वरूपों को माया कल्पित ही वर्णन करते हुए कहते हैं—परब्रह्म के सगुण निर्गुण स्वरूप को श्रुतियों में वर्णन किया है वह यथार्थ नहीं, किन्तु कल्पित है। श्री शकराचार्यजी भी उपरोक्त सूत्रपर भाष्य करते हुए लिखते हैं कि "उपाधीनां चाविद्याप्रत्युपस्थापितत्वात्। अतश्चान्यतद्लिंग-परिग्रहेऽपि समस्तविशेषरहितं निर्विकल्पमेव ब्रह्मप्रतिपत्तव्यं, न तद्विपरीतम्" श्रुतियों में साकार निराकार दोनों ही स्वरूपों का प्रतिपादन मिलता है तो क्या ब्रह्म को साकार निराकार दोनों ही स्वरूपों में मानें? इसके उत्तर में कहते हैं कि-साकार और निराकार ये तो दोनों ही अविद्या से कल्पित उपाधि हैं, अतएव ब्रह्म को इन दोनों उपाधियों से रहित निर्विकल्प सच्चिदानन्द स्वरूप ही मानना चाहिये, न कि उससे विपरीत, ऐसा लिखा है। शुकदेव जीने भी उक्त जटिल समस्याको संदिग्ध नहीं छोड़ा बल्कि स्पष्ट ही कह दिया है। यथा:—

[1] न्याय निर्णय टीकाकार तो और भी कड़ी चुटकी ले रहे हैं। यथा—"उपाधिवशाद-विद्योभयलिंगत्वयोगेऽपि न तात्विकमुभयलिंगत्वं ब्रह्मणो वास्तवरूपान्तरायोगात्" उपाधि द्वारा अविद्याकल्पित दोनों (साकार निराकार) स्वरूपों का प्रतिपादन होने पर भी तत्त्वतः ब्रह्मके दोनों स्वरूप नहीं माने जा सकते। क्योंकि अविनाशी ब्रह्मके वास्तविक स्वरूप में रूपान्तर की कल्पना करना ही असंगत है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अमुनी भगवद्रूपे मया ते अनुवर्णिते ।
उभे अपि न गृह्णन्ति मायासृष्टे विपश्चितः ॥
(भाग० २–१०–३५)

हे राजा परीक्षित ! भगवान के इन दोनों (सगुण निर्गुण किंवा स्थूल सूक्ष्म) स्वरूपों को मैंने तुम्हें समझाया। परन्तु ये दोनों स्वरूप–साकार निराकार अथवा सगुण निर्गुण—माया की उपाधि से रचे होने के कारण विवेकी पुरुष इन दोनों स्वरूपों को ब्रह्मत्वेन ग्रहण नहीं करते। कितना सुन्दर समन्वय थोड़े में ही रख दिया है। इसी का नाम 'सागर को गागर में भर देना' होता है। ये दोनों स्वरूप माया रचित हैं, चाहे साकार हों या निराकार। दोनों स्वरूप वास्तविक ब्रह्म नहीं हैं ? जो वास्तविक नहीं और माया कल्पित हैं, वे मोक्ष किस प्रकार दे सकते हैं। जब ये स्वयं ही मायाजन्य हैं, अनित्य हैं, कल्पित हैं, तब इनसे अथवा इनके अधिष्ठान से मोक्ष सुख की आशा रखना आकाश में बगीचा लगाने के बराबर निष्फल है। इतना ही नहीं बल्कि वेद में तो यहां तक लिखा है कि—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ॥
(यजुर्वेद ४०–९)

अर्थ – (ये) जो कोई मनुष्य (असम्भूतिम्) अव्यक्त कारण अथवा निराकार निर्गुण की (उपासते) उपासना करते हैं (अन्धं तमः) गहरे अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश पाते हैं। और (ये) जो कोई मनुष्य (सम्भूत्याम्) हिरण्यगर्भ, त्रिगुण आदि अध्यस्त देवों (कार्य ब्रह्म) की उपासना में (उ) ही (रताः) रत हैं अर्थात् इन्हीं को ब्रह्म मानकर उपासना करते हैं (ते) वे सब तो (ततः) उस पूर्वोक्त निर्गुणोपासकों के अन्धकार से भी (भूयः) अधिक (इव) ऐसे (तमः) गाढ़तम–गहरे अन्धकार में प्रवेश पाते हैं।

इस प्रकार उक्त वेद मंत्रने भी साकार निराकार उपासनाको महत्व शून्य प्रतिपादन करते हुए उक्त दोनों से भी उत्तम उपासना को अपनाने का संकेत किया है, जो मनन करने योग्य है। इसी तथ्यको नीचे लिखे हुए व्यास वचनमें और भी सुन्दरतम स्वरूपसे समझाने का प्रयत्न किया गया है। यथा—

यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ।
अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद् ब्रह्मदर्शनम् ॥
(भाग० १–३–३३)

Shri Prannath Ji Pustkalay

सत् असत्—निर्गुण सगुण—ये दोनों रूप स्वसंवेद अर्थात् जो आत्म तत्त्वका ज्ञता है उसके द्वारा प्रतिषिद्ध हैं। कारण, दोनों ही अध्यस्त—कल्पित हैं, अविद्या के कारण हृदय में ठंसे हुए हैं। जहां तक इन दोनों के प्रति [1] ब्रह्मभाव अथवा आत्मभाव है, तब तक ब्रह्म के स्वरूप का दर्शन नहीं हो पाता। जब इन दोनों स्वरूपों के प्रति अनित्य—बुद्धि हो जाती है, ब्रह्मतत्त्व का दर्शन हो जाता है।

नारायणादिरूपाणि ज्ञातान्यस्माभिरच्युत !
सगुणं ब्रह्म सर्वेदं वस्तुबुद्धिर्न तेषु नः ॥ (बृहद्वामनपु०)

बृहद्वामन पुराण में श्रुतियां स्तुति करती हुई कहती हैं 'हे श्रीकृष्ण ! नारायण आदि जितने भी 'ब्रह्म' नामसे प्रसिद्ध देव हैं, उनके स्वरूपको हमने जान लिया है। वे सब सगुण—उपाधिकल्पित ब्रह्म होने से उनमें हमें ब्रह्मभाव नहीं आता, अतएव अपने माया से पर स्वरूप का दर्शन कराइये।' इस प्रकार लिखा है। इस परसे भी स्पष्ट हो जाता है कि उपासनातत्त्व बहुत गूढ है, जो उसे नहीं जान पाते। जन्म मरण रूप अन्धकार से छुटकारा नहीं पा सकते।

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च (बृहदा० उप० २—३—१)

विश्व के मनुष्यों के समक्ष उपासना के लिये मत—मतान्तरों ने ब्रह्म के साकार—निराकार अथवा सगुण—निर्गुण, ये ही रूप उपस्थित किये थे, उसे वेद शास्त्र पुराणों ने अवास्तविक और कल्पित बता दिया है। तथापि विश्व का आस्तिक वर्ग इन्हीं दोनों (सगुण—निर्गुण) रूपों की उपासना में संलग्न हो रहा है। संप्रति योगी, यति, संन्यासी, उदासी, समाजी, नमाजी, किरानी, कुरानी, ज्ञानी,

---

[1] **अव्यक्तं कारणं यत्तत्प्रधानमृषिसत्तमैः।**
प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम् ॥
(विष्णुप० अं १—२—१९)

अर्थ— अव्यक्त कारण को ही ऋषियों ने प्रधान कह कर वर्णन किया है, जो प्रकृति का सूक्ष्म रूप है। उसे ही सत् असत् नामसे पुकारते हैं। इस प्रकार प्रकृतिको भी अनेक रूपमें पाते हैं। यही कारण है प्रकृति के विषय में नित्य—अनित्य शब्दों को देखकर भ्रम हो जाया करता है। इस प्रकार से देखा जावे तो प्रकृति भी भगवान के स्वरूप में मानी जा सकती है, क्योंकि इसके सत्—असत् रूप को ब्रह्मरूप भी वर्णन किया है। अधिकतर आजकल मनुष्यों की उपासना इन्हीं दोनों स्वरूपों तक सीमित रह जाती है, और शास्त्रों में इन्हें उपाधि रूप माना है एवं इनकी उपासना से मोक्ष नहीं मिलता प्रत्युत अन्धकार परम्परा के जन्म—मरण में जाना पड़ता है, ऐसा लिखा है। तथापि जनसाधारण इनके आगे नहीं जा पाते।

Shri Prannath Ji Pustkalay

विज्ञानी, कबीर, नानक, दरिया, दादू, सूफी, सांई आदि जगत का दो तिहाई भाग तो निर्गुण निराकार के ध्यान में ही तल्लीन हो रहा है । पूर्वोक्त निर्गुण निराकार के भक्तों से अवशिष्ट—बचा हुआ धर्मनिष्ठ भाग सगुण ब्रह्मकी उपासना में ही अपना श्रेय मान रहा है । चारों संप्रदाय तथा उनके अवान्तर भेद उपभेद, तथा शैव, शाक्त और वैष्णव, सनातन धर्मी आदि जितने भी वर्ग पृथक् पृथक् नामों से प्रसिद्ध हैं, वे भी सब सगुण साकार की उपासना में ही अपने को कृतार्थ मान बैठे हैं । बल्कि एक दल-वर्ग ऐसा भी है, जो प्रणव ओङ्कारको ही ब्रह्म मानता है "ओंकार एवेदं" जो कुछ है वह सब ओंकार ही है, इस प्रकार ओंकार प्रणवको ही ब्रह्म बताकर प्रौढ़वाद फैला रहा है। इस प्रकार विश्व में उपासना को आँधीसी चल रही है।

यद्यपि श्रुतियों ने ओंकार प्रणवको बहुत कुछ महत्त्व प्रदान किया है, जो मनन करने योग्य है । पर इसका अर्थ यह नहीं कि—ओंकार को ही परब्रह्म मान कर हम यथार्थ पर्ब्रह्म तत्त्व से वंचित हो जावें, अतः विवेक बुद्धि से काम लेना चाहिये कि वस्तुतः ओंकार कहते किसको हैं ?

'ओं खं ब्रह्म' "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" ओंकार एवेदं सर्वम्"

इत्यादि श्रुतियों में ओंकार प्रणवको जो ब्रह्म शब्द से उपस्थित किया गया है, वह केवल उत्कर्ष बताने के लिये है जिस प्रकार 'अन्नं ब्रह्म उपासीत' 'मनो ब्रह्मेत्युपासीत' आदित्यो ब्रह्म (छा० ३—१९—१) प्राणो ब्रह्म (छा० ४—१०—५) विद्युद् ब्रह्म (बृह० ५-७-१) यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते (छां ७-४-३) इत्यादि श्रुतियों में अनित्य पदार्थों के लिये ब्रह्म शब्द का प्रयोग केवल उत्कर्ष [महत्व] ज्ञापन के लिये है अथवा उक्त पदार्थों में उत्कर्ष मात्र देखकर उनके लिये 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग कर दिया है । वस्तुतः उपरोक्त श्रुतियों में वर्णित—अन्न, मन, प्राण, आदित्य, विद्युत संकल्प आदि पदार्थ ब्रह्म[1] नहीं हैं। उसी प्रकार—'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म—आदि श्रुतियों में प्रयुक्त 'ओंकार' शब्द ब्रह्म बोधन के लिये लिये नहीं है, किन्तु ओंकार का उत्कर्ष बताने के लिये ही ब्रह्म शब्द कह दिया गया है।' यदि ऐसा न मानें तो—

---

[1] अन्नं ब्रह्म । मनो ब्रह्मेत्युपासीत (छां ३—१८) इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म शब्द केवल उत्कर्ष ज्ञापन के लिये है इस बात को विस्तारपूर्वक देखना हो तो वेदान्त दर्शन के 'ब्रह्म-दृष्टिरुत्कर्षात् (ब्रह्मसू० ४—१—५) इस सूत्र के भाष्य को मनन करें। शंकराचार्य ने अपने भाष्य में विस्तृत विवेचन के साथ समझाया कि—जिस प्रकार कोई भिक्षुक दाता को राजा महाराजा कह दिया करता है और उसे कहना ही पड़ता है यदि वह खूब प्रशंसा न करे तो उसे द्रव्य की प्राप्ति उतनी न होवे। पर भिक्षुक के कहे हुए 'महाराजा' शब्द का अर्थ

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् (मुंडक २-२-४)

प्रस्तुत श्रुति में प्रणव को धनुष की उपमा देकर कितना स्पष्ट कर दिया है कि प्रणव ब्रह्म नहीं, ब्रह्म तक पहुंचने का पात्र नहीं, किन्तु जीवात्मा परमात्मा से भिन्न एक तीसरा पदार्थ है। इस श्रुति में जीवात्मा को परमात्मा तक पहुंचने का उपदेश और उपाय बताया गया है। प्रणव को धनुष की उपमा दी है। धनुष कभी भी लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाता। बाण का तो निशाना ठीक बैठ जावे तो लक्ष्य तक पहुंच भी सकता है परन्तु धनुष कभी भी लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाता। अब, जरा ध्यान दीजिये कि श्रुतिने प्रणव को ब्रह्म से कितनी दूर लेजाकर रख दिया। फिर भी हमसे प्रणव मोह न छूटे तो अज्ञान अथवा दुराग्रह के अतिरिक्त और क्या कहा जावे। अब ओंकार को धनुष कहने का तात्पर्य भी जरा सुन लें।

'ओं अथास्य पुरुषस्य चत्त्वारि स्थानानि भवन्ति
नाभि हृदयं कण्ठं मूर्धा इति। तत्र चतुष्पादं ब्रह्म विभाति
जागरितं ब्रह्मा, स्वप्ने विष्णु, सुषुप्तौ रुद्रः। तुरीयं परमक्षरम्'

इस मानव पिंडका तथा ब्रह्माण्ड का एक ही रूप वर्णन किया है। दोनों की चार-चार अवस्थाएं भी वर्णन की हैं– यह सब प्रणव का ही [1] व्यष्टि समष्टि स्वरूप

केवल दाता के उत्कर्ष मात्र में पर्यवसित (समाप्त) हो जाता है। बस, इसी प्रकार 'अन्नं ब्रह्म' मनो ब्रह्म, ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म का अर्थ अन्न, मन और ओंकार अक्षर के उत्कर्ष मात्र में ही सीमित है। वास्तविक ब्रह्मको 'अन्न, मन, या ओंकर' शब्द से उपस्थित नहीं किया गया। क्योंकि वह तो 'अक्षरात्परतः परः' अविनाशी अक्षर ब्रह्म से भी पर है, उसे इन शब्दों से उपस्थित करना असंगत है।

[1] **प्रणवात्प्रभवो ब्रह्मा प्रणवात्प्रभवो हरिः।**
प्रणवात्प्रभवो रुद्रः प्रणवो हि परो भवेत्॥ ७६
क्रिया इच्छा तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी।
त्रिधा मात्रा स्थितिर्यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति॥ ८६ (योगचूडामणि उप०)

प्रणव से ब्रह्मा, प्रणव से विष्णु, प्रणव से ही रुद्रका होना मानते हैं। ब्राह्मी, रौद्री और वैष्णवी, इच्छा ज्ञाना क्रिया, ये तीनों शक्ति इस प्रकार प्रणव की अकार उकार मकार मात्रा से ही तीनों देवों की तथा तीनों लोकों की तथा शक्तियों की स्थिति है। इन तीनों मात्राओं से पर ज्योति-स्वरूप प्रणव है। जो उक्त तीनों को धारण किये है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

है। विराटका अभिमानी देव ब्रह्मा है, जो नाभि प्रदेश में स्थित है। स्वप्नावस्था का देवता विष्णु है, जो हृदय में विराजमान है। सुषुप्ति का अभिमानी देव रुद्र भगवान हैं, तुरीय अवस्थाका देवता परम अक्षर—परा मात्रा हैं जो अर्धमात्रा भी कही जाती है। और मूर्धन्य स्थान में स्थित है। यथा :—

एकमात्रो द्विमात्रश्च त्रिमात्रश्चैवं भेदतः।
अर्द्धमात्रा परा ज्ञेया तत ऊर्ध्वं परात्परम् ॥ (ब्रह्मविद्योप०)

इसी अर्धमात्रा को परम अक्षर वर्णन किया है। ये चारों मात्रा इस विश्व रूप नारायण के स्वरूप में स्थित हैं। इन चारो मात्राओंका समष्टि—रूप आदि नारायण से पर महाशून्य 'विंदु' रूप स्थित है। उस बिन्दुरूप प्रणव से पर परम तत्त्व है।' ओंकार का लय होना भी लिखा है। यथा :—

कांश्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये।
ओङ्कारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता
यस्मिन्विलीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते

(ब्रह्मविद्योपनि०)

'जिस प्रकार कांशा धातु का घंटा शब्द को ध्वनित करता है और फिर अपने में ही लीन कर लेता है, उसी प्रकार ओंकार को समझना। अव्याकृत से प्रणव ओंकार का उदय होता है और जब सबको समेट कर उसी अपने मूल स्वरूप में लय हो जाता है, तब उसे परब्रह्म में लीन हो गया, ऐसा कहते हैं। अथवा जिस अव्यक्त में ओंकार का लय होता है, उससे पर जो तत्त्व है उसको ब्रह्म कहते हैं।

इस प्रकार विचार पूर्वक देखें तो—प्रणव ओंकार भी 'व्यष्टि समष्टि' के स्वरूप में आ जाता है और उसके अपर (मात्रा सहित) स्वरूप का लय भी पाया जाता है। जिसका उदय-लय है जो व्यक्त अथवा अव्यक्त दोनों स्वरूपों में भी अनित्य है। वह स्वयं तो ब्रह्म होने की क्षमता क्या बतायेगा किन्तु ब्रह्म को प्राप्त होने की शक्ति भी प्रदर्शित नहीं कर सकता। तभी तो वेदों में "नेति नेति" कह कर ब्रह्म के स्वरूप को बताया।

वेद अगम कहि उलटे पीछे निगम नेति करि गाया'

इस प्रकार श्रुतियों के पर्यालोचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रणव ओंकार की उपासना भी सम्भूति-असम्भूति के अन्तर्गत है, जो ब्रह्म तत्त्व को प्राप्त नहीं करा सकती। और न प्रणव अथवा ओंकार को परब्रह्म स्वरूप कह सकते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

इस प्रकार सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों में विश्व भूला पड़ा है। ऐसी अवस्था में साधारण मनुष्यों की कौन कहे, बड़े - बड़े विद्वानों को ही लक्ष्य तक [1] पहुंचना कठिन हो रहा है। मत मतान्तरों ने, संप्रदाय वादियों ने अनेकों ब्रह्म बना लिये हैं। अनेकों मान्यताओं को स्थान दे जन समाजको एक ऐसी संभ्रान्त दशा में ले जा पटका है कि–जहां से उसके उद्धार की कोई आशा ही नहीं रह जाती।

जहां सम्भूति–असम्भूति, साकार - निराकार उपासना से सारा विश्व ही दबा पड़ा है, वहां से सन्मार्ग–मोक्ष पथकी आशा रखना व्यर्थ है। उपासना

---

[1] इस बात का संकेत श्रुतियों में स्थान स्थान पर किया है, परन्तु उनको समझे कौन ?

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ (केनोप० १–५,६)

जिसे नेत्रों से नहीं देख पाते किन्तु जिससे नेत्र दीखते हैं, वही ब्रह्म है, ऐसा तुम जानो। यह ब्रह्म नहीं है जिसको तुम उपासते हो, जिसकी आराधना करते हो, वह ब्रह्म नहीं है। जिसको मन से नहीं जान पाते, प्रत्युत जिससे मनको जानने की शक्ति मिलती है, उसी को तुम ब्रह्म जानो। जिसकी उपासना में लगे हो, वह ब्रह्म नहीं है। इस प्रकार नाना देवों की उपासना में फंसे हुए मनुष्यों को श्रुति स्पष्ट सूचित भी कर देती है कि जिसे तुम ब्रह्म समझे बैठे हो वह ब्रह्म नहीं है।

अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते (कठोप० २–१–२)

धीर पुरुष अविनाशी तत्त्वको जानकर आत्मा में निश्चय कर लेते हैं और फिर अध्रुव अनित्य देवोंकी प्रार्थना नहीं करते। अतः श्रुति कहती है —

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत (कठोप० २–३–१४)

'हे धीर पुरुषो ! उठो, जाग्रत होकर देखो, उत्तम ज्ञान को समझो अर्थात् मिथ्या उपासना के मोह में न पड़ो, जरा जाग्रत होकर श्रेष्ठ तत्व को समझो। कितना महत्त्वपूर्ण उपदेश है। उपनिषद् काल में भी उपासनाओं का जाल फैला था, अतः उन जालों से बचकर ब्रह्मतत्त्वको ग्रहण करने को पुनः पुनः उपदेश दिया गया है, ऐसा विदित होता है। अन्यथा 'नेदं यदिदमुपासते' यह कहने की क्या आवश्यकता थी कि जो तुम ब्रह्म मानकर उपासना में लगे हो, वह ब्रह्म नहीं है। इस प्रकार महापुरुष सदा से ही चेताते रहे हैं, जो ध्यान में रखने योग्य है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

और उपास्य देव ही जहां पर मोक्ष मार्ग के आच्छादन किंवा ढक्कन बन चुके हों, वहां से आत्म कल्याण—निःश्रेयसकी इच्छा रखना अपने को जानबूझ कर माया जाल में फँसना है। तभी तो वेद में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि 'हे परमेश्वर ! इन ढक्कनों को हटा कर हमें अपने सत्यस्वरूप के दर्शन देवें। यथा—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

(ईशावास्योप० मंत्र १५)

मंत्रार्थ —(हिरण्मयेन [1])ज्योति मय (पात्रेण) नाना देवता स्वरूप पात्रों की उपासना से (सत्यस्य) सत्य स्वरूप परमात्मा का(मुखम्)स्वरूप किंवा द्वार(अपिहितम्) ढका हुआ है। अतः (पूषन्) 'हे सबके पोषक परमेश्वर ! (तत्) उस ढक्कन को (त्वम्) आप (अपावृणु) दूर हटा दो। किस लिये ? (सत्यधर्माय) सत्य स्वरूप जो आप हैं उसके धर्मको—स्वरूप को (दृष्टये) देखने के लिये।

अनित्य पदार्थों की किंवा नाना देवों की उपासना के मोह में फँस कर मनुष्य परम तत्त्व की उपासना से वंचित रह जाता है। इसलिये श्रुति में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि पोषक 'हे परमेश्वर ! तुम्हीं (ज्योतिषां ज्योतिः) सब ज्योतियों के प्रकाशक हो, तुम्हीं सब (पतिं पतिनाम्) पतियों के (वैकुण्ठपति ,कैलासपति प्रजापति) पति हो, अतएव आप ही नाना देवों की तुच्छ उपासना के प्रलोभन को हटा कर अपने वास्तविक स्वरूप के धर्मों का दर्शन कराओ। क्योंकि—

आत्मेत्येवोपासीत । योऽन्यां देवतामुपासते ।
न स वेद । यथा पशुरेवं[2] स देवानाम् ॥

(शतपथ ब्रा० १४-४)

---

1 'ज्योतिर्वै हिरण्यम्, इति श्रुतेः' हिरण्य शब्द ज्योति-प्रकाश का वाचक है, ऐसा शतपथ श्रुति में लिखा है। विश्व में जितने भी ज्योतिर्धर देव हैं अथवा जितने भी विभूति पुरुष हैं, वे सब एक प्रकार से ब्रह्म के द्वारा परम्परया हुए हैं, अतः वे सब ब्रह्म नाम से ही निर्देश किये गये हैं। साधारण बुद्धि और अल्पश्रुत विद्वानों ने शास्त्रों के गर्भित तत्त्व को नहीं समझ पाया अतएव उन्हीं को ब्रह्म बताकर परात्पर तत्त्व को भुलावे में डाल दिया। यही हिरण्यमय पात्र से सत्यस्वरूप-परब्रह्मको अपिहित—ढाक देना है। इन ढक्कनरूप तुच्छ देवों की उपासना के प्रलोभन में विश्व फँसा है। इस प्रलोभन से छुटकारा दिलाकर अपने सत्यस्वरूपके धर्म का दर्शन कराओ, बस, यही परमेश्वर से प्रार्थना की गई है, जो मनन करने योग्य है।

यद्यपि श्रुतिका उपदेश कठोर है, परन्तु अन्तःतलको देखा जावे तो यथार्थ ही महत्त्वपूर्ण

Shri Prannath Ji Pustkalay

केवल परब्रह्म परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिये। जो पुरुष परब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी देवताकी उपासना करता है, वह नहीं समझता। उसे विद्वानों के मध्यमें पशु तुल्य समझो। इस प्रकार वेद, शास्त्र, पुराण, सभी एक स्वरमें केवल परब्रह्मकी उपासनासे ही आत्म-कल्याण की प्राप्तिका वर्णन करते हैं। इतना ही नहीं प्रत्युत-परब्रह्म के अतिरिक्त किसी भी अन्य देवकी उपासना को हेय-त्याज्य भी प्रतिपादन करते हैं। जो जान बूझ कर भी तुच्छ कामनाके वशमें पड़कर अन्य देवोंकी अथवा सगुण-निर्गुण की उपासनाको नहीं छोड़ते, वे श्रुतिकी दृष्टिमें पशु तुल्य हैं और जान बूझ कर 'अन्धं तमः प्रविशन्ति' गहरे अन्धकार में किंवा अधोगति में प्रवेश पाते हैं इस प्रकार श्रुति, स्मृति और शास्त्रके मननसे स्पष्ट विदित हो जाता है कि-वर्तमान विश्वका आस्तिक वर्ग आत्म-कल्याणके पथसे कितनी दूर जा पहुंचा है, इसका दुःख तो किसी विरल पुरुषको ही हो सकता है।

आज विश्वमें मत मतान्तरों की जो आंधी चल रही है, उसमें विश्व के असंख्य स्त्री पुरुष विना समझे उड़े चले जा रहे हैं। यह आंधी केवल भारत में ही नहीं अपितु तमाम अन्य प्रदेशों में भी है। योरोप अमेरिका भी इसी आंधी में उड़ रहे हैं। रूस तो नास्तिकता के गर्त्त में पड़ा है, चीन की स्थिति डांवाडोल है।

इसका कारण यह है कि-परमात्मा ने ऋषि महर्षियों द्वारा तथा महापुरुषों द्वारा अपना पवित्र ज्ञान देकर अनुगृहीत किया अवश्य. परन्तु स्वार्थी मनुष्यों (खुदगर्ज दुनियादारों) ने उस पवित्र ज्ञानको दबाकर अपनी कल्पना शक्ति

पूर्ण है। जो मनुष्य शास्त्रोंका ज्ञाता है और ब्रह्मतत्त्वको जानते हुए उसकी अवहेलना करता है एवं सम्भूति असम्भूतिकी उपासनामें संलग्न है अथवा परब्रह्मके सिवा अन्य देवताकी उपासनाके मोहमें पड़ा है, वह पशु क्या पशुसे भी निम्नकोटिका है। पशु तो केवल ब्रह्मज्ञानका अधिकारी न होनेसे निकृष्ट है, किन्तु वह अन्य किसीको पथभ्रष्ट तो नहीं करता। मानव समाजको निम्नस्तर पर ले जाकर जन्म-मरणकी परम्पराको प्रोत्साहन तो नहीं देता। परन्तु जो मनुष्य परब्रह्मके स्थानमें नाना देवोंकी उपासनाको उपस्थित कर असंख्य मनुष्योंको परब्रह्म तत्त्वसे वंचित रखता है, जो असंख्य विज्ञ पुरुषोंको परब्रह्मसे विमुख बनाकर निम्नकोटिके हेय तत्त्वको पकड़ा देता है एवं साकार-निराकारकी उपासनाके भुलावेमें डालकर जन्ममरणके बन्धनसे नहीं छूटने देता, उसे निकृष्ट कहा जा सकता है। किसी ने ठीक कहा है—

पढ़े पढ़ाए का भयो समुझा नहीं मतिमन्द।
मलयागिरि खरपर लद्यो वास न लहै 'मुकुन्द' ॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

के बलपर नवीन विश्वास (गलत यकीदे) और कल्पित सिद्धान्तों को खड़ा कर पवित्र ज्ञानको दबा दिया। आज विश्व में धर्म, मजहब किंवा मत, मतान्तरों के नाम पर ऊपरी बातों को, बाह्याडम्बरों को महत्व दिया जा रहा है और मूल तत्व को–यथार्थ ज्ञानको भुलावे में डाल दिया गया है।

सत्य वस्तु–परब्रह्म का यथार्थ ज्ञान लोप होनेसे मानव संकारों की भित्ति टूटती चली गई और आत्म–भावना को खो बैठे। धीरे धीरे समय बदलता गया, प्रत्येक व्यक्तिके अन्दर स्वार्थ भावना अधिक प्रबल हो उठी और परिणाम यह हुआ कि आज लाखों स्त्री पुरुष धर्म–संप्रदायवाद के विरुद्ध आवाज उठाने लगे। इस प्रकार संप्रदाय क्षेत्रको स्वार्थियों ने टीकाका पात्र बना दिया। परस्पर वैमनस्य, द्वेष, कलह, भोग-विलास और वैभवोपभोग की भावनायें त्याग, तप, संयम, सदाचार, अहिंसा, सत्य,ज्ञान वैराग्य आदि सद्गुणों को दवा दिया। उनके स्थान में दुर्गुणों की सृष्टि होने लगी। प्रेम और उपकार भावनाके स्थान में वैमनस्य स्वार्थ और लोलुपता का राज्य हो गया। अतएव धर्मविमुख जनता में धर्म को–सप्रदाय को, धार्मिक संस्कारों को प्रगतिका शत्रु कहा जाने लगा। धार्मिक भावना को उखड़ फ़ेंकने के प्रयत्न होने लगे। धर्म–विरुद्ध राज नियमों की सृष्टि भी होने लगी।

वस्तुतः सम्प्रदाय क्षेत्र सदाकाल ही उन्नतिका कारण रहा है और आज भी उसकी उतनी ही आवश्यकता है। धार्मिक भावना को जाग्रति के विना तो लौकिक सुख भी प्राप्त नहीं हो पाता। असत्कर्म, असद्भावना और अनीति,अत्याचार,व्यभिचार, अनाचारको धर्मिक विश्वास ही रोक सकता है। परस्पर प्रेमभाव, तप, त्याग, अहिंसा, सत्य आदर्श जीवन, उत्तम संस्कार, संयम और नियमों को जीवन में उतारने के लिये धार्मिक भावनासे ही प्रेरणा मिलती है। यद्यपि लौकिक साधनों से भी कुछ सुख मिलता है अवश्य, परन्तु उसके मूलमें भी उपरोक्त धार्मिक भावना ही सफलता प्रदान करती है। धार्मिक भावना सुखको स्थायी बना सकती है।

पारलौकिक सुख तो धार्मिक भावनाकी भित्ती पर निर्भर है। फिर अध्यात्मवाद तो एक ऐसी स्थिति है, जहांसे निरांश और निष्फलता का उदय तो होता नहीं। बल्कि अनन्त कालके लिये आत्माको सुखी बनाया जा सकता है। आज विश्वको सबसे अधिक आवश्कता है धार्मिक भावनाको बढ़ानेकी और एक ही परब्रह्म परमात्माको अपनाने की। नाना मतवादों का समय निकल चुका और उससे जो जो हानियाँ हो सकती हैं, वह भी विश्व देख चुका है।

परन्तु मत मतान्तरों के अन्तर स्थलमें भी एक वस्तु छिपी है। वह यह कि अभीतक सर्वजनोपादेय एवं सर्वातीत ब्रह्मपथको सर्वमान्य रूपसे समाज

Shri Prannath Ji Pustkalay

के समक्ष उपस्थित भी तो नहीं किया जा सकता। विश्व के अधिकतर मनुष्य सगुण उपासना के द्वारा अपना श्रेय प्राप्त करना चाहते हैं। जो कुछ सगुण से आगे भी बढ़े तो निर्गुण निराकार में जाकर अपना श्रेय साधने लगे। इस प्रकार विश्व के असंख्य स्त्री पुरुष इन्हीं सगुण-निर्गुण उपासना में अपने को अर्पण कर चुके हैं। माना कि—ये दोनों उपासना भी कल्पान्त स्थायी सुखको प्रदान कर सकती हैं, फिर भी "अन्तवत्तु फलं तेषाम्" उन सब कल्पान्त मुक्ति किंवा सुखों का भी तो अन्त सुनिश्चत ही है। एवं "आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन" [1] ब्रह्म भुवन से लेकर पाताल पर्यन्त जितने भी लोक अथवा धाम-मोक्षस्थान माने जाते हैं, वहां से पुनरावृत्ति-जन्म मरण तो बना ही रहेगा। बस, जहां से जन्म मरण है, जो स्थान किंवा विभूति पुरुषों के धाम नश्वर हैं—माया में स्थित हैं, उपाधि युक्त हैं, वे चाहे जितने काल पर्यन्त [1] स्थायी क्यों न हों, जन्म मरण को बढ़ाने वाले ही सिद्ध होंगे। बेड़ी चाहे लोहे की हो अथवा सोने की, दोनों ही बांधने के लिये तो बराबर हैं, इस प्रकार पूर्वोक्त जितने भी मत मार्ग किंवा संप्रदाय धर्म-मजहब, साकार, निराकार के अथवा सगुण-निर्गुण, सम्भूति - असम्भूति के उपासक हैं, वे सब परब्रह्म परमात्मा को न जान सकने के कारण ब्रह्मानन्द-स्वरूप नित्य मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाते। अतएव शंकराचार्य जी ने लिखा था कि—

साकारस्य विनाशोऽस्ति निराकारस्य शून्यत्वाच्छून्यस्य
चावस्तुत्वादुभयपक्षविभिन्नं वस्तुज्ञानं मोक्षः (वज्रसूची वेदान्त)

'साकार पदार्थों का विनाश सुनिश्चित है, निराकार शून्य उपाधि है। जो शून्य है, वह अवस्तु होने से आत्मानन्द से रहित है। अतएव साकार निराकार दोनों पक्षों से भिन्न जो परम तत्त्व है, वही मोक्ष है।'

नानास्वीयमतान्त पटवो मायान्धकारावृताः।
सांख्या वैष्णव [2] वैदिका विधिपराः संन्यासिनः स्नातकाः।

---

[1] लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम्।
ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्द्धपरायुष॥

[2] तप्तमुद्राङ्किताः केचित्कामाचाररताः परे।
कापालिका कौलिकाश्च बौद्धा जैनास्तथाऽपरे॥
कुंभीपाकं पुनः सर्वे यास्यन्ति निजकर्मभिः (देवीभा० १२—१५)
शंखचक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते।
स जीवन् कुणपस्त्याज्यः सर्वकर्मबहिष्कृतः॥ (लिंगपु०)
पूर्वजस्य तनुदग्धा शंखचक्रादिभिः पृथक्।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा स्नानदानजपादिभिः॥ (अग्निपु०)

Shri Prannath Ji Pustkalay

सौरा नित्यपराः प्रपञ्चनिरता बौद्धा जिना श्रावकाः ।
एते कष्टरताः क्रियापथगतास्ते तत्त्वतो वंचिताः ॥
कौलाः पाशुपता महाव्रतधरा कालामुखा जङ्गमाः ।
गाणेशाः सकलेष्टदं गणपतिं ध्यायन्ति चाहर्निशम् ॥
शाक्ताः कौलकुलायधर्मनिरताः कापालिकाः शाम्भवाः ।
एतेऽन्ये हुतमंत्र—तंत्र—निरतास्ते तत्त्वतो वंचिताः ॥

आधुनिक वैष्णव तपाए हुए शंख चक्र आदि से शरीर को जलाना पवित्र समझते हैं। और उसे शास्त्र विहित संस्कार वताते हैं, परन्तु मनु, याज्ञवल्क्य आदि ने किसी स्मृति में ऐसा विधान नहीं लिखा, अतः इसे संस्कार तो नहीं कह सकते। पुराणों में निषेध भी मिलता है, अतः यह उनके कल्पित ग्रन्थों की सूझ हो सकती है।

कोई मुद्रासे शरीरको जला लेते हैं। कोई शंख, चक्र आदि से शरीरको दग्ध कर लेते हैं। कोई कापाली वने घूम रहे हैं। कोई कौलाचार्यके वाम मार्ग में दीक्षित हो रहे हैं। इस प्रकार ये जितने भी पाखंडमत फैलाने वाले मत मतान्तर हैं, वे भले ही विद्वान ही क्यों न हों, किन्तु ब्रह्मविमुख आचारण रूप पापके कारण ये सब कुम्भीपाक नामके नरकमें जाते हैं। इनके उपदेश के चक्कर में आनेवाले चेला—चापर दूसरोंको भी चापर करें, इसमें सन्देह ही क्या ?

गुरु ज्ञान बिन गुरु बने, चेला कीन्हें ढेर ।
गुरु गड़रिया भये, चेला हुई हैं भेड़ ॥

जो स्वयं ब्रह्मज्ञान से विमुख हैं, मत मतान्तरों के पाखंड में फँसे हैं, अपने को वड़ा महात्मा मानकर दूसरों को भी अपने साथ नरकमें ले जाने को संख्या वढ़ाने के स्वार्थ में शिष्य बनाकर ब्रह्मपथ से विमुख वनाते चले जा रहे हैं, वे कुंभीपाक में नहीं तो और कहां जावें ? तभी तो तुलसीदास जी लिखते हैं कि—

'हरहिं शिष्यधन शोक न हरहीं, सो गुरु घोर नरक में परहीं'

स्वार्थवश धनके लोभमें शिष्यों को उलटी सीधी पट्टी पढ़ाकर द्रव्य तो हरते चले जाते हैं, पर उनके आत्माके आवागमन रूपी शोकको नहीं मिटा पाते। ऐसे गुरु भी घोर नरक में जाते हैं। बोलिये, जिनके गुरु जी ही नरकका टिकट कटा रहे हैं, उनके चेला किसकी नाव पर सवार हों, तभी तो शंकराचार्यजी कहते हैं 'धीरः परं संश्रयेत्' कि—धीर पुरुष पाखंडों से वचकर परब्रह्म परमात्मा की शरण लें, इसी में उनका कल्याण है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

वेदान्ता बहुतर्ककर्कशमतिर्ग्रस्ता परं मायया ।
भेदाः कर्मकलाकुला हतधियो द्वैतेति वैशेषिकाः ।
अन्ये भेदरता विवादकलहास्ते तत्त्वतो वंचिताः
तस्मात्सिद्धमतं स्वभासकमयं धीरः परं संश्रयेत् ।। ३ (वज्रसूची वे०)

अर्थ– अज्ञानरूपी अन्धकार से आच्छादित होने के कारण नाना प्रकार के निज मत मतान्तरों के वाद-विवाद में कुशल–सांख्यवादी तथा वैष्णव एवं वेद-पाठी, मीमांसक, संन्यासी उदासी, यति, त्यागी, आदि और सूर्योपासक, बौद्ध मत वाले, जैन श्रावक आदि जितने भी सगुण-निर्गुण मतवादी हैं, वे सब प्रपंच में रत नाना प्रकार की क्रिया कलाप–साधनों में कष्ट उठा रहे हैं। इन्हें परम तत्त्व–पर ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि ये नाना मतों में मतवाले होने से परम तत्त्व से वंचित हैं। एवं जितने भी–कौल, पाशुपत–शिवोपासक, एक मत, महाव्रती, योगी, जंगम, काले मुख, कपाली, अघोरी, दिगम्बर, गणेशोपासक, शाक्त, कौलाचार्यके मतानुयायी, शैव आदि और भी जितने मंत्र तंत्र पूजा–पाठके उपासक नाना मत मार्गों में निमग्न हो रहे हैं, वे सब परम तत्त्व से वंचित हैं, अतः उन्हें कभी ब्रह्मतत्त्व प्राप्त नहीं हो सकता।

माया ग्रसित होने के तर्ककर्कश बुद्धि वाद में फँसे हुए वेदान्तवादी, बालकी खाल निकालकर पदार्थों की स्थापना करने वाले वैशेषिक तथा नैयायिक, और भी नाना भेदवादों में हत–बुद्धि, विवाद मात्र में कलह कर अपनी बातको ठँसाने वाले, जितने भी सगुण-निर्गुण के उपासक हैं, वे सर्व तत्त्व से वंचित होने के कारण परम पद को नहीं पा सकते। इसलिये धीर पुरुषको चाहिये कि इन नाना मत मतान्तरों को छोड़कर आत्मकल्याण के सिद्ध पथ—स्वयं प्रकाशस्वरूप परब्रह्म परमात्मा को पकड़े, उसीका आश्रय लेकर आत्मकल्याण साधे।

कितना मर्मस्पर्शी उपदेश है कि 'जिस पर शुद्ध हृदय से विचार किया जाय वह बुद्धिमान पुरुष को तत्काल अनुभव में आ सकता है कि "नाना मार्गैस्तु दुष्प्राप्यं कैवल्यं परमं पदम्" कैवल्य परम पद अर्थात् स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म का जो अखण्ड धाम है, वह इन नाना मत मार्गों से कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। किन्तु–

"तमेव विदित्वातिमृत्यमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" (यजुर्वेद ३१–१८)

उप परम तत्त्व–परब्रह्म स्वरूप को यथार्थतया जानकर ही मृत्यु से पार हो जाता है अर्थात् जन्म मरणसे छूटकर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। अन्य कोई भी मार्ग वहां पर पहुंचने के लिये नहीं है। बस, वेदने निर्णय कर दिया कि—ब्रह्म-

Shri Prannath Ji Pustkalay

पद पाने के लिये ब्रह्म के स्वरूप को यथार्थ समझना यही एक उपाय है। अन्य मार्ग से वहां नहीं पहुंच पाता। जब इस प्रकार सभी आर्ष ग्रन्थ–वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद् गीता आदि सगुण–निर्गुण दोनों को नश्वर और उपाधि बताते हैं एवं इनकी उपासना से जन्म-मरण का बन्धन भी सदा के लिये नहीं छूटता, यह भी प्रतिपादन करते हैं, तब हमें सर्वातीत परब्रह्म परमात्मा की उपासना करने में संकोच अथवा उपेक्षा भाव क्यों होता है ? यह समझ में नहीं आता।

सगुण–निर्गुण अथवा साकार–निराकार ब्रह्म के आगे जो परात्पर नित्य मोक्ष है, जहां से कभी आवागमन नहीं होता, जो सदा नित्य अखण्ड वर्तमान है, जो नित्य है, सनातन है, उसे विश्व के विद्वानों ने आज तक क्यों नहीं ढूंढ़ पाया, यह भी एक जटिल प्रश्न है। जो वस्तु, वेद, शास्त्र, पुराणों में वर्णित है, जिसके लिये बड़े–बड़े महर्षि मथते चले आ रहे हैं, वही वस्तु अभी तक छिपी पड़ी है। इसका कारण क्या ?

जिन जानो शास्त्रों में नहीं, है शास्त्रों मैं सब कुछ।
पर जीव सृष्टि क्यों जान हीं, जिनकी अकल है तुच्छ ॥

जो बन्ध बाँधे बापने, बेटे चलें जायँ तिन लार।
ये जो अन्धे गफलती, बाँधे जायँ कतार ॥ (श्रीतारतमसा०)
"उलूकस्य यथा भानुरन्धकारः प्रतीयते।
स्वप्रकाशे परानन्दे तमो मूढ़स्य जायते ॥"
(आत्माबोधोप० श्रुति २५)

तत्त्वदर्शी पुरुषों ने वेद, शास्त्र, पुराणों में सब कुछ रहस्य रख दिया है परन्तु जो उत्तम कोटि के जीव नहीं हैं उन्हें वह तत्त्व ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता। इसका कारण यह भी है कि—"गतानुगतिको लोकः" देखा-देखी भी बहुत से पुरुष भुलावे में रह जाते हैं। अमुक मनुष्य तो बड़ा विद्वान है। जब वही अमुक देव की उपासना में विभोर हो रहा है तब हमें किस प्रकार धोखा हो सकता है। अमुक तो इस मर्यादा में मारे जाते हैं कि–अरे जब हमारे पूर्वज बाप दादा भी त्रिगुण किंवा निर्गुण उपासना में ही श्रेय मानते चले आ रहे हैं तब हमें भी वही धर्म पालना चाहिये। वस्तुतः तात्पर्य यह है कि–स्वयं प्रकाश स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म के विषय में अनधिकारी को सौभाग्य ही प्राप्त नहीं होता। क्या सूर्यका प्रकाश उल्लू पक्षीको प्राप्त हो सकता है कदापि नहीं। बस, इसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान भी सबको सुलभ नहीं रहता।

Shri Prannath Ji Pustkalay

"सो जाने जेहि देहि जनाई" उसे तो वही जान पाता है, जिसे परमात्माकी प्रेरणा प्राप्त होती है। यही कारण है कि–सगुण–निर्गुण से पर सर्वातीत परब्रह्मकी उपासनाको सर्व साधारण मनुष्य नहीं [1] प्राप्त कर पाते।

कैवल्यमुक्ति—

सगुण–निर्गुण दोनों स्वरूपों से साकार–निराकार दोनों प्रकार के भगवानके स्वरूपों से पर जो मुक्ति, है उसे 'कैवल्य मुक्ति कहते हैं। कैवल्य मुक्ति का अर्थ होता है ब्रह्मके समान स्वरूप प्राप्त कर लेना। उसमें समीप दूरका भेद नहीं रहता। अतएव सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य, सालोक्य चारों मुक्तियों का एक में ही समावेश हो जाता है। मुक्तात्मा प्रभुके पास भी रह सकता है, समानलोक में भी रहता है। समान स्वरूप भी पा जाता है एवं समान योग तो उसे प्राप्त ही है। इस प्रकार कैवल्य–मुक्ति में चारों मुक्ति का अधिकार और आनन्द उसे केवल एक ही स्वरूप से प्राप्त होता है। इस कारण उसे कैवल्य मुक्ति कहते हैं।

एवं गुणाः समानाः स्युर्मुक्तानामीश्वरस्य च।
सर्वकर्तृत्वमेवैकं तेभ्यो देवे विशिष्यते ॥
मुक्तास्तु शेषिणि ब्रह्मण्यशेषे शेषरूपिणः।
सर्वानश्नुते कामान् सह तेन विपश्चिता॥ (पञ्चरात्र रहस्ये)

अर्थ—कैवल्य मुक्ति को प्राप्त होनेपर मुक्तात्मा को उसके इष्टदेवके सब गुण समानरूपसे प्राप्त हो जाते हैं। केवल 'सर्वकर्तृत्व' यही एक गुण ब्रह्ममें विशेष है। जिससे उसे सर्व नियन्ता और सर्वातीत कहा जाता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मके सम्पूर्ण गुण मुक्त पुरुषको भी प्राप्त हो जाते हैं, जिनके सामर्थ्य से वह

---

[1] **धनवृद्धा वयोवृद्धा विद्यावृद्धास्तथैव च।**
ते सर्वे ज्ञानवृद्धस्य किंकराः शिष्यकिंकराः॥

कतिपय महानुभाव तो धनके मदमें अपने से विशेष किसी को नहीं समझते। कुछ सज्जन विद्याके अभिमान में चूर होनेके कारण अपनेसे अधिक किसी को मानते ही नहीं, तब किसका ज्ञान सुने। फिर ज्ञानी को इधर उधर की चमक, दमक, भी पसंद नहीं और न उससे किसी की खुशामद ही बन पाती है। ऐसी अवस्था में परम तत्त्व को बड़े-बड़े नहीं ले पावें, यह स्वाभाविक है। 'लघुतासे प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर। कीड़ी मिश्री खात है, हाथी फांकत घूर।" इसलिये परम तत्त्वसे बड़े-बड़े विद्वान और धनवान भी वंचित रह जाते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

परब्रह्म के साथ रह कर नाना प्रकार के ब्रह्मानन्दों का अनुभव करता है। इस प्रकार से कैवल्य मुक्ति में जीवात्मा को ब्रह्म समान ही सुविधा प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है।

कुछ सज्जन कैवल्य का अर्थ करते हैं केवल एकरूप हो जाना, वह भी घट सकता है। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' ब्रह्मतत्त्व को पाकर ही जब ब्रह्मरूप हो जाता है तब उसके धाम में पहुंच कर तो उसे और भी विशेष महत्त्व प्राप्त हो सकता है। सच तो यह है कि ब्रह्म में सभी भावों का समन्वय हो सकता है। तभी तो वह पूर्णात्पूर्ण कहा जाता है। परन्तु यह मुक्ति कैवल्य है अति दुलर्भ! "नानामार्गैस्तु दुष्प्राप्यं कैवल्यं परमं पदम्" वह नाना मार्गों से मिलती नहीं।

यह कैवल्य मुक्ति यों तो दिव्य ब्रह्मपुर (परमधाम) में ही मानी गई है। तथापि चतुष्पाद विभूति में जो मोक्ष प्राप्त होता है, उसे भी 'मुक्ति कैवल्य' कह सकते हैं। क्योंकि—

तमसस्तु परं ज्योतिः परमानन्दलक्षणम्।
पादत्रयात्मकं ब्रह्म कैवल्यं शाश्वतं परम्॥

(त्रिपाद वि० उप ४)

तस्मात्पादत्रयं परममोक्षः [1] पादत्रयं परमकैवल्यम् (त्रिपाद्विभूति उप ८)

---

[1] **पादत्रयेऽपि किं वक्तव्यं निरतिशयानन्दाविर्भावो मोक्ष इति मोक्षलक्षणं पादत्रये वर्तते** (त्रिपाद्वि० ८)

ब्रह्माजी के पूछने पर महाविष्णु कहते हैं। हे ब्रह्माजी! तीनों पादों के विषय में क्या कहना है। निरतिशय आनन्द के आविर्भाव का ही नाम मोक्ष होता है। ब्रह्मसृष्टि की कृपा से मोक्षसुख तीनों पादों में वर्तमान है। कारण :—

ततः शुद्धचिदानन्दब्रह्मविलासानन्दाश्चानन्तपरमानन्दविभूतय-
श्चानन्तवैकुण्ठाश्चानन्तपरमानन्दसमुद्रादयः सन्त्येव (त्रिपादविभूति० उप०)

जब शुद्ध चिदानन्द ब्रह्म के विलासों का आनन्द, अनन्त विभूति के परमानन्द, अनन्त वैकुण्ठों के अनन्त परमानन्द स्वरूप समुद्र वहां पर निरन्तर विद्यमान हैं, तब उसे कैवल्यपद कहते आपत्ति किस बात की? इसलिये तीनों पादों में भी कैवल्यमुक्ति व्यक्त मानना शास्त्र सम्मत है। परन्तु वस्तुतः 'मुक्ति कैवल्य' शब्द ब्रह्ममुनियों की मुक्तिको व्यक्त करता है। केवल शब्दका निर्वचन ही इस बात को स्पष्ट कर देता है कि—वहां पर द्वितीय प्रकार नहीं है। यथा—कं सुखं वलयतीति केवलः। बल संवरणे धातोः अच् प्रत्ययः। केवलस्य भावः कैवल्यम्। कं नाम सुख

Shri Prannath Ji Pustkalay

अव्याकृत स्वरूप प्रकृति जो सुमंगला की इच्छा शक्ति है उससे पर जो परम तत्त्व है, परमानन्द स्वरूप जो प्रकाश पुंज है, वह तीनों में यथाक्रम वर्तमान होनेसे तीनों पाद ब्रह्म स्वरूप हैं। तीनों पाद नित्य और कैवल्य स्वरूप हैं। इसलिये तीनों (सबलिक, केवल और सत्स्वरूप) पादों को ब्रह्म स्वरूप और परम कैवल्य स्वरूप माना है। परन्तु अवान्तर आनन्दातिरेक के कारण विभूति पादों में अतिशय ब्रह्मानन्द की विशिष्टता से स्वरूप भेद और नामभेद हो जाते हैं। इस कारण विभूति पादों का आनन्द दो प्रकार से भोगा जा सकता है।

नित्यसाकार

नित्यसाकारो मुक्तसाकारश्चेति (त्रिपाद वि० उ०)

मुक्ति दशामें दो प्रकारके स्वरूप माने गये हैं। नित्यसाकार और मुक्तसाकार। नित्य साकार उसे कहते हैं, जो आद्य अन्त रहित हैं। नित्यसाकार वाले आत्मा कभी संसार में आवें भी तो वे स्वरूपतः नहीं आ सकते। उन्हें तो केवल अन्तर्वृत्ति के द्वारा ही आना पड़ता है। अतएव वह आकार वहांपर एकसा ही बना रहता है। क्योंकि वह तो वहांपर नित्य अखण्ड विराजमान है।

मुक्तसाकार

दूसरा मुक्त साकार–तारतम्य ज्ञानसे जाग्रत होकर जो पवित्रात्मा उपासना द्वारा मोक्षको प्राप्त होनेपर नित्य कलेवर प्राप्त करते हैं, उसे मुक्तसाकार कहते हैं। यह कभी नाशको प्राप्त नहीं होता। परन्तु अखण्ड ज्ञान से इसके स्वरूप का आविर्भाव होता है अतः इसे मुक्त साकार माना गया है। वह [1] ऐच्छिक

किंवा आनन्द का है। जिस मुक्ति में सब कुछ आनन्द स्वरूप ही विद्यमान है, वही मुक्ति कैवल्यपद कहने योग्य है। सब कुछ आनन्दस्वरूप तो भूमा पद में ही प्राप्त हो सकता है। "यो वै भूमा तत्सुखम्" इस छान्दोग्य श्रुति में भूमा को ही अनन्त, असीम और अखण्ड सुख का भण्डार बताया है। भूमा वही हो सकता है जो सर्वातीत है, सबका नियन्ता है और सर्वोपरि है। अतः अक्षरातीत धाम को ही मुक्तिकैवल्य कहना प्रमाण संगत प्रतीत होता है।

[1] ऐच्छिक कहने का तात्पर्य है कि जैसी इच्छा हो वैसा ही उसका आकार हो जाता है। कभी अन्तर्ध्यान आदि की आवश्यकता हो तो वह निराकार भी बन जाता है। अप्रतिहत शक्ति होने के कारण उसकी इच्छामात्र से सब कुछ उपस्थित होता रहता है। क्योंकि—

Shri Prannath Ji Pustkalay

भी होता है। उसे जैसी जैसी इच्छा होती है उसी रूप में अनुभव करता है।

इस भांति त्रिभूति पादों में मुक्त पुरुषोंके विवध आकार हो जाते हैं। एक पादमें एक नित्यसाकार और एक मुक्तसाकार। इसी प्रकार चारों पादों के आठ आकार हो गये। चार आकार प्रथम के नित्य हैं, इसलिये उनकी मुक्ति प्रथम को मानी गई। जो उपासना के बल से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, उन्हें वहां पर पहुंचने पर मुक्तस्वरूप प्राप्त होता है, इसलिये उसे अन्त की मुक्ति भी कहते हैं। क्योंकि वहां पर पहले तो उनके परात्म स्वरूप थे नहीं, पश्चात ज्ञान के बल से प्राप्त हुए हैं। बस, इसलिये उन्हें अन्त के समय की आखिरी मुक्ति कह देते हैं। मुक्ति धाम में नित्यसाकार हैं, वे तो सदाकाल अनादि अखण्ड हैं ही, परन्तु जिन्हें मुक्ति होने के पश्चात् दिव्य कलेवर प्राप्त होता है एवं जिन्हें मुक्तसाकार कहते हैं, उनके भी आठ भेद हो जाते हैं। यथा:—

ब्रह्मविद्यासाकारश्चानन्दसाकार उभायात्मक साकाश्चेति (त्रिपाद्वि० उप. २)

सत्यकामः सत्यसंकल्पः (छां० ८–७–१)

स तत्र पर्येति जक्षन्क्रीडन् रममाणः (छां– ८–१२–३)

तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति(छां० ७–२५–२)

इत्यादि शतशः श्रुतियां मुक्तात्माको सत्यकाम, सत्यसंकल्प प्रतिपादन करती हैं एवं वह सर्वत्र स्वच्छन्द गति से लीला आनन्द विहार के द्वारा ब्रह्मानन्द को भोगता हुआ विचरता है। उसके सब मनोरथ सत्य होते हैं।' इस प्रकार लिखा है।

संकल्पाद्रेव तु तच्छ्रुतेः (ब्रह्मसूत्र ४–४–८)

व्यासजी भी प्रस्तुत सूत्र द्वारा श्रुतियों के उक्त अर्थ को पुष्ट करते हैं और मुक्तात्मा का स्वरूप मानते हैं। परन्तु—

'अभावं बादरिराह ह्येवम् (ब्रह्मसूत्र ४–४–१०)

व्यासजी के पिता पराशरका मत है कि मुक्तिदशा में शरीर तथा इन्द्रियों का अभाव रहता है। केवल मनोमात्र शरीर से ही सब कुछ भोगता है। यदि शरीर और इन्द्रियां होती तो "मनसैतान्कामान्पश्यन् रमते" (छां० ५–१२–५) इस श्रुति में मन से सब कामों को देखता हुआ रमता है, ऐसा क्यों लिखते। इसलिये मनोमय शरीर मानना चाहिये।

भावं जैमिनिर्विकल्पामनात्। (ब्रह्मसूत्र ४–४–११)

जैमिनि आचार्य कहते हैं कि मुक्तपुरुषको मन, शरीर तथा दिव्य इन्द्रियोंका योग होता है। यदि मुक्त पुरुषको मुक्ति में शरीरादिका अभाव होता तो "स एकधा भवति त्रिधा

Shri Prannath Ji Pustkalay

ब्रह्मसाकार—

ब्रह्मविद्या जो 'तारतम्य' ज्ञान है, उसके द्वारा जाग्रत होकर परमहंस दशामें विचरने वाले जीवनमुक्त पुरुष जब इस नश्वर कलेवरका त्याग करते हैं तो उन्हें मुक्ति-दशामें ब्रह्मधाम में जो नित्य-कलेवर प्राप्त होता है, वह ब्रह्मज्ञान की प्रबलतासे आविभाव पाता है, अतः उसे ब्रह्मसाकार अथवा ब्रह्मस्वरूप कहते हैं। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' वह ब्रह्मविद् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। अर्थात् उसके ब्रह्मस्वरूपमें सच्छक्ति चिच्छक्ति और आनन्दशक्ति तीनोंका प्राचुर्य रहता है।

भवति (छां० ७-२६-२)" एक विधका होना, अनेक विधका होना, त्रिविध हो जाना, यह सब बिना स्वरूप के नहीं घट सकता। इस लिये मुक्ति दशामें नित्य कलेवर प्राप्त होता है, ऐसा मानना श्रुति सम्मत है।

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः (ब्रह्मसूत्र ४-४-१२)

व्यासजी का मत है कि मुक्तिदशा में दोनों भाव हो सकते हैं। स्वप्न में स्थूल शरीर का अभाव होता है तथापि मनोमात्र शरीर से सब कुछ भोग भोगे जा सकते हैं। इसी प्रकार मोक्ष में नश्वर शरीर का अभाव होता है तथापि उसे एक प्रकारका दिव्य-कलेवर प्राप्त होता है, जिसे मुक्तसाकार कहते हैं। अतएव 'भावे जाग्रद्वत् (ब्रह्म ४-४-१४)' जब शरीर होता है तब जाग्रदवस्था की भांति भोग भोग सकता है।

तन्वभावे सन्ध्यवदुपपद्यते (ब्रह्म ४-४-१२)

—जब स्वरूप का अभाव होता है, तब केवल आत्मा से ही ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है। जिस प्रकार सुषुप्ति में शरीर का अभाव रहता है फिर भी आनन्द की प्राप्ति होती है। व्यासजी ने दोनों प्रकार की श्रुति पाकर दोनों बातें मान ली हैं। व्यासजी का कहना है जिस प्रकार द्वादशाह यज्ञ दोनों भाव धारण करता है और दो नाम भी हो जाते हैं। जब अनेक यजमानों से या साधनों से किया जाता है तब सत्र कहा जाता है। वही जब नियत यजमानोंके द्वारा सम्पादित होता है तब उसे 'अहीन' कहते हैं। इसी प्रकार मुक्ति दशा में मुक्तात्मा अन्तर्ध्यान आदि के समय निराकार भी बन सकता है एवं ब्रह्मानन्द को विविध स्वरूपों से तो भोगता ही है। इस प्रकार मुक्ति दशामें मुक्त पुरुषको दिव्य कलेवर प्राप्त होता है, यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। अब वह चाहे मनोमय हो अथवा सच्चिदानन्द मय हो, यह प्रश्न अलग रह जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

आनन्दसाकार—

आनन्द साकार—जो प्रेमी प्रेमलक्षणा भक्तिके उद्रेक से प्रेममें अधिक निमग्न बन जाता है। ब्रह्मके विरहमें विभोर होनेके कारण जगतके मिथ्या व्यवहार से पर दशा को प्राप्त हो जाता है। वह मुक्तिमें आनन्द साकार प्राप्त करता है।

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाती॥

(भागवत ११–१४–२४)

अपने प्रभुके प्रेममें जो विभोर है, जिसकी वाणीगद्गद रहे, चित्त द्रवीभूत रहे, नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा वहा करे। कभी हंसे कभी प्रियतम के प्रेम में निर्लज्ज की भांति गाने लगे, कभी नाचने लगे। इस प्रकार से ब्रह्मानन्द में निमग्न पुरुष धरातल को भी पवित्र बना देता है। एवं ब्रह्मानन्द का चिन्तन करते करते तन्मय होकर जो तनको त्यागता है, वह मुक्ति में आनन्द साकारको प्राप्त करता है। यह ब्रह्मसाकारकी भांति सदा अप्रतिहत शक्ति तो होता है, परन्तु श्रीकृष्ण के धाममें रासलीलादि को पाकर उसमें इतना निमग्न रहता है कि–अन्य प्रकारका मनोरथ उदय पाता ही नहीं। वह तो अपने प्रियतम की सेवाको ही परम धर्म मान चुका। इसलिये तो लीला–धाममें अन्य शक्तियों के समान नित्यलीला का पात्र ही बन जाता है। वह तो भूमाको प्राप्त हो जाता है। "भूमा वै तत्सुखं" वह तो अपने भूमा के स्वरूपानन्द से अपने को अलग पाये तब कहीं स्वतंत्र विचरे पर उसे तो वह स्थिति 'अपने भूमा' के स्वरूपमें विभोर रहने से फुरसत मिलने ही नहीं देती। अतएव लिखा है।

यदयं विरही जातो नित्यलीलाविहारिणि।
अक्षराभासमात्रत्वात् स्वस्यैव परमेश्वरे॥
तस्माद् वृन्दावने देवि! कूटस्थ हृदयङ्गमे।
लीलामनुभवन् तिष्ठेत् पुनरागति वर्जितः॥

(माहेश्वर तंत्रे २९)

शिवजी कहते हैं 'हे गिरिजे! इस भांति नित्य लीला विहारी ब्रह्मके स्वरूप में कदाच प्रेमाधिक्य बढ़ गया है, तो कूटस्थ अक्षरब्रह्म के हृदय मे नित्य अखंड वर्तमान वृन्दावनकी लीला का अनुभव करता हुआ वह जन्म मरणके बन्धन से रहित होकर अखंड वृन्दावन धाममें मुक्ति प्राप्त करेगा।'

Shri Prannath Ji Pustkalay

उभयात्मक मुक्तसाकार

उभयात्मक मुक्तसाकार [1] —जो पवित्र आत्मा ब्रह्म मुनियोंकी कृपा के पात्र बनकर तारतम्य ज्ञानके प्रकाश में आ पहुंचे हैं। जिन्होंने जाग्रत ज्ञान से आत्मा को ब्रह्मस्वरूप बना लिया है। 'भ्रमरकीट' न्याय से जो ब्रह्ममुनियों के स्वरूप के समान निर्मल अधिकारी बन गये हैं। जिन्होंने स्वयं जाग्रत होकर अन्य जीवों के जगाने की सेवा सिर पर ली है। जो तरण-तारण पादको अलंकृत कर जीवन को कृतार्थ बनाने में लगे हैं। जिन्होंने माया में भूले हुए जीवों को जाग्रत करने का ध्येय ले

[1] इस प्रकार मुक्ति के तीन स्वरूप सिद्ध हो गये। एक मुक्तसाकार। दूसरा नित्य साकार। तीसरा—उभयात्मक साकार। इन तीनों प्रकार के स्वरूपों में यद्यपि मुक्तिदशा में कोई भेद प्रतीत नहीं होता है। जो जिस स्वरूप में है, अपने को पूर्णात्पूर्ण होने का अनुभव कर रहा है, तथापि तीनों आकार लीला वैचित्र्यकी सिद्धि के लिये पृथक्-पृथक् भी माने जाते हैं। इस मुक्ति कैवल्य में समान लोक होने से सालोक्य मुक्तिका, समीप में रहकर सब प्रकार के आनन्दका अधिकारी होने से सामीप्य मुक्ति का एवं नित्य अखंड समान योग प्राप्त हो जाने से सारूप्य और समान योग—शक्ति सामर्थ ब्रह्मानन्द लीला में समान योग प्राप्त होने से सायुज्य मुक्ति का आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार से इस एक ही मुक्ति में चारों मुक्तियों से विशेष विलक्षण ब्रह्मानन्द प्राप्त होने से इसे कैवल्य मुक्ति कहते हैं। और चारों प्रकार के आनन्द का योग रहने से यह सर्वोत्तम मानी गई है।

द्वादश द्वादशानन्दा इति (तैत्तिरीय)

परमधाम में ब्रह्मसृष्टि को हजारों प्रकार के द्वादश—बारह आनन्द प्राप्त होते हैं, अतः उन्हें द्वादश सहस्र भी कहते हैं। चार प्रकार का आनन्द मुक्तिसाकार का, चार प्रकार का आनन्द नित्याकार का और चार प्रकार का आनन्द उभयात्मक मुक्तिसाकार का। इस प्रकार तीनों स्वरूपों के आनन्द को मिला कर बारह प्रकार का हो जाता है। इसी को श्रुति ने 'द्वादश' शब्द से सूचित किया है, जो मनन करने योग्य है। ये ही विविध आकार त्रिपाद् विभूति में उपरोक्त चार-चार प्रकार के आनन्दों को भोगते हैं। परन्तु परमधाम सबका केन्द्र और मूल स्वरूप होने से वहां पर सब एकत्र ही विद्यमान हैं। त्रिविध स्वरूपों के आनन्दों की संख्या बारह होती है। वह आनन्द परमधाम में सहस्रों की संख्या में मिलता है, अतः वह सब बारह हजार भी कहा जाता है। वस्तुतः वह संख्यातीत होने से अनन्त, अपार और बेसुमार है। केवल समझने के लिये संख्या का विधान है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

कर एक एक श्वासको करोड़ों के वदले में लगाकर अखण्ड पदको खरीद लिया है। जो परस्वार्थ और परमार्थमय जीवन व्यतीत करने में लगे हैं। एवं—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ।।
(भागव० ११)

जो निरपेक्ष (स्पृहा रहित) होकर संसार में राग द्वेष से पर दशामें विचर रहे हैं। सबको निर्वैरः भावसे देखने वाले, शान्त स्वभाव, सब प्राणी मात्रके हितमें लगे हैं। उनकी चरण—रजके लिये तो 'हे उद्धव जी, मैं (भगवान श्रीकृष्ण) भी तरसता हूं। ऐसे जीवन्मुक्त पुरुष तो अपनी ब्राह्मी स्थिति को भोगने के अनन्तर जब शरीर त्याग करते हैं सत्स्वरूप में जाकर उभयात्मक मुक्तसाकार प्राप्त करते हैं। जिसके द्वारा चिद्घन राशिका आनन्द और आनन्दघन राशि का आनन्द सत्स्वरूप में होकर प्राप्त करते हैं। इस तीसरे मुक्तसाकार का आनन्द उत्तरोत्तर पूर्व आकारों से विशिष्ट होता है। इस प्रकार श्रुतियों में वर्णन मिलता है।

"मुक्ता मुमुक्षुविषयी त्रिधा जीवाः [1] प्रकीर्तिताः ।
पारमार्थिक मुक्तात्मा परे धाम्नि विराजिताः ।।"

---

[1] जीवात्मा के स्वरूप को शास्त्रकारों ने विविध प्रकार से माना है, जो मनन करने योग्य है। इसका कारण यह है कि—एक महान पुरुष ने किसी कोटि के जीवात्मा का विचार किया है तो दूसरेने अन्यकोटि के जीव के स्वरूप को वताया है। किसीने नित्य कोटिके जीवों के स्वरूप को समझाया है तो किसीने अनित्य कोटिके जीवों के स्वरूप पर विचार किया है। अतएव मतभेद हो जाना स्वाभाविक है, परन्तु इस परसे उनके विचारों का मूल्य कम नहीं होता। जब वे विविध प्रकार के जीवोंके स्वरूप को प्रतिपादन करते हैं तब सबका एक मत किस प्रकार हो सके, अतएव परस्पर मतभेद मिलता है। यथा—

(क) 'प्रतिबिम्बा एव जीवा इति कथ्यन्ते।'
(ख) अन्तःकरणोपाधिकाः सर्वे जीवा इत्येवं वदन्ति।'
(ग) 'महाभूतोत्थ सूक्ष्माङ्गोपाधिकाः सर्वे जीवा इत्येके वदन्ति।
(घ) बुद्धिप्रतिबिम्बितचैतन्य जीवा इत्यपरे मन्यन्ते।'

जीवों के स्वरूप लक्षण :—

(क) जीवों को प्रतिबिम्ब स्वरूप ही मानना चाहिये।

Shri Prannath Ji Pustkalay

"बद्धमुक्त अरु नित्यमुक्त, हैं बद्ध – मुमुक्षु बखाने ।
नित्यमुक्त आधार सर्वदा, अक्षर प्रकृति प्रमाने ।।
आदिशक्ति हरि हर विधि ईश्वर, बद्धमुक्त शिवसंगा ।
इन अवतारन में करि भक्ती, ते मुमुक्षुकर अंगा ।।
चार खानके बद्धजीव, जे ते चौरासी मांही ।
साधन जिनको एक प्रेम, ते या गिनती में नाहीं ।।" (वृतान्त मु०)

व्रजभूषणजी जीवों की विविध कोटियों का वर्णन करते हुए उपरोक्त पद्यों में इस विषय को बड़ी सूक्ष्मता के साथ उपस्थित कर रहे हैं। नित्यमुक्त, बद्धमुक्त, तथा बद्धमुमुक्षु एवं बद्ध जीव और विषयी–इस प्रकार पांच कोटि के जीव विश्व में एकत्रित हैं। छठे प्रकारका सूत्रात्मा कहा जाता है। यदि सूत्र आत्माको भी इनके साथ जोड़, दिया जावे तो उक्त जीवों की ६ कोटियां हो जाती हैं। परन्तु जो ब्रह्मसृष्टि हैं जिन्हें ब्रह्ममुनि, शाश्वती समा, सन्मूला, सदायतना आदि नामों से वेद शास्त्रों में लिखा है, वे इन पूर्वोक्त ६ कोटियों से अलग हैं जो प्रेम स्वरूपा हैं, प्रेममय ही जीवन बिताते हैं। जिनके सब साधन प्रेममय हैं। जो स्वयं प्रेममय होने से ब्रह्मस्वरूप हैं। अतः इन्हें ब्राह्म कहते हैं।

(ख) अन्तःकरण की उपाधि के कारण सबको जीव कहते हैं।

(ग) महाभूतोंसे समुत्थित सूक्ष्माङ्गकी उपाधिका ही नाम जीव है। ये सम्पूर्ण जीव सूक्ष्माङ्ग की उपाधिवाले हैं, इस प्रकार कुछ विद्वान मानते हैं।

(ग) कुछ विद्वानोंका मत है कि जिस भांति स्वप्न में मन अनन्त रूप हो जाता है उसी प्रकार नारायण का चेतन ही कल्पना बुद्धि से अनन्त जीव रूप हो गया है।

'जगद्द्रष्टा चिदाभासो मुमुक्षुः प्रातिभासिकः ।
विषयो जीवसंसारी व्यावहारिक संज्ञकः ।।
अनात्मा प्रतिबिम्बाख्योऽप्यनित्यो माययोद्भवः ।'
ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।।

इत्यादि गीता में इसे अंश कहा है, परन्तु अन्यत्र इसीको 'परा' प्रकृति भी कह दिया है।

अंशो नानाव्यपदेशात् (ब्रह्मसूत्र २–३–४३)

ब्रह्मसूत्र में व्यास जी कहते हैं कि चेतन के टूकड़े नहीं हो सकते क्योंकि वह व्यापक ब्रह्मस्वरूप है। प्राणी मात्र के शरीरों की भिन्नता देखके उसे अंश कह दिया है। कुछ आचार्य इसे व्यापक मानते हैं तो कुछ परिच्छिन्न मानते हैं। इस प्रकार जीवों के विषय में मतभेद हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

स्वप्रकाशमनिर्वाच्यं [1] ह्यात्माद्वैतनिवर्तकम् ।
विकल्पातीतमानन्दं प्रेम ब्रह्मैव केवलम् ।।

प्रेम स्वयं स्वरूप का प्रकाशक होते हुए भी अवर्णनीय है। आत्मा के साथ जो द्वैत (माया) का संसर्ग लगा हैं, उसे हटा देता है। किसी प्रकार का विकल्प इस में नहीं है, अतएव इसे विकल्पातीत कहते हैं। अथवा विकल्प नाम है उत्पत्ति विनाशशील संसार का। प्रेम संसार से पर है अतः उसे विकल्पातीत कहते हैं। आनन्द स्वरूप प्रेम ब्रह्मका ही रूप है। प्रेम और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं बल्कि प्रेमके द्वारा प्रेमस्वरूप ब्रह्मको ही प्राप्त किया जाता है। इसलिये प्रेम लौकिक लक्षणों से पर होने से विलक्षण भी क्यों न हो ? जो ब्रह्म है वह तो विलक्षण होगा ही। जब वह स्वयं ब्रह्मरूप है तब उसमें सब कुछ घट सकता है। तथापि द्वैत से पर की वस्तु है, अतः वाक्यसुधा में लिखा है:—

अपने सिद्धान्त में उक्त सब बाते घट जाती हैं। कारण जीवों की विविध कोटियां हैं। कुछ अंश रूप भी हैं। कुछ प्रतिबिम्ब रूप भी हैं। अन्तकरण परिच्छिन्न भी हैं। और बिनाअन्तकरण वाले भी हैं। अतः सबका समन्वय हो सकता है।

[1] अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नामनान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनौ ।। (भाग०)

प्रेमस्वरूप परमात्मा को जिसने अपना लिया, उसके लिये बन्धन और मोक्ष दोनों केवल नाम मात्र हैं। जिस प्रकार सूर्य के पास न रात्रि है, न दिवस है। रात्रि और दिवस की संज्ञा तो सूर्य से दूर प्रदेश में रहने वाले मनुष्यों के लिये है। जो सूर्य के पास ही प्रदेश में वर्तमान है. उसके लिये रात्रि और दिवस, दोनों ही मिथ्या हैं। उसी प्रकार जिसने नित्य चेतनघन ब्रह्म प्रेमस्वरूप को अपना लिया, प्रेम के प्रकाश में पहुंच गया, वह तो केवल ब्रह्म स्वरूप हो गया, उसके लिये माया का बन्धन कैसा। जब बन्धन ही नहीं तो फिर मोक्ष किससे पावे ? अतः शास्त्र में लिखा है।

बन्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् (भाग० ११—११)

ब्रह्मस्वरूप ब्रह्ममुनियों को न बन्धन है न मोक्ष। जब वे बन्धन को मायामूलक समझ कर उसमें बंधते ही नहीं तब छूटें क्या ? अतएव ब्रजभूषणजी लिखते हैं कि जिन्होंने प्रेम को पकड़ कर अपने को तन्मय बना लिया है, वे आत्मा जीवकोटि में हैं ही नहीं, फिर उनकी गणना क्या करना।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश–पंचकम् ।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ।।

"अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप, इन पांचों में प्रथम के तीन 'अस्ति भाति और प्रिय' ब्रह्म रूप हैं और अन्तिम दो नाम और रूप, ये जगत स्वरूप हैं, ऐसा लिखा है। जब 'प्रिय' शब्द वाच्य पदार्थको ब्रह्म स्वरूप माना है, तो उसी प्रियके भाव को (प्रियस्य भावः प्रेमा) प्रेम कहते हैं। इस प्रकार देखा जावे तो प्रेमको ब्रह्मस्वरूप ही पाते हैं। जो ब्रह्म स्वरूप है, वही दूसरे को भी ब्रह्म बना सकता है। भ्रमरी जिस प्रकार कीट को भी अपना स्वरूप प्रदान कर देती है, उसी प्रकार प्रेम अब्रह्म स्वरूप अनित्य जीवों को अथवा चिदाभास मात्र जीवों को ब्रह्म स्वरूप बना देता है। इसीलिये व्रजभूषण जी ने लिखा है कि 'जिनका साधन साध्य सब कुछ एक प्रेम ही है, वे जीवों की कोटि से पृथक् हैं, उन्हें जीव कोटि में किंवा बद्ध-मुमुक्षु के हिसाब में नहीं गिनना। परन्तु इस प्रेम का उदय कब होता है, जब अखंड तारतम्य ज्ञान का पूर्ण प्रकाश आत्मा में आ जावे तब। प्रकाश आत्मा में कब भरता है, जब आत्मा जाग्रत होकर अपने मूलत्वरूप को देखने लगता है एवं माया को भूल जाता है अथवा त्याग देता है। यथा—

दुर्बलत्वादविद्यायाः प्राबल्याद्बोधरूपिणः ।
शब्द शक्तिरचिन्त्यत्वादविद्याऽस्तं मोहहानतः ।। (वार्तिक कार)

माया के वेग को अथवा मोह ममता को [1] जाग्रत ज्ञान के बल से जब दबा दिया जाता है अथवा तारतम्य की यथार्थ अनुभूति (ज्ञान) से माया निरस्त

---

[1] 'जाग्रत शब्द धनी के ततछिन करें मकसूद ।
सोई शब्द लिये बिना होय जात नाबूद ।।'

स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिस्तद् भ्रंशोऽहंत्ववेदनम् ।
शुद्धसन्मात्रसंवित्तेः स्वरूपान्न चलन्ति ते ।।
यः स्वरूपपरिभ्रंशश्चेत्यार्थे चिति मज्जनम् ।
एतस्मादपरो मोहो न भूतो न भविष्यति ।।

इस विश्व में स्वप्नावस्था और जाग्रदवस्था—इस प्रकार दोनों का अनुभव होता है। किसी अवस्थान्तरका ज्ञान न होने का नाम ही स्वप्नावस्था है। जिसमें स्वप्न और जाग्रदवस्था दोनों का भी ज्ञान हो वह जाग्रदवस्था मानी जाती है। यह जाग्रतवस्था लौकिक अलौकिक भेद से दो प्रकार की होती है। लौकिक जाग्रदवस्था में नित्य प्रति होने वाले स्वप्न का

Shri Prannath Ji Pustkalay

हो जाती है, तब श्री तारतम सा० के जाग्रत शब्द अथवा सद्गुरु का अनुभवात्मक ज्ञान अपनी अचिन्त्य शक्ति से पवित्र जीवों के हृदय को ब्रह्ममय बना देता है। जब हृदय में ब्रह्मभावका उदय होने लगता है, तब चिदाभास—चेतन जीवात्मा को ब्रह्मस्वरूप प्राप्त करने के लिये विशेष निर्विशेष सापेक्ष नहीं रहता, वह तो स्वयं ही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। यह स्वरूप उसे सद्गुरु कृपा से तारतम्य द्वारा प्राप्त होता है, अतएव इसमें किसी प्रकार का विकल्प नहीं होता। इसलिये इसे उभयात्मक मुक्तसाकार कहते हैं। यह स्वरूप दोनों प्रकार के आकार (ब्रह्मरूपाकार और आन-

---

तथा इस विश्वरूप जाग्रदवस्था का ज्ञान होने से इसे लौकिक जाग्रदवस्था कहते हैं। एवं जिसमें इस विश्व का भी ज्ञान रहे, और अपने स्वप्न का भी ज्ञान रहे, एवं परमधाम का भी यथार्थ ज्ञान हो, तो वह अलौकिक जाग्रदवस्था है। लौकिक जाग्रदवस्था में अपने स्वप्न का ज्ञान रहता है परन्तु स्वप्न के प्रति मोह ममता नहीं रहती, उसी प्रकार जाग्रदवस्था में इस विश्व के पदार्थों के प्रति स्वप्नवत् भाव हो जाता है। और परमधाम के प्रति आत्मीय भाव हो जाता है। यह विश्व स्वप्नवत् मिथ्या प्रतीत होने लगता है परन्तु यह दशा भाग्यशाली पुरुष को ही प्राप्त होती है। जो यहीं से जाग्रत हो चुके हैं, जिन्होंने विश्व को मिथ्या समझ परमधाम के सम्बन्ध को अपना लिया है, वे ही धन्य और भाग्यवन्त पुरुष हैं।

'इतहीं बैठे घर जागे धाम, पूर्ण मनोरथ हुए सब काम'

अपने स्वरूप में स्थित हो जाना ही तो मुक्ति है। जो उसे नहीं पा सका, वह अहंकार के वश में पड़ा है और अपने स्वरूप से च्युत हो रहा है। बस, यही स्वप्न अवस्था है।

स्वप्नं मनोरथं चेत्यं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ।
तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ (भाग० ११–२२)

स्वप्न को देखने वाला यह नहीं जानता—मैं स्वप्न देख रहा हूं। उसे तो यही प्रतीत होता है कि मैंने ऐसा कभी देखा ही नहीं। यद्यपि स्वप्न में पूर्व दृष्ट पदार्थों को ही स्मरण करता हुआ नवीन सृष्टि को देखने लगता है तथापि उसे प्रतीत होता है कि ऐसा इसके पूर्व कभी नहीं देखा। परन्तु जाग्रतदस्था इससे विपरीत है, उसमें स्वप्नका भी ज्ञान रहता है और जाग्रत का भी। अज्ञानी मनुष्य इस दृश्य विश्वके पूर्व भी कुछ था अथवा इसके अनन्तर भी कुछ होगा, इस पर विश्वास नहीं रखता, अतः उसे स्वप्नदशा वाला माना जाता है। ज्ञानी इस विश्वको स्वप्नवत् मानते हुए परलोक पर विश्वास रखता है और आत्मतत्त्व को अपनाता है, अतः उसको जाग्रत माना गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

न्दाकार) का सामर्थ्य और आनन्दातिशयका उपभोग प्राप्त करनेमें पूर्णात्पूर्ण समर्थ होता है। अतः इसे उभयात्मक मुक्तार कहा गया है।

इस प्रकार देखा जावे तो श्रुतियों ने मुक्तात्माओं के जो त्रिविध स्वरूप प्रतिपादन किये हैं, वे ही सब मिलकर आठ प्रकार के मुक्ति स्वरूप हो जाते हैं। कारण चतुष्पाद विभूति के प्रत्येक पाद में मुक्तधामों का वर्णन मिलता है। इसलिये "जीवन मुक्ति आठ विध दीन्हीं" की उक्ति चरितार्थ होती है। वह नीचे लिखे अनुसार है।

सत्स्वरूप में सत् चिद् तथा आनन्द, इन तीनों भावों का पूर्ण उदय है, अतएव किसी प्रकार का भेद नही रहता, तथ पि अधिष्ठान भेदको लेकर स्वरूप भेद मान लिया गया है। अतएव सत्स्वरूप में दो प्रकार के मुक्तात्माओं को अखंड पद प्राप्त होगा, ऐसा लिखा है।

केवलधाम में तो केवल रसानन्द की ही निरन्तर अव्यिक्ति होती है, अतः वहांपर भी विविध भावोंका अभाव होने से त्रिविध मुक्त स्वरूपोंका वर्णन नहीं है। अतः केवल धाम में रासलीलाके अखंड होनेका जो वर्णन किया है वह भी सबलिक धाम में ही विद्यमान है परन्तु 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' इस सिद्धांत को मानकर उसे केवलधाम में ही मान लिया गया है। क्योंकि रास की मुक्तिमें ब्रह्मानन्द का प्राचुर्य होने पर भी अतिशय अभिव्यक्ति रसानन्द की ही है। यही कारण है कि उसका नाम भी 'रास' ही रखा गया है। रसों के समूह को ही रास कहते हैं। रसाणां समूहो रासः। 'तत्र समूहे अण् प्रत्ययः'

हां, सबलिक धाममें उक्त 'मुक्ताकार' और 'आनन्दाकार' एवं उभयात्मक अखंड स्वरूप हो सकते हैं। अतः प्राणनाथ प्रभु ने उक्त तीनों स्वरूपों के मुक्ति धामका वर्णन सबलिक में किया है। अव्याकृत में आनन्द की पूर्ण अभिव्यक्ति न होनेसे आनन्दाकार का अभाव रहता है तथापि प्रातिभासिक आनन्द प्राप्त होता है अतः यहां भी त्रिविध स्वरूपों के अखण्ड होनेका वर्णन किया है। इस भाँति परिगणन करनेसे अव्याकृत में तीनों स्वरूपो के अखण्ड होने का एवं सबलिक में दो प्रकार के स्वरूपों को अखण्ड होने का उल्लेख ठीक है। केवल में एक ही स्वरूप माना है, जो रासलीला को मुक्ति के नाम से सबलिक में हो अखण्ड विद्यमान है। पर उसकी गणना [1] केवल में की है। अब रहा सत्स्वरूप उसमें

[1] रासलीला के आनन्द को पूर्णब्रह्म के आनन्द के समान महत्त्वपूर्ण बनाने के लिये उसे केवलधाम की अधिदैव सामग्री पर योग शक्ति के द्वारा अभिव्यक्त किया गया था। इसी कारण उसे केवलधाम के नाम से ख्याति प्राप्त है। परन्तु उस महारास को अखण्ड होने का सौभाग्य अक्षर ब्रह्म की बुद्धि द्वारा प्राप्त हुआ है, अतएव उसे बुद्धि स्थानीय मान लिया है। जो रास बुद्धि द्वारा बसाया—अखण्ड किया है वह अखंड वृन्दावन में नित्य उदित है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

त्रिविध स्वरूपों का भेद तो हो नहीं सकता । क्योंकि—वहां पर सत, चिद् और आनन्द, तीनों ही भाव पूर्ण वर्तमान हैं । तथापि अधिष्ठान भेदके कारण स्वरूपों में दो भाव माने गये हैं, जो ब्रह्मसृष्टि का अधिष्ठान और कुमारिकाओं की मुक्तिके नामसे पुकारे जाते हैं पर वस्तुतः स्वरूपोंमें किसी प्रकार का भेद नहीं होता ।

मुक्तात्माओं के इन्हीं स्वरूप भेदों को लक्ष्यमें रखकर प्राणनाथ प्रभु ने जीवों के लिये आठ प्रकार की मुक्ति का उल्लेख किया है । यद्यपि प्राणनाथ प्रभुके वर्णनकी शैली और दृष्टिकोण पृथक् है, जो मनन करने योग्य है । परन्तु यहां पर तो केवल इतना ही बताना था कि मुक्तिके आठ प्रकार आज तक किसीने नहीं लिखे. तब निजानन्द संप्रदाय आठ प्रकारकी मुक्तिका प्रतिपादन किस प्रकार करता है । मुक्ति विषय में प्राणनाथ प्रभु का दृष्टिकोण है कि—जबतक उपासना में और उपास्य देव—इष्ट में कुछ अन्तर नहीं होगा, तब तक मुक्तिके स्वरूपों में आकार भेद किस प्रकार हो सकता है । इसलिये उन्होंने मुक्तात्माओं के उपरोक्त आकार भेदको उपास्य तत्त्व और उपासनाके[1] आधार पर माना है । जो वस्तुतः महत्त्व पूर्ण और संगत प्रतीत होता है ।

---

[1] माना कि—श्री कृष्ण के भक्तों को साधारणतया एक ही (कृष्णभक्त) कोटि में रख सकते हैं, तथापि उनके ध्येय में अन्तर हो जाता है । कारण, श्री कृष्ण के स्वरूप का वास्तविक तत्त्व त्रिविध रहस्यपूर्ण है । अतः जिस तत्त्व को ध्येय मानकर ध्यान किया जायेगा वही तत्त्व हमें प्राप्त होगा । श्रीकृष्ण के स्वरूप में नीचे लिखे तीन भेद हैं । यथा—

पूर्णब्रह्म स्वरूपोऽयं शिशुस्ते मायया महीम् ॥ ४७
आगत्य भारहरणं कर्त्ता धात्रा च सेवितः ॥
गोलोकनाथो भगवान् श्रीकृष्णो राधिकापतिः ॥ ४८
नारायणो यो वैकुण्ठे कमलाकान्त एव च ॥
श्वेतद्वीपनिवासी यः पिता विष्णुश्च सोऽप्यजः ॥ ४९
कपिलोऽन्ये तदंशाश्च नरनारायणावृषी ।
सर्वेषां तेजसां राशिः मूर्तिमानागतः किमु ॥ ५०

(ब्रह्मवैवर्त्त पु० कृष्ण० खं अ० १६)

उक्त प्रकार से श्रीकृष्ण के स्वरूप में त्रिविध भेद पाया जाता है । अब जो ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण को भजने वाले हैं, वे तो ब्रह्मरूप श्रीकृष्ण के धाम को प्राप्त होंगे । जो गोलोकनाथ श्रीकृष्णके स्वरूप के भक्त हैं वे गोलोक धामको प्राप्त करेंगे, परन्तु जो कृष्ण विष्णु का भेद नहीं मानते अथवा विष्णु स्वरूप श्रीकृष्णके भक्त हैं, वे विष्णुरूप श्रीकृष्ण के धाम को ही प्राप्त कर सकते हैं,ब्रह्मधाम को नहीं । क्योंकि उनकी दृष्टिमें परब्रह्म तत्त्व है ही नहीं । इस कारण, भगवान

Shri Prannath Ji Pustkalay

"यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।। (गीता)

जिस-जिस स्वरूप का ध्यान करते हुए अथवा जिस-जिस भाव को स्मरण करते हुए मनुष्य कलेवर को छोड़ता है उस-उस भाव से भावित अन्तःकरण उसके जीवात्मा को उसी तत्त्व की ओर प्रेरित करता है। 'या मतिः सा गतिः' जैसी बुद्धि अन्त समय होती है उसी के अनुसार गति भी होती है, यह तो सिद्धांत ही माना गया है, परन्तु फिर भी ध्येय मनुष्य के लिये अधिष्ठान का निश्चय करता है। जब तक हमारा ध्येय सुनिश्चित नहीं, ध्यान तो निश्चित होगा ही किस प्रकार ?

इसी आदर्श को लेकर तारतम्य सागर में प्राणनाथ प्रभु ने आठ प्रकार की मुक्ति का निर्देश किया है। जो आत्मा उत्तम कोटि का नहीं है, वह उत्तम कोटि के परमहंसों की उत्तमता को नहीं धारण कर पाता। जो जीव बद्धमुक्त किंवा बद्ध मुमुक्षु हैं, वे नित्य मुक्त परमहंसों के लक्षणों से युक्त नहीं बन पाते। यही कारण है कि उनकी उपासना और ध्यान में कुछ रूपान्तर हो जाना स्वाभाविक है। जिस प्रकार लोक में एक बालक किसी लाठी का प्रयोग करता है तो उसकी चोट उतनी नहीं लगती, जितनी चोट उसी लाठी के द्वारा एक बलवान पुरुष पहुंचा सकता है। यहां लाठी दोनों की एक होते हुए भी शक्ति भेद के कारण फल में भेद हो जाता है, उसी प्रकार मन्त्र एक ही हो, ज्ञान एक ही हो, सम्प्रदाय एक ही हो, तथापि शक्ति भेद के कारण स्वरूप भेद होना माना गया है। ज्ञान-शक्ति, मन्त्रशक्ति, ध्यानशक्ति, क्रियाशक्ति, प्रेमशक्ति, विज्ञान-शक्ति और आत्मशक्ति में स्वरूप भेद विद्यमान है। उसी प्रकार उसके फल में भी विविध भावों का स्थान दिया है। ब्रह्मसृष्टि के ध्येय में अथवा परम पद में कोई अन्तर नहीं माना गया, परन्तु जो आभास-मात्र जीव हैं, जिनका नित्य दिव्य आकार प्रथम से नहीं है, उनके लिये तो मुक्ति में उक्त आठ भेदों को मानना ही पड़ेगा।

गीता में आदेश करते हैं कि जो जिस-जिस भाव को स्मरण करते हुए अन्त समय शरीर त्याग करेगा वह उसी भाव को प्राप्त होगा। इसलिये एक कृष्ण के भक्तों में ही त्रिविध भाव हो जाता है, तब अन्य भक्तों की कौन कहे ? अतः भावना के अनुसार त्रिपाद् विभूति में भी स्वरूप भेद हो सकते हैं। जब स्वरूप भेद है तब समझने के लिये नाम भेद भी मानना चाहिये। अतः प्राणनाथ प्रभु जीवों की मुक्ति को आठ प्रकार की वर्णन करते हैं, जो मनन करने योग्य है।

इति श्री सद्धर्मसिद्धान्तवागीश श्री कृष्णदत्तशर्मशास्त्रिविरचिते विराटपट दर्शने, मोक्षनिरूपणं नाम त्रयोदश पर्व परिपूर्णम् ।।

Shri Prannath Ji Pustkalay

मोक्ष–सिद्धि

मोक्ष पर्व के पर्यालोचन से मोक्षधाम तथा परमधाम की महत्ता तो सिद्ध हो जाती है। परन्तु उसको प्राप्त करने का मार्ग भी सुगम, सरल और सर्वजन उपयोगी होना भी परमावश्यक है, जो प्रत्येक स्त्री पुरुष को जन्म–मरण के बन्धन से सदा के लिये मुक्त कर सके।

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥

भागवत (११–२०–६) में श्री कृष्ण उद्धव जी के प्रति कहते हैं 'हे उद्धव! मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये मैंने ज्ञानयोग, क्रियायोग, और भक्तियोग इस प्रकार त्रिविध योगोंका प्रतिपादन किया, इनके सिवा और उपाय नहीं है।

निर्विण्णानां ज्ञान योगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥ (भाग० ११-२०)

हे उद्धव! जिनको कर्म से वैराग्य प्राप्त हो गया है और संसार से विरक्तचित्त हो चुके हैं, उनके लिए तो ज्ञानयोग अनुकूल पड़ता है। जो मनुष्य कामना के वश में पड़े हैं और चित्त में विरक्त भाव का उदय नहीं होता और आत्म कल्याण चाहते हैं, उनके लिये क्रियायोग लाभदायक हो सकता है। कारण, माया को छोड़ना कठिन पड़ता है। मन की मलीनता कामनाको बढ़ाने में तो सहायभूत हो जाती है परन्तु कामना का त्याग नहीं हो पाता। ऐसे असमर्थ पुरुषों के लिये कर्म ही श्रेयस्कर हो सकता है। कर्मयोग के दो अर्थ होते हैं। एक तो शुभकर्मों का आचरण, और दूसरे योगक्रिया द्वारा अपने चित्त को वश में करना। शुभकर्मों का आचरण किया जावे, फलकी आकांक्षा न रहे, केवल सेवाभाव को लक्ष्य रखकर लोकोपकार के लिये कर्म किये जावें, तो किसी प्रकार उनका महत्त्व कम नहीं होता। अतएव भगवान (गीता ५–२) में कहते हैं :—

संन्यासः कर्मयोगश्च [1] निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥

---

[1] आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥
उच्च तत्त्व की प्राप्ति के लिये निष्काम कर्म और योगी के लिये शम विशेष अच्छा है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

—संन्यास और कर्मयोग दोनों ही कल्याण प्रद हैं, परन्तु संन्यासकी अपेक्षा कर्मयोग विशेष महत्त्व रखता है। कारण, कर्मयोगी लोकहित अधिक प्रमाण में साध सकता हैं। तथापि त्यागको महत्त्व शून्य नहीं कह सकते। क्योंकि–'ऋते: ज्ञानन्न मुक्ति:' तरति शोकमात्मवित् (छां), वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था: संन्यासयोगाद्यतय: शुद्धसत्त्वा: (कैवल्य), इत्यादि श्रुति और "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय" (यजु) इत्यादि वेदमंत्र इस बातको दृढ़ताके साथ प्रतिपादन करते हैं कि–बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं मिलती। उस ब्रह्मके स्वरूप को जाने विना मृत्यु को नहीं जोता जा सकता। स्मृतियां तो मुक्त कण्ठसे चिल्लाती हैं कि ज्ञान ही सब कुछ है :—

नाश्रमः कारणं मुक्तेः दर्शनानि न कारणम् ।
वृथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम् ॥
न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्रपठनादपि ।
ज्ञानादेव हि कैवल्यं नान्यथा विनतात्मज ! (गारुड़े)

—'न आश्रम धर्मसे मुक्ति मिलती है। न दर्शनों के मननसे मुक्ति प्राप्त हो पाती है। इसके अतिरिक्त जप, तप, ध्यान, पूजा आदि जितने भी कर्म हैं, वे सब व्यर्थ हैं। मुक्तिके लिये तो एक ज्ञान ही साधन है। वेदाध्ययन से किम्वा शास्त्रों के पढ़ने से मुक्ति नहीं मिलती। 'हे गरुड़! केवल ज्ञानसे ही मुक्तिको प्राप्त किया जा सकता है, और कोई उपाय नहीं। इधर भगवान भी 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' ज्ञानी को तो अपने आत्मा के स्वरूपमें ही गिन लेते हैं। "तत्त्वमसि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मीति" इत्यादि महा वाक्योंको देखा जावे तो ज्ञान ही सब कुछ है. इस प्रकार सिद्ध होता हैं। परन्तु दूसरी ओर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञानकी कीमत अधिक से अधिक चुकाने पर भी परिणाम कुछ संशयशील ही प्रतीत होता है। कारण—

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।"
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त–चेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

इत्यादि गीता में ज्ञानी का मूल्य बहुत कुछ घटा दिया। एक तो अधिक क्लेश को सहन करते रहना और तिस पर भी बहुत जन्म जन्मान्तरों के अनन्तर अन्तमें जाकर कहीं ठिकाना लगता है। और भी देखें—

'ज्ञानमार्गैस्तु दुष्प्राप्यं कैवल्यं परमं पदम् ।
पतिताः शास्त्रजालेषु प्रज्ञया तेन मोहिताः ॥'

Shri Prannath Ji Pustkalay

अनिर्वाच्यं पदं वक्तुं न शक्यं तैः सुरैरपि ।
स्वात्मप्रकाशरूपं तत् किं शास्त्रेण प्रकाश्यते ॥ (योगत० उ०)
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया बहुना श्रुतेन । (मुण्डक)

—उपरोक्त श्रुति स्मृति को देखें तो ज्ञान का मूल्य बहुत न्यून प्रतीत होता है। जब ज्ञानके द्वारा कैवल्य पद नहीं मिलता, केवल जाल में ही लोगों को फंसा रखा है, तब तो ज्ञानको महत्त्व देना व्यर्थ सा ही हो गया। इसलिये शुकदेव जी (भाग० १०-१४-४) में कहते हैं

..... — क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्

—जो मनुष्य केवल ज्ञान के लिये क्लेश उठाते फिरते हैं, उन्हें परिणाम में कष्ट ही मिलता है और कुछ हाथ नहीं लगता। जिस प्रकार धान की भूसी कूटने वालों को परिश्रम के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लग पाता, वही दशा ज्ञान से मोक्ष प्राप्त करने वालों की होती है। गीता (६-४६) में भी—

'तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ! ॥

—'तपस्वी पुरुषों की अपेक्षा योगी उत्तम है। ज्ञानी पुरुषों से भी योगी अधिक अच्छा है। कर्म करने वालों से भी योगी उत्तम है, इसलिये 'हे अर्जुन! तू योगी हो जा।' इस प्रकार जरा ही देर के बाद ज्ञानी को महत्त्व शून्य बताकर अब योगी होने को सम्मति प्रदान करने लगे और फिर उसे (गीता ६-३१,३२) के अनुसार बहुत ऊंचा ले जा रहे हैं। यथा—

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

—जो प्राणीमात्र में एक भाव से मेरे को स्थित देखता है। वह कहीं भी और किसी अवस्था में रहता हो, परन्तु वह मेरे स्वरूप में ही लीन है। उसे मैं अपना लेता हूं। जो आत्मा के समान ही सर्वत्र देखता है, सुख और दुःख को

Shri Prannath Ji Pustkalay

सर्वत्र अपने दयालु स्वभाव से समान ही समझता है, प्राणीमात्र में आत्मभाव रखता है, वह सबसे श्रेष्ठ है, ऐसा मानता हूं। इस प्रकार निजमुख से योगी को महत्त्व देते हुए भी पुनः गीता (६–४५) में उसे अनेक जन्मोंके चक्करमें जानेका विधान भी कर रहे हैं। यथा—

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्ध किल्विषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

प्रयत्नपूर्वक यत्न करता हुआ योगी पापों को भस्म कर विशुद्ध बन जाता है, परन्तु अनेक जन्मों में यत्न करते–करते कहीं सिद्धि को प्राप्त होता है। तदनन्तर परम गति को पाता है। ज्ञानी की अपेक्षा योगी को उत्तम भी बताया और उसे अपने स्वरूपों में वर्तमान भी मान लिया फ़िर भी उसे अनेक जन्मों के चक्कर में डालकर जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाने की आशा को लम्बा दिया। प्रथम ज्ञान और योग एवं कर्म के अधिकारी पुरुषों का वर्ग निश्चित किया और उनको आत्मकल्याण का प्रलोभन भी दिया और अन्ततोगत्वा ज्ञान–मार्ग और योग मार्ग दोनों को तुच्छ बताकर मोक्ष की आशा भी छीन ली। इतना ही नहीं किन्तु ज्ञान, ध्यान, योग, जप, क्रिया, कर्म, संन्यास, सांख्य, त्याग, तप, सबको अकिञ्चित्कर भी प्रतिपादित कर दिया। यथा—

किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौल्क सावित्रयाज्ञिकैः ।
कर्मभिर्वा त्रयी प्रोक्तः पुंसोपि विबुधायुषा ॥
किम्वा सांख्येन योगेन न्यासस्वाध्याययोरपि ।
किम्वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः ॥

(भाग० ४–३१–१०,१२)

नारदजी प्रचेतसों के प्रति कहते हैं कि—हे प्रचेतस बन्धुओं ! ऐसे ब्राह्मणत्व को लेकर क्या किया जावे, जिससे परब्रह्म की प्राप्ति न हो। शुक्ल, सावित्र और[1] याज्ञिक कर्मों को लेकर भी क्या लाभ, यदि ये सब आत्मतत्त्व को प्राप्त

[1] वेद में कर्म के द्वारा नाना प्रकार के अनुष्ठानों का विधान है। अग्निहोत्र, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयज्ञ और सोमयाग, इस प्रकार पांच भेद हैं। इन्हीं को प्रकृति और विकृति भेद से दश प्रकार के यज्ञ मान लेते हैं। इनके अतिरिक्त अन्यभेद हैं वे सब इन्हीं के अन्तर्गत हैं। अतः यज्ञ के मुख्य भेद दश ही माने जाते हैं। यथा—

'ततो दशगुणः कृत्स्नो यज्ञोऽयं सर्वकामधुक् ।' (वि०पु)

Shri Prannath Ji Pustkalay

नहीं करा सकते। देवताओं के समान सहस्रों वर्ष की आयु भी मिल जावे और उससे परमात्मा न मिले तो देव शरीर ही किस काम का ? सांख्य, योग, संन्यास, स्वाध्याय आदि को लेकर भी क्या लाभ जब उनसे प्रभु ही न मिल सके ? इन सबकी सफलता तो परब्रह्म तत्त्व के प्राप्त होने पर ही है, अन्यथा ये सब व्यर्थ हैं।

योगी अथवा ज्ञानी, योग और ज्ञान के द्वारा ही मोक्ष मानते हैं। परन्तु प्रथम तो यह दृष्टिकोण अधूरा है। क्योंकि स्वयं श्रीकृष्ण भगवान ने ज्ञानी और योगी दोनों को ही अनेक जन्मों में जाकर कहीं फल मिलने का विधान किया है। दूसरे—योगी अथवा ज्ञानी किसी प्रकार मोक्ष को प्राप्त भी कर ले तो भी वह महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। कारण, कोई छात्र उच्च कक्षा में पढ़ता है। वह अपघात का भय बताकर अथवा किसी अन्य प्रकार का प्राण-त्याग आदि का सत्याग्रह करके परीक्षा में पास हो जावे या तो प्रिंसपल की दया का लाभ पाकर उत्तीर्णता प्राप्त कर लेवे, तो भी उसे योग्यता-हीन ही कहा जाएगा। इसी भांति योगी हठयोग से प्राणों की बाजी लगाकर अथवा ज्ञानी—सत्याग्रह करके अथवा अनशन व्रत लेकर मोक्ष का अधिकार प्राप्त भी कर लेवे तो उसे पुरुषार्थ नहीं कहा जा सकता। और फिर चारों पदार्थों के अनुभव से हीन उस मोक्ष से आवागमन का अभिप्राय हल नहीं हो पाता। मोक्ष तो वही प्रशंसनीय हो सकता है, जो सार्वजनिक मार्ग से प्राप्त किया जावे और सर्वजनोपयोगी हो।

किसी विद्यार्थी ने अपने पाठ्य क्रम के चार विषय ले रखे हैं तो उसे चाहिये कि वह चारों को उपयुक्त प्रमाण में उपस्थित रखे और चारों में यथेष्ट योग्यता प्राप्त कर लेवे। यह उसके स्वभाव की बात है कि वह किसी विषय में अल्प परिश्रम करके योग्यता प्राप्त कर ले और अन्य विषयों में विशेष श्रम उठाना पड़े। कभी-कभी प्रकृति के अनुसार भी विषय न्यून अधिक श्रम की अपेक्षा रखते हैं। किसी को इतिहास शीघ्र उपस्थित हो जाता है तो किसी को भूगोल। किसी-किसी को गणित सुगम पड़ता है। यह उसकी योग्यता पर निर्भर है कि किसी भी विषय को थोड़े परिश्रम से ही प्राप्त कर लेवे। परन्तु यह आवश्यक है कि चारों विषय यथेष्ट रूप में हृदयगत हों; अन्यथा वह उत्तीर्ण नहीं होगा। कदाच हुआ भी तो योग्यताहीन माना जायेगा।

बस, इसी प्रकार जीवात्मा के समक्ष—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पदार्थ उसकी परीक्षा के लिए उसे दिये गये हैं। इन चारों पदार्थों में से यदि एक भी पदार्थ अधूरा रह गया तो वह उत्तीर्ण हुआ नहीं गिना जा सकता। अतः मनुष्य का कर्तव्य बन जाता है कि वह चारों 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' नाम के जीवनउपयोगी पदार्थों को उदात्त योग्यता के साथ ग्रहण करें कि—उसे कभी अनुत्तीर्ण होने का दुःख न उठाना पड़े और चारों को प्राप्त कर लेवे। बस, यही परम पुरुषार्थ कहा गया है। अतएव शास्त्रों में लिखा है कि—

Shri Prannath Ji Pustkalay

धर्मार्थकाम मोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ।।

मनुष्य जीवन में–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पदार्थों में से यदि एक भी कम रह गया, अथवा उसे प्राप्त न किया जा सका तो मनुष्य जन्म बकरी के गलेके स्तन के समान निरर्थक गया, ऐसा माना है। जिस प्रकार बकरी के गले के स्तन न तो दूध के काम के, न किसी अन्य लाभ के, प्रत्युत बकरी को खींचने के काम में आकर दुखदाई सिद्ध हो जाते हैं; उसी प्रकार—'जिस मनुष्य ने धर्म, अर्थ और काम का सदुपयोग करते हुए अन्त में मोक्ष प्राप्त न किया, उसका जन्म भी बकरी के गलेके स्तन के समान अर्थहीन निरर्थक समझो–प्रत्युत भारभूत ही रहा, ऐसा माना है।

कदाचित् हठयोग से अथवा [1] संन्यास योग–सत्याग्रह से 'अनेक जन्म-संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्' के अनुसार अनेक जन्मों के अनन्तर मोक्ष प्राप्त, भी कर ले तो चारों पदार्थों के अनुभव से हीन उस मोक्ष से जीवात्मा के संसार में आने का अभिप्राय पूरा नहीं होता। क्योंकि यदि जीवात्मा के इस स्वप्न रूप मिथ्या विश्व के साथ सम्बन्ध न होता, कुछ स्वार्थ न होता, इसके साथ सरोकार ही न रखता, तो यह ब्रह्मधाम को छोड़ कर नश्वर विश्व में आता ही क्यों ? बस, इस अविनाशी आत्माका इसका स्वार्थ ही इस विश्व में ले आया है। अब जब तक इसका स्वार्थ पूरा नहीं हो जाता, यह कदापि वहां जाने के योग्य नहीं बन सकता।

'देखनको हम आये री दुनियां, हम ही कारण रच्यो ये संच।
पार हमारे न्यारा नहीं, हम पार में बैठे देखें प्रपंच ।। (श्रीतारतम सा०)

परब्रह्म के धाम से आने वाले ब्रह्म–मुनियों का तो यह दावा है कि–विश्व हमारे ही लिये रचा गया है और उसे हम ब्रह्मधाम में बैठे हुए यहां पर देख रहें हैं। बात भी ठीक है, यदि हमें इस स्वप्न से कुछ सरोकार न होता

[1] कुछ यति, संन्यास के द्वारा मोक्ष मानते हैं। संन्यास का अर्थ होता है विश्व के पदार्थों पर ममता न रखना, उन्हें परोकार में लगाते रहना। उन्हें मिथ्या समझ उनके पीछे अपने ध्येयको न भूलना, बल्कि उनको सदुपयोग में लेकर जीवन सफल बनाना। परन्तु आज संन्यास का अर्थ केवल कर्मों को छोड़कर भाग जाना किया जाता है। अतः संन्यासी वर्ग कर्तव्य को छोड़कर जीवन व्यर्थ करने में लगा है। परोपकार और दीन–हीनों को सदुपदेश न देकर उदासीन रहना ही ध्येय बना लिया है। योगी तो किसी को लाभदायक होता ही नहीं, किन्तु पक्का स्वार्थी बन जाता है, अतः ये दोनों ही उपयोगी नहीं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

तो हम यहां आते ही क्यों ? यदि इन चारों पदार्थों की इस आत्मा को आवश्यकता ही न होती तो इसके सामने यह सब इन्द्रजाल रचा ही किस लिये जाता ?

सिनेमा बनाया गया ही देखने के लिये है परन्तु सिनेमा देखने जावे और उसे सच्चा मान उसी के पीछे पड़ जावे, अथवा अज्ञानवश खुद ही सिनेमा का चित्र बन बैठे तो यह सिनेमा के दृष्टा का अज्ञान अथवा मोह है, जो उसके स्वरूप को यथार्थ नहीं समझ सकता। एक इन्द्रजालिक (बाजीगर) लोगों को खुश करने के लिये तमाशा दिखाया करता है, न कि उन्हें खेलको छोड़ कर भगाने के लिये। खेल भी देखो, खेलसे शिक्षा भी ग्रहण करो और अन्त में उस मिथ्या खेलके साथ मनको ललचाओ भी नहीं। क्योंकि वह मिथ्या है, केवल मनोरंजन के लिये है। सिनेमाके सभी चित्र सबके लक्ष्य में नहीं आते। अपनी-अपनी रूचि के अनुसार चित्रों को लक्ष्य में लिया जाता है।

बस, इसी प्रकार यह विश्व भी एक नाटक विज्ञान है। इसकी स्वप्न और जाग्रत इस प्रकार दो अवस्था हैं, जो मनुष्यों के सामने प्रतिदिन व्यतीत होती हैं। स्वप्न अवस्था जाग्रदवस्था के मोहमें न फँसने की चेतावनी दिया करती है। अये मनुष्यों ! स्वप्नके समान यह भी थोड़ी देर का नाटक है, इसे देखकर भूल मत जाना ! अन्यथा यह तुम्हें अपने जाल में फँसा चौराशी के चक्कर में ले जा पटकेगा। स्वप्न में जाग्रदवस्था का ज्ञान नहीं रहता, परन्तु जाग्रदवस्था में स्वप्न का ज्ञान[1] रहता है, यही इसको विशेषता है, इस तत्त्व को भागवत के एकादश स्कन्ध में पूर्णतया समझाया गया है।

इस विश्व रूप नाटक को देखते भी रहना और इसके साथ मोह भी न रखना, यह कब हो सकता है ? जब आत्मा जाग्रत बनी रहे और इस विश्व के मिथ्या आकर्षण को सिनेमा की भांति कल्पित और क्षणिक जानते हुए इसमें अधिक आसक्त भी न बने। क्योंकि यह तो केवल देखने की वस्तु है, उसमें आसक्त

---

1. स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ ।
तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ (भाग० ११-२२-४०)

स्वप्न में पूर्व जन्म का स्मरण नहीं रहता। यद्यपि आत्मा को जो कुछ भी प्रतीत होता है वह सब पूर्व का देखा सुना ही रहता है, तथापि स्वप्न में जाग्रत का स्मरण नहीं रहता और न उसे यही भाव रहता है कि मैं स्वप्न देख रहा हूं। बस, स्वप्न में और जाग्रदवस्था में यही अन्तर है। जाग्रत् में स्वप्न और जाग्रत् दोनों का ज्ञान रहता है, परन्तु स्वप्न के साथ मोह नहीं रह जाता। इसी प्रकार ब्रह्मधाम के ज्ञान द्वारा जो जाग्रत् अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं उन्हें रात्रि के स्वप्न का और स्वप्नरूप विश्व का ज्ञान तो रहता है, परन्तु इनका मोह नहीं रहता।

Shri Prannath Ji Pustkalay

होने की नहीं। परन्तु इसके पदार्थों में और सिनेमा के पदार्थों में कुछ अन्तर है। वह यह कि–सिनेमा केवल देखने की वस्तु है तो यह 'विश्व' चारों पदार्थों को प्राप्त करने का परीक्षा स्थल है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पदार्थों का परस्पर ऐसा सम्बन्ध है कि एक के बिना दूसरा और दूसरे के बिना तीसरा, अधूरा रह जाता है। एवं पूर्वोक्त तीनों के द्वारा ही चतुर्थ पदार्थ समझा जा सकता है। अर्थ और काम के आकर्षण को जाने बिना, उसके वास्तविक स्वरूप को समझे बिना मोक्ष का महत्त्व अंकित नहीं हो पाता। और फिर धर्म के बिना मनुष्य में आदर्श भावना का उदय नहीं होता। आदर्श भावना के बिना यथार्थ ज्ञान और सेवा की प्रेरणा नहीं मिलती। अतः शास्त्रों ने ज्ञान–पूर्वक भक्ति-मार्ग का विधान किया है। जो आत्म तत्त्वको समझ चुका है वह न तो योगी होना पसन्द करता है और न शिखा सूत्रको फेंक कर भागना स्वीकार करता है। प्रत्युत वह तो समस्त विश्वके चेतन को अखण्ड धाम में पहुंचाने की सेवा को अपना लेता है। वह तो परमात्मा का अनन्य भक्त बनकर सबको जाग्रत दशा में देखना चाहता है। भक्ति का अर्थ बहुत गहन और रहस्य पूर्ण है, इसको सब नहीं समझ पाते।

'भज' सेवायाम धातु से भक्ति शब्द निष्पन्न होता है। जो प्राणी मात्र की सेवा कर सके वही सच्चा भक्त। विश्व में जो जिस को विशेष चाहता है, उसे उसका भक्त कहने लगते हैं। लोभी को धनका भक्त और कामी को स्त्रीभक्त कहते भी सुनते हैं। अफीम, भांग आदि को सेवन करने वाले अफीम के भक्त, भांग के भक्त भी कहे जाते हैं। जो जिसको तन, मन, धन से चाहता है उसे उसका परम भक्त भी कहते है। हनुमान को राम का भक्त कहते हैं। मीरा कृष्ण की भक्त थी। यह उपरोक्त अर्थ के ही योग्य उदाहरण हैं। पतिकी सेवा करने वाली स्त्री पतिभक्ता कही जाती है। संसार में एक दूसरे को अपनाने का, अपनापन व्यक्त करने का, अपना प्रेम दूसरे पर कितना है, उसे प्रमाणित करने का सबसे सुगम उपाय यही है कि–जो जिसे वश करना चाहे अथवा उस का बनना चाहे तो उसे वर ले, अपना तन, मन, धन उस पर निछावर कर दे। हृदय से उसे ही प्रतिक्षण स्मरण में रखे, उसमें गुणों को देखे, उसे अपना मान ले, उस पर पूरा विश्वास भी कर ले। अपना परदा हटा दे, अपने दिल में उसके साथ अन्तर न रखे। जिस पर प्रेम करता है, वह चाहे उसे भले भूल जाय, परन्तु स्वयं उसे न भूले। उसकी याद में, अपने प्यारे की चाह में आह भरता रहे, यह प्रेमी मनुष्य का लक्षण है।

इसी प्रकार जो परमात्मा के साथ तन, मन, धन से प्रेम करता है, प्रभु पर निछावर हो जाता है उसे ही परमात्मा अपना आत्म–बल प्रदान कर अपना लेता है। परमात्मा को प्राप्त करने का यही एक उपाय सच्चा प्रतीत होता है। इस प्रकार परमात्मा को अनन्य भक्ति, है तो अद्वितीय उपाय, परन्तु उसको समझना

Shri Prannath Ji Pustkalay

भी बहुत कठिन है। पतिव्रता स्त्री पति की सेवा तो तन, मन, धन से करती रहे, परन्तु पुत्रों का अथवा पति देवके आप्त—जनों का अपमान करती हो अथवा उनके साथ कर्त्तव्य का पालन न करती हो तो वह पतिव्रता, पति की सेवा का यथार्थ अर्थ नहीं समझ सकी, यही मानना होगा। एवं यह पतिका प्रेम अधिक दिन तक सम्पादन कर सकती है, यह भी संदिग्ध है। क्योंकि कोई भी उदार पति अपने पुत्रों की अथवा अपने आप्त—जनों की उपेक्षा सहन करे, यह भी न्याय संगत नहीं लगता। जो पति के आप्त—जनों को ही लाभ नहीं पहुंचा सकती, वह पति के आत्मिक प्रेमका पात्र भी नहीं हो सकती।

पतिव्रता का यथार्थ कर्त्तव्य तो पति की आज्ञा का उचित रूप में पालन करना है। जो वस्तु पतिको प्रिय है, जो कर्त्तव्य पति को प्रिय है, जो सेवा पति के हितको सम्पादन करती है, जो भावना स्वामी को रुचिकर है, वही पतिव्रता को अभीष्ट होना चाहिये। इसी प्रकार परमात्मा के अनन्य भक्तका कर्त्तव्य है कि वह तन, मन, धन से अपने प्रभु के आदेशका यथार्थ पालन करता रहे। प्रतिक्षण अपने प्रभु के आदेश को स्मरण से न हटने देवें, एवं अपने प्रभु के भक्तों की सेवा का भी विशेष ध्यान रखे।

अपने आराध्य देव के स्थान में अन्य देव की उपासना को स्थान न दे बैठे। अन्य देवों की उपासना का समावेश सर्वातीत ब्रह्मकी उपासना में स्वतः हो जाता है, अतः अन्यदेवके मानापमान के सन्देह में न पड़े। किन्तु दृढ़ होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करता जावे। परमात्मा के भक्त को चाहिये कि वह सबसे प्रथम अपने को परमात्मा के वरने योग्य बनावे। योग्य वस्तु के लिये योग्य ही पात्र की आवश्यकता होती है। माणिक, मोती के दानों को पिरोने के लिये उसके योग्य रेशम का सूत्र हो तभी उसे 'सूत्रे मणि गणा इव, कहते शोभा देता है। परन्तु कोई अज्ञानी बिना समझे मणियों के दानों को मूंजकी रस्सी में पिरोना चाहे तो वह असंगत होगा। इसी प्रकार पूर्णब्रह्म परमात्मा को अपने हृदय मंदिर में बिठलाना है तो प्रभुके बैठने योग्य हृदय को बनाना होगा। असद्भावना, असत्कर्मों का स्फुरण जिस हृदय में प्रतिक्षण ओत—प्रोत अनुस्यूत है। काम, क्रोध, लोभ, मोह को अनुचित तरंग जिस हृदय में हिलोर मार रही हैं। राग द्वेष, छल—कपट से जो हृदय छलक रहा है। जिस के अन्तकरण में असद्विचारों का पल्लवित होना विशुद्ध भावों को आने देता ही नहीं, उस अन्तःकरण में सर्वातीत परमात्मा के लिये सिंहासन [1] बिछाना और प्रभु को अनुपस्थितिका उपालम्भ देना कहां तक

[1] शङ्कापङ्काङ्कमलिने हृदये नैव सुन्दरि !
प्रेमार्क प्रतिविम्बः स्याद्येन कृष्णः प्रभासते।

Shri Prannath Ji Pustkalay

चित है, इस बातपर भी हमारे प्रेमी पाठक अवश्य ध्यान देवें। तभी तो भगवान श्रीकृष्णजी गीता (८–१४) में आदेश करते हैं।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।

अनन्य चित्त से जो निरन्तर चिन्तन करते हैं, अनन्य भाव से जो नित्य स्मरण करते हैं, वे ही उस परम तत्त्वको पा सकते हैं। इसलिये 'हे अर्जुन ! अनन्य भाव को धारण कर, इस प्रकार निष्कर्ष बतलाया है। क्योंकि (भाग० ११–१४–२०) में भी स्वयं कहते हैं।

न साधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म उद्धव !
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

हे उद्धव ! योग, सांख्य धर्म, स्वाध्याय, तप और त्याग, ये सब मुझे सुतरां नहीं साध पाते, जिस प्रकार मेरी बढ़ी हुई भक्ति मुझे साध लेती है। इससे तो स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि प्रभुको प्राप्त करने का मुख्य मार्ग भक्ति ही है। अतः भगवान गीता में पुनः आज्ञा करते हैं :—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन !
(गी० ११–५३,५४)

हे अर्जुन ! वेद से, तपसे, दानसे [1] और पूजा आदिसे, मुझे देखना चाहो

—शिव जी पार्वती को आत्मतत्त्व की निर्मलताका वर्णन करते हुए कहते हैं। हे सुन्दरि ! नाना प्रकार के अशुद्ध भावों के कारण जिनके हृदय में विश्वास सुदीप्त नहीं होता, उनके हृदयमें प्रेमरूपी सूर्य का प्रतिबिम्ब भी नहीं उठता। तब श्रीकृष्णका स्वरूप किस प्रकार भासने लगे। कितना सुन्दर उपदेश है, जिसे विशुद्ध हृदय सज्जन ही ग्रहण कर सकते हैं,सब नहीं।

[1] दान विविध प्रकार के होते हैं। कुछ कीर्ति के लिये, कुछ दिखाने के लिये तो कुछ देश कालानुसार लोकोपकार के लिये होते हैं, जैसे दवाखाना, धर्मशाला—मन्दिर आदि। ये सब हैं तो परम उत्तम कार्य, परन्तु ब्रह्म साक्षात्कार नहीं करा सकते। हां, उसमें सहायभूत हो सकते हैं। परन्तु एक दान ऐसा भी है जो कलियुग में मोक्ष प्रदान कर सकता है। वह क्या है ? वह है भवसागर में डूबते हुए जीवों के लिये ब्रह्मविद्या का दान—

Shri Prannath Ji Pustkalay

तो मैं देखने को नहीं मिलता, जैसा कि मुझे भक्ति की अनन्यता से देखा जा सकता है। वह भक्ति भी किस प्रकार की हो, सत्सङ्ग से प्राप्त हुई हो, मनमानी नहीं। सत्सङ्ग भी ब्रह्मज्ञ पुरुष का हो, केवल महात्मा वेषधारी का न हो।

न रोधयति मां योगो न साख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥ (भा० ११–१२–१,२)

—श्री कृष्ण जी कहते हैं 'हे उद्धव ! योग, सांख्य धर्म, वासना—त्याग, स्वाध्याय, पाठ–पूजा, तप, त्याग, धर्म, कार्य, दान पुण्य, यज्ञ व्रत, वेद–पाठ, तीर्थ सेवा, यम–नियम, आदि जितने साधन हैं, उनसे मैं यथेष्ट रूप में [1] प्राप्त नहीं होता

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते (मनु ४–२३३)

विश्व के सम्पूर्ण दानों से उत्तम ब्रह्मज्ञान का दान है। कारण जो, ब्रह्मज्ञान असंख्य जीवों को भवसागर पार कर दे, और फिर उसका दाता स्वयं मोक्ष को प्राप्त न हो, ऐसा कभी हो सकता है ? कदापि नहीं। अतएव श्रुति कहती है :—

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणम् (वृहदा० ३–९ २८)

चिदानन्दघन जो ब्रह्म है, वह ब्रह्मज्ञान दाता के आधीन है। कारण यही एक दान ऐसा है जो जन्म जन्मान्तर के संचित अशुभ कर्मों को तत्काल नष्ट कर देता है और उसे चिद्घन ब्रह्मानन्द प्रदान करने का अधिकारी बना देता है। इस प्रकार से ब्रह्मदान को जन्म मरण के बन्धन से छुटाने वाला प्रतिपादन किया है। अध्यात्म तत्त्व के प्रेमी पुरुषों को चाहिये कि इस अमूल्य सौभाग्य को अवश्य अपनावें। जितना बने स्वयं देवें और इस विषय में द्रव्य खर्च कर दूसरे महान पुरुषों से इस कार्य को पूरा करावें। तब तो नीचे का पद चरितार्थ होता रहे।

करदे करदे दुख दूर दुखिन्, कुछ दीदन जान दया करदे।
हरदे हरदे हृदये की बिथा, भव–रोग महान इसे हरदे॥
परदे परदे प्रभु हेर रहे, एक सुन्दर ध्यान उन्हीं पर दे।
भरदे भरदे मम नाथ! हिये, निजनाम की छाप हिये पर दे॥

[1] नैवमात्मा प्रवचनशतेनापि लभ्यते, न बहु तेन, न बुद्धिज्ञानाश्रितेन न मेधया न वेदैर्न यज्ञैर्न तपोभिरुग्रैर्न सांख्यैर्नयोगैर्नाश्रमैर्नान्यैरात्मानमुपलभन्ते (सुवालोप० खण्ड ९)

Shri Prannath Ji Pustkalay

जैसा कि मेरी भक्ति मुझे वश में कर लेती है। इस प्रकार ज्ञानयोग, सांख्ययोग और क्रिया-योग, पाठ-पूजा, यम-नियम सबको तुच्छ प्रतिपादन करते हुए भक्तियोग को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है। व्यासजी ने तो स्थान-स्थान पर भक्ति के स्वरूप को ही सर्वोत्तम माना है। यथा—

द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धि-र्मनसः शुद्धिरुज्वला ।
दुर्लभा प्राणिनां भूप ! संसारे त्रिगुणात्मके ।।
महान्तोऽपि न मुच्यन्ते हरिब्रह्म हरादयः ।
पामरा अपि मुच्यन्ते यथा सत्यव्रतादयः ।।
तस्मात्तद्भुक्ति—रास्थेया दोषनिर्मूलनाय च ।
रागदम्भादि युक्ता चेत्सा भक्तिर्नाशिनी भवेत् ।।

(देवीभाग० ६-१४-१२,१३,१६)

हे जनमेजय नृप ! मनुष्य जहां तक विशुद्ध-निर्मूल भक्ति को धारण नहीं करता, वह विशुद्ध अन्तःकरण नहीं बन पाता। इस त्रिगुणात्मक-तमोगुण, रजोगुण, तथा सत्त्वगुण प्रधान संसार में — द्रव्य- शुद्धि, क्रियाशुद्धि और मन की शुद्धि, ये तीनो प्रकार की शुद्धि दुर्लभ है। जब तक द्रव्यशुद्धि प्राप्त न हो जावे क्रिया-शुद्धि नहीं हो सकती, एवं मन की शुद्धि न प्राप्त हो जावे, मुक्ति प्राप्त नहीं होती। मनुष्य की बात कौन कहे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, सुरेश बड़े-बड़े महान देव भी बिना निर्मल भक्ति के मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाते। परन्तु जिनको भक्तितत्त्व प्राप्त हो गया है, वे तो पामर-अधम जीव होने पर भी मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये द्रव्यदोष, क्रियादोष और मानसिक हीनता को शुद्ध करने के लिये भी भक्ति की ही आवश्यकता है। परन्तु भक्ति निर्मल हो, राग, दम्भ, आदि दोषों से रहित हो, तभी वह यथार्थ मानी जाती है। राग, द्वेष को लेकर

—महर्षि अङ्गिरा रैक्व के प्रति उपदेश करते हैं। 'हे रैक्व ! यह आत्मतत्त्व विशेष व्याख्यान से नहीं मिलता, अधिक श्रवण से नहीं प्राप्त होता। बुद्धि ज्ञान की प्रबलता से भी नहीं मिलता। वेदाध्ययन, यज्ञ-याग, विशेष तप, सांख्य योग, आश्रम आदि धर्मों के पालन मात्र से भी नहीं मिलता। किन्तु जो उसे वर लेता है, जो उसका हो जाता है, उसी को प्राप्त होता है। इस श्रुति में भी ज्ञानयोग, सांख्ययोग, वेदाभ्यास, जप-तप, आश्रम आदि के द्वारा आत्मतत्त्व नहीं मिलता, यही दृढ़ किया है। तब तो स्पष्ट हो जाता है कि—एक भक्ति-मार्ग ही निर्बाधित उपाय है, अन्य नहीं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

भक्ति करना, अथवा महत्त्व बताने के लिये भक्ति का आचरण किया जावे, तब तो वह भक्ति क्रियाशुद्धि, द्रव्यशुद्धि को नाशकर मन की हीनता को बढ़ाकर हमें आगे नहीं बढ़ने देती। इस प्रकार भक्ति के आचरण में भी महान रहस्य समाया हुआ है, तभी तो बताया गया है कि—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष आदि महान पुरुष भी मुक्ति को प्राप्त नहीं हो पाते। कारण, त्रिगुणात्मक विश्व में लोभ, मोह, राग, द्वेष, दम्भ, अभिमान से परे होना बहुत कठिन है। अतएव श्रीजी ने कहा है—

'वह जाने लई राह धर्म को, मैं इन विध देउँ राह मार।'

राग, द्वेष के कारण, मिथ्या प्रतिष्ठा के मोह में, स्वार्थवश दम्भ—पाखण्ड के वश होकर मनुष्य मारा जाता। मन में तो समझता रहता है कि मैं बड़ा भक्त हूं, मैंने तो अमुक महत्त्व प्राप्त कर लिया है। मैं अमुक अनुष्ठान में लगा रहता हूं। इस प्रकार धर्म सेवा में तत्पर हूं, इस प्रकार अपने को कृतार्थ मान लेता है, परन्तु तत्त्वतः देखा जावे तो वह अपने कर्तव्य से लाखों कोस दूर होता चला जाता है। इस प्रकार भक्तियोग में भी आन्तरिक रहस्य समाया है जो इसको समझकर उपरोक्त दोषों से बचकर चलते हैं, वे ही सच्चे भक्त कहे जा सकते हैं। अतएव श्रुति कहती है—

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः। (मुंडक १-२-९)

—वेद शास्त्रों ने असमर्थ अज्ञानी[1] मनुष्यों को सत्कर्म में प्रवृत्त कराने के लिये प्रलोभन के वचनों का विधान किया है। यदि ऐसा प्रलोभन न दिया जावे तो छोटी बुद्धिवाले उच्च मार्ग—सन्मार्ग की ओर अभिमुख नहीं हो पाते, अतएव उनके लिये प्रलोभन प्रदर्शक वचन कहे गये हैं। परन्तु जो तुच्छ बुद्धिवाले हैं वे अपने को उतने से ही कृतार्थ मानकर आगे बढ़ने का प्रयास नहीं करते, परिणाम यह होता है कि वे जन्म—मरण के बन्धन से मुक्त नहीं हो पाते। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि आत्म—कल्याण के लिये अबाधित भक्ति मार्ग को ग्रहण कर अपने आत्मा को जन्म-मरण के बन्धन से सदा के लिये मुक्त कर अखण्ड पद का अधिकारी बने, इसी में परम लाभ है।

---

[1] 'न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।'

यही कारण है कि गीता ने स्वल्पज्ञ मनुष्यों को ब्रह्मबुद्धि में न डालकर शुभकर्म में प्रवृत्त कराने को कहा है। यदि ऐसा न किया जावे तो वे ब्रह्मज्ञान के पात्र न होने से उभयभ्रष्ट बन जाते हैं, अतः उन्हें प्रलोभन द्वारा प्रवृत्त कराया गया है। कारण—

ब्रह्मज्ञान उपज्यो नहीं, कर्म दिये छुटकाय।
तुलसी ऐसी आत्मा, सहज नरक में जाय॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

भक्ति मार्गको अबाधित कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार भगवान ने ज्ञान मार्ग को प्रथम उत्तम बताया परन्तु अन्त में उसे तुच्छ बताकर बाधित कर दिया। योगमार्ग को उत्तम से उत्तम प्रतिपादन किया और फिर अन्त में कह दिया कि योगी प्रयत्न-पूर्वक सिद्धि को धारण करते-करते जब निर्मल अन्तःकरण बन जाता है, तब कहीं "अनेकजन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्" अनेक जन्मों के अनन्तर उत्तम गति को प्राप्त होता है। इस प्रकार से योग मार्ग को भी तुच्छ बताते हुए यह कह दिया कि—

"न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ?

हे उद्धव ! न मुझे योग मार्ग से प्राप्त कर पाते हैं और न मैं सांख्य धर्म से ही मिल पाता हूं। इस प्रकार दोनों मार्गों को भी बाधित कर दिया। परन्तु उस प्रकार से भक्ति मार्ग का किन्हीं महापुरुषों ने निषेध नहीं किया, प्रत्युत अन्य मार्गों की अपेक्षा उत्तम और शीघ्र फल देने वाला ही बताया है। यथा—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्ति योगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ (भाग०.११)

पुंसां कलिकृतान्दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान्।
सर्वान्[1] हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ (भागवत २-३-१०)

---

[1] प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥
यन्नाम कीर्तनं भक्त्या विलापनमनुत्तमम्।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः ॥
(वि०पु० ६-६,७)

विश्व के अन्तर्गत जितने भी प्रायश्चित वर्णन किये गये हैं, जो चान्द्रायण व्रत आदि नामसे प्रसिद्ध हैं, उन सब प्रायश्चितों से भी शीघ्र अशुभ कर्म के पापों को नष्ट करने वाला श्रीकृष्ण परमात्मा का स्मरण है। प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण के नाम का उच्चारण अथवा आर्तस्वर से श्रीकृष्ण को पुकारना सम्पूर्ण पापों को भस्म कर देता है। जिस प्रकार धातुओं को अग्नि में तपाने से एकदम निर्मल हो जाते हैं। उसी प्रकार श्रीकृष्ण का नाम लेने से सब पाप भस्म हो जाते हैं।

कृष्णेति मगलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते।
भस्मीभवन्ति सद्यस्तु महापातक-कोटयः ॥

मंगलवाची श्रीकृष्ण का नाम लेते ही तत्काल पापों की करोड़ों राशि भस्म होती हैं। कहने का तात्पर्य कृष्णभक्त के अन्तःकरण में पापराशि नहीं टिक सकती।

Shri Prannath Ji Pustkalay

नेहाभिक्रमनाशोस्ति[1] प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।। (गीता २–४०)

—भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं । हे अर्जुन! निष्काम भाव से अथवा सब कुछ कामना रखते हुए या तो फिर मोक्ष की कामना से तीव्र भक्तियोग के द्वारा जो परात्पर उत्तम पुरुष परब्रह्म का भजन पूजन किंवा सेवन करते हैं, वे उस भक्तियोग के अनुग्रह से सब प्रकार विशुद्ध बन जाते हैं । कलियुग के प्रभाव के कारण कदाच उनके अन्तःकरण में द्रव्य दोष, देश कालका दोष आ गया हो अथवा देह में कुछ दोषों की मलिनता भी उत्पन्न हो चुकी हो तो उनके हृदय में सबसे उत्तम परब्रह्म पुरुष का निवास होने से वे सब दोष भी नष्ट हो जाते हैं और भक्ति के प्रभाव से मनुष्य विशुद्ध अन्तःकरण बन जाते हैं, इतना ही नहीं प्रत्युत एक महान साधु के रूप को प्राप्त हो जाते हैं ।

अनन्य भक्ति का मार्ग कामना रहित होने से भक्तों के हृदय में स्वार्थ भावना नहीं उदय हो पाती । बल्कि वे दूसरों की सेवा को ही अपना कर्तव्य समझ माया में फँसे हुए जीवों को जाग्रत करने की सेवा में लगे रहते हैं । "विचर हिं सन्त अवनि केहि हेता, जड़ जीवन को करें सचेता ।" विश्व के माया ग्रस्त जीवों की जड़ भावना को नष्ट कर उनके पवित्र हृदय में निर्मल चेतना को जाग्रत कर देते हैं । उन भक्तों के मार्ग में कभी कोई विघ्न बाधा भी नहीं आती । न उनकी सेवा के क्रम में कभी विघ्न ही पड़ता है । वे थोड़ा सा भी कर्तव्य पालन करते हैं तो वह कर्तव्य भले ही थोड़ा हो किन्तु जन्म–मरण रूप महान भय से रक्षा करने में पूर्ण समर्थ होता है ।

एक तो भक्ति का अर्थ यों ही सेवा होता है और फिर वह भी निष्काम भावना से की जावे तो उसके महत्त्व को कौन कह सके ? भवसागर में डूबते हुए अबोध जीवों को भवपार पहुंचाने की निष्काम सेवा–भक्ति जिसने धारण कर ली हो, उसके गौरव को, उसके निष्काम परमार्थ को, शब्द से उपमा नहीं दी जा

[1] भक्ति—शब्द का अर्थ आधुनिक मनुष्य केवल माला फेरना, पाठ पूजा करना और भेषभूषा कंठी माला तिलक आदि का धारण करना भर ही मानते हैं । परन्तु भक्ति का अर्थ होता है सेवा । 'भज' सेवार्थक धातु से निष्पन्न भक्ति शब्द का अर्थ सेवा के अतिरिक्त न करना अथवा केवल 'माला फेरना, करना, धारणा मात्र है । वस्तुतः भक्तिका अर्थ होता है सेवा, वह भी निष्काम भाव से की जावे तब कहीं उसका अर्थ घटता है । इसी तथ्य को भगवान ने 'नेहाभिक्रम नाशोस्ति' में वर्णन किया है । कहते हैं– हे अर्जुन ! यह निष्काम भक्ति का धर्म इतना महत्त्वपूर्ण है कि'नतो इसे कभी किसी प्रकार बाधा लगती है, न इसमें विघ्न पड़ता है, प्रत्युत इस

Shri Prannath Ji Pustkalay

सकती। इस प्रकार भक्तिमार्ग को ही अवाधित पाते हैं। शास्त्र का सिद्धान्त है कि 'अवाधिताज्ञात–ज्ञापकत्वं ही प्रामाण्यम्' अवाधित और अज्ञात के ज्ञापक को ही प्रमाण भूत माना जाता है। भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग और योगमार्ग की भांति वाधित भी नहीं है और अज्ञात[1] जो ब्रह्मतत्त्व है,उसका सबसे अधिक ज्ञापक भी है। अतएव आत्म-कल्याण के लिये एक भक्तियोग ही सर्वोत्तम उपाय है, ऐसा भली भांति सिद्ध हो जाता है। तभी तो शास्त्रों में लिखा गया है कि—

निष्काम भाव का थोड़ा सा भी पालन वन सके तो महान भय (जन्म मरण) को मिटा देता है। कारण—'लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रामिवाम्भसा' उसे कर्मजन्य भय नहीं रहता। वह तो कमल के पत्र के समान सदा काल निर्लेप रहता है, इस प्रकार माना है।

[1] 'सुखी मीन जिमि नीर अगाधा, तिमि प्रभु चरनन एक न बाधा।'

तुलसीदासजी भी इस तथ्य को मानते हैं कि—प्रभु के भक्तिमार्ग में किसी प्रकार की विघ्न वाधा नहीं होती। भक्तिमार्ग ही एक ऐसा है जो वाधित नहीं है, अन्य मार्ग (ज्ञानयोग, सांख्ययोग, क्रियायोग, तप, त्याग आदि) तो अनेक वाधाओं से व्याप्त और अनेक जन्मों में जाकर कहीं मुक्ति तक पहुंचाते हैं, भक्तिमार्ग तो जन्मान्तर जानता ही नहीं। वहां तो भगवान की प्रतिज्ञा है कि—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

(शुद्धिकरण मन्त्र)

एक वार भी परमात्मा की शरण को प्राप्त होकर 'हे प्रभो! अव तो मैं तुम्हारा हो चुका' यदि इस प्रकार कोई याचना करता है तो भगवान कहते हैं फिर मैं नीच ऊंच का भाव छोड़कर स्त्री पुरुष का भाव न रखते हुए समान रूप से उसको अभय पद प्रदान कर देता हूं,यह तो मैंने प्रतिज्ञा ले रखी है। चाहे पापी हो, चाहे पवित्र हो अथवा किसी भी अवस्था को प्राप्त हो, जो श्रीकृष्ण का स्मरण करता है अन्तर वाहर सर्वत्र वह परम पावन हो जाता है। वोलिये! अव चिन्ता किस वात की रही? जो कृष्ण नाम पवित्र भी वना ले, निर्मल भी कर ले और फिर मुक्तिपद प्रदान कर जन्म–मरण का वन्धन भी मिटा दे! अव इससे विशेष उत्तम कौन मार्ग हो सकता है? अतः भक्तिमार्ग को वाधा रहित और सर्वोत्तम वताया गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः।
अलं ज्ञान कथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा (भाग० म०)

नारद जी भक्ति का महत्त्व प्रतिपादन करते हुए विश्वास दिलाते हैं कि यावत् व्रत उपवास आदि आचरण, तीर्थ निसेवन, योगाभ्यास, यज्ञ–याग, आदिका अनुष्ठान, ज्ञान, योग, कथा कीर्तन आदि का आचरण, ये सब व्यर्थ हैं, केवल एक भक्ति ही मुक्तिको दे सकती है। अन्य उपाय भक्ति के समक्ष सब तुच्छ से हैं। जिस प्रकार सूर्योदय के अनन्तर तारागण महत्त्व शून्य हो जाते हैं उसी प्रकार भक्ति के प्रकट होते ही उपरोक्त सब साधन तुच्छ रह जाते हैं।

"कलौ भक्तिः कलौ भक्तिः, भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः"

कलियुग के लिये तो बारम्बार भक्ति मार्ग को ही सर्वोत्तम प्रतिपादन किया गया है। भक्ति के वश में होकर तो श्रीकृष्णजी भी सदा ही भक्त के समक्ष स्थित रहते हैं, अतः भक्तिमार्ग का अवलम्बन ही कल्याण कारण हो सकता है। इस प्रकार पुनः पुनः भक्ति को अपनाने का अनुरोध शास्त्रों में मिलता है।

भक्ति मार्ग—सुगम, सरल, निर्भ्रान्ति और अबाधित, होने पर भी विवेक साध्य है। कारण, वह जितना सुगम, सरल और उपयोगी है, उससे कहीं अधिक विस्तृत और व्यापक भी है। उसके विविध स्वरूपों को जाने बिना एवं उसके अबाधित भावको ध्यान में लिये बिना, मनुष्य परम पद को यथेष्ट रूप में प्राप्त नहीं कर पाता। कारण–साधन, साध्य रूप से भक्ति भी दो प्रकार की मानी गई है। साधन भक्ति की अपेक्षा साध्य–भक्ति उत्तम है। और आवागमन को मिटाने के लिये साध्य भक्ति को ही अपनाना पड़ता है। भक्ति का वर्णन करते हुए शास्त्रों में उसे तीन प्रकार की बतलाया है। यथा—

"भक्तिरेका त्रिधा प्रोक्ता सगुणा निर्गुणा परा
सगुणा नवधा ख्याता निर्गुणाष्टविधा स्मृता
दशलक्षण संयुक्ता पराख्या प्रेम लक्षणा।"

जिस भक्ति का वर्णन शास्त्रों में बहुत विस्तार और महत्त्व के साथ किया है, वह भक्ति भी त्रिविध मानी गई है। एक–सगुण, दूसरी निर्गुण तीसरी परा। सगुण भक्तिका नौ प्रकार से वर्णन मिलने के कारण उसे नवधा[1] कहते हैं।

[1] श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदम्॥ इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव लक्षणा, (भाग० ७–५–२३) अर्थ—श्रवण, कीर्तन, स्मरण,

Shri Prannath Ji Pustkalay

निर्गुण भक्ति का वर्णन आठ प्रकार का होने से उसे आठ प्रकार की माना है। अष्टाङ्ग योग के आठों अंग ही निर्गुण भक्ति के साधन माने गये हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये ही निर्गुण उपासना के आठ अङ्ग मुख्य हैं। जिन्हें अष्टाङ्ग योग भी कहा जाता है।

पूर्वोक्त सगुण भक्ति से और निर्गुण भक्ति से पर तीसरी परा भक्ति है, जिसे प्रेमलक्षणा भी कहते हैं। इस परा भक्ति को महापुरुषों ने दश विधकी वर्णन किया है। भक्ति-शास्त्रों में पराभक्ति के नीचे लिखे दश भेद मिलते हैं।

१–वात्सल्य २–सख्यभाव ३–दास्यभाव ४–शरणागति ५–माधुर्यभाव ६–स्मरणासक्ति ७–परमविरहासक्ति ८–स्वरूपासक्ति ९–तन्मयासक्ति १०–गुणपूजा माहात्म्यासक्ति। इस प्रकार परा–प्रेमलक्षणा भक्ति को दश[1] प्रकार से वर्णन किया है।

साधारणतया भक्तों को प्रथम चार कोटियां मानी गई हैं। (१) आपत्ति के कारण मनुष्य परमात्मा का सहारा लेता है (२) कामना को प्राप्त करने में अपने को असमर्थ पाकर या शीघ्र कामना को पूर्ण करने के लिये भी मनुष्य प्रभु

सेवा, पूजन, वन्दन, दासत्व, सख्यभाव और आत्मसमर्पण—इस प्रकार से ये सगुण भक्ति के नौ अङ्ग माने गये हैं। ये सगुण भक्ति 'नाम, रूप और भाव' तीनों स्वरूपों में समाप्त हो जाती है। श्रवण, कीर्तन और स्मरण, ये नाम की उपासना है। सेवन, पूजन और वन्दन, ये तीनों स्वरूप में घटते हैं, अत, इन्हें रूप की उपासना मानते हैं। अन्तिम तीन—दासभाव, सख्यभाव और आत्मनिवेदन, ये भावना को पुष्ट करते हैं, अतः इन्हें भाव की उपासना कहते हैं। सगुण देवों के प्रति भाव भी सगुण ही हो सकता है, अतः इन्हें भी सगुण में गिन लिया गया है। यही तीनों भाव जब सगुण–निर्गुण से पर स्वरूप के प्रति होते हैं तो इन्हें पराभक्ति में मान लिया जाता है।

[1] नारदजी ने अपने 'भक्ति सूत्र' में 'पराभक्ति' के ११ भेद माने हैं। सम्भवतः उन्होंने उपरोक्त गुणपूजा माहात्म्य को गुण और माहात्म्य की आसक्ति भेद से दो प्रकार का मान लिया हो अथवा इन्हीं दश भेदों के किसी अवान्तर भेद को लेकर एकादश भेद किये हों। परन्तु प्रसिद्धतया प्रेमलक्षणा—परा भक्ति के दश ही प्रकार पाये जाते हैं। अतः दशलक्षण संयुक्त प्रेमलक्षणा को 'दशधा' कहा गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

को पुकारता है। (३) जिज्ञासुको—आत्मतत्त्व जानने पर भी प्रभु दया की अपेक्षा होती है। जब मनुष्य अपने पुरुषार्थ से उसे नहीं जान पाता, अथवा अपना ज्ञान उसे नहीं समझ पाता तब उसे परमात्मा के ज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है। जब प्रभु उसे अपने में अनुरक्त पाता है तब अपनी आन्तरिक प्रेरणा का बल प्रदान कर देता है। 'जो जाने जेहि देहि जनाई' "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" (कठ उ.) जिस जिज्ञासु को परमात्मा अपनी प्रेरणा प्रदान कर देता है उसी के हृदय में परमतत्त्व का प्रकाश होने लगता है। इस प्रकार जानने की इच्छा रखने वाले भक्तों का भी उल्लेख मिलता है। (४) ज्ञानपूर्वक भक्ति तो यथार्थ मानी गई है। जो ज्ञान के द्वारा समझ कर आत्मकल्याण के मार्ग को ग्रहण करता है वह पूर्वोक्त तीनों की अपेक्षा उत्तम माना गया है। अतः गीता (७–१६) में लिखा है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो[1] जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।
'तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।'
'उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।।'

भगवान श्रीकृष्णजी कहते हैं 'हे अर्जुन ! भाग्यशाली पुरुष चार प्रकार से परमात्मा की भक्ति किया करते हैं। एक तो किसी प्रकार अत्यन्त आर्त होकर, दूसरे जानने की इच्छा से, तीसरे अर्थ की इच्छा को लेकर भजते हैं। चौथे वे ज्ञानी हैं जो मेरे को जानकर भजते हैं। यों तो ये चारों ही उदार भक्त कहे जा सकते

[1] आर्तभक्तों में द्रौपदी को ले सकते हैं। जब कौरवों के अत्याचार से अधिक पीड़ित हुई और कोई सहारा न रहा तब दीन-हीन होकर श्रीकृष्ण को पुकारा। उसकी हार्दिक पीड़ा की पुकारने प्रभु को आकर्षित किया, निदान श्री कृष्णजी को रक्षार्थ आना पड़ा। इसी प्रकार गजेन्द्र की कथा भी है। जब गजेन्द्र ग्रह के साथ युद्ध करते-करते सब प्रकार हताश हो गया और अपना बल खो बैठा तब उसे अपनी सूझ पर अपने अभिमान पर पश्चाताप आने लगा। अहो ! मैं बहुत बुरा फंस गया अब तो प्रभु के बिना मेरी रक्षा कौन कर सकता है ? इस प्रकार अधीर होकर प्रभु को आर्तस्वर से आह्वान किया। परिणाम में प्रभु ने आकर गजेन्द्र की रक्षा, द्रौपदी की लाज रखी।

जिज्ञासु भक्तों के लिये जनक, रहूगण, मुचुकुन्द, उद्धव आदि को ले सकते हैं। अर्थार्थी ध्रुव, विभीषण, अम्बरीष, विदुर आदि अर्थार्थी भक्त माने गये हैं। ज्ञानी भक्तों में सनकादिक, शुकदेवजी, शंकरजी, नारदजी भीष्मपितामह आदि बड़े–बड़े ज्ञानी भक्त हो चुके हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

हैं परन्तु उनमें ज्ञानी भक्त सबसे उत्तम है। क्योंकि उसे तो मैं आत्मस्वरूप ही मानता हूं। उन ज्ञानी भक्तों में भी जो नित्य ज्ञान से युक्त है अर्थात् जिसने अखण्ड पद को पाकर नित्य स्वरूप को एक निष्ठा से धारण कर लिया है, वह तो सबसे विशेष उत्तम है। कारण—

"पुरुषः स परः पार्थ ! भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।"

'हे पार्थ ! परात्पर पूर्णब्रह्म की प्राप्ति तो अनन्य भक्ति से ही होती है। अनन्य भक्ति को समझने के लिये भक्ति के विविध स्वरूपों का ज्ञान और तारतम्य से उनके गौरव लाघव को समझकर जानने की विशेष आवश्यकता है। जो समझकर ग्रहण करता है, वह भगवान की दृष्टि में सबसे विशेष उत्तम है। इस प्रकार ज्ञान, योग और भक्ति के विविध स्वरूपों का वर्णन करते हुए भक्तिमार्ग को अबाधित बताया है और अनन्य भक्ति को सबसे विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है, जो मनन करने योग्य है।

यह भक्तिमार्ग साध्य और साधन दोनों ही स्वरूपों में प्रवाह रूप से चला आ रहा है। सगुण देवों के भक्त नवधा भक्ति से अपने-अपने अभीष्ट को[1] प्राप्त करते हैं। निर्गुण भक्ति वाले अष्टांग योग से अथवा उसी प्रकार के किसी अन्य योग से उसे प्राप्त किया करते हैं। 'परा' भक्ति वाले अपने आराध्य देव को अथवा परात्पर परब्रह्म को प्रेमलक्षणा भक्ति से अपनी परा-सर्वोत्कृष्टा भक्ति का परिचय दिया करते हैं। पूर्वोक्त तीनों प्रकार की भक्ति, कायिक, वाचिक और मानसिक भेद से पुनः तीन प्रकार की हो जाती है।

कायिक भक्ति—अपने प्रभु को प्रसन्न करने के लिये अथवा अपने इष्ट देव की सेवा के उपलक्ष्य में शरीर द्वारा जितने भी कार्य किये जाते हैं, वे सब कायिक भक्ति में ही गिने जाते हैं। मन्दिर स्थानों की सेवा, सन्त-समाज की सेवा, तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा, मन्दिर को लीप देना, महात्मा पुरुषों को स्थान बना

---

[1] सगुण भक्ति से जो अभीष्ट की प्राप्ति लिखी है, उसका अर्थ मोक्ष नहीं समझ लेना चाहिये। क्योंकि—"अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।"

भगवान ने गीता (७-२३) में सुनिश्चित कर दिया है कि—जो नाना देवों की उपासना में लगे हैं अथवा कामना के वश होकर भक्ति में लगे हैं, उनको अभीष्ट फल की प्राप्ति होती तो है, परन्तु उन्हें नश्वर लोकों के फल की ही प्राप्ति हो सकती है, अनादि फल की नहीं। वस्तुतः सगुण भक्ति का विधान मनुष्य को सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने के लिये है, मोक्ष के लिये तो परा भक्ति को ही धारण करना चाहिये। इस प्रकार भक्ति शास्त्रों में लिखा है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

देना। कथा, पारायण आदिके मंडप स्थान आदिका निर्माण करा देना, उनको टूटे फूटे रूप में पाकर पुनः निर्माण करा देना अथवा जीर्णोद्धार करा देना ये सब कायिक भक्ति के अङ्ग, उपाङ्ग माने जाते हैं।

वाचिक भक्ति— अपने इष्ट देवको प्रसन्न करने के लिये अथवा अपने आत्माको निर्मल बनाने के जितने भी स्तोत्र, कथा, कीर्तन, भजन, पूजा, पाठ, पारायण, आदि किये जाते हैं — ये सब वाचिक भक्ति में ही गिने जा सकते हैं। ग्रन्थों की रचना करना, कराना—यह भी वाचिक भक्ति का मुख्य[1] अङ्ग है। क्योंकि

---

[1] उत्तम ग्रन्थ विश्वकी सबसे अधिक कीमती वस्तु है। ग्रन्थ देखने को कागज स्याही के रूपमें प्रतीत होता है, परन्तु वास्तविक विचार से देखा जावे तो यह सबसे बड़ी चेतन सेवा है। ग्रन्थ सेवा भले चेतन पुरुषकी की जावें तो भी वे सब परिणाम में जड़ हो जाती हैं। ग्रन्थ देखने को जड़ प्रतीत होता है, परन्तु विश्वका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चेतनज्ञान ग्रन्थों के द्वारा ही प्राप्त होता है। ऋषि मुनियों का लाखों वर्षका पुराना ज्ञान हमें ग्रन्थ के द्वारा ही प्राप्त होता है। बड़े-बड़े महान पुरुषों का अनुभव उनके न रहने पर भी हमें मिला करता है। श्रीप्राणनाथ प्रभुके वचनों का साक्षात् अनुभव श्री तारतमसागर के द्वारा ही प्राप्त होता है। यदि आज 'तारतम्य सागर' न होता तो ब्रह्मधाम के मार्गको हम कितना भूल चुके होते। यदि छोटी वृत्ति और बड़ी वृत्ति न होती तो हमारे सामने परमधाम का चित्र खड़ा नहीं हो सकता था। प्रणालिका और विराट निरूपण की प्रणालिका चालु न होती तो आज इस विराट दर्शन का दर्शन भी दुर्लभ ही होता। इस भांति विविध रूपसे ग्रन्थकी रचना कर मनुष्य मात्रका उपकार करना, ये वाचिक भक्तिका सबसे प्रधान अंग है। इसमें कायिक भक्ति और मानसिक भक्ति का भी अन्तर्भाव होनेसे मन, वाणी और शरीर तीनोंके द्वारा जो भक्तिका फल प्राप्त होता है वह सब (तीनों) इस ग्रन्थ रूप सेवामें आ जाते हैं। ग्रन्थ के उत्तम ज्ञान से शरीर भी निर्मल बनता है और मन तो पवित्र होता ही है। वचनको पवित्र करने के लिये तो उसकी रचना की जाती है। इस प्रकार सूक्ष्म विचार करें तो विदित होगा कि – परमात्माकी सबसे उत्तम भक्ति, उत्तम ज्ञान–पूर्ण ग्रन्थोंका प्रकाशन करना है। यही कारण है कि वसिष्ठ, गौतम, नारद, व्यास, शुक, सनकादिक, शेष, महेश, जितने भी महापुरुष हुए हैं सब ग्रन्थों की रचनाको महत्त्व देते रहे हैं, एवं सबने ग्रन्थों की रचनाकी हैं। स्वयं भगवान श्रीकृष्णने गीताको एवं श्री प्राणनाथ प्रभुने तारतम्य सागरको रचकर इस बात को और भी विशेष गौरव प्रदान किया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

भक्ति का अर्थ सेवा होता है, यह बताया जा चुका है। जितनी और जैसी कुछ वाचनिक सेवा ग्रन्थों के द्वारा हो सकती है, अन्य प्रकार से नहीं। कथा, उपदेश, व्याख्यान आदि से भी हजारों मनुष्यों की सेवा की जा सकती है। परन्तु ग्रन्थ के द्वारा लाखों पुरुषों की सेवा एक ही साथ भिन्न-भिन्न देश में रहते हुए भी हो सकती है। एक बार की गई सेवा सदाकाल अपने आप आगे बढ़ती रहती है। क्या विश्व में कोई ऐसी भक्ति है, जो एक बार आचरण में लाने से अथवा एक बार धारण कर लेने से परम्परा के लिये अखंड रूप से चालू रहे ? तो कहना पड़ेगा कि-यही एक सबसे उत्तम मार्ग है, जो तारतम्य के द्वारा विश्व को ब्रह्मदान की सेवा प्रदान कर सकता है। यही एक ऐसा मार्ग है, जिसमें सगुण-निर्गुण और परा-प्रेम लक्षणा, इन तीनों का समावेश एक ही साथ और अविभाज्य रूप से निरन्तर विद्यमान है। प्रेमलक्षणा भक्ति में प्रेम की आसक्ति मुख्य है, वह चाहे स्मरण रूप में हो अथवा माधुर्य-भाव पूर्ण हो। इस वाचनिक भक्ति को देखते हैं तो हमें दशधा प्रेम लक्षणा का समन्वय सबसे विशेष इसी में मिलता है। इसमें विरहा शक्ति भी विद्यमान है। दास्यभाव और आत्म-निवेदन के ऊपर तो इस भक्ति को पाते ही हैं। गुणमाहात्म्य और शरणागतिका तो इसे गुरु ही कह सकते हैं।

एक सद्ग्रन्थ रच दिया गया वह सहस्रों वर्ष तक माया में भूले पड़े हुए मनुष्यों को सन्मार्ग बताया करता है। जब कभी भी उस ग्रन्थ के द्वारा किसी को लाभ पहुंचा, सेवा चालू है। ग्रन्थ को रचने वाला भले मर गया हो, परन्तु उसकी वाचनिक भक्ति चालू है। वह लाखों मनुष्यों को अपने कर्त्तव्य का उपदेश दे रहा है। उसका आदर्श असंख्य मनुष्यों को वाचनिक भक्ति का लाभ पहुंचा रहा है। इस प्रकार इस जाग्रत ज्ञान को वचन द्वारा घर-घर में पहुंचाने वालों की अनन्य भक्ति अविच्छिन्न धारा से सदाकाल ही चालू रहती है।

यही कारण है कि- व्यास, वसिष्ठ, सनकादिक, शुकदेव, शेष, महेश, पतञ्जलि, श्रीकृष्ण, भीष्म पितामह, श्री प्राणनाथ प्रभु आदि अनेक महापुरुषों ने अनेक प्रकार से धार्मिक तत्त्वों को प्रकाश में लाकर विश्व की सेवा की है। यह उनकी वाचनिक भक्ति का ही प्रताप है कि विश्व में लाखों मनुष्यों को मार्ग मिल रहा है। जब तक इन महापुरुषों का ज्ञान विश्व में रहेगा, असंख्य स्त्री-पुरुषों को किसी न किसी रूप में लाभ पहुंचता ही रहेगा। इस प्रकार सूक्ष्म विचार करें तो उत्तम ग्रन्थों द्वारा जन समाज की सेवा करना सबसे उत्तम भक्ति है। अन्य सेवाएं एक देशीय भी हो सकती हैं। परन्तु वाचनिक भक्ति सर्व देशीय, सार्वजनिक और सार्व-कालिक भी है। इसके द्वारा तीनों[1] काल में सबके हित को साध सकते हैं। वाचनिक

[1] वर्तमान और भविष्य में लाभ होना तो ठीक पर भूतकाल जो व्यतीत हो चुका है, उसमें किस प्रकार लाभ होगा ? इस प्रकार की शंका न करनी चाहिये। कारण, भक्तिके प्रभाव

Shri Prannath Ji Pustkalay

भक्ति का महत्त्व वर्णन करते हुए भागवत में लिखा है।

'स वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति सन्तः,
अयं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य च स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥'

जिस वचन के द्वारा जनता के पापों का निरन्तर नाश किया जा सकता है। जिस विवेचन में अनादि, अखण्ड, अनन्त, असीम, सर्वातीत परमात्मा के यशों से अङ्कित अमृत स्वरूप धाम लीलादि के नामों का वर्णन आता है एवं जिन्हें जानकर महात्मा पुरुष उनको गान करते हैं, श्रवण करते हैं, परस्पर एक दूसरे को आत्म–बोध द्वारा जाग्रत करते हैं। इस प्रकार के इस अखण्ड अद्वैत लाभ के गौरव को निरूपण से, कथन से, बुद्धि–ग्राह्य बना कर अन्य को देने से उत्तमश्लोक जो पूर्ण ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण परमात्मा हैं उनके गुणोंका वर्णन अखण्ड भक्ति हो जाती है, इस प्रकार सूक्ष्म–दर्शी पुरुषों ने कहा है। जिस वाणी में, जिस वर्णन में, जिस निरूपण में सच्चिदानन्द स्वरूप पूर्ण ब्रह्मका वर्णन हो, जिसमें पूर्ण ब्रह्म को जानने के सोपान पर्वों का वर्णन हो, उससे उत्तम इस नश्वर जिह्वासे कौन सा [1] लाभ लिया जा सकता है। वही तो परम लाभ है जिसके द्वारा

से 'शतोत्तरं कुलं तारयति' इत्यादि श्रुतियों में पूर्व में जो हो चुके हैं, उनको भी तार देने की आज्ञा है। अतः भूतकाल पर भी लागू पड़ सकता है।

[1] रसना सोई निजनाम कहै रे। नहिंतर वेगि काढ़ि गाहि डारौ मुख में चाम भलो न रहै रे। रसना सो०

जिस जीभसे परब्रह्म का वर्णन न हुआ, जिसने सर्वातीत पूर्णब्रह्म के उत्तम यश का गान न किया, ऐसी जीभ मुख में बनी रहे तो वह चमड़े के समान अशुद्ध और अपवित्र तो है ही अतएव कहते हैं :—

"सा वाग् ययानन्तगुणान् गृणीते"

वाणी वही है, जिससे सदा "नित्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" का निरूपण होता रहे। वाणी उसी की सफल है, जिसने अनेक हृदयों के अन्धकार को मिटा कर प्रकाश कर दिया है। धन्य हैं वे पुरुष, जिन्होंने अज्ञान को हटा कर परमधाम में जाने का अधिकार प्रदान कर दिया हो। ऐसे ही महान आत्मा का सफल जीवन हैं, जो स्वयं तरण–तारण होकर अपनी वाणी से दूसरे मनुष्यों के अज्ञान को दूर करने में लगे हुए रहते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

असंख्य पुरुषों को अखण्ड धन दिया जा सकता है। जो असंख्य स्त्री पुरुष को अखण्ड धन (तारतम्यको) दे रहा है फिर उसको स्वयं के लिये तो क्या चिन्ता है !

इस प्रकार से देखा जावे तो वाचिक भक्ति का सेवाक्षेत्र बहुत ही व्यापक, उपयोगी और अवर्णनीय प्रतीत होता है। यही कारण है कि विश्व के आदि काल से लेकर आज तक जितने भी महान पुरुष हुए हैं उन्होंने इस मार्ग को अवश्यमेव अपनाया है। यथा शक्ति उसको आदश रूप में तो उपस्थित किया है साथ ही प्राणों की बाजी लगाकर भी उसे सुरक्षित रखा है। जीवन का सबसे अमूल्य समय उन्होंने इस वाचिक भक्ति के प्रचार में लगाया है। सबसे उत्तम बात तो यह है कि–वाचिक भक्ति—ज्ञान द्वारा विश्व की सेवा करना सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति में जितना उपयोगी है, उससे कहीं अधिक प्रेम लक्षणा भक्ति में भी उसकी उपयोगिता अक्षुण्ण (अखण्ड) रूप से विद्यमान है। अतः हमें चाहिये कि—इस रहस्य को अवश्य समझने का प्रयत्न करते रहें।

मानसिक भक्ति—कायिक और वाचनिक दोनों की अपेक्षा मानसिक भक्ति उत्तम मानी गई है। मानसिक कहने का तात्पर्य यह नहीं होता कि काया और वचन के सहयोग बिना केवल मन से ही करना, किन्तु मन की तल्लीनता को बताने के लिये 'मानसिक' शब्द कहा गया है। यह तो सब जानते हैं कि काया और वाणी के सहयोग बिना मन सब काम नहीं कर सकता, अत. केवल मन की भक्ति पूर्ण दृढ़ नहीं हो सकती। परन्तु जिस प्रकार कायिक भक्ति में मन और वाणी गौण रहते हैं, केवल काया की ही प्रधानता रहती है एवं वाचिक भक्ति में शरीर और मन गौण रहते हैं केवल वाणी की प्रधानता रहती है। उसी प्रकार मानसिक भक्तिमें भी शरीर और वाणी दोनों गौण रहते हैं और मनकी प्रधानता हो जाती है। जिस भक्ति में तन, मन और वचन तीनों का सहयोग पूर्णतया रहता है, उसे पूर्णदृढ़ा भक्ति कहा जाता है। इस प्रकार भक्ति के विविध भेद हो जाते हैं।

नवधा भक्ति—राजस. तामस[1] और सात्त्विक भेद से सत्ताईस प्रकार की हो जाती है। उसमें भी पुष्ट, प्रवाह और मर्यादा रूप से पुनः तीन भेद हो जाते हैं। साधारण मनुष्य प्रवाह में पड़े हुए "गतानुगतिको लोकः" के अनुसार एक दूसरे

[1] नवधा भक्ति में तीन प्रकारकी निष्ठा मानी गई है। श्रवण, कीर्तन और स्मरण, ये तीनों नाम निष्ठा में माने जाते हैं। पादसेवन, अर्चन और स्तुति करना, ये तीनों रूपनिष्ठा के अन्तर्गत हैं। दासभाव, सखाभाव और आत्मनिवेदन–इन तीनों को भाव निष्ठा माना गया है। इस प्रकार मर्यादा वालों को यथाशक्ति उपरोक्त तीनों प्रकारकी निष्ठा का अवलम्बन करना चाहिये, तब कहीं मर्यादा का पालन हुआ, ऐसा माना जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

को देखकर आगे बढ़ते हैं। जिस प्रकार एकने आचरण किया उसीको देखकर दूसरे ने अनुकरण कर लिया। हमारे मार्ग में कोई भूल हो रही है अथवा हमारे अन्दर कितनी न्यूनता है, इस बात का विचार बहुत कम रहा करता है।

जो तो मर्यादाके साथ भक्ति भाव का पालन करते हैं, वे प्रवाह की अपेक्षा—अधिक उत्तम माने जाते हैं। उनके आचार विचार तथा नियम, सब नियत प्रकार के होते हैं, उन्हीं के अनुसार उन्हें भक्ति को धारण करना पड़ता है। उनके भोजन, भजन में भी मर्यादा रहती है। वे नाम, रूप और भाव, तीनों प्रकार की निष्ठाको अपनाते हैं। तन, मन, धन से उसे सफल बनाने की चेष्टा किया करते हैं। उनके इस नियम में किसी प्रकार का विघ्न न पड़ना चाहिये, एवं न उन्हें कभी अपने नियम का परित्याग करना चाहिये। भक्तों को भगवान का स्वरूप समझ कर उनकी सेवा भी प्रेम के साथ करनी चाहिये। किसी भगवदीय भक्त के साथ ईर्ष्या, द्वेष अथवा छल कपट का व्यवहार नहीं पाल सकते। सभी मर्यादाओं का पालन होना चाहिये।

पुष्टभक्ति—मनुष्य प्रवाह और मर्यादा दोनों से आगे बढ़ जाता है, उसके हृदय में तल्लीनताका भाव उदय हो जाता है। लौकिक कार्यों की उपेक्षा और लौकिक व्यवहार का त्याग होनेके कारण वह लोक बाह्य दशामें विचरता है। उसके यावत् कार्य प्रभु की इच्छा पर निर्भर रहते हैं। उसे प्रभु चिन्तन के अतिरिक्त और कुछ रुचिकर प्रतीत नहीं होता। उसका तन, मन, धन, तो सब प्रभुको अर्पण हो चुका रहता है, अतः उसके हृदय से ममता, मोह, राग, द्वेष भी स्वतः हट जाने हैं। अतः वह सम्पूर्ण विश्व को भगवत्स्वरूप मानने लगता है। उसकी भक्ति और भाव भिन्न नहीं रह जाते, किन्तु उसका सब कुछ प्रभुमय बन जाता है। वही पुष्टता की पराकाष्ठा है। जब प्रभुके स्वरूप में पुष्टभाव को प्राप्त हुआ, वह कृतार्थ हो गया। इस प्रकार शास्त्रों का उल्लेख है।

"न तस्य कार्यं शिष्टं च विद्यते"

उसके लिये कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। वह तो प्रतिक्षण अपने प्रभुको पास में ही समझता है। निष्काम भावना का उदय होने से वह लोकोत्तर दशा को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकारसे नवधाके इक्यासी भेद हो जाते हैं। जिनमें से प्रवाह और मर्यादा में तो कामना होना माना गया है। पुष्ट में कामना नाश पा जाती है और निष्काम दास भाव का उदय हो जाता है। यह दासभाव निष्काम भाव के कारण और भी उच्चतम हो जाता है और फिर वह सूरदास और मीरा की भांति अपने को प्रभु के स्वरूप पर निछावर पाता है। इस प्रकार नवधा भक्ति का अन्त निष्काम दासभाव के द्वारा भक्ति की पराकाष्ठा में हुआ करता है। इस भांति सगुण भक्ति का उल्लेख मिलता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

निर्गुणा भक्ति—जो मनुष्य नवधा को सगुण और साकार में सीमित मानते हैं एवं ज्ञानयोग अथवा क्रियायोग के द्वारा अपने को उससे भी आगे ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप में ले जाना चाहते हैं। उन्हें सगुण–साकार के भाव का त्याग करना पड़ता है। वे अपने को ब्रह्मरूप की भावना में देखते हैं। वहां पर श्रवण, कीर्तन अथवा स्मरण, वन्दन का क्रम नहीं है। वे दासभाव अथवा अन्य किसी भाव को नहीं मानते। वहां पर तो 'सोऽहं' जो वह है, वही मैं हूं। चेतन में जीव और ईश्वर का भेद कैसा? भेदवाद की कल्पना यही तो उनके सिद्धान्त में माया है। "अयमात्मा ब्रह्म" यह आत्मा ही ब्रह्म है। केवल उपाधि के कारण हम अपने को ज्योतिस्वरूप ब्रह्म से भिन्न मानते हैं। जब उपाधि ही नहीं रहेगी, तब भेद कैसा? जिस प्रकार अज्ञानवश यह जीव स्वप्न में अपने को अनेक रूप में पाता है, वही जब जाग्रदवस्था को प्राप्त हो जाता है, तब उसके स्वप्न में जितने कल्पित स्वरूप थे, वे सब स्वतः मिट जाते हैं। उसी प्रकार भगवान माया की उपाधि से अनन्त रूप होकर नाना जीव दशा को प्राप्त हो रहे हैं। जब वे उपाधि से रहित हो जावेंगे तब सम्पूर्ण विश्व का विलय हो जायेगा। केवल ज्योतिस्वरूप निराकार एक ब्रह्म ही रह जायेगा। न उपाधि रहेगी, न उपाधि वाले जीव रहेंगे। सब मिटकर एक ईश्वर ही सर्वत्र भासने लगेगा। फिर भजन किसका किया जावे? यदि हम भजन करें भी तो उसमें और अपने में भेद माने तभी हम उसे भजें? ब्रह्म में भेद मानना, यही अज्ञान है। भेद का नाम ही तो माया है।

जिस प्रकार रस्सी में अँधेरे के कारण सर्प की भ्रांति होती है, परन्तु वास्तव में वहां सर्प नहीं होता, जिस प्रकार अधिक धूप में मृगजल की प्रतीति होने लगती है, वास्तव में वहां जल होता नहीं है। उसी प्रकार अज्ञान रूप उपाधि के कारण ब्रह्म में नानात्व की प्रतीति होने लगती है। वस्तुतः ब्रह्म में माया का अभाव है। वह तो जब "एकोऽहं बहुः स्याम्" अकेला ही बहुत रूप होने की इच्छा करता है, नाना रूप में हो जाता है। जब उसको समेट लेता है, नानात्व मिट जाता है। केवल निराकार स्वरूप एक ब्रह्म ही रह जाता है। बस, उसकी वह नानात्व की कल्पना ही विश्व में नाना जीव रूप से प्रतीत हो रही है। जीवरूप होकर वही कर्म के बन्धन में पड़ गया है। कर्म के कारण अन्तःकरण की उपाधि ने इस जीवरूप चेतन को अपने में घेर लिया है। बस, इस अन्तःकरण की उपाधि को मिटा देना ही मोक्ष पा जाना है। जब तक मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह की भावना है, वासना का उदय होता रहता है। जब तक वासना का उदय है, हमें कुछ न कुछ इच्छा अवश्य होगी। जब तक मनकी कल्पना चालू है। चित्त में चञ्चलता है, वासना हट नहीं सकती। किसी क्षण जीवात्मा चुपचाप नहीं बैठ सकता, इसलिये इसके कल्पना जालको नष्ट करने के लिये मनको वश में करना होगा। मन चंचल है, बिना योगाभ्यास के वह वश में होता नहीं अतः

Shri Prannath Ji Pustkalay

भगवान श्रीकृष्णजी गीता (६–३५) में कहते हैं—

"अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वैराग्येण च गृह्यते"

हे अर्जुन ! मन [1] चञ्चल है तो अवश्य, परन्तु योगाभ्यास से और वैराग्य भावना से ऊसे वश में किया जा सकता है। इस प्रकार क्रियायोग और ज्ञानयोग के द्वारा इस मन की चञ्चलता को और अज्ञान को हटाने का विधान विविध रूप से किया गया है। यही इनका सिद्धान्त है।

इनके मान्य ग्रन्थों में उपरोक्त ज्ञान–योग और क्रिया–योग का समर्थन भी युक्ति प्रमाण पूर्वक बड़ी गम्भीरता के साथ किया गया है। जिसको समझने के लिये यहां पर प्रमाण रूपमें दिग्दर्शन मात्र उपस्थित किया जाता है। यथा—

स्वल्पमप्यन्तरं कृत्वा जीवात्म-परमात्मनोः।
यस्तिष्ठति विमूढात्मा भयं तस्यापि भाषितम् ॥
अनुभूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽपि सन्।
असद्रूपो यथा स्वप्न उत्तरक्षणबाधितः ॥
स्वप्ने जागरितं नास्ति जागरे स्वप्नता न हि।
द्वयमेव लये नास्ति लयोऽपि ह्यनयोर्न च ॥
त्रयमेव भवेन्मिथ्या गुणत्रय–विनिर्मितम्।
अस्य द्रष्टा गुणातीतो नित्यो ह्येष चिदात्मकः ॥
जगन्नाम्ना चिदाभाति सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥
यथाबन्ध्यासुतो नास्ति यथा नास्ति मरौ जलम् ॥
यथानास्ति नभोवृक्षस्तथा नास्ति जगत्स्थितिः ॥
गृह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिका भाति वै बलात्।
वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चे तु ब्रह्मैवाभाति भासुरम् ॥ (योगशिखोपनिषद्)

---

[1] चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ (गीता० ६–३४)

मन की चंचलता को रोकने में अपने को असमर्थ पाकर ही तो अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा था कि महाराज ! पवन के समान प्रतिक्षण उड़ने वाला, यह मन किस प्रकार वश में किया जा सकता। कहने का तात्पर्य कि मनकी चंचलता को मिटाने के लिये भगवान ने भी योग को मुख्य माना है, अतः योगाभ्यास द्वारा वासना को नष्ट करने का इनके यहां विधान है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अर्थ—'जो कोई पुरुष जीवात्मा और परमात्मा के विषय में भेद मानता है, उसको जन्म-मरण का भय बना रहता है। यह सम्पूर्ण विश्व यद्यपि देखने सुनने में और अनुभव में यथार्थ जैसा प्रतीत होता है, परन्तु वस्तुतः देखा जावे तो यह स्वप्न के समान मिथ्या और क्षणिक है। स्वप्न में जाग्रत का ज्ञान नहीं होता और जाग्रत में स्वप्न टिक नहीं सकता, एवं ये दोनों प्रलय के अनन्तर नहीं रहते। जब ये दोनों रहते ही नहीं तब इनका अस्तित्व ही मिथ्या है। इस प्रकार द्रष्टा, दृश्य और जाग्रत स्वप्न, ये तीनों ही मिथ्या हैं। इनको देखने वाला साक्षीरूप इन तीनों से भिन्न नित्य ही चेतन एवं गुणातीत है। वही चेतन जगत के नाम से प्रतीत होता है। जिस प्रकार स्वप्न में साक्षी पुरुष ही द्रष्टा, दृश्य सब कुछ प्रतीत होता है और स्वप्न भी कल्पना मात्र होता है। उसी प्रकार ब्रह्म ही कल्पना मात्र से माया के कारण अनेक चेतन रूप में प्रतीत हो रहा है। जो केवल प्रतीति मात्र एवं मिथ्या है। केवल गुणों के द्वारा भासता है। जिस प्रकार वन्ध्यासुत, मृगतृष्णा का जल और आकाश में बगीचा, केवल कहने के लिये होते हैं यथार्थ में तीनों ही असत्य है। उसी प्रकार जगत को समझना चाहिये। जिस प्रकार मिट्टी से बना हुआ घड़ा मिट्टी का होते हुए उसे 'घट' संज्ञा से पुकारते हैं, वस्तुतः वह मिट्टी रूप है। उसी प्रकार जगत ब्रह्म से बना है, अतः ब्रह्मरूप है, प्रपंच रूप तो अज्ञान से भासता है। इस प्रकार युक्ति दृष्टान्त देकर अपने पक्ष को पुष्ट करते हैं। परन्तु इतना ध्यान नहीं रखते कि—जब ब्रह्मरूप ही जगत है और ब्रह्म ही जीवरूप हो गया है तो उसके स्वप्न के लय होने पर द्रष्टा दृश्य सब मिथ्या हो जावेंगे ही, केवल ब्रह्म रह जायेगा। तब वेद शास्त्रों की क्या आवश्यकता ? योग और ज्ञान की क्या महत्ता ? स्वप्न के मिटने पर सबको मिट ही जाना है, द्रष्टा दृश्य कुछ रहना नहीं। घट के फूटने पर घड़ा के अन्दर का प्रतिबिम्ब स्वतः नष्ट हो जाता है, तब प्रतिबिम्ब को ज्ञान क्यों देना और किस लिये ? उसको ज्ञान से लाभ क्या ?

जब ब्रह्म ही अज्ञान में फँसा है तब उसे जगाये कौन ? उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं, फिर वही स्वप्न में, माया में आ फँसा। अब जगना जगाना क्या ? सूर्य के पास अँधेरा रहता ही नहीं, ब्रह्म में माया किस प्रकार जा घुसी और सर्वज्ञता और व्यापकता को मिथ्या माया ने उपहित किस प्रकार कर लिया है, ये सब प्रश्न उपरोक्त कल्पना को उभयतः 'रज्जुपाशः' की भांति स्थिति को प्रकट करते हैं। प्रतिज्ञा-विरोध में निगृहीत होने पर भी जो अपनी कल्पना को नहीं छोड़ता, उसके लिये शास्त्र दूसरी ही उपाधि की तजवीज कर डालता। अतः कुछ तो विचार से काम लेना चाहिये। सर्व शक्तिमान ब्रह्म स्वयं माया में जीवरूप धारण कर जीव दशा को भोगता रहे, नरक भोगे, चौरासी लाख योनि के दुःख भोगे, अपने आप मुक्त भी न हो सके, जीवरूप से मुक्ति का प्रयत्न करे, यह सब कहां तक संगत है ?

Shri Prannath Ji Pustkalay

सूर्य के पास अन्धकार तीनों काल में नहीं रहता। ब्रह्म तो चिद्घन स्वरूप है उसमें माया किस प्रकार आ घुसी ? यह भी विचित्रसा लगता है। फिर जब ब्रह्म ही माया में फंस गया, तब उसे जगाये कौन ? क्या स्वप्न—द्रष्टा ब्रह्म को स्वप्न के कल्पना-जन्य दृश्य जीव जगा सकते हैं ? जब द्रष्टा ब्रह्म को ही अयथार्थ ज्ञान हो रहा है, तब दृश्य—रूप जीवों को यथार्थ ज्ञान किस प्रकार हो और कहां से प्राप्त हो ?

स्वप्न द्रष्टा पुरुष स्थूल रूप से स्वप्न देखता है। स्वप्न उसकी सूक्ष्म अवस्था है। साक्षी रूप से वह स्वप्न का अधिष्ठान भी होता है। ब्रह्म तो स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण, इन चारों अवस्थाओं से परे तुर्यातीत कहा जाता है। उसे स्थूल विश्व में किसी प्रकार मिला दिया गया ? यह सब परस्पर [1] विरुद्ध किस प्रकार माना जावे ?

उपाधि भी तो ब्रह्म को लगी है, जो द्रष्टा होकर सबमें प्रतीत हो रहा है। जीव तो उपाधि के कारण कल्पित प्रतीत हो रहे हैं। अब जब तक ब्रह्म स्वयं जाग्रत् न हो जावे, उसे जाग्रदवस्था प्राप्त न हो जावे, तब तक जीवरूप दृश्य विश्व का लय किस प्रकार हो ? उपाधि के कारण प्रतीत होने वाले जीव भी समष्टि रूप में वर्तमान हैं। जब तक समष्टि का नाश न हो, व्यष्टि—एक जीव किस प्रकार ब्रह्म बने। उपाधि भी तो ब्रह्म को लगी है, जीव तो कल्पना जन्य हैं, फिर वह ब्रह्मभाव को किस प्रकार प्राप्त हो सकेगा, यह समझ में नहीं आ सकता। ब्रह्म के उपाधि युक्त रहते हुए जीव निरुपाधि किस प्रकार हो सकता है ? जब ब्रह्म ही माया में ग्रसित है, तो उसका नियन्ता कौन है ? नियन्ता के

---

[1] **प्रतिज्ञा हेत्वोर्विरोधः प्रतिज्ञाविरोधः** (न्याय दर्शन ५-२-४)
प्रतिज्ञा हेत्वोर्यः परस्परं विरोधः स प्रतिज्ञाविरोधः''

न्याय दर्शन के प्रणेता 'गौतम' कहते हैं कि—प्रतिज्ञा और प्रतिज्ञा के हेतुओं का परस्पर विरोध हो जाता हो तो उसे 'प्रतिज्ञा विरोध' नाम का निग्रह स्थान कहते हैं। जो प्रतिज्ञात विषय को विपरीत हेतुओं से सिद्ध करने जाता है वह उक्त सूत्र का लक्ष्य बन जाता है। 'ये सब विश्व को स्वप्नवत् होने की प्रतिज्ञा भी करते जाते हैं और ब्रह्म को व्यापक और निराकार भी मानते हैं स्वप्न में सदाकाल देखे सुने हुए पदार्थ ही प्रतीत होते हैं। स्वप्न सदा एक देश के अधिष्ठान को लेकर ही होता है। ये सब बातें तभी घट सकती हैं। जब स्वप्न द्रष्टा के अतिरिक्त नियन्ता की सत्ता हो। स्वप्न द्रष्टाने कभी स्वप्न में प्रतीत होने वाले पदार्थों को देखा भी हो और वह एकदेशीय हो। अन्यथा हेतुव्यभिचार के कारण सम्पूर्ण कल्पना मिथ्या हो जाती हैं। और 'प्रतिज्ञाविरोध' नाम का निग्रहस्थान प्राप्त हो जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

बिना इतने बड़े विश्व का संचालन किस प्रकार हो सकता है ? श्रुतियों में नियन्ता के भय से[1] विश्वका संचालन माना गया है। श्रुतियों में ब्रह्मको उपाधि और माया से परात्पर भी माना है। फिर उसीको माया में ग्रस्त बता कर जन्म–मरण के बन्धन में डालना एवं नरक यातना का अधिकारी बनाना। और फिर वह ब्रह्मा ही जीवरूप होकर कुकर्म करने लगा और ब्रह्म ही यमराज बनकर अपने स्वरूप को दण्ड देने लगा। ब्रह्म को नरकों के असह्य दुःख भोगने में क्या आनन्द आता होगा, यह भी समझ में नहीं आता?

जिनके मत में नरक भी ब्रह्म, नरक का भोक्ता भी ब्रह्म और नरक रूप दुःख भी ब्रह्म, तब तो दुखों के अनुभव को भी ब्रह्मानन्द मानना चाहिये। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' को छोड़कर गुफा कन्दराओं को झाँकना, एवं जो ब्रह्मरूप विश्व का आनन्द ले रहे हैं, उन्हें, अधम अज्ञानी आदि कहना, परस्पर असङ्गत प्रतीत होता है।

घट मध्ये यथा दीपो बाह्ये नैव प्रकाशते।
भिन्ने तस्मिन् घटे चैव दीपज्वाला च भासते (योगशिखोप०)

घट के अन्दर दीपक की भांति, जीव शरीर में प्रकाश कर रहा है। घड़ा के फूटने पर भी दीप–ज्योति नाश नहीं हो पाती। यह भी उदाहरण यथार्थ नहीं घटता। कारण, दीपको बुझा दिया जावे तो बाहर भीतर कहीं प्रकाश नहीं रहता। किन्तु वह अग्नितत्त्व में समा जाता है। जीवदशा मिटा देने से जीवतत्त्व ब्रह्म में समा जाता है। यह तो तब घट सकता था, जब स्वप्न द्वारा प्रतिबिम्ब न मानकर जीव को अंशरूप अथवा तद्रूप मानते। परन्तु ये सब द्रष्टा दृश्य के स्वप्नभाव में घटते ही नहीं, और फिर दीपको नष्ट करने पर उसके प्रकाश का महत्त्व नहीं रहता। वह नाश पा जावे अथवा प्रकाश तत्त्व में समा जावे, दोनों अवस्था समान है। दीप जड़ है, न वह कार्य में बंधा है न उसे जन्म मरण का दुःख सुख भोगना

---

[1] भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः (कठोप० २–३)

परब्रह्म के शासन भय से अग्नि नियमित प्रकाश करता है, उसी के भय से सूर्य तपता है। परमात्मा के भय से ही इन्द्र, वायु अपने अपने कार्य करते हैं। उसी के भय से मृत्यु अपने कार्य में लगा है। 'एतस्य वा शासने गार्गि सूर्यचन्द्रमसौ विधृतौ' इत्यादि (बृहदारण्यक) श्रुति में भी परब्रह्म के शासन में ही सबको बताया है। यदि ब्रह्म माया में फंसा होता तो शासन कौन करता ? जब ब्रह्म ही सब कुछ बन जाता है, तब कौन किसको उपदेश दे ? शास्त्रों की भी क्या आवश्यकता यह भी मनन करने योग्य है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

हैं। न उसे मोक्ष की आकांक्षा है, न उसे बन्धन का भय। दीप किसी स्थान में भी है, कर्ता सापेक्ष हैं। उसको रचने वाला भी होता है, बुझाया भी जा सकता है। वह घटके बाहर भीतर सर्वत्र समान है। परन्तु ब्रह्म को विश्वरूप और जीवरूप एवं द्रष्टा दृश्य सब कुछ मानने पर यह भी निदर्शन नहीं घटता। इसलिये इनकी सभी बातें परस्पर विरुद्ध और असङ्गत प्रतीत होती हैं। वस्तुतः देखा जावे तो व्यापक और निराकार शब्द भी सापेक्ष हैं। व्याप्य के विना व्यापक और साकार के विना[1] निराकार की कल्पना भी खड़ी नहीं हो पाती। इस प्रकार इनकी मान्यता ही असंगत है, तब इनकी उपासना भी इसी प्रकार की समझ लेवें। 'उप अर्थात् समीप में बैठा जावे जिसके द्वारा, उसे उपासना कहते हैं' जब वहां पर जीव और ब्रह्मका स्वरूप ही नहीं, रूप रंग नहीं, आकार प्रकार भी नहीं, तब समीप में किसके बैठें ? व्यापक पदार्थ तो दूर समीप होता ही नहीं, फिर उपासना कौन किसकी करे ? निराकार की उपासना निराकार किस प्रकार करे ? जीव भी ब्रह्म और जड़ चेतन विश्व भी ब्रह्म, तब ब्रह्म को ढूंढ़ना क्या ? क्योंकि वह सर्वत्र ब्रह्मरूप में तो प्राप्त ही है, अब उसकी उपासना क्या करना है ? इसलिये ये सब 'सोहं ब्रह्म' 'अहं ब्रह्म' 'अयमात्मा ब्रह्म' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि भावना का सेवन किया[2] करते हैं। यही कारण है कि इन्हें मोक्ष के लिये अनेक जन्मों तक भटकना पड़ता है। अतएव लिखा है—

ते वै लोके क्रममुक्ता भवन्ति योगैः सांख्यैः कर्मभिः सत्त्वयुक्तैः (वराहोप०)

त्याग, वैराग्य क्रियायोग, सांख्यज्ञान, कर्मयोग, सात्त्विक भावना आदि जितने आचरण हैं, वे सभी उच्च कोटि की ओर ले जाने वाले हैं, एवं इनके द्वारा

---

[1] निर्गत आकारो यस्मात् स निराकारः। निराद्यः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या इत्यनेन समस्यते। निकल गया हो आकार जिससे उसे निराकार कहते हैं।

[2] **वैराग्यसंन्यासी ज्ञानसंन्यासी ज्ञानवैराग्यसंन्यासी कर्मसंन्यासीति चातुर्विध्यमुपागतः ।।** (संन्यासोप०)

संन्यासी और योगियों के विविध भेद होते हैं। कुछ वैराग्य से संन्यास को मुख्य मानते हैं तो कुछ महात्मा ज्ञान से संन्यास को यथार्थ बतलाते हैं। कतिपय ज्ञान और वैराग्य दोनों को आवश्यक समझते हैं। कुछ संन्यासी कर्म त्याग को ही मुख्य मानते हैं। फिर इनमें उदासी, यति, प्रवधूत, स्वामी, दण्डी, कुटीचर, बहूदक, हंस, परमहंस आदि विविध भेद हैं, परन्तु मान्यता लगभग एक-सी है। इसी प्रकार योगी भी विविध भेद मानते हैं। हठयोग, राजयोग, क्रियायोग, सांख्ययोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, समाधियोग आदि। इसी कारण इनके भी अनेक भेद हैं। ब्रह्म विषय में मान्यता कुछ रूपान्तर से सबकी एक-सी है, अतः पृथक् पृथक् नहीं लिखा।

Shri Prannath Ji Pustkalay

आदर्श भावना भी प्राप्त हो जाती है, तथापि निर्गुण स्वरूप में 'अहंग्रह' मानना यह भी एकप्रकार ज्ञानजन्य अज्ञान है। अतएव क्रममुक्ति के द्वारा आगे बढ़ पाते हैं, ऐसा उल्लेख है। तभी तो भगवान ने "अनेक–जन्म संसिद्धः" और 'बहूनां जन्मनामन्ते' कहकर ज्ञानी और योगी दोनों के लिये अनेक जन्मों में मोक्ष तक पहुंचने का विधान किया है, जो अनेक सिद्धांतों के समन्वय का सार है। यही कारण है कि क्रियायोग और ज्ञानयोग दोनों को ही बाधित माना गया है। और फिर कलियुग जैसे असमर्थ युग के लिये तो योग और संन्यास दोनों ही[1] गौरव शून्य हैं। जिसका वर्णन पीछे किया जा चुका है, अतः विष्टपेषण करना उचित नहीं। परन्तु इतना तो स्पष्ट हो जाता है भक्तिमार्ग के अतिरिक्त जितने भी अन्य साधन हैं, वे सब जीवात्मा को उच्च आदर्श की ओर ले जाने के लिये उपयोगी हैं मोक्षप्रद नहीं। मोक्ष तो केवल परा भक्ति के द्वारा ही मिल सकता है। यही कारण है कि शास्त्रों ने ज्ञान, योग क्रिया कलाप, तप त्याग, आदि उच्च भावना को बढ़ाने वाले साधनों को भक्तियोग के सहायक माना है। क्योंकि बिना उच्च कक्षा को प्राप्त किये उच्च कोटि की भक्ति सर्व साधारण से नहीं बन पाती। अतः ज्ञान, वैराग्य, तप, त्याग आदि को भी आचरण में रखना चाहिये, यह ठीक है। परन्तु इनसे कैवल्य मुक्ति एक ही जन्म में प्राप्त करना चाहो तो यह सब नहीं बन सकता। उसके लिये तो श्रीकृष्ण परमात्मा की अनन्य भक्ति ही करना उचित है। जो सबसे उत्तम और अबाधित है एवं कलियुग में जिसे ब्रह्म मुनियों के द्वारा विशेष गौरव भी प्राप्त हो चुका है। अतएव नारदजी कहते हैं :—

त्वदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह।
पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्णमन्दिरम् ॥
येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी।
न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमल–मूर्त्तयः ॥ (भाग० मा० अ.२)

---

[1] "न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव !" (भाग० ११)
अग्निहोत्रं चाश्वमेधं संन्यासं पलपैतृकम् ।
देवरात्सुतोत्पत्ति कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥ (निर्णयसिन्धु कलिवर्ज्य प्र०)

कलियुग में न तो योगाभ्यास से प्रभु मिलते हैं, न सांख्य धर्म—वासना त्याग से, न ज्ञान द्वारा मोक्ष होता है किन्तु केवल भक्ति से ही मुक्ति प्राप्त होती है। इतना ही नहीं बल्कि कलियुग में संन्यास धारण करना, अश्वमेघ, गोमेघ, राजसूय, नरमेघ आदि यज्ञों का करना, पिण्ड दान, नियोग से वंश चला लेना, एवं अग्नि होत्र धारण करना, आदि सब निषिद्ध भी हैं, अतएव इनको शास्त्र विरुद्ध भी माना गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

माधुर्यभावसे मोक्ष

भक्ति विषय के विविध अवतरणों परसे एवं "पुरुषः स परः पार्थ ! भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया" इत्यादि भगवद् वाक्यसे सुतरां स्पष्ट हो जाता है कि—परात्पर पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति के लिये केवल परा—प्रेमलक्षणा भक्तिको ही उत्तम से उत्तम माना है, जो अक्षरशः यथार्थ है। कारण, जब मनुष्य विविध प्रकार की साधना करते-करते भक्ति के आगे बढ़ जाता है एवं साधनों से छुटकारा पा जाता है, तभी साध्य भक्ति को प्राप्त होता है।

यों तो प्रेमलक्षणा भक्तिवालेको अन्य साधन सापेक्ष नहीं रहते। क्योंकि जिसके हृदयमें प्रेमरूपी सूर्यका उदय हो जाता है, अन्धकार स्वतः ही नहीं रहता। वह तो "क्षिप्रं भवति धर्मात्मा" महान धर्मात्मा बन जाता है। उसके लिये तो प्रभुकी आज्ञा है कि— "अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच" तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, मैं तुम्हें सब पापों से छुटकारा दिलाकर आवागमन से रहित ब्रह्मधाम में पहुंचा दूंगा। वस्तुतः विचार करें तो अनन्यभक्त से पापोंका आचरण होता ही नहीं। वह तो दूसरों को भी पवित्र बनाता रहता है, स्वतः तो पाप क्यों करने लगा ? परन्तु पराशक्ति का आदर्श सबसे उच्च और निर्मल बनाने वाला है, यह सूचित करने के लिये भगवानने अपनी असीम कृपाको स्पष्ट कर दिया है। तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि—परा प्रेमलक्षणा भक्ति सबको प्राप्त नहीं हो पाती। यह तो उसी प्रकारके किसी सद्गुरु की कृपा हो जावे या तो पूर्व जन्मों का पुण्य उदय हो जावे, तब इस भक्ति का सौभाग्य प्राप्त होता है। यही कारण है कि—

जन्मान्तर सहस्त्रेषु[1] तपोज्ञानसमाधिभिः ।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥ (वि० पु०)

---

[1] श्री कृष्णकी अनन्य भक्ति के महत्त्व को पुराणों में विविध रूप से वर्णन किया है। हरितन्त्र में भक्ति के गौरव – लाघव का वर्णन करते हुए लिखा है—

तस्य सीतापतेर्यस्तु सहस्त्रान्तेषु जन्मसु ।
भवत्येव फलं तस्य नारायण-परायणः ॥
तत्रापि निश्चलमना नरः कोटयन्तजन्मसु ।
श्रीकृष्णस्य पदाम्भोजे भक्तिः स्यादनपायिनी ॥ (हरितन्त्रे)

अन्य अवतारों की भक्ति कई जन्म तक करते-करते सीतापति राम की भक्ति प्राप्त होती

Shri Prannath Ji Pustkalay

—सहस्रों जन्मके तप, समाधियोग और ज्ञानके द्वारा निर्मल अन्तःकरण होनेपर श्री कृष्ण परमात्मा की अनन्य भक्ति प्राप्त होती है। अन्यथा इस गुरुगम्य भक्तिमार्ग पर विश्वास ही नहीं आता। तभी तो शास्त्र में लिखा है

"महाप्रसादे गोविन्दे, भक्तिभावे तथा गुरौ ।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् ! विश्वासो नैव जायते ॥"

है। रामचन्द्र जी की भक्ति करते-करते करोड़ो जन्म व्यतीत हो जाते हैं तब नारायण–परायण बनता है। निश्चल मनसे करोड़ों जन्म तक नारायण–परायण रहे, तब कहीं श्री कृष्णके चरणों की अनपायिनी–अनन्य भक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार जिधर देखिये उधर ही, श्रीकृष्ण परमात्मा की अनन्य भक्तिका ही विशेष महत्त्व प्रतिपादन किया गया है। यही कारण है कि 'शिवजी ने श्री कृष्ण मंत्रको लेने की सम्मति प्रदान की है। यथा—

गाणपत्येषु शैवेषु तथा शाक्तेषु सुव्रत !
सर्वेषु मंत्रवर्गेषु वैष्णवं श्रेष्ठमुच्यते ॥
वैष्णवेषु च मंत्रेषु कृष्णमंत्राः फलाधिकाः । (गौतमीये)

गृहाण मंत्रं कृष्णेति कर्ममूल–निकृन्तनम् ॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां सारात्सारं परात्परम् ।
(ब्रह्मवै० पु० कृ० खं० १३०–८)

गणेशमंत्र, शिवमंत्र और शक्ति–मंत्रों की अपेक्षा विष्णुमंत्र को श्रेष्ठ कहा है। विष्णु के जितने मंत्र हैं उन सबसे उत्तम कृष्ण मन्त्र होता है। इसलिये कृष्ण मंत्रको ही ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि यह सब मंत्रों का सार रूप है और सब मंत्रों से परात्पर भी है। अतः मोक्षकी इच्छा वालों को श्रीकृष्ण महामंत्र धारण करना चाहिये।

मया दत्तो गणेशाय स्कन्दाय स्वात्मजाय च ।
मह्यं दत्तश्च कृष्णेन गोलोके रासमण्डले ॥
ब्रह्मणे चापि धर्माय धर्मो नारायणाय च ।
ब्रह्मा सनत्कुमाराय तुभ्यं दत्तश्च तेन वै ॥
(ब्रह्म वै० कृष्ण खं० अ० १३०)

शिवजी नारदजी के प्रति कहते हैं – हे नारद ! मैंने अपने पुत्र गणेशको और स्कन्ध स्वामी कार्तिकेयको कृष्णमंत्र ही दिया है जो मुझे रासमण्डल के समय श्री कृष्णने दिया था। वही ब्रह्मा, सनत्कुमार, धर्मराज, नरनारायण इन सबको एक दूसरे से प्राप्त होता गया है। ब्रह्माजी से तुम्हें भी वही प्राप्त हो गया है, इस प्रकार देखें तो सभी देव श्रीकृष्णके भक्त मिलेंगे। परन्तु आजकल मनुष्यों ने इस तत्त्वको भुला दिया है और गौण उपासना में जा लगे हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

—अनेक जन्मों के उत्तम संस्कारों के उदय होने पर श्रीकृष्ण प्रभु की अनन्य-भक्ति प्राप्त होती है। इस बात को उक्त ऊपर के पद्य में बड़े रहस्य के साथ प्रस्तुत किया है। है भी ठीक, प्रेम लक्षणा में निम्न चारों बातें अनिवार्य रूप से होनी चाहिये, तभी उसका यथार्थ भाव प्रकट हो सकेगा:—

(१) प्रभु प्रसाद में अटूट श्रद्धा (२) श्री कृष्ण के ब्रह्म स्वरूप होने में अटल विश्वास। (३) माधुर्यभाव में पूर्ण क्षमता (४) सद्गुरु के वचनों में अलौकिक भावना।

ये चारों बातें निर्मल संस्कारों के प्रताप से ही प्राप्त हुआ करती हैं। फिर भी यह अनिवार्य नहीं, कि पूर्व-संस्कारों के बिना प्राप्त होती ही नहीं। कारण, प्रेमलक्षणा भक्ति में यह विशेषता है कि आत्माको निर्मल भी बना देना और परमधाम में भी पहुंचा देना। जिस प्रकार प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला लकड़ी के पानी को भी शोषती जाती है और उसे भस्म भी कर देती है। उसी प्रकार प्रेम के प्रकट होते ही उसके सब कर्म स्वतः नष्ट होते चले जाते हैं। यथा (भा० ११-१४-१९,२५) में—

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः॥
यथाग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।

श्री कृष्ण जी कहते हैं 'हे उद्धव! जिस प्रकार अग्नि में [1] आर्द्र काष्ठ और धातुओं के मल और अन्य दोष तत्काल नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार मेरी अनन्य भक्ति, भक्तों के कर्माशयको भस्म कर निर्मल बना देती है। गीता (९-३०-३१) में तो यहां तक कह दिया है कि—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥

---

[1] **व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का।**
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्॥
कुब्जायाः कमनीयरूपमपि किं किं तत्सुदाम्नो धनम्।
भक्त्या तुष्यति केवलं न तु गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

व्याधके पास आचरण का बल क्या था? ध्रुव के पास अवस्था बल कितना था? गजेन्द्र के पास विद्याबल क्या था? विदुर तो जाति के भी हीन थे। यादवपति उग्रसेन ने क्या पुरुषार्थ किया था? कुब्जा ने कुरूपता से कृष्ण को अपना लिया था। सुदामा के पास धन कितना था' परन्तु श्रीकृष्ण जी तो भक्ति के आधीन रहते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
मां हि पार्थ ! व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

कदाच दुराचारी हो, दुष्ट हो, पापयोनि हो, स्त्री हो, शुद्र हो, अधम व्यवसाय वाला हो, इस प्रकार कोई भी क्यों न हो, यदि मेरा अनन्य भक्त है, मुझे अनन्य भाव से भजता है तो वह परम पावन साधु बन गया, ऐसा मानना चाहिये। कारण, मेरी शरण को ग्रहण करने के अनन्तर फिर तो कभी विनाश को प्राप्त होता ही नहीं, किन्तु नित्य सुखको प्राप्त होता है, यह तो मेरी प्रतिज्ञा समझो।

यस्याङ्घ्रिमाश्रितवतां भवपाशहानिर्यस्यांघ्रिपद्मविमुखा जनिमृत्युभाजः ॥
यन्नाम शोधनमनन्तभवोन्मुखानां पापीयसामपि स मे शरणं मुकुन्दः ॥

जिस श्री कृष्ण परमात्मा के चरण कमलों का आश्रय लेकर पापी पुरुष भवबन्धन से छुटकारा पा जाते हैं एवं जिन श्रीकृष्ण के चरण कमलों के विमुख रहने पर कभी जन्म मरण के दुःख से नहीं छूट पाते। जिन श्रीकृष्ण के नाम को ग्रहण करने से अनेक जन्मों की पाप-परम्परा का भी संशोधन हो जाता है, यही श्री कृष्ण परमात्मा हमारे रक्षक हों।

अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् (भाग० १०-१४-३२)

ब्रह्माजी ने स्तुति करते हुए इस बातको मुक्त—कण्ठ से स्वीकार किया है कि- मित्र-रक्षक, प्रेम-मूर्ति श्रीकृष्ण जिनके हृदयमें विराजे हैं। जो परमानन्द स्वरूप श्री कृष्ण परमात्मा के आश्रम में हैं, जिन्होंने पूर्ण ब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण जैसे सनातन तत्त्व को अपना लिया है, वे अहो भाग्यशाली हैं। उन पुरुषों की चरण धूलि भी दुर्लभ है। इस प्रकार से श्री कृष्ण के आश्रय में रहने वाले पुरुषों का जीवन सफल बताया है। गीता (१०-९, १०) में तो यहां तक विश्वास दिलाया है कि—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
तेषां सततयुक्तनां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

—'हे अर्जुन ! मेरे में ही जिनका चित्त लगा है, मेरे लिये जिन्होंने प्राणों को निछावर कर दिया है, एवं इस परम तत्त्व को परस्पर एक दूसरे को ज्ञान द्वारा समझाते रहते हैं। ब्रह्मतत्त्व को ही निरन्तर कथन करते हुए सन्तोष मानते हैं, प्रेम में निमग्न विचरते हैं। ऐसे सतत युक्त अनन्य भक्तों को मैं ऐसी उत्तम बुद्धि प्रदान कर देता हूं, जिसके बल से वे परम पद को प्राप्त हो जाते हैं।

"न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संयोजयन्ति तं ॥ (महाभा०)

एष एव साधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते । (श्रुति)

—ग्वालों की भांति परमात्मा लाठी लेकर रक्षा करने के लिये नहीं घूमता किन्तु जिसकी रक्षा करना होता है, उसे महान बुद्धिबल प्रदान कर देता है। जिससे वह स्वयं अपनी रक्षा कर लेता है। यह है परमात्मा की कृपा का रहस्य, परन्तु यह अनुग्रह सबको प्राप्त नहीं हो सकता। वह तो केवल अनन्य भक्तों को ही प्राप्त होता है, अतएव लिखा है—

ये तु सामान्यभावेन मन्यन्ते पुरुषोत्तमम् ।
ते वै पाखण्डिनो ज्ञेया नरकार्हा नराधमाः ॥ (ब्रह्माण्ड पु०)

जो मनुष्य परब्रह्म परमात्मा को दूसरे देवों के समान सामान्य भावना से भजते हैं। ऐसे पाखण्डियों को नरक के योग्य समझना चाहिये। कहने का तात्पर्य जो अव्यभिचार[1] भावना से भजते हैं वे ही ब्रह्म के कैवल्य पद को प्राप्त करते हैं, सब नहीं। अतएव गीता (१४–२६) में भगवान ने लिखा है।—

आदर्शप्रतिरूप — दर्शकमयी शक्तिर्निसर्गस्थिता ।
दृष्टा तत्र मलापकर्षणविधिः सम्पाद्यते केवलम् ॥

जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब को प्रकट करने की स्वाभाविक शक्ति होती है। दृष्टा को तो केवल मल दूर करने का श्रम उठाना पड़ता है। उसी प्रकार श्री कृष्ण के भक्तों के निर्मल अन्तःकरण में परमात्मा की शक्ति भी स्वतः प्रतिबिम्बित होने लगती है, परन्तु हृदय को निर्मल बनाना, यह भक्त का परम कर्त्तव्य है।

[1] अव्यभिचारिणी और व्यभिचारिणी भेद से भक्ति के दो प्रकार माने गये हैं। जो भक्ति परमात्मा के प्रति निरन्तर प्रेम को प्रकट करती है, एवं जिसमें नाना देवों की उपासना का मोह नहीं है। "एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः" प्राणीमात्र में एक ही परमात्मा की सत्ता को मानने

Shri Prannath Ji Pustkalay

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।
'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।'

—'हे पार्थ ! जो उपासक मुझे अनन्य भक्ति के द्वारा भजते हैं, वे सत्त्व, रज, तम, आदि तीनों गुणों का उल्लंघन करके ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होते हैं। उनका पुनरागमन नहीं होता। इस प्रकार पुनः पुनः अनन्य (अव्यभिचारिणी) भक्ति को ही ग्रहण करने का सर्वत्र उपदेश मिलता है। इस परसे यह तो भली भांति विदित हो जाता है कि—आत्म-कल्याण की इच्छा वाले पुरुषों के लिये सर्वोत्तम मार्ग श्रीकृष्ण की 'परा' भक्ति को ही माना है। अतएव भक्तिसूत्र में नारदजी कहते हैं—

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा च। (नारदभक्तिसूत्र)

वह परा भक्ति तब कही जाती है, जब परम प्रेमस्वरूपा हो जावे। परब्रह्म परमात्मा के प्रति प्रेम के उदय हो जाने का नाम ही परा-प्रेमलक्षणा है। जब वह प्रेमस्वरूपा है और परमात्मा के साथ तद्रूपा है, तब तो मोक्ष पद को देना क्या ? वह तो स्वयं ब्रह्मरूपमें तादात्म्य बता रही है। अतएव नारदजी ने उसे अमृत स्वरूपा-अखण्ड स्वरूप प्राप्त कराने वाली वर्णन किया है। उसमें क्रिया और कृत्य कुछ भी सापेक्ष नहीं रहता। उसके प्रताप से प्रेमरूपी सूर्य का प्रकाश होने लगता है। जब उपासक को यथार्थ प्रेम प्राप्त हो जाता है, तब तो वह स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है। अब उसे चिन्ता किस बात की ?

वाला तत्त्वज्ञ पुरुष नाना देवों की अध्यस्त उपासना को पसन्द नहीं करता। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री के हृदय में केवल एक ही पतिदेव के लिये स्थान रहता है, नाना पुरुषों के लिये नहीं। उसी प्रकार अनन्य भक्त के हृदय में भी एक ही परब्रह्म की भावना को स्थान होना, पराभक्ति कही जाती है। जिस प्रकार वेश्या के अनेक पति होने को व्यभिचार माना गया है, उसी प्रकार नाना देवों के लिये भटकते फिरना, व्यभिचारिणी भक्ति कही जाती है। एवं जिसका फल भी उन अल्पबुद्धि "अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्" पुरुषों के लिये नश्वर ही मिलता है, अमृत स्वरूप नहीं। अमृत स्वरूपा भक्ति तो अव्यभिचारिणी परा भक्ति को ही कहा गया है।

अमृतस्वरूपा च (नारद भक्तिसूत्र ३)

नारद भक्ति सूत्र में परा भक्ति को अमृत स्वरूपा—जन्म मरण को मिटाकर अविनाशी अखण्ड पद को देने वाली बताया है, अपरा को नहीं। अपरा में तो जन्म मरण माना गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

स तरति, स तरति स लोकांस्तारयति (ना० भक्तिसूत्र ५०)

हृदय में प्रेम के प्रकट होते ही वह तर जाता है, भवपार हो जाता है। इतना ही नहीं, किन्तु वह अनेक जनों को भी तार देता है। कारण—

अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् (नारद भक्तिसूत्र० ५६)

प्रेमका स्वरूप ही ऐसा अनिर्वचनीय है कि—उसे कहते नहीं बनता। परन्तु 'फलानन्त्यम् (ना० भक्तिसूत्र)' वह अनन्त फल प्रकट करने वाला है। उसके साथ जिसका परिचय हो गया फिर क्या पूछना है, परन्तु उसका प्राप्त होना ही दुर्लभ है।

यह तो गति है अटपटी, झटपट लखे न कोय।
जो मन की खटपट मिटे, चटपट दर्शन होय॥

दीप—ज्योति के प्रकाश का आधार स्नेह और बत्ती के ऊपर निर्भर है। बाती जितनी अधिक मोटी होगी और स्नेह जितना उत्तम होगा, प्रकाश उतना ही अधिक होगा। बिजली की रोशनी उसके बल्ब के ऊपर निर्भर है। बल्ब जितना अधिक पावर का होगा, उतनी रोशनी विशेष होगी। बस, इसी प्रकार परा प्रेमलक्षणा भक्ति का आधार विश्वास और उत्तम ब्रह्मज्ञान के ऊपर है। उत्तम ब्रह्मज्ञान गुरुकृपा और उत्तम कोटि के अंकुर के ऊपर है। ये तीनों तादात्म्य ब्रह्मज्ञान के ऊपर हैं। ब्रह्मज्ञान और विश्वास जितना अधिक होगा, एवं अंकुर प्राप्य श्रद्धा—निष्ठा जैसी होगी, प्रेम भी उतना ही उच्च कोटिका होगा। उच्च कोटिका प्रेम उदय हो जाय तो फिर पूछना नहीं पड़ता—"पंथ होवे कोटि कलप प्रेम पहुंचावे मीने पलक" करोड़ों वर्ष के मार्ग को परा भक्ति का प्रेम क्षणमात्र में पूरा कर लेता है। प्रेमका अर्थ विविध प्रकार से माना गया है।

(क) प्रेमकी प्रतीति त्याग से होती है।
(ख) प्रेमका परिचय हार्दिक तल्लीनता से मिलता है।
(ग) निष्ठा और विश्वास प्रेम के द्योतक होते हैं।
(घ) प्रवृत्ति और निवृत्ति प्रेम के स्वरूप हैं।
(ङ) विरह और विकलता प्रेमी के लक्षण होते हैं।

प्रेमको सापेक्ष—निरपेक्ष दोनों ही आवश्यक हैं। सापेक्ष पदार्थ उसके सहायक होते हैं। निरपेक्ष उसे दृढ़ता की ओर ले जाते हैं। प्रेमको विरोध उतना ही प्रिय होता है जितनी अनुकूलता प्रिय है। उसकी अन्तर्मुख और विश्वोन्मुख दो प्रकार की वृत्ति होती है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

अन्तर्मुखवृत्ति—प्रेमी को निमग्न बना देती है। उसके हृदय में प्रेमातिशय के कारण विरह और स्मरण, विशेष वृद्धि पाया करते हैं। जिसके कारण प्रेमी का हृदय दुर्बल बन जाता है। अतः वह उस प्रेम के भारको सहन करने में भी असमर्थ होता चला जाता है। शनैः शनैः उसकी अवस्था भी क्षीण [1] होती चली जाती है। निदान वह धीरे-धीरे अपने आराध्य देव के स्वरूप में तन्मय होता जाता है और भौतिक शरीर त्यागके अनन्तर ब्रह्मको प्राप्त होता है।

'अन्तर्भवेऽनन्तभवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः।'

एवमेतान् मयाऽऽदिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः।
क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद् ब्रह्म परमं विदुः॥
(भा० ११–२०–३७)

---

[1] प्रेमी का स्मरण ही उसका जीवन है। उसे स्मरण में भी लोकोत्तर आनन्द प्राप्त होता है। इसी कारण वह उसको भूलता नहीं। न भूलना ही उसको अभीष्ट की ओर ले जाता है और संसार उससे छूटता चला जाता है। शरीर के अन्दर हृदय ही सब कुछ काम करता है। जब वह तल्लीन रहता है, उसका खाना, पीना, सोना, सब भूल जाता है अथवा कम हो जाता है, अतः प्रेमी अधिक समय तक जीवित भी नहीं रहता। परन्तु उसका उसे तद्रूप बना देता है।

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति (भा० ११–१४–२४)

मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च
तत्स्थानं सुमहत्तीर्थं पवित्रं च भवेद् ध्रुवम् (देवीभा०)

प्रभुप्रेमी भक्तका आचरण भी विचित्र हो जाता है। उसकी वाणी गद-गद हो जाती है। चित्त द्रवीभूत रहता है। कभी रोता है कभी हंसता है। निर्लज्जकी भांति कभी गाने लगता है, कभी प्रेम में मग्न हो नाचने लगता है। ऐसा ही प्रेमी अपनी आन्तरिक पवित्र भावनासे विश्व को पवित्र बना देता है। उसके चरणों के पीछे-पीछे देवता धूलिको तरसते रहते हैं। यद्यपि वह प्रेमी किसीसे कामना नहीं रखता है, फिर भी उनके दर्शनसे विश्वकी सब कुछ प्राप्त होने लगता है। वह भगवद्रूपमें विचरता है, उसका चरण पड़ते ही भूमि परम पावन बन जाती है। वह किसी से भय भी नहीं करता, प्रत्युत उसीसे सब भय दूरसे कांपते हैं।

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन (तै० श्रुति)

Shri Prannath Ji Pustkalay

विश्वोन्मुखवृत्ति—

विश्वोन्मुख प्रेमी विरह वेदना का शिकार नहीं बनता। उसके हृदय में तल्लीनता तो होती है, परन्तु वह संवेदना पर अधिकार पा लेता है। वह अपने प्रियतम को अकेला भेटना नहीं चाहता। वह प्रभु का अनन्य भक्त होते हुए भी प्रभु के पास जाना पसन्द नहीं करता, किन्तु प्रभु को स्वयं अपने पास बुलाता है। वह परमात्मा से अपनी बहुत कीमत वसूल करता है। उसकी दृष्टि में भेद—भाव नहीं रहता, वह तो सबको अपना साथी बनाने की ध्वनि में मस्त रहता हैं। उसका आदर्श बहुत ऊँचा चढ़ जाता है। उसे विश्व के प्रति प्रेम होता है, उसका उदात्त आदर्श विश्व को निमन्त्रण देता है, विश्व को चेतावनी देता है, इतना ही नहीं प्रत्युत वह तो जन—समाज को जाग्रत करने को निरन्तर मथता फिरता है। क्योंकि उसे प्रभु के पास अकेले जाना पसन्द नहीं है।

माता से बिछुड़े हुए शिशु को माता के पास पहुंचाने वाला जिस प्रकार माता को अपने प्रेम से उपकृत बनाकर अपने को कृत—कृत्य मानता है अथवा अपने कर्त्तव्य का पालन हुआ समझता है। भयंकर वायु का तोफान चल रहा हो, मनुष्य को उड़ाने वाली आँधी चल रही हो, उसके वायुवेग से असंख्य पदार्थ उड़े चले जा रहे हों। ऐसी दशा में माता पिता से बिछुड़कर दूर खेलने वाले बालकों पर कितनी भयंकर आपत्ति आ टूटती है। उनके माता पिता को प्रिय बालकों के प्रति कितनी संवेदना होने लगती है। ऐसी अवस्था में कोई बालकों को एकत्रित कर अपने—अपने घर पहुंचा देवे, तो वह माता पिता की कितनी प्रसन्नता का पात्र बन जाता है, इसे तो हम सब समझ सकते हैं। उसी प्रकार यह जीवात्मा आनन्दधाम रूपी माता से बिछुड़कर एवं परम पिता परमात्मा की गोद के रक्षण से वंचित हो चुका है। दूसरी ओर—माया मोह की भयंकर आंधी में आ फँसा है, इसका बल काम नहीं आता। वायुवेग के समान माया का मोहक आकर्षण इसे अपनी ओर बलात् खींचे चला जा रहा है। ऐसी अवस्था में कोई आदर्श पुरुष माया में भूले हुए जीव को सन्मार्ग बताकर पिता समान परमात्मा की गोद में पहुंचा दे, परमधाम स्वरूप माता के आनन्द का पात्र बना देवे, तो उसके कर्त्तव्य का कितना महान गौरव कहा जावे।

—गाय का बच्चा अपनी माता से बिछुड़कर भी दूध को नही भूलता, केवल माता के स्तन से दूर हो जाने के कारण दूध प्राप्त नहीं कर पाता। अतएव यत्र तत्र जिसको पाता है स्तन की भांति कल्पना कर उसे पीने लगता है। परन्तु क्षणमात्र में निराश हो उसे छोड़ देता है। क्षणिक आनन्द भी प्राप्त होता है। किन्तु क्षीर न होने से सन्तोष नहीं होता। इसी प्रकार यह जीवात्मा अपने

Shri Prannath Ji Pustkalay

नित्य धामके ब्रह्मानन्द से विछुड़ कर मिथ्या जगत में आ पड़ा है। यद्यपि यह ब्रह्मानन्दसे च्युत हो चुका है, तथापि इसे आनन्द भूला नहीं है। आज भी जिस तरफ देखिये उसी तरफ यह आनन्दकी खोज में है। यह आनन्द की परिभाषा भले ही भूल गया हो, परन्तु आनन्दको नहीं भूल सका। उसी आनन्द की कल्पना यह विश्वमें भी करने लगा है। परन्तु विश्वका आनन्द तो क्षणिक है, विनश्वर है और आनन्द भोगने वालेको स्वयं ही भुगता देता है। इसलिये महापुरुषों ने इसे चेतानेका प्रत्येक प्रकार से प्रयत्न किया है। महापुरुषों की विश्वोन्मुख वृत्ति का जो लाभ लेते हैं, जिन्होंने उनके जनहितको समझ लिया है, वे तो प्राणपण से भी उसे नहीं छोड़ते। क्योंकि यही भक्तिका सबसे उत्तम मार्ग है। तभी तो स्वामी मुकुन्ददास जी ने लिखा है—

"छीर नीर को करै निवेरा, माया ब्रह्म चिन्हावे,
आपु तरै औरन को तारै, बहुरि न भवजल आवे।
जग में सोई सूर कहावे" (टेक)

'भजनं भक्तिरित्युक्तं वाङ्—मनः—कायकर्मभिः।
'भज' इत्येष वै धातुः सेवायां परिकीर्तितः॥
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिशब्देन भूयसी'

यों तो शास्त्रों में 'भक्ति' शब्दके विविध लक्षण मिलते हैं, परन्तु मुख्य अर्थ सेवा होता है। वह सेवा भी मायामें भूले पड़े हुए जीवों को जाग्रत करना ही सबसे उत्तम है। क्योंकि जबतक आत्मा जाग्रत नहीं होता, उसका जन्म मरण नहीं मिटता। अतएव श्रीजी आज्ञा करते है "आवेशको नहीं अटकल, पर जागिनी अति भारी रे" सबसे उत्तम भक्ति अनेक आत्माओं को जाग्रत करते रहना, भवसागर में डूबते हुए जीवों को भवपार कर उन्हें सदाके लिये स्थायी ब्रह्मानन्द में पहुंचाते रहना। इस प्रकारकी भक्तिको सबसे उत्तम माना गया है। ऐसे अनन्य भक्त जिस किसी घरमें, जिस देशमें पहुंचते हैं, उन्हें भी पवित्र बना देते हैं। सूरदासजी ने इस तत्त्वको अपने एक पदमें थोड़े में ही रख दिया है। यथा—

'जा घर सन्त पाहुने आवत। (टेक)
तीर्थ कोटि स्नान कियो फल, जैसे दर्शन पावत।
मन वच कर्म और नहीं जानत, सुमिरत और सुमिरावत॥
संगति रहै साधु की अनुदिन, कल्मष दूर नसावत।
सूरदास या जन्म मरण सों, तुरत मुक्ति फल पावत॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

—वास्तव में ऐसे श्रीकृष्ण के अनन्य भक्तों के दर्शन से ही पापराशि नाश हो जाती है। फिर सत्संग और ध्यान-स्मरण करने कराने वाले की कृपा का फल तो 'मुक्तिप्राप्त' होना स्वाभाविक है। अतएव भागवत (११-१४-२१) में

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ।।

हे उद्धव ! श्वपच जैसे चाण्डाल पुरुषों को भी मेरी अनन्य भक्ति पवित्र बना देती है। फिर जो महात्मा पुरुषों की सेवा में रहकर भक्ति के यथार्थ अर्थ को अपना रहे हैं, उनके विषय में चिन्ता किस बात की ?

इस 'परा' भक्ति में यों तो प्रेम की विशेषता ही मुख्य मानी गई है, तथापि भावना पृथक्-पृथक् होती है। अतएव उसके (१) वात्सल्य भाव, (२) सख्यभाव, (३) दास्यभाव, (४) माधुर्य भाव (५) शरणागति, (६) स्मरणासक्ति, (७) परम विरहासक्ति, (८) स्वरूपासक्ति, (९) तन्मयासक्ति, (१०) गुणपूजा-माहात्म्यासक्ति, इस प्रकार दश भेद हो जाते हैं। ग्रन्थान्तरों में नामों में भेद हो सकता है। स्मरण की आसक्ति के स्थान में किसी ने ध्यानासक्ति लिख दिया। माधुर्य भाव के स्थान में 'पातिव्रत्य' भाव कह दिया। इस प्रकार विविध प्रकार से वर्णन मिल सकता है। परन्तु उसमें अनन्यता और स्वरूपानुसन्धान की मुख्यता है। जब तक अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, उसे 'परा' कहना ही शोभा नहीं देता। अतएव विवेकचूडामणि नाम के ग्रन्थ में लिखा है—

"मोक्षसाधनसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ।"

विश्व में महापुरुषों ने मोक्ष के जितने उपाय बताये हैं, उन सब में परा भक्ति ही उत्तम है। कारण, अपने स्वरूप के अनुसन्धान को भक्ति कहा जाता है। स्वरूपानुसन्धान तारतम्य ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। अतः तारतम्य ज्ञानपूर्वक जो अनन्य भावना है, वही यथार्थ 'परा' भक्ति है।

यों तो दशविध प्रेमलक्षणा के सभी भाव अद्वितीय और महत्त्वपूर्ण हैं, तथापि उनमें पात्र भेद से अधिकार भेद हो जाता है। जो ब्रह्म के विरह में निमग्न हो चुका है, वह अन्य भाव को धारण करे या न करे, उसे उसी भाव से ब्रह्म प्राप्ति हो जाती है। जो शरणागति को ही धारण कर चुका है, वह दूसरे भाव का चिन्तन क्यों करे ? जिसे अपने अभीष्ट देव के शरण पर पूर्ण प्रेम है, अटल विश्वास है, अटूट श्रद्धा है तो अन्य भावों की उधेड़ बुन में किस लिये पड़े ?

इस प्रकार दशों भाव अनन्यता को व्यक्त करते हैं, परन्तु इनको धारण करने वाले विरल पुरुष हो हो सकते हैं, सब नहीं। "गेहे-गेहे जने-जने'

Shri Prannath Ji Pustkalay

वाली नारदजीकी उक्ति चरितार्थ नहीं हो पाती। दास्यभाव के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है अवश्य, परन्तु उसे धारण किया जावे तब ! वह भी नीचे लिखे अनुसार :—

दासोऽहमिति या बुद्धिः प्रागासोत्परमात्मनि ।
दाकारोऽपहृतस्तेन गोपीवस्त्रापहरिणा ॥

'हे प्रभो ! मैं दास हूं, यह भावना कहां तक बढ़ जावे कि—अपना सर्वस्व प्रभु के नाम पर निछावर हो जावे, अपना व्यक्तित्व भी प्रभुमें जा मिले।

मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे है मोर ॥

'हे प्रभो ! मेरा तो कुछ था ही नहीं, जो कुछ आपका है उसे आप सम्हाल लेवें। उसे आपके समर्पण करते दुःख किस बातका ? अज्ञानवश प्रभुके विश्वपर जीवात्माने अपना अधिकार जमा लिया है। जाग्रदवस्था में यह ज्ञान होना चाहिये कि सम्पूर्ण विश्व तो प्रभुका है, उस पर मैं अधिकार जमा कर बैठ जाऊँ, यह अनधिकार चेष्टा हो नहीं, किन्तु महान पाप भी है, तो फिर उसे अधिकार जमाना अच्छा नहीं लग सकता। वह तो तत्काल उस पर से अपना अधिकार हटा लेगा। जिस ने इस भावको समझ लिया है, उसे प्रभुको अपना सब कुछ अर्पण करते और अपने को प्रभु की सेवा में लगाते संकोच नहीं होता, प्रत्युत आनन्द आता है।, हां, तो 'दासोऽहं' में से 'दा' हट जावे और केवल 'सोऽहं' हो जावे तब दास्यभाव की सिद्धि होती है।

"मुझ में समा जा इस कदर, बाकी रहेना ठौर है ।
फिर न कोई कह सके, मैं और हूं तू और है ॥"

भगवान कहते हैं कि मेरे और तेरे दोनों के बीच का अन्तर दूर हो जावे, इस प्रकार तू मेरे में समा जा। बस, फिर भक्त और भगवान दोनों एक हो गये अब, बाधा किस बात की ? इस प्रकार दास्यभाव का विधान है। यदि यह दास्यभाव पूर्णतया प्राप्त हो जावे तब तो—

कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम् ।
श्रेष्ठा पञ्चविधा मुक्तेः (ब्रह्म वैवर्त कृष्ण खं० ६७—८)

श्री कृष्ण की अनन्य भक्ति, श्री कृष्ण का दास्यभाव उत्तम में उत्तम है। इसे वैकुण्ठ की पांच प्रकार की मुक्ति से भी अधिक श्रेष्ठ माना गया है। इस प्रकार

Shri Prannath Ji Pustkalay

दास्यभाव को उत्तम वर्णन किया है, परन्तु कहने मात्र से अथवा 'दास' नाम रख लेने से दास्यभाव की सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

एक बार सूरदासजी व्रज में जा रहे थे, श्रावण का महीना था। जब हाथरस और मथुरा के बीच पहुंचे प्रबल वायुवेग के साथ पानी बरसने लगा। बरसात की सर्दी और पवन के वेग ने सूरदासजी को दबा लिया। भक्तों का शरीर एक तो यों ही दुर्बल होता है, फिर पवन वेग के कारण दस्त पर दस्त झाड़ा चालू हो गये। दस पांच बार झाड़ा फिर जाने के बाद शरीर शक्ति क्षीण हो गई। न बारिस बन्द हुई न झाड़ा बन्द हुआ। तेज पवन से कलेजा कांपने लगा, निदान सूरदासजी जमीन पर लेट गये। एक साथी था उसने देखा कि सूरदास तो बचने वाले नहीं, मैं भी इनके संग काहे को मरूं ? यह सोचकर किसी गांव में चला गया। सूरदासजी रात्रि भर पड़े रहे न बारिस बन्द हुई न झाड़ा रुके शक्ति क्षीण हो जाने के कारण शरीर इँठ गया और सूरदास-जी मरे से हो गये, कुछ प्राण शक्ति भीतर शेष रह गई परन्तु ऊपर से खत्म जैसे हो गये।

इधर भगवान को स्मरण आया कि 'अरे' मेरा एक भक्त आपत्ति में मर रहा है, मैंने अभी तक ध्यान नहीं दिया। तत्काल जाकर सूरदास को गोद में उठाकर किसी सुरक्षित स्थान में ले गये। वहां जाकर उनके शरीर पर हाथ फेरा शरीर स्वस्थ हुआ चेतना लौट आई। सूरदास को अनुभव हुआ कि मैं बच गया। बड़ी नम्रता से पूछा प्रभो ! आप कौन हैं अपना परिचय तो दीजिये ? इस जंगल में आकर मेरी रक्षा की, दयालो ! अपना नाम तो बताइये, इस प्रकार पूछा परन्तु भगवान ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इसी प्रकार दो तीन बार पुनःपूछा कि दयालु ! मेरी रक्षा करने को दया की तो क्या अब नाम बताने भर की दया न होगी ?

इधर भगवान चुप लगाये हुए हैं। सूरदासजी ने जब देखा कि बोलते ही नहीं तो झट उनके चरण पकड़ लिये। दयालो ! बोलते क्यों नहीं ? भगवान ने कहा—'सूरदासजी ! मारे शर्म के बोलते नहीं बनता। सूरदास ने कहा—दयालो आपने इतना उपकार किया, मुझे मरने से बचा लिया, तथापि आपको लज्जा लगती है, यह समझ में नहीं आता।

भगवान ने कहा—सूरदासजी ! यदि तुम पूछने लगो कि आप तो सर्वज्ञ हो, अन्तर्यामी हो, त्रिकालज्ञ हो और फिर आपको भक्तवत्सल भी कहते हैं फिर क्या कारण है जो आपने इतना विलम्ब किया है ? मैं कल से मर रहा हूं। आपको १६ घण्टे तक याद न आया, इसका क्या कारण ? तो मैं क्या उत्तर दूं। इसलिये मारे लज्जा के मौन हो रहा हूं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

इतना सुनते ही सूरदासजी समझ गये। अरे ! ये तो साक्षात् भगवान हैं। झट रोने लगे, मैं बड़ा अधम हूं। आंखें फोड़ लीं। पापों से बचता रहा। कितनी क्षमा प्रार्थना की, तथापि मैं इतना अधम निकला कि–जितना मल मूत्र था, सब भगवान से ही साफ़ करवाया, इस प्रकार कह–कह कर रोते जाते थे।

भगवान ने कहा—सूरदासजी ! तुम तो मेरे दास हो, तुम तो दास्यभाव के भक्त हो, तुम्हें तो रोने का भी अधिकार नहीं। यदि रोते हो तो दास्यभाव निष्फल जायेगा। तुम तो सब कुछ मेरे को दे चुके। अब तुम्हारा है क्या जिसके लिये रोते हो? वह शरीर तो मेरे अधिकार का है।

इतना सुनते ही सूरदासजी क्षमा याचने लगे। 'हे प्रभो ! अब मैं रोऊँगा भी नहीं। अपराध क्षमा करें। भूल हो गई, जो रोने लगा।

कहने का तात्पर्य दास्यभाव उत्तम है और परा भक्ति का अङ्ग भी है, परन्तु वह इतना उच्च है कि सब नहीं ले सकते। जिसमें सूरदासजी का जैसा त्याग हो, जो अपने को प्रभु पर निछावर कर दे, अपने लिये कुछ भी न रखे। अपना सत्त्व सब परसे उठा ले, वह दास बने। किसी वृक्ष का फल मीठा भी हो और गुणदायक भी हो, परन्तु बहुत ऊँची डाल में लगा हो तो उसे तो वही ले सकता है जो बहुत ऊँचा चढ़ सकता हो अथवा तो जिसके पास लम्बा ऊँचा साधन हो। उसी प्रकार परा भक्ति का दास्यभाव सुन्दर है, मुक्ति देने वाला भी है, परन्तु सर्वस्व त्याग और उच्च विवेक द्वारा साध्य है। जो अपने को मिटा दे, वह दास बने। जिसे संसार के चारों पदार्थों को एक साथ लेना है, वह दास नहीं बन सकता। दास बनता भी है तो सफल नहीं होता।

सख्यभाव—परमात्मा के साथ मैत्री करना साधारण बात नहीं। जिसके पास दिव्य बल हो, जाग्रत् आत्मशक्ति हो, जो संसार को तुच्छ कर चुका हो, जिसने अपने परात्म को पकड़ लिया हो, जो आत्म तत्त्व को देख चुका हो, वह परमात्मा का मित्र बने, सखा बने, तो बन सकता है। क्योंकि जीवनमुक्त तो वह बन ही चुका, अब मोक्ष के लिये तो चिन्ता ही क्या ? परन्तु मित्र किस प्रकार बना जावे ? 'अहं ब्रह्म' 'सोऽहं' 'अयमात्मा ब्रह्म' आदि वाक्यों को मुख से बोल देने से तो परमार्थ प्राप्त होता नहीं। उसके लिये तो तद्रूप होना चाहिये। जो विश्व को स्वप्नवत् समझकर छोड़ चुका है, नित्य अखण्ड धाम में विचर रहा है, वही सख्यभाव साध सकता है, सब नहीं।

उद्धवजी और अर्जुन श्रीकृष्ण के एकान्त सखा थे, एक साथ रहते थे एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे। श्रीकृष्ण के ऊपर विश्वास भी रखते

Shri Prannath Ji Pustkalay

थे, परन्तु उनके स्वरूप को यथार्थ नहीं जान सके थे और न संसार का त्याग ही बन पाया था। अतः धाम चलते समय उद्धवजी को बदरिकाश्रम में भजन करने का आदेश दिया। अर्जुन को हिमालय में गलने पर परलोक प्राप्त हुआ, अखण्ड मोक्ष नहीं। सख्यभाव का यह रहस्य समझने योग्य है। जब उद्धवजी जैसे एकान्त भक्त, अर्जुन जैसे जीवन साथी मित्र भी मोक्ष न पा सके तो "सोऽहं सोऽहं' जपने वाले, शब्द मात्र से ब्रह्म बनने वाले अथवा सख्यभाव का साधारण आचरण करने वाले, किस प्रकार मोक्ष पा सकेंगे, यह समझ में नहीं आता।

सख्यभावका प्रेम बहुत ऊंचा होना चाहिये, तब वस्तु प्राप्त होती है। लैला मजनू की कथा तो प्रायः प्रसिद्ध है। लैला का प्रेम मजनू के साथ हो गया था। मजनू भी लैलाको प्राणों से अधिक प्रिय मान चुका था। जब लैला का शरीर विरह में अधिक क्षीण हो गया, अन्न जल भी बन्द हो गया। निदान वैद्यों को बुलाया गया। वैद्यों ने देखकर कहा शरीर अधिक क्षीण को चुका है। नाड़ी की गति भी अस्त व्यस्त हो रही है, इस पर औषधिका प्रभाव पड़ना कठिन है। हां, इसका फर्स खोल दिया जावे तो सम्भव है कुछ लाभ हो सके। क्योंकि शरीर में रक्त सञ्चालन की आवश्यकता है।

घर वालों ने भी ठीक समझकर लैला की फर्स खुलवा दी। वैद्यने लैला के नस्तर लगाया तो परन्तु खून न निकला। कारण शरीर का रक्त सब पानी हो चुका था। पर कौतुक क्या देखने में आया कि मजनू के शरीर से रक्त की धार छूटने लगी। यह देख सबको आश्चर्य हो गया। उस वक्त की स्थिति का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है।

लहू मजनूको रगसे निकला, फर्स लैला की ली।
इश्ककी तासीर ये, पर जुजवा कामिल चाहिये॥

कवि कहता है—प्रेमीका सच्चा प्रेम हो तो वह प्रियतमको पारकर जाता है। यह प्रेम का गुण है कि वह द्वैतको मिटाकर अद्वैत बना देता है। पर होना चाहिये सच्चा प्रेम। शशि और पुनम की कथा भी श्रीजीने दर्ज की है। ये सब प्रेमका आदर्श बताने के लिये हैं। जब विश्व के लौकिक प्रेम में इस प्रकार की शक्ति पाते हैं, तब अलौकिक प्रेम तो इससे भी कुछ विशेष होना चाहिये।

मरिके मिलौं भभूत हो, अपने प्रिय के गात।
यही विचार चकोर कर, तप्त अंगार चबात॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

कवियों की कल्पना है कि–चकोर को चन्द्र के साथ अधिक प्रेम होता है। जब तक चन्द्र के उदय को नहीं देखता, वह खाना पीना भी उचित नहीं समझता। वह चन्द्रोदय के पूर्व कोयला एकत्रित किया करता है। उसके हार्दिक प्रेम में कुछ ऐसी शक्ति होती है कि चन्द्र के उदय होते ही एकत्रित किये हुए कोयलों में आग लग जाती है। जलते हुए कोयलों को चकोर खाया करता है। यह समझकर कि मेरा प्रियतम तो आकाश में रहता है, वह नीचे आ नहीं सकता और मैं भी वहां पहुंच नहीं सकता। इसलिये यदि मैं अग्नि को खाकर मर जाऊँ तो मेरे शरीर की राख सम्भवतः पवन के के साथ प्रियतम तक पहुंच जावे, इसलिये वह जलते अंगार खा लेता है।

यह कल्पना है तथापि कितना ऊँचा भाव है, कितना त्याग है। निछावर होने का और प्रियतम तक पहुंचने का साहस भी अद्वितीय है। फिर भी यह सब लौकिक है, अलौकिक भावना को तो इससे कुछ अधिक सजीव होना चाहिये। उसमें तो विशेष दृढ़ता और विश्वास होना, स्वाभाविक है। क्योंकि वह अलौकिक है और यथार्थ विश्वासजन्य है।

यद्यपि ये उदाहरण लौकिक हैं, कल्पना से आदर्श को दृढ़ता प्रदान करने के लिये है, फिर भी हमें अपने प्रेम के स्वरूप को समझने में पथ–प्रदर्शन कराने में बहुत उपयोगी है।

यदि सख्यभाव को लेना है तो हमारे प्रेम का आदर्श, हमारे निछावर होने का स्वरूप, कितना ऊंचा होना चाहिये। हमें परमात्मा का मित्र बनने के लिये कितनी ऊंची भावना को अपनानी चाहिये, यह तो सहज ही समझ में आ सकता है। यदि हम इतने उच्च आदर्श को नहीं ले सकते, हमारे में सर्वस्व त्याग करने का आत्मबल नहीं है। निछावर होने की शक्ति नहीं है तो फिर हमारे लिये 'सख्यभाव' भी विशेष उपयोगी नहीं हो सकता।

वात्सल्य भाव—

'दशधा प्रेम लक्षणा के दास्यभाव और सख्यभाव की भांति वात्सल्य भाव भी परमहंसों के धारण करने योग्य है। माता पिता का पुत्र के प्रति जो अटूट प्रेम होता है, साधारणतया उसे वात्सल्य भाव कह सकते हैं। परमात्मा के प्रति यह भाव सबको प्राप्त नहीं हो सकता। नन्द यशोदाजी को यह भाव प्राप्त था। उनके यहां पूर्णब्रह्म शिशुरूप में उपस्थित थे। कुछ विद्वानों का कहना है कि माता–पिता के प्रति जो भाव अबोध शिशु का होता है, उसे भी वात्सल्य भाव कह सकते है। सम्भवतः इसी को मानकर ईसाई धर्म वाले आने को ईश्वर का

Shri Prannath Ji Pustkalay

पुत्र मानते हैं और वात्सल्य भाव की उपासना को अपनाते हैं, परन्तु उसे यथार्थ नहीं पाल सकते। क्योंकि—वात्सल्य भाव में अपनी इच्छाओं को अपने उपास्य इष्ट देवके आसरे पर छोड़ना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते, वे सच्चे वात्सल्य भाव के भक्त नहीं कहे जा सकते।

जिस प्रकार छोटे शिशु को माता—पिता अपनी दृष्टि से पृथक नहीं होने देते, उसी प्रकार वात्सल्य भाव के भक्त को भगवान अपने सरक्षणसे पृथक् नहीं होने देते। न कभी उसे कष्ट होने पाता है। माता पिता भी अपने छोटे छोटे बालकों की आवश्यकताओं का स्वयं ध्यान रखते हैं। वह भूखा सो जावे तो उसे उठा कर भोजन कराना, दूध पिलाना, बिना ओढ़े सो जावे तो उसे ओढ़ाते रहते हैं। कहीं सरदी न लग जावे। अस्वस्थ न हो जावे। दुःखी न हो जावे इसीलिये उसके पोषण पालन का बराबर ध्यान रखते हैं। परन्तु वही शिशु जब बड़ा हो जाता है अपने आप अपना सब काम पूरा कर लेता है, तब माता पिता को उतनी चिन्ता नहीं रहती इसी प्रकार वात्सल्य भाव के भक्तों के विषय में भगवान को भी ध्यान रखना पड़ता है। यदि वे भूखे प्यासे हो तो उनके लिये स्वयं व्यवस्था करना, भगवान का कर्त्तव्य हो जाता है। इस विषय में एक गाथा है—

श्री कृष्ण का अनन्य भक्त ब्रजदास नामक एक चमार 'बरसाने' में रहता था। एक दिन कोई महात्मा अचानक दिन के दश ग्यारह बजे उसके यहां पहुंचा। गरमी के दिन जेठ का महीना था। महात्मा को 'नन्दगांव' पहुंचना था। पर साथ में कुछ सामान था अकेले पहुंच नहीं पाते थे। ब्रजदास से कहा 'भक्त जी! हमें 'नन्दगांव' तक भेज आते तो बड़ी कृपा होती। ब्रजदास जी महात्मा के साथ में चल दिये। गरमी की धूप अधिक तेज थी, अतः जल्दी न पहुंच सके। पहुंचते पहुंचते दोपहर हो गया। प्यास सताने लगी। महात्मा का सामान पहुंचा कर तुरत ही लौटने लगे। परन्तु महात्मा ने ब्रजदास का भूखे प्यासे लौट जाना उचित न समझा, अतः आग्रह किया। ब्रजदास जी! अब जाने का समय नहीं रह गया' भोजन प्रसाद पाकर जाना। परन्तु ब्रजदास ने नहीं माना। महात्मा ने कहा यदि जल्दी है तो जलपान ही कर लीजिये, खाली जाना उचित नहीं।

ब्रजदास को प्यास तो जोर से लगी, परन्तु उन्हें वहां का पानी पीना नहीं था। यही कारण था, मैं यही कारण था जल्दी लौटे जा रहे थे। अतः महात्मा से कहने लगे, प्रभो पानी पीने की बात न करना, मैं यहां का पानी नहीं पी सकता।

"अब न कहना महात्मा मुझसे यहां जलपान की।
कृपा ही केवल रहै दासों पै दयानिधान की॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

"जिन्दगी में आज आया, बरसाने से मैं यहां।
है जिन्दगी दो चार दिनकी, और इस नादान की ।।
जानते हो आप बाबा, बाबा नन्दके लाल को।
यहां व्याही गई प्यारी, सुता वृषभान भी ।।"

महात्मा जी ! आपकी कृपा ही चाहिये, जलपान तो आगे जाकर कर लूंगा, यहां का जल मैं नहीं पीता। ऐसा कह प्रणाम कर चल दिया। मार्ग में एक बगीचा पड़ता था। धूप अधिक तेज थी तृषा से कण्ठ सूख चुका था, निदान बगीचा के अन्दर जाकर पानी पीना चाहा। परन्तु प्यास से इतना विकल हो गया कि बगीचा के कुआँ तक पहुंचने भी न पाया और चक्कर आ गया अतएव बगीचा के अन्दर ही गिर पड़ा। भगवान तो भक्तवत्सल कहे जाते हैं। भक्त की रक्षा करना उनकी प्रतिज्ञा है। तत्काल आ पहुंचे। लगे बारम्बार नाम ले-ले कर पुकारने, परन्तु कुछ भी सफलता न मिली।

"बुला बुला प्रभ् थक गये, बोलत ना कुछ वैन।
भक्तवत्सल भगवान के, भर आये दोऊ नैन ।।"
'हिरनाकुश केशी रावण हु, खल मारे हैं एक से एक बली।
प्रहलाद विभीषण द्रौपदिकी, पुनि व्याध दुसाध की पीर हरी ।।
अबके या भक्तसों पालो पड़्यो, पर चतुराई न एक चली।
याको दुख दूर 'विनोत' करे, हम जान गये वृषभान लली ।।,

मैंने असंख्य भक्तों की रक्षा की।बड़े-बड़े दैत्यों का संहार भी किया। कभी निराशा न मिली, परन्तु आज मैं सफल न हो सका। इतने में ही स्मरण आ गया। अरे ! यह तो वात्सल्य भाव का भक्त है। इसे तो वृषभान की सुता ही चेतन कर सकती है। ऐसा विचार कर झट से भगवान बरसाने पहुंचे। राधिका जी का दिव्य भवन सखियों से भरा है। नाना प्रकार के राग रंग छिड़े हुए हैं। भगवान को देखते ही सबकी सब खड़ी हो गई। आईये पधारिये ! बड़ी कृपा की जेठ मास की तेज धूप में इतना कष्ट क्यों उठाना पड़ा ? विनीत भाव से एक सखी ने पूछा भगवान ने कहा 'अरे आप सब तो यहां परस्पर आनन्द मना रही हैं, परन्तु बरसाने के बगीचा में एक भूखा भक्त प्राण छोड़े पड़ा है, इसकी भी कुछ चिन्ता है ? इतना सुनते ही माधुरी राधिकाजी ने एक थाल में भोजन

या और शीतल जलका पात्रभर नंगे पांव चल दीं। ग्रीष्म ऋतु की गरम वालू में कभी चलने का अवसर तो आया नहीं था, पैरों में छाले पड़े। निदान व्रजदास की

Shri Prannath Ji Pustkalay

पुत्रीका रूप धारण कर राधिकाजी बागमें जा पहुंचीं। पिता पिता ! कह कर पुकारने लगीं। बड़ी देरके अनन्तर ब्रजदास भक्तने नेत्र खोले तो सामने 'रतिया' नामकी अपनी पुत्रीको बैठे देखा। झट पुत्री के रूपसे राधिकाजी ने शीतल जल का गिलास आगे बढ़ाया। पिताने जल पीकर षन्तोष माना। जरा देर बाद भोजन भी किया। थोड़ी देर बाद पितासे आज्ञा ले 'रतिया' पुत्रीके रूपमें राधिकाजीने वहांसे विदा ली।

जब सूर्यास्त होनेका समय आया तो ब्रजदासजी अपने घर पहुंचे। घरमें 'रतिया' पुत्री भोजन बनाये बैठी थी। दिनभर व्यतीत हो गया पिताजीने भोजन भी नहीं किया। मारे भूखके बुढापे का शरीर जर्जरित हो रहा होगा। क्या हुआ, क्यों नहीं आये ? इसी चिन्तामें बैठी थी। इतने म ही तो आवाज सुनाई पड़ी 'रतिया' दरवाजा खोलो।

पिता का शब्द सुनते ही रतिया ने झट दरवाजा खोला। 'अरे ! पिता जी ! आज दिन भर भूखे प्यासे रह गए। न कुछ जलपान ही किया। गरमीका दिन बुढ़ापामें कितना कष्ट भोगते हो। पिता ब्रजदास ने कहा—पुत्री तुम्हीं ने तो थोड़ी देर पहले बगीचामें भोजन कराया था। क्या इतनी देरमें ही भूल गई।' 'रतिया ने कहा—नहीं, पिताजी, मैं तो घरसे निकली भी नहीं, न मैंने भोजन कराया है।' इसी विचार में बैठी थी कि पिता जी आकर भोजन कर लेते तो मैं भी भोजन पा लेती। अभी तक भोजन ज्यों का त्यों रखा है। ब्रजदास ने कहा तो बगीचा में मुझे पानी किसने पिलाया और भोजन कौन करा गया।' फिर दूसरा होता तो पुत्री तुम्हारा जैसा स्वरूप कहां से होता। पुत्री ने शपथ ली, पिता जी आपको भ्रम हो गया। मैं तो घर से बाहर निकली ही नहीं। ब्रजदास को विश्वास हो गया कि—यह सब भगवानको ही करना पड़ा, ऐसा विदित होता है। मेरे लिये भगवानको कितना कष्ट उठाना पड़ा होगा। दोपहर की धूप में कितनी दूर से उन्हें आना पड़ा होगा, इस प्रकार का संकल्प विकल्प करते-करते प्रेमका उद्वेग बढ़ गया [1] और ज़रा सी देर में ब्रजदास शरीरको छोड़ कर चल बसे, अनाथ रतिया रोति ही रह गई। हा पिता! हा पिता! क्या हो गया ! ! !

---

[1] वात्सल्य भाव की एक कथा मृगी की भी आती है। एक मृगीको वधिक ने पकड़ लिया था और वह उसे मार कर खानेको तत्पर था। मृगी कहने लगी—

संगृह्य मांसमखिलं स्तनमङ्गवर्ज्यं मां मुञ्च वागुरिक त्वं करुणार्द्रचेतः।
बालाश्च शष्पकवलग्रहणासमर्था मन्मार्गवीक्षणपराः शिशवो मदीयाः ।।

हे वागुरिक ! तुम इतनी कृपा करो, मेरे सम्पूर्ण शरीरका मांस तो निकाल लो, परन्तु मेरे

Shri Prannath Ji Pustkalay

यह है वात्सल्य भाव का प्रेम। भक्त का हृदय अपने प्रभुको कष्ट देना पसन्द नहीं करता और न प्रभुसे अलग रहना ही उसे अच्छा लगता है। वह तो अपनेको प्रभुकी गोदमें बैठा देखना चाहता है। प्रभु भी उसे जरा देरको नहीं भूल सकते। जिस प्रकार गाय अपने छोटे बच्चेको अपने प्राणोंसे भी प्रिय समझती है। उसकी तरफ जरा भी कुछ भय प्रतीत हुआ कि अपने प्राणों को विछा देती है। इसी प्रकार प्रभु अपने वात्सल्य भक्त पर किसी प्रकार का संकट नहीं आने देते। आ जावे तो तत्काल उसके लिये स्वयं उपस्थित हो जाते हैं। वात्सल्य भावमें मुक्ति अचूक है, परन्तु उसको धारण करना, उसको जीवनमें उतारना, किसी महान पुरुष से ही बन सकता है।

इसी प्रकार अन्य भाव भी एक से एक महत्त्व पूर्ण हैं, परन्तु परमहंसोंके अतिरिक्त उन्हें साधारण जन प्राप्त करना चाहे तो बहुत कठिन पड़ता है। तद्रूप हो जाना, शरण में अर्पण हो जाना, आत्म निवेदन कर देना, इत्यादि विविध प्रकार से आत्म-कल्याण साधा जा सकता है। परन्तु कलियुग जैसे संकीर्ण समय में और विश्व के दूषित वातावरण में आजकल की असमर्थ प्रजा, अर्थ और काम को बिना छोड़े ही परम पद प्राप्त कर सके, ऐसा तो एक माधुर्य भाव ही है।

माधुर्य भाव

माधुर्य भावमें अन्य भावोंकी भांति सर्वस्व त्याग करना, अथवा विरक्त भावना का सेवन करना, अनिवार्य नहीं है। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने पति देव से सब कुछ मांग सकती है। वस्त्र, आभूषण, खान-पानकी सुन्दर व्यवस्था, सुन्दर मकान, पुत्र परिवार वाहन आदि मांगे तो भी उसके पतिव्रत धर्म को कोई बाधा नहीं पहुंचती। कारण उसने पतिको वरा ही इसलिये है। उसे दो

स्तन भागको छोड़ देना। कारण मेरे छोटे-छोटे बच्चे अभी घास खाना नहीं जानते, इस लिये मेरा रास्ता ताक कर बैठे होंगे। मैं जाकर उन्हें दूध पिला आऊं और अन्तिम भेट कर कह आऊँगी कि-पुत्र ! अबसे प्रभुके आसरे रहना। कितना करुणा उत्पादक दृश्य है। माता को अपने दुखकी चिन्ता नहीं है कि मेरा शरीर बिना मांसका बच्चों तक किस प्रकार पहुंच सकेगा, कितना कष्ट होगा ? परन्तु बच्चों को कष्ट न होने पाये। इस प्रकार पशुओं में भी अद्वितीय वात्सल्य देखने में आता है, तब प्रभुको चाहने वाला तो इससे भी अधिक प्राण त्याग करता रहे, तब वात्सल्यकी सिद्धि होती है—

ज्यों गैया घायके चाटत अपने लैया को।
जीवन मस्ताने सन्तजनों पर ऐसोइ दर्द कन्हैयाको॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

बातों से बचकर चलना चाहिये। एक तो दूसरे पति का चिन्तन कभी न करे और पति की आज्ञा का पालन करती रहे तो वह उत्तम पतिव्रता मानी जा सकती है। बस, उसे उसके पतिव्रता धर्म का पूर्ण फल मिल जाता है।

जिस प्रकार उत्तम पतिव्रता स्वप्न में भी किसी अन्य पुरुष का चिन्तन नहीं करती, न अन्य पुरुष का आश्रय लेती है; किन्तु अपने पतिदेव की ही सेवा में रहकर जीवन व्यतीत करती है। उसी प्रकार माधुर्य भाव के भक्त को अव्यभिचारिणी भक्ति को धारण करना होता है। वह नाना उपासना के प्रलोभन में नहीं पड़ सकता। उसे जो कुछ भी मांगना हो अपने प्रभु से मांगे। अपने कष्टों को सहन करले, और जरा जरा—सी बात के लिये पति के पास में उपालम्भ न करे तो विशेष उत्तम है। कदाच दुःख न सह सके अथवा उसे कुछ कामना है, तो पतिदेव से निवेदन करना उसका कर्त्तव्य है। क्योंकि "तुम बिना मैं किनसे कहों तुम हो मेरी आश जी" जिसको अपना स्वामी माना, जिसे हमने सदा के लिये वर लिया। उससे न कहा जावे तो अपने मनोरथ को किससे कहा जावे ?

इस कारण, पतिव्रता स्त्री की भांति माधुय भाव का उपासक अपने प्रभु से सब कुछ मांग सकता है। कदाच वह न भी मांगे तो भी परमात्मा अनन्य भक्त का मनोरथ पूर्ण करता रहता है। स्त्री की आवश्यकताओं को पूर्ण करना पति का धर्म है। उसी प्रकार माधुर्य भाव के उपासक की इच्छा पूर्ण करना, उसके प्रभु का कर्तव्य है। उपासक भले न मांगे अथवा भूल जावे, तथापि उसका स्वामी प्रभु तो अन्तर्यामी है वह किस लिये भूल जावे ?

"तनकी जाने मनकी जाने, जाने दिलकी चोरी।
उस साहेब से कौन छिपा है, जिसके करमें डोरी।"

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ (गी० ९—२२)

जो तनकी, मनकी सब जानता है। कोई दिल में छिपा भी रखे तो उसे भी जानता है, तब तो उससे छिपाना क्या ? प्रत्युत उसके सामने उपस्थित करना ही उचित है। यों तो कहना भी नहीं पड़ता, जो अनन्य भाव से चिन्तन करते हुए मेरे में विभोर हो रहे हैं, उनके लिये तो योगक्षेम—उनकी जीवन वृत्तिका भी मैं ही भार उठा लेता हूं। इस प्रकार भगवान ने स्वयं वचन दिया है तब तो माधुर्यभाव की उपासना में किसी प्रकार के बाह्य आडम्बर की आवश्यकता नहीं। न उसे संसार छोड़कर कहीं भटकने की आवश्यकता है। उसे तो निर्भय होकर अपने ध्येय की ओर बढ़ना चाहिये। आडम्बरों में पड़कर जीवन नष्ट

Shri Prannath Ji Pustkalay

करना उचित नहीं। जीवन का एक-एक क्षण अमूल्य है। संसारके अन्य सब पदार्थ मूल्य चुकाने पर प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु समय पूरा होने पर करोड़ों रुपया व्यय कर दिया जाय तो भी पुनः 'समय' नहीं मिलता। यही कारण है महापुरुषों ने समय नष्ट न करने को बारम्बार चेतावनी दी है।

माधुर्य भावमें समयका मूल्य बहुत बढ़ जाता है। उसका तो एक भी क्षण व्यर्थ नष्ट नहीं होने पाता। वह संसार में रहते हुए संसारके शुभाशुभ कर्म-फ़लसे निर्लेप रहता है। इतना ही नहीं उसका तो जीवन ही 'ब्रह्मभूयाय कल्पते' ब्रह्मरूप बन जाता है। फिर तो—

"जहँ जहँ पग धरौं सोई परिकर्मा जो जो करौं सो पूजा।
सहज समाधि सदा उर माहीं और भाव नहीं दूजा॥"

उसके जीवन का एक भी श्वास खाली नहीं जाता। वह तो जिस ग्राम में, जिस देशमें चरण रखता है, वहीं उसकी प्रदक्षिणा हो रही है। वह जो कुछ भी करता है, वह सब पूजन में गिना जाता है। उसकी समाधि चालू रहती है। कारण वह लौकिक पारलौकिक जो कुछ भी करता है उसकी समाधि में दूसरी भावना न होने से वह सब ब्रह्मभाव-मय बनता[1] जाता है। उसकी अन्तर्वृत्ति तो प्रभु के चरणों में अर्पित हो जाती है। अब वह चाहे गृह में रहे अथवा कहीं भी रहे अन्तरात्मा प्रभु में प्रसक्त होने से उसका भाव ही अद्वितीय एवं ब्रह्ममय हो जाता है।

माधुर्य भाव में निष्ठा तो गोपी भाव की होनी चाहिये। अथवा यों समझिये कि-गोपीभाव का ही दूसरा नाम माधुर्य भाव है। ब्रज में गोपियों ने अपने पति, पुत्र, परिवार आदि के साथ रहते हुए जिस प्रकार इसे प्राप्त किया था। आज भी उसी प्रकार गृहस्थाश्रम में अथवा विरक्त रहकर इसे साधा जा सकता है। इसमें वेषभूषा का विशेष महत्त्व नहीं, केवल भाव की प्रधानता। 'भावप्रधान-

---

[1] मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन् नातिप्रसक्तः समुपैति शान्तिम्।
(भा० ११-१७-४३)

"ईंधन बिहूनो आग राखवे को यतन कहा, ईंधन में आग राखे सोई यतन है।
घर छोड़ बनमें योग मांडवेको निहोरो कहा, घरही में योगमांड़े सोई योगपन है॥
'अक्षरअनन्य' विषयपाये बिना त्याग कहा, विषयपाय त्याग करै सोई त्यागपन है।"

माधुर्य भावना निर्मल रहने का उपदेश देती है, घर छोड़ भागने का नहीं। वहां तो भोग में योग समाधि की साधना है। तभी तो उसका 'फलानन्त्यम्' फल अनन्त हो जाता है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

माख्यातम्''. निरुक्तकार तो सम्पूर्ण विश्व को ही भाव प्रधान मानते हैं। कारण, विश्व 'शब्दमय' जगत से ''रुपमय' जगत में आया है। फिर माधुर्य भाव की निष्ठा तो भाव के ऊपर ही निर्भर है। अतएव गृहस्थ जीवन में भी माधुर्य भाव प्राप्त करना चाहिये। परन्तु उसके लिये अनन्य भावना मुख्य है।

'बाह्यधर्मा मया ह्यते संक्षेपेणोपवर्णिताः।
आन्तरः परमो धर्मः प्रपन्नानामथोच्यते॥
कृष्णप्रिया—सखीभावं समाश्रित्य प्रयत्नतः।'
'सकृदावां प्रपन्नो यः उपास्ते त्यक्तसाधनः॥
गोपीभावेन देवेश ! स मामेति न चेतरः।
सेवतेऽनन्यभावेन स मामेति न संशयः॥ (पद्मपु० पाताल खंड अ० ८२)

श्री कृष्णजी शिवजी के प्रति मोक्ष रहस्य का वर्णन करते हुए कहते हैं। 'हे देवेश ! अभी तक जितने भावों का वर्णन किया है, वे सब बाह्य धर्म हैं, उन्हें बाहर भी धारण करना पड़ता है। परन्तु एक आभ्यन्तर धर्म है, उसे बाहर धारण करने की आवश्यकता नहीं रहती। वह है श्रीकृष्णप्रियाओं का गोपीभाव। कृष्णप्रिया जो ब्रह्म-सृष्टि हैं, उन्होंने जिस भाव को धारण करके अपने धाम को प्राप्त किया है, उसे गोपी भाव अथवा माधुर्य भाव कहते हैं। जो अन्य साधनों को छोड़कर इस माधुर्य भाव को ग्रहण करता है, वही मुझे प्राप्त हो सकता है, अन्य नहीं। इस माधुर्य भाव में भी अनन्यता मुख्य है। जो अनन्य निष्ठा से सेवन करते हैं, वे अवश्य ही श्रीकृष्ण के ब्रह्मधाम को प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं। इस प्रकार पुनः पुनः माधुर्य भाव की उपासना को सर्वोत्तम और संशय रहित प्रतिपादन किया है। यही कारण है कि 'गीता (१८-६६) में श्री कृष्ण जी ने अनन्य माधुर्य भाव पर ही जोर दिया है। यथा— ''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।''

सब धर्मों को छोड़कर एक श्रीकृष्ण जी की शरण होने का निश्चय कर। श्रीकृष्ण शरण को प्राप्त होकर पापो भी मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं, इसमें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।, इस प्रकार माधुर्य भाव की अनन्यता सबसे उत्तम और अनन्त फल देने वाली है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण भक्तों के लिये चातकी वृत्ति का विधान किया है। जिस प्रकार चातक स्वाति के जल के अतिरिक्त अन्य जल की आशा नहीं रखता। जिस प्रकार पतिव्रता अपने एक पति के अतिरिक्त अन्य को पति नहीं मान सकती। उसी प्रकार इस माधुर्य भाव में भी अनन्यता मुख्य है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

बल्कि अनन्यता के कारण ही तो इस भक्ति का महत्त्व विशेष बढ़ जाता है। अतएव शास्त्र पुराणों में लिखा है:—

"मयि निबद्धहृदयाः साधवः समदर्शिनः।
वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा (भागवत)
"अनन्यशरणो नित्यं तथैवानन्यमानसः।
अनन्यसाधनार्थत्वात् स्यादनन्यप्रयोजनः॥
न चान्यं पूजयेद् देवं न नमेच्च स्मरेन्न च।
न च पश्येन्न गायेच्च नैव निन्देत् कदाचन॥
नान्योच्छिष्टं च भुञ्जीत नान्यशेषं च धारयेत्।
आश्रित्य चातकीं वृत्तिं देहपातावधिर्द्विज!॥

(पद्म पु० पातालखंड अ० ८२)

हे उद्धव! मेरे में निर्बद्ध हृदय सन्त जन मेरे को उसी प्रकार वश में कर लेते हैं, जिस प्रकार सती स्त्री अपने सत्पति को वश में कर लेती है। पद्म पुराण में भी आता है कि—श्री कृष्ण के माधुर्यभाव के भक्त को चाहिये, वह कभी भी अन्य किसी की शरणागति की आशा न रखे। अनन्य मन होकर श्री कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव को धारण करे। एक ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी का भजन, पूजन अथवा ध्यान, स्मरण न करे, किन्तु अनन्य भाव से, एक निष्ठा से सदा माधुर्य भाव में निमग्न बना रहे। न किसी का उच्छिष्ट प्रसाद लेवे, न अन्य का गान करे एवं न निन्दा करे, किन्तु चातक की भांति ब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण की भक्ति में ही ध्यान लगावे। अनन्य निष्ठा से जो श्रीकृष्ण को भजते हैं, वे सर्वोत्तम हैं। उनके मार्ग में किसी प्रकार भी विघ्न बाधा नहीं पड़ती।

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥

(भाग० ११-१२-८)

'हे उद्धव! अधम से अधम जाति के मनुष्यों ने भी प्रेम से ही प्रभु को प्राप्त किया है, यह तो सब जानते है। गोप-गोपी, नागपत्नी, ऋषि पत्नी, आदि अनेक तुच्छ जाति के अथवा मनुष्येतर जाति के प्राणी भी प्रेम से मेरे स्वरूप को प्राप्त होते रहे हैं। इस प्रकार से स्वयं श्रीकृष्ण जी ने अनन्य भावको सर्वोत्तम वर्णन किया है। फिर इस अनन्यता में 'पातिव्रत्यमनन्यत्वं' पतिव्रतता

Shri Prannath Ji Pustkalay

धर्म की छाप लग जावे तब तो पूछना ही क्या ? वह तो और भी अद्वितीय हो जाता है। यही कारण है कि—श्रीकृष्ण के माधुर्य भाव की दीक्षा मात्र से मोक्ष प्राप्ति होना लिखा है —

दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरा मोक्षं व्रजन्ति वै ।
किं पुनर्ये सदा भक्त्या पूजयन्त्यच्युतं द्विजाः ॥
(ब्रह्म पु० अ० ११८)

ये च वेदविदो विप्रा ये चाध्यात्मविदो जनाः ।
ते वदन्ति महामानं कृष्णं धर्मं सनातनम् (महाभारत)

जब श्री कृष्ण की दीक्षा मात्र से मोक्ष प्राप्त हो जाता है तब जो निरन्तर भक्ति-पूर्वक भजनेवाले हैं, एवं तन, मन, धन से सेवा करने में लगे हैं, वे तो दूसरों को भी तार ले चलेंगे। क्योंकि, वास्तविक सनातन धर्म तो श्रीकृष्ण जी ही हैं, उन्हें तो वे प्राप्ति कर ही चुके।

इस प्रकार देखा जाय तो श्री कृष्ण परमात्मा को अनन्य प्रेमलक्षणा भक्ति और पातिव्रत्य भाव के द्वारा भजने वाले पुरुष तरण-तारण कहे जा सकते हैं। कारण, पतिव्रता भाव में सब प्रकार की सुविधा है। एक तो संसार को छोड़कर विरक्त होने की आवश्यकता नहीं। संसार में धर्म, अर्थ, काम, तीनों को सेवन करते हुए भी मोक्ष प्राप्त होता है। दूसरे—पतिव्रता स्त्री के समान थोड़ा भी भजन भाव किया जावे तो वह "फलानन्त्यम्" के अनुसार अनन्त मोक्ष-फल को प्रदान कर देता है। पतिव्रता धर्म के समान इसका स्वल्प भी पालन किया जावे तो महान भय से भी बचा देता है। इस विषय में एक कथा है—

महर्षि दुर्वासा का नियम था, वे एक प्रहर रात्रि शेष रहने पर यमुना जी में स्नान कर पानी में खड़े होकर ध्यान किया करते थे। एक दिन ध्यान में मग्न थे कि इतने में यमुना जी की धारा कुछ जोर से बढ़ चली, और थोड़ी ही बार में कमर तक पानी हो गया। पानी के वेग से धक्का लग-लग कर आड़बन्द से लंगोटी छूट कर बह गई। थोड़ी बार पानी का वेग भी उत्तर गया और इधर प्रातः काल भी हो गया। ध्यान टूटा तो दुर्वासा ने अपने को नग्न पाया अनेकों स्त्री पुरुष स्नान कर रहे हैं, अपने मनमें क्या कहते होंगे ? अतः लज्जा वश दुर्वासा चुप चाप पानी में बैठ गये। सहस्रों स्त्री पुरुष स्नान करके चले जा रहे थे। महारानी द्रौपदी भी कुछ सूर्य चढ़ते स्नान करने आई। उसने देखा महर्षि दुर्वासा तो सबेरे ही चले जाते थे, आज क्या कारण है जो पानी के अन्दर अन्दर बैठे हैं ? जानने की इच्छा से उनके पास चली गई और प्रणाम कर पूछा। महर्षि ! आज आप यमुना जलके अन्दर किस कारण बैठे हो ?

Shri Prannath Ji Pustkalay

दुर्वासा ने कहा—पुत्री ! कोई चिन्ता जैसी बात नहीं है। आज पानी के वेग से लँगोटी बह गई है। आप सब स्नान कर रही थीं, मुझे नग्न रहना अनुचित लगता था, अतः पानी में बैठ गया। जब सब स्त्री पुरुष चले जावेंगे, मैं भी आश्रम को चला जाऊंगा, कोई जल्दी नहीं है।

द्रौपदी ने प्रार्थना की। महर्षिजी ! अनुचित न हो तो मैं अपना चीर फाड़ कर दे दूं। महर्षि ने कहा, तुम्हारी इच्छा है तो दे सकती हो। द्रौपदी ने अपने चीर से एक चार अंगुल चौड़ा टुकड़ा फाड़ कर दे दिया। जिसकी लंगोटी लगाकर दुर्वासा अपने आश्रम को चले गये।

पतिव्रता द्रौपदी का दान किया हुआ वही चार अंगुल वस्त्र उसे अनन्त रूप होकर प्राप्त हुआ। जब दुष्ट दुःशासन ने सभा में नग्न करने के लिये उसका चीर खींचा तो वह अनन्त रूप होकर बढ़ता गया। यहां तक कि दुःशासन की भुजाओं का दश सहस्र गजबल थक गया, परन्तु द्रौपदी का दश गज चीर न घटा।

"दश हजार गजबल घट्यो, घट्यो न दश गज चीर।
पतिव्रता के पुण्यवश, हरो 'कृष्ण' भव-भीर ॥"

समस्त समाज चकित हो गया, द्रौपदी को लाज न लूट सका, किन्तु स्वयं ही लज्जित हो गया। ये सब क्यों ? और किस लिये हो गया तो मानना पड़ेगा कि पतिव्रता के पुण्य का प्रताप था, जो अनन्त हो गया। यह तो एक उदाहरण है। ऐसे असंख्य उदाहरण आपको मिलेंगे जिनसे सिद्ध हो जाता है कि—पतिव्रत-धर्म का प्रभाव कभी घटता नहीं। कम नहीं होता, किन्तु दिनों दिन बढ़ता ही जाता है। राजा बलि, नृग, हरिश्चन्द्र, शिवी, दधीचि सब एक तरफ रह गये, द्रौपदी चार अंगुल वस्त्र दान के पुण्य से बाजी मार ले गयी। इसलिये कि पतिव्रत-धर्म को पालती थी। जब मनुष्य पतिव्रता भाव से भजने वाली स्त्री अद्वितीय शक्ति प्राप्त कर लेती है तो परब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण को पातिव्रत्य भाव से भजने वाला भक्त भी अनन्त आत्मबल प्राप्त कर सकता है, यह सहज ही समझ में आ सकता है।

पतिव्रता स्त्री अपने पति के नाम की माला नहीं फेरती। विरक्त भेष नहीं लेती। संसार के सुखों का परित्याग भी नहीं करती, प्रत्युत संसार में रहते हुए संसार को जीत लेती है। तन, मन, धन से पति की सेवा और पति की आज्ञा का पालन, इतना ही उसका कर्त्तव्य है। अनुसूया ने अपने पतिव्रत-धर्म के प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवों को लज्जित कर दिया था। इतना ही नहीं किन्तु चार-चार मास के छोटे-छोटे बालक भी बना दिया था। गान्धारी ने अपने पति-

Shri Prannath Ji Pustkalay

व्रत धर्म के प्रभावसे दुर्योधनके शरीरको वज्रसा बना दिया था। अञ्जनीके पतिव्रत—धर्मने रामकी प्रतिज्ञा छोड़वा दी थी। सावित्री ने मरे हुए पतिको जीवित कर लिया था। वृन्दा के पतिव्रत—धर्मके बलसे जालन्धर विश्व विजयी बन गया था। इस प्रकार एक दो नहीं, शतशः उदाहरण इतिहासों में विद्यमान हैं। जब एक मिथ्या पञ्चभौतिक शरीर पर एक स्त्री पतिव्रता भाव लेकर बैठ जाती है तो उसमें अद्वितीय बल, अटूट शक्ति और अनिर्वचनीय प्रभाव आ जाता है, तब परमात्मा को 'पातिव्रत्य' भावसे भजने वाले भक्त पुरुषोंको अलौकिक आत्मबल क्यों न प्राप्त होगा? अवश्य होगा। अतएव नारद पञ्चरात्रान्तर्गत माहेश्वर तंत्रमें लिखा है—

"गोत्रमुक्तं [1] चिदानन्दं ब्रह्मानन्दो हि सद्गुरुः।
पातिव्रत्यमनन्यत्वं साधनं समुदाहृतम् ॥"

—शिवजी पार्वती के प्रति माधुर्य भावका विशेष महत्त्व प्रतिपादन करते हुए कहते हैं। 'हे गिरिजे! परमात्मा को अनन्य भावसे भजने वालों के लिये

[1] ब्रह्मको पतिव्रता भावसे सेवन करने वालोंका गोत्र 'चिदानन्द' हो जाता है अवश्य, किन्तु सद्गुरु भी उसी चिदानन्द स्वरूपमें विचरनेवाला हो तब। यदि सद्गुरु उस पर ब्रह्म तत्त्वको स्वयं ही नहीं जानता हो तो फिर शिष्यका गोत्र क्या बदलेगा? जिसको अपने ही गोत्रका पता नहीं, वह संसारके बद्ध तथा विषयी जीवोंको 'चिदानन्द' गोत्रवाला किस प्रकार बना सकेगा? अतएव शास्त्रमें लिखा है कि 'माधुर्य भावको प्रदान करनेवाला गुरु भी माधुर्य भावको धारण किये हों और उसके तत्त्वको जानता हो।' (पद्मपु० पातालखण्ड अ. ८२) में लिखा है।

श्रीकृष्णरस—तत्त्वज्ञः कृष्णमन्त्रविदां वरः।
कृष्णमन्त्राश्रयो नित्यं मन्त्रभक्तः सदाशुचिः ॥
सद्धर्मशासको नित्यं सदाचार—नियोजकः।
संप्रदायी कृपापूर्णो विरागी गुरुरुच्यते ॥

चिद्घनरस पूर्ण श्रीकृष्णके ब्रह्मतत्त्व को जानता हो, श्रीकृष्ण मन्त्रके जानने वालों में भी श्रेष्ठ हो, श्रीकृष्ण मन्त्रके आश्रयमें रहता हो, एवं मन्त्रभक्त और पवित्राचार वाला हो, इतना ही नही किन्तु दूसरोंको भी सदाचारमें लगाने वाला हो, सद्धर्मके सिद्धान्तका शासन करता हो और सम्प्रदायनिष्ठ कृपालु तथा वैराग्यभावना युक्त हो, ऐसा ही गुरु सन्मार्ग दर्शक होता है। लक्षण हीन गुरु 'पातिव्रत्य' धर्मकी अनन्य भावनाको दृढ़ नहीं बना सकता। अतः चिदानन्द गोत्र प्राप्त करना हो तो ऐसे ही सद्गुरु शरण ग्रहण कर जीवन को सफल बनाना उचित है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

सर्वोत्तम साधन 'पातिव्रत्य' धर्म है। कारण, पतिव्रता धर्मको लेकर भजनेवाले कभी आवागमनमें नहीं पड़ते, किन्तु नित्य अखण्ड मोक्षको प्राप्त हो ब्रह्मानन्दमें विचरते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु उनका गोत्र भी बदल जाता है। ब्रह्मस्वरूप हो जानेके कारण गोत्र भी 'चिदानन्द' हो जाता है। जिसके आत्माका गोत्र चिदानन्द हो जावे, उसे पुनः संसार में आना पड़े, यह तो असम्भव है। जो ब्रह्मभावके गोत्र में जा मिला, जो ब्रह्म भावको प्राप्त हो गया, उसके लिये मोक्षकी चिन्ता क्या ?

'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु [1] मद्भक्तिं लभते पराम् ॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो [2] ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

अतएव भगवान गीता (१८–५४,५५) में कहते हैं। 'हे अर्जुन ! यह जीवात्मा जब चिदानन्द गोत्र प्राप्त कर लेता है तो ब्रह्मरूप हो जाता है, फिर उसे चिन्ता, शोच अथवा आकांक्षा नहीं रहती। प्रसन्न चित हो सब भूतों के निमित्त

---

[1] 'सर्वेषुभूतेषु' में 'निमित्तात्कर्मयोगे' इस सूत्रसे निमित्त अर्थ में सप्तमी विभक्ति हुई है। इस लिये सब जीवोंके निमित्त परा भक्तिको प्राप्त करता है, ऐसा अर्थ करना उचित है।

"केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः।"

जिस प्रकारसे केशोंके निमत्त गायको मारता है, इत्यादिमें सप्तमी विभक्ति हो जाती है, उसी प्रकार यहां भी समझें। विस्तार–पूर्वक देखना हो तो 'निमित्तात्कर्मयोगे' पर महाभाष्य को देखें। यह व्याकरणका विषय हैं अतएव नहीं लिखा।

[2] इस पद्यमें भगवान ने 'यश्च और यावान्' पद सांकेतित रख दिये हैं। कारण साधारण-तया मनुष्य भगवानको विष्णुका अवतार मानकर भजते हैं, परन्तु श्री कृष्णके स्वरूपमें त्रिविध भेद है, इस तत्त्वको नहीं जानते। अतः भगवान कहते हैं कि 'जो मेरे स्वरूपको तत्त्वतः जान लेते हैं, वे ही परम पद प्राप्त करते हैं, सब नहीं। (१) ब्रह्मस्वरूप कृष्ण, (२) गोलोकनाथ श्रीकृष्ण, और (३) विष्णुरूप कृष्ण। इस प्रकार कृष्णके स्वरूपमें त्रिविध रहस्य है। जो ब्रह्मरूप कृष्ण को जान लेगा, वह फिर अपर तत्त्वको छोड़ कर पर तत्त्वको भजने लगेगा। जो परतत्त्वको भजेगा, वह परतत्त्व को ही प्राप्त होगा। जो जिस तत्त्व की उपासना करता है वह तद्रूप हो जाता है, ऐसा श्रुतियों का सिद्धान्त है। बस, जो पूर्णब्रह्म स्वरूप श्री कृष्णको भजेगा, वह पूर्णब्रह्म स्वरूप तत्त्वको प्राप्त हो जायगा।

Shri Prannath Ji Pustkalay

परा भक्ति को प्राप्त करता है। उस ब्रह्मरूपा परा भक्ति के द्वारा 'मैं जो कुछ हूं और जैसा हूं' उसे वह तत्त्वतः जान लेता है, अतएव ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

जिसने सम्पूर्ण जीवों के निमित्त पराभक्ति को प्राप्त कर लिया, जो बद्ध और विषयी जीवों को भी 'चिदानन्द' गोत्र प्रदान करने लगा, उसे शोच अथवा चिन्ता किस बात की ? जो ब्रह्मस्वरूप होने के कारण 'भ्रमरीकीट' न्याय से अन्य जीवों को भी ब्रह्म वासना की भावना से संस्कारी बनाकर भवपार कर देता है, उसकी महत्ता को कौन कह सके ?

इस प्रकार से माधुर्य भाव को सर्वोत्तम, मोक्ष देने में अचूक, सरल, सुगम और बिना विशेष तप त्याग के भी आवागमन को मिटाने वाला पाते हैं। यह सुविधा भक्ति के अन्य भावों में नहीं मिलती। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पदार्थों को गृहस्थ आश्रम से एक-साथ प्राप्त करना, किसी भाव के द्वारा नहीं पाया जाता। यह माधुर्य भाव ही एक ऐसा है जो मनुष्य को दोनों हाथ में मोदक पकड़ा कर आवागमन मिटा देता है।

सबसे विशेष महत्त्व तो इसके 'पातिव्रत्य-मनन्यत्वं' अनन्य भाव में समाया हुआ है, जो 'फलानन्त्यम्' अनन्त फल को प्रदान कर जन्म मरण के चक्कर से सदा के लिये मुक्त बना देता है। परन्तु इस भाव को धारण करना तत्त्वज्ञ का ही काम है। तारतम्य ज्ञान के बिना श्रीकृष्ण के त्रिविध भेद का सुगुप्त ब्रह्मतत्त्व समझ में नहीं आता। जब तक श्रीकृष्ण के स्वरूप में पुरुषोत्तम ब्रह्म भाव की भावना जाग्रत नहीं होती और इतर स्वरूपों के प्रति उपेक्षा भाव को धारण नहीं किया जाता, माधुर्य भाव प्राप्त नहीं हो पाता। बस, यही कारण है कि माधुर्य भाव के इस उदात्त भाव को सब नहीं ले पाते, ये परम गुह्य और गुरुगम्य दुर्लभ तत्त्व बड़े भाग्य से प्राप्त होता है। इस भाव को धारण कर मनुष्य ब्राह्मी भावना में पुष्ट हो जाता है और अन्य जीवों को भी भवपार ले जाने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

य इदं परम गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि (गी० अ. १८)

भगवान कहते हैं 'हे पार्थ ! रहस्यमयी परा भक्ति के इस परम गुह्य भेद को मेरे भक्तों को धारण कराने वाला मेरी परा भक्ति प्राप्त कर मेरे परात्पर स्वरूप को प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं। भक्त मनुष्यों में भी उससे अधिक प्रिय मुझे

Shri Prannath Ji Pustkalay

अन्य कोई नहीं लगता, और न संसार में उससे प्रिय भविष्य में ही होगा।' इस प्रकार स्वमुख से जब श्री कृष्णजी स्वयं ही परा प्रेमलक्षणा भक्तिको परम गुह्य और सर्वोत्तम वर्णन करते हैं। एवं परा भक्तिको धारण करने वाला आवागमन रहित ब्रह्मधामको प्राप्त होता है, यह भी विश्वास दिला रहे हैं, तब इससे अधिक अनन्त फल किस प्रकार का मिल सकता है ? तभी तो शास्त्रों में कहा है—

मधुरमधुरगीतं मङ्गलं मङ्गलानां सकलनिगमवल्लीसत्फलं[1] चित्स्वरूपम् ।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ।।

हे भृगुवर ! सब मङ्गलों के मङ्गल का विधाता, सकल वेद शास्त्र पुराणों का सनातन फल चिद्घनस्वरूप श्री कृष्णजी का नाम माधुर्य भाव से एकबार भी गाया जाय, फिर चाहे व श्रद्धापूर्वक हो, अथवा किसी निमित्त से लिया गया हो, मनुष्य को भवसागर से तार देता है। बस, माधुर्य भाव में यही विशेषता है कि

---

[1] इस पद्य में 'चित्स्वरूप' शब्द नितान्त रहस्यपूर्ण और सापेक्ष है। श्रीकृष्ण की त्रिविध लीला के परात्पर तत्त्व को ग्रहण करने के लिये यह गुप्त संकेत है। श्रीकृष्ण के त्रिविध स्वरूपों में विष्णुस्वरूप कृष्ण और गोलोकनाथ श्रीकृष्ण, परात्पर तत्त्व नहीं हैं,किन्तु 'गणितानन्द' विशिष्ट हैं। और श्रुतियां परात्पर तत्त्व को पुरुषोत्तमत्वेन ग्रहण करती हैं। अतएव गीता में 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः" कहकर उसे सबसे पृथक् माना है।

"यस्मिन्सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि ।
तं वदन्ति परे साक्षात्परिपूर्णतमः स्वयम् ।।
परिपूर्णतमः साक्षात्—श्रीकृष्णो नान्य एव हि ।

यद्यपि श्रीकृष्ण के स्वरूप में सम्पूर्ण तेज राशियों का समावेश है और वे परिपूर्ण स्वरूप भी हैं, परन्तु जो जिस भावना से, जिस दृष्टिकोण से जिस तत्त्व को ग्रहण करता है, उसी के फल को प्राप्त होता है। पृथ्वी में सब रस विद्यमान हैं सब रत्न भरे पड़े हैं। उसका नाम भी वसुधा है, परन्तु सब वृक्ष भिन्न-भिन्न रस को प्राप्त करते हैं। इक्षु (गन्ना) में मधुर रस ग्रहण करने की शक्ति है, अतः वह अपने दृष्टिकोण के अनुसार पृथ्वी में से मधुर रस ले लेता है, अन्य रसों को छोड़ देता है। इसी प्रकार नीम के वृक्ष में कटु रस ग्रहण करने की शक्ति है, वह भले ही आम का बगीचा ही क्यों न हो, परन्तु अपने दृष्टिकोण के अनुरूप कटु रस को ही ग्रहण करेगा, निम्बू में खट्टे रस को ग्रहण करने की शक्ति है अतः वह अपनी भावना के अनुरूप अपने स्वरूप में खट्टे रस को ही धारण करता है एवं तदनुसार फल को भी प्राप्त करता है,इसे तत्त्वज्ञान कहते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

वह धर्म, अर्थ, काम त्रिवर्ग के साथ मोक्षको भी प्राप्त करा देता है। एवं उसे धारण करने वालों को आवागमन की अथवा जन्म मरण की परम्परा पुनः नहीं सताती। वह तो लौकिक जीवन व्यतीत करते हुए अलौकिक अखण्ड पद को प्राप्त कर लेता है। माधुर्यभाव में अनेक जन्मों के अनन्तर मोक्ष मिलने का क्रम नहीं है, वह तो एक ही बार में भवपार कर देता हैं। इसलिये दुर्लभ नरतन को पाकर इस परा भक्तिगम्य परम तत्त्व को अवश्व ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो नश्च निवृत्तिवाचकः।
तयोरैक्यं कृष्ण नाम सच्चिदानन्द लक्षणम्॥ (श्रुति)

गच्छन्तिष्ठन् स्वपन्वापि पिवन्भुञ्जञ्जपंस्तथा।
कृष्ण कृष्णेति संकीर्त्य मुच्यते पापकंचुकात्॥ (शिव पु०)

इत्थमेव सर्वे मनुष्या अमृता भविष्यन्ति
(शतपथ ब्रा० का १० अ० ४—९)

'तमसो मा ज्योतिर्गमयेति'
मृत्युर्वै तमो ज्योतिरमृतं, मृत्योर्मामृतं गमय'
(शतपथ० १४—४—३२)

चलते, फिरते, उठते, बैठते, खाते, पीते, जागते, श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण कहने वाला पापों से छूट कर मुक्त हो जाता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के भक्त अविनाशी धाम को प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं। इसलिये इस सनातन तत्त्व को हाथ से न जाने देना चाहिये। अज्ञानमें पड़कर प्रकाश को भूल जाना अच्छा नहीं।

— बस, इसी प्रकार पूर्णब्रह्म श्री कृष्ण के स्वरूप में भी सब तत्त्व है। क्षर, अक्षर और अक्षरातीत तीनों ही तत्त्वों का समावेश है। सम्पूर्ण तेजराशियों को, अनन्त अध्यस्त देवोंको, अनन्त गणितानन्द – अक्षरानन्द विभूतियों की पूर्णता को धारण किये है। परन्तु उपासकको उसके दृष्टि-कोण के अनुसार और भावना के अनुरूप ही स्वरूप की प्राप्ति होगी। अतएव ब्रह्मतत्त्व के इस रहस्य को जाननेवालों को श्री कृष्णरस-तत्त्वज्ञ कहा गया है। वे ही इस तत्त्व को यथार्थ समझ सकते हैं, सब नहीं। इसलिये उत्तम गुरु और उत्तम अधिकारी शिष्य दोनों का परात्पर उत्तम दृष्टिकोण हो तभी उस परम तत्त्व को प्राप्त होता है। यही बात नीचे की श्रुति में भी लिखी है। "तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति" (मुण्डक) ब्रह्म के विज्ञान का रहस्य जिन धीर पुरुषों को विदित है, वे ही ब्रह्म के उस अविनाशी ब्रह्मानन्द स्वरूप को देख पाते हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

मृत्यु को बारम्बार भेटना यही अन्धकार है। ब्रह्म प्राप्ति करना, अविनाशी प्रकाशको पा लेना, यही मोक्ष है। इसलिये मृत्युके चक्करमें पड़कर अमृत-स्वरूप मोक्षको हाथसे न जाने देना चहिये। इस प्रकार पुनः पुनः श्रुतियों का उपदेश है। जो कोई इस तत्त्वको यथार्थ ग्रहण करेंगे, वे तो अवश्यमेव भवसागर को पार कर अखण्ड 'दिव्यब्रह्मपुर' धाम को प्राप्त हो ब्रह्मानन्दका अनुभव करेंगे।

'यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि ।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥

स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥'

ब्रह्मानन्दजनैर्युक्तो ब्रह्मानन्दात्मनि स्थितः ।
आत्मरूपमिदं सर्वमात्मानोऽन्यन्न किञ्चन ॥

ब्रह्मानन्दपरं ज्योतिर्ब्रह्मानन्दनिरन्तरः ।
ब्रह्मानन्द-रसास्वादो ब्रह्मानन्द कुटुम्बकः ॥

ब्रह्मानन्द-रसारूढो ब्रह्मानन्दैकचिद्घनः ।
"ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते ॥"

इस प्रकार मुण्डक, छान्दोग्य, तेजोविन्दु, वृहदारण्यक आदि विविध श्रुतियां ब्रह्मधाम में पहुंचने वालेको विविध आनन्दोंके प्राप्त होनेका प्रतिपादन करती हैं कि मुक्तात्मा, ब्रह्मानन्दमें स्थित ब्रह्मानन्दजनों के साथ परम धाममें अखण्ड लीला विहार करता है। ब्रह्मानन्द रसका आस्वादन करते हुए ब्रह्मानन्द स्वरूप कुटुम्बके साथ अनेक दिव्यानन्दों का अनुभव करता है। इतना ही नहीं किन्तु ब्रह्मधाम को प्राप्त होकर पुनः कभी जन्म मरण में भी नहीं आता।

॥ इति ब्रह्म-अर्पणमस्तु ॥

इति श्री सद्धर्मसिद्धान्तवागीश कृष्णदत्तशर्मशास्त्रिविरचिते विराटपट-दर्शने, मोक्षसिद्धिनिरूपणं नाम चतुर्दश पर्व परिपूर्णम् ॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

समाधानपर्व

(परिशिष्टभाग)

प्रेमी वाचकवृन्द ! अध्यात्मतत्त्व के महत्त्व को यथाशक्ति उपस्थित किया। त्रिविध तत्त्वों (क्षर, अक्षर और अक्षरातीत पुरुषों) का निरुपण भी किया। ब्रह्म के विविध स्वरूपों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया। इतना ही नहीं, किन्तु ब्रह्म के सोपान पर्वों को भी यथाशक्य समझाया गया, तथापि कुछ विषय ऐसे हैं, जिनके अध्ययन से कुछ सज्जनों को सन्देह हो सकता है। कारण, सांप्रदायिक भावना से भावित अन्तःकरण वालों को पक्षपात का आभास होने लगता है, यह स्वाभाविक है। कारण—

"जगत में प्रायः ऐसा देखने में आता है। वैष्णव शिव तत्त्वको अनित्य बनाते हैं तो शैव विष्णु तत्त्व को शिव तत्त्व से न्यून प्रतिपादन करते हैं। रामोपासक कृष्णको महत्त्व नहीं देते एवं कृष्णोपासक राम की भक्ति को तुच्छ प्रतिपादन करते हैं। इसलिये कह दिया करते हैं कि जो जिसका भक्त होता है, उस की प्रशंसा लिख देना है। जो जिसकी उपासना नहीं करता, उसके विषय में निन्दा लिख दिया करता है। शास्त्र पुराणों में सभी देवों की स्तुति और निन्दा के वचन मिलते हैं, अतएव एक दूसरे का खण्डन-मण्डन चला करता है।"

इस ग्रन्थ में हमने इस लाञ्छन से बचने की यथाशक्य चेष्टा की है। कारण, हमें किसी देव के प्रति अश्रद्धा नहीं है। और न हम किसी अध्यस्त देवके उपासक हैं, जो एक की प्रशंसा करते और दूसरे का खण्डन लिखते। हम तो वेद शास्त्र-पुराण सभी ग्रन्थों को गौरव, लाघव पूर्वक प्रमाण मानते हैं। इसके अतिरिक्त शब्द प्रमाण को ही मुख्य[1] मानते हैं। जिसके कारण शुष्क वितण्डावाद अथवा तर्कका आश्रय लेकर एक दूसरे का खण्डन-मण्डन करने को भी विशेष

---

[1] प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाण, इस प्रकार लौकिक विषय में चारों प्रमाणों का उपयोग होता है, परन्तु अध्यात्म तत्त्व के विषय में तर्क के बल से निर्णय नहीं हो सकता। अतएव 'तर्काऽप्रतिष्ठानात् (२—१—११) इत्यादि ब्रह्मसूत्र में तर्क को प्रतिष्ठित नहीं माना। प्रत्युत 'अतएव च नित्यत्वम्' (ब्रह्मसू० १—३—२९) शास्त्रोयोनित्वात् (ब्रह्मसू० १—१—३)

Shri Prannath Ji Pustkalay

महत्त्व नहीं देते। हां, युक्तिवादको धर्म निर्णय में सहायक और सङ्गत माना है, अतएव उसके द्वारा संगति लगाना अनुचित नहीं मानते।

(क) अबाधिताऽज्ञातज्ञापकत्वं हि प्रामाण्यम्

(ख) वचनात्प्रवृत्तिर्वचनान्निवृत्तिः

(ग) तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ (गीता)

'शब्द' प्रमाण को बलवान मान कर ही वेद, शास्त्र, पुराणों का विधान है। शब्द प्रमाण में भी जो अज्ञातका ज्ञापक हो और अबाधित हो, उसे प्रमाण माना गया है। वचन ही प्रवृत्ति के बोधक हैं और वचनों से ही निषेध का ज्ञान होता है। गीता में भगवान भी यही आज्ञा देते हैं कि शास्त्र के आधार से विधि निषेध को अथवा मान्य अमान्य को जानना चाहिये। शास्त्र विहित को छोड़कर जो मनमाना अर्थ करते हैं, वे आसुरी भावको प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार एक दो नहीं, किन्तु सभी आर्षग्रन्थों ने शब्द प्रमाण को मुख्य माना है। इतना ही नहीं प्रत्युत ब्रह्म विषय में अन्य प्रमाणों का निषेध भी मिलता है। यथा—

'शब्दादेव प्रमितः (ब्रह्मसू० १–३–२४)' इत्यादि अनेक सूत्रों से व्यासजीने शब्द प्रमाण को ही मुख्य माना है। एवं शब्द को नित्य मानकर सबसे विशेष महत्त्व दिया है।

"निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्" (सांख्यदर्शन ५–५१)

कपिलदेवजीने भी शब्दको ही स्वतः प्रमाण माना है। इसी प्रकार पूर्वमीमांसा में भी शब्द प्रमाण को नित्य और स्वतः प्रमाण माना है। तर्क, प्रत्यक्ष, अनुमान आदि के ऊपर निभने वाले नैयायिकों के दादा गुरु गौतम भी शब्द प्रमाण की मुख्यता प्रतिपादन करते हैं। यथा—

आप्तोपदेश सामर्थ्याच्छब्दार्थ संप्रत्ययः (न्यायदर्शन २–१–५२)

आप्त पुरुषों के उपदेश सामर्थ्य से शब्दार्थका यथार्थ ज्ञान होता है। कारण, आप्त पुरुषों के उपदेश में यथार्थ ज्ञान कराने का सामर्थ्य है, वे कभी मिथ्या नहीं बोलते। शेष भगवान के अवतार पतञ्जलिने भी अपने चरक (सूत्रस्थान अ० ११) ग्रन्थ में इस तथ्य को पुष्ट किया है।

आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषां ज्ञानमसंशयम्।
सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः॥

रजोगुण, तमोगुण को निरस्त करने वाले आप्त–पुरुषों के वचनों में असत्य को स्थान नही रहता। वे तो सदाकाल सत्य ही प्रदान करते हैं। इस भांति सभी आर्ष ग्रन्थ इस बातको मानते हैं कि 'शब्द' प्रमाण ही मुख्य है। अतएव वेदादि ग्रन्थों का ज्ञान नित्य होने से वह स्वतः प्रमाण करने योग्य है, उसे जानने के लिये पुनः प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्रत्यक्षस्यानुमानादेः व्यभिचारोऽपि दृश्यते ।
तस्माद् बलीयः शाब्दं वै प्रमाणमिति मे मतम् ॥
शाब्द—प्रमाणमुत्सृज्य प्रमाणै—रितरैरपि ।
विचारयन्ति ये तत्त्वं ते मया नास्तिका मताः ॥ (पुराण सं)
"शास्त्रयोनित्वात् ।" "अतएव च नित्यत्वम् ।" (ब्रह्मसूत्र)

इत्यादि शतशः वचन इस बात को पुष्ट करते हैं कि 'अध्यात्म' विषय में शब्द प्रमाण के अतिरिक्त अन्य प्रमाणों का महत्त्व नहीं है। इसी कारण हमने वेद, शास्त्र, पुराण, आदि के वचनों के बलाबल से विषयों का निर्णय किया है। जो वचन परस्पर बाधित हैं अथवा गौरवशून्य हैं, उन्हें उपस्थित नहीं किया गया, तथापि कुछ विषय ऐसे हैं जिन्हें बाँचते समय खण्डन सा प्रतीत होने लगता है। कारण, किसी विषय को उपस्थित करने लगो तो उसके विषय में गौरव–लाघव का विचार तो करना ही पड़ेगा। बस, यही कारण है कि – कुछ सज्जनों को इस ग्रन्थ में भी प्रचलित प्रथा का आभास प्रतीत होने लगे। उदाहरणार्थ हम श्रीकृष्ण तत्त्व को ले सकते हैं।

श्रीकृष्ण की अनन्य परा भक्ति को सर्वोत्तम माना है और परात्पर कृष्ण की उपासना को अबाधित प्रतिपादन किया है। 'परा' भक्ति की विशेषता तो मोक्षसिद्धि प्रकरण में सुतरां स्पष्ट हो चुकी है, अतः पिष्टपेषण व्यर्थ-सा है। हां, श्रीकृष्ण तत्त्व ही सर्वश्रेष्ठ क्यों ? इस विषय में कुछ शंका हो सकती है। यों तो श्रीकृष्ण तत्त्व को भी पुनः पुनः स्पष्ट किया जा चुका है, तथापि उस विषय में कुछ शेष है। एक तो श्रीकृष्ण स्वरूप में सब उपास्य तत्त्वों का समावेश किंवा अन्तर्भाव माना गया है। दूसरे—श्रीकृष्ण स्वरूप के तत्त्व को समझे बिना उसे भजने वाले उसको यथार्थ नहीं जान पाते। तीसरे—श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य देवों की उपासना को तुच्छ भी प्रतिपादन किया है। चौथे—कलियुग में श्रीकृष्ण तत्त्व को ही मुख्य माना है। इस प्रकार एक दो नहीं, किन्तु अनेकों दृष्टिकोण को लेकर भगवान गीता (९–२४) में लिखते हैं।

"मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय !"
अहं सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्चयवन्ति ते ॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

—'हे अर्जुन ! मैं ही सब कारणों का कारण हूं। मेरे ही द्वारा सबका प्रभव और प्रवृत्ति होती है। मैं ही सब यज्ञोंका, और सब भावनाओं का भोक्ता हूं। मैं ही सबका स्वामी हूं। इस प्रकार मेरे सर्वोत्तम भोक्ता स्वरूपको तत्त्वतः नहीं जाननेके कारण जो अन्य देवोंको महत्त्व देने लगते हैं, वे पुनः पुनः च्युत होकर जन्म मरणके बन्धन में पड़ते हैं। कारण—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय ! यजन्त्यविधिपूर्वकम् (गी० ९–२३)
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् (गी० ७–२१,२३)

जो कोई श्रद्धापूर्वक अन्य देवोंको भजते हैं, वे भी एक प्रकारसे भजते तो मुझे ही हैं। क्योंकि मेरेसे अतिरिक्त तो कुछ है नहीं, किन्तु उनका वह 'भजन' अविधि–पूर्वक होनेसे तुच्छ हो जाता है। कारण, जो कोई भक्त श्रद्धासे जिस किसी देवकी भक्ति करना चाहता है, मैं उसकी श्रद्धाको उसीमें अचल कर देता हूं, जिससे वह उसको प्राप्त कर सके। परन्तु उसका फल उसे नश्वर मिलता है, अखण्ड मोक्ष नहीं। क्योंकि मूलको छोड़कर शाखा डाल, पत्रको सीचने की इच्छावाला अल्पबुद्धि होता है। ये सब अल्पबुद्धि हैं, अतः इनको फल भी अन्तवत्–अनित्य, जन्म मरणसे मुक्त न करनेवाला मिलता है।

यथातरोर्मूल निषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणि तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥

भागवत (स्कन्ध ७) में शुकदेव जी ने उपासना तत्त्वकी मुख्यता प्राप्त करने के लिये सबके मूल-स्वरूप अविनाशी तत्त्वकी उपासनाको ही उपादेय वर्णन किया है। जिस प्रकार वृक्ष के मूलमें पानी डालनेसे शाखा, डाल, पात, सब तृप्त हो जाते हैं। प्राणों को भोजन मिलने से सब इन्द्रियां तृप्त हो जाती हैं। उसी प्रकार पूर्णब्रह्म श्री कृष्ण परमात्माकी उपासनासे सब देव तृप्त हो जाते हैं। जो इस तत्त्वको न जानकर शाखा, डाल, पात समान नाना देवोंकी उपासनामें भूले पड़े हैं, उन्हें नित्य मोक्ष किस प्रकार मिले ? इसलिये भगवानने उनका वारम्वार च्युत होना वर्णन किया है।

आकाशात्पतितं तोयं यथागच्छति सागरम् ।
सर्वदेव–नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

—"कुछ विद्वानों का मत है आकाश से पृथ्वी पर गिरा हुआ जल जिस प्रकार सागर को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार सब देवों के लिये किया गया नमस्कार भी श्रीकृष्ण परमात्मा को ही प्राप्त होता है। अतएव किसी को भजो, वह सब श्रीकृष्ण का ही भजन माना जाता है।"

यद्यपि इसका खण्डन ऊपर के गीता वाक्य में आ चुका है कि—मैं ही सबका भोक्ता हूं, मैं ही सबका स्वामी हूं, जो इस प्रकार इस तत्त्व को नहीं समझते और इधर – उधर नाना देवों की उपासना में पड़े रहते हैं, वे बारम्बार जन्म मरण से छुटकारा नहीं पाते। तथापि हम "आकाशात्पतितं" पर ही प्रकाश डालते हैं—

आकाश से पतित हुआ जल सागर को प्राप्त होता है या नहीं, यह भी जरा ध्यान में रखने योग्य है। आकाश से जल बरसा, और किसी नीचे स्थान में रुक गया, उसे किसी पशु ने पी लिया। वह मूत्र होकर पुनः पृथ्वी पर पड़ा और उसे सूर्य किरणों ने पुनः आकर्षित कर लिया। उसके अनन्तर पानी होकर पुनः पृथ्वी पर आया। अब की बार उस जल को भरकर किसी माली ने एक वृक्ष के मूल में डाल दिया, वृक्ष ने अपनी जड़ों से उसे खींचकर सारे वृक्ष में रस बनाकर व्याप्त कर दिया। इस प्रकार से आकाश से पृथ्वी पर गिरा हुआ जल हज़ारों वर्ष तक समुद्र में नहीं पहुंच पाता। वही जल यदि समुद्र में सीधा बरस जावे तो तत्काल समुद्र को प्राप्त हो जाता है। बस, इसी प्रकार से नाना देवों को किया गया नमस्कार भी सहस्रों जन्म तक "पुनरपि जननं पुनरपि मरणं" के चक्कर में डाल कर जीवात्मा को मोक्ष नहीं मिलने देता। यही कारण है कि भगवान उसे अविधिपूर्वक मानते हैं। जो अविधिपूर्वक होगा उसका फल तो "अन्तवत्तु फलं तेषां" नश्वर होकर ही उन्हें प्राप्त होगा। अतएव भगवान पुनः कहते हैं– "मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते" हे अर्जुन ! इस माया से वे ही तर पाते हैं, जो मेरे परस्वरूप को भजते हैं। अतएव कहते हैं—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत !
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

हे भारत! सब प्रकार से उसी परात्पर ब्रह्मस्वरूप की शरण को प्राप्त करो। उसी के अनुग्रह से परम शान्ति – ब्रह्मानन्द को और अखण्ड धाम को प्राप्त होंगे।' इस प्रकार से पुनः पुनः ब्रह्मतत्त्व प्राप्त करने का ही उपदेश दिया है। परन्तु फिर भी कुछ विद्वान सगुण रूप होने की हठ किये बिना नहीं मानते। अतएव भगवान पुनः गीता (७–२४) में कहते हैं—

Shri Prannath Ji Pustkalay

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥

'हे अर्जुन ! नाशरहित और सबसे उत्तम एवं कभी प्रकट न होने वाले ऐसे मेरे परात्पर स्वरूपको न जानते हुए अविद्वान पुरुष मुझे अवतार रूपमें प्रकट हुआ मानते हैं।' इसमें भगवान ने स्पष्ट कह दिया है कि मेरे परात्पर स्वरूपको अबुद्धिमान पुरुष ही प्रकट हुआ कहते हैं, वास्तवमें वह कभी व्यक्त भाव को प्राप्त नहीं होता। इससे सुतरां सिद्ध हो जाता है, कि 'श्री कृष्ण का तृतीय स्वरूप जो पर स्वरूप माना जाता है, वह कभी अवतार रूपमें नहीं प्रकट होता किन्तु अपर भाव ही अवतार धारण करता है। श्री कृष्णके स्वरूपमें अपर भाव और पर भाव [1] दोनों विद्यमान हैं। इसलिये जहां पर अपर भावका वर्णन होगा वहांपर सगुण होना माना जाता है। यथा—

त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ।
अवतीर्णोसि भगवन् स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥

(भा० ११–११–२८)

हे भगवन् ! प्रकृतिसे पर तुम्हरा परम ब्रह्मस्वरूप व्योमवत् निर्लेप है। किन्तु अपनी इच्छा मात्रसे पृथक् स्वरूप धारण कर अवतरित हुए हो। इस प्रकार दोनों प्रकार के वचन मिलते हैं। यदि श्रीकृष्णके स्वरूपमें त्रिविध भेद न माना जावे तो परस्पर वचनों की सङ्गति भी नहीं लगतीं और 'गोलोक' तथा 'वैकुण्ठ' एवं 'दिव्य ब्रह्मपुर' से सर्वातीत ब्रह्म तथा अक्षर ब्रह्मके स्वरूप तथा आवेशवल का आना वर्णन

[1] श्री कृष्णके स्वरूप में क्षरभाव भी है। विभूतियोग, परा अपरा प्रकृति, विराट स्वरूप अवतार धारण करना, दुष्टों का विनाश, ये सब क्षरभाव में माने गये हैं। सम्पूर्ण विश्वों का उदय-लय होना, अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्,इत्यादि अक्षर भावके अन्तर्गत हैं। तीसरा जो ब्रह्मभाव है वह निर्लेप और 'अक्षरादपि चोत्तमः' परमात्मेत्युदाहृतः' इत्यादि में परात्पर कहा गया है। अतएव 'न विद्यते उत्तमो यस्मात् स अनुत्तमः' तम् अनुत्तमम् इत्यादिमें अन्य उत्तम होनेका निषेध है और 'पर भाव' को महत्त्व दिया है। रासरात्रि पर्यन्त ब्रह्मभाव प्रधान है, अन्य भाव गौण हैं। रास के अनन्तर गोलोक के स्वरूप का प्राधान्य है, अन्यभाव गुप्त हैं। द्वारकामें विष्णुभाव प्रधान है। परन्तु द्वारकावासी कृष्ण ब्रह्मस्वरूप और गोलोकनाथ कृष्णके अनन्तर हुए हैं, अतः उक्त दोनों के वचनों का प्रतिनिधित्व भी कर सकते हैं। यही कारण है 'गीता' में कृष्ण जी तीनों स्वरूपों की ओर से प्रतिपादन करते रहे हैं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

करने वाले वचन मिथ्या हो जावेंगे एवं उनकी प्रमाणिकता न रह जायेगी। इस कारण सब ग्रन्थों के समन्वय को लेकर अर्थ सङ्गति लगाना उचित है। अन्यथा—

"वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति ।"
साक्षात्कृष्णो व्रजे नित्यं स्वांशेनैव विहारिणः ॥
तस्यांशो हि मथुरायां वासुदेवो जगद्गुरुः ।
द्वारकायां तदंशोऽस्ति विष्णुवीर्यो यतः प्रभुः ॥"
"पूर्णब्रह्म स्वरूपोऽयं शिशुस्ते मायया महीम् ।
आगत्य भारहरणं कर्ता धात्रा च सेवितः ॥
गोलोकनाथो भगवान्—श्रीकृष्णो राधिकापति ।
नारायणो यो वैकुण्ठे कमला कान्त एव च ॥
श्वेतद्वीपनिवासी य पिता विष्णुश्च सोप्यजः ।"

उक्त प्रमाणों में 'पूर्णब्रह्म' 'गोलोकनाथ' और 'विष्णु भगवान' तीनों का पृथक्-पृथक् आना लिखा है। यदि कृष्ण में त्रिविध स्वरूप न मानें तो ब्रह्मवैवर्त, व्यास संहिता आदि के अनेक उपरोक्त वचनों की सङ्गति नहीं मिल सकती। एवं भागवत में[1] भी परस्पर विरोध हो जायेगा। इसलिये ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण, और गोलोकनाथ श्रीकृष्ण, एवं विष्णु स्वरूप श्रीकृष्ण, इस प्रकार श्रीकृष्ण स्वरूप में तीन भेद मुख्य हैं, फिर अवान्तर अन्य भेद भी हो सकते हैं। जो इस त्रिविध रहस्य को तत्त्वतः जान लेते हैं, उनकी दृष्टि में शास्त्र वचनों में विरोध नहीं रह जाता और परतत्त्व की उपासना भी अबाधित बन जाती है। इसीलिये त्रिविध स्वरूपों को समझकर उपासना करनी चाहिये यही इसका गुप्त रहस्य है।

---

1 "यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्" (भा०-१०-१४)
"एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" (भा० १-३)
"त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृते परः ।" (भा० ११)
"अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे !" (भा० १०-२)
"तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः" (भा० १०-१)
"भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः ।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥" (भा० १०-२)

इन वचनों में अंशरूपसे और पूर्णरूपसे होना, इस भांति दोनों प्रकारका वर्णन मिलता है, जो मनन करने योग्य है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

रामावतार—तारतम्य विमर्श

वेद शास्त्र पुराणों में श्रीकृष्णजी को पूर्णब्रह्म, परमात्मा, परात्पर,परिपूर्णतम, पुराणपुरुष, आदि विविध परब्रह्म के नामों से उल्लेख किया है। उधर रामचन्द्रजी को विष्णुरूप, कलावतार आदि नामों से लिखा है। जिसे देखकर रामोपासक भक्तों के हृदय में स्वाभाविक जिज्ञासा होने लगती है कि जब श्रीकृष्णजी परात्पर हैं और स्वयं ब्रह्मरूप हैं तो उन्हें छोड़कर राम के नाम से लाभ क्या ? अथवा हम लोग कृष्ण के उपासक क्यों न बन जावें ?

इस की उत्क्रान्ति देखकर रामभक्तों के गुरुजनों को लज्जित होना पड़ता है। अतएव उन्होंने अपने शिष्यों को उल्टा सीधा पाठ पढ़ाने के लिये अमुक कल्पित ग्रन्थों की रचना कर ली है। उन ग्रन्थों में भगवान राम को साक्षात् पूर्णब्रह्म परात्पर सबसे श्रेष्ठ अपनी इच्छानुसार जैसा चाहिये वैसा लिखा तथापि सन्तोष न हुआ। क्योंकि श्रीकृष्णजी का पूर्णब्रह्म होना खटकता ही रहा, अतएव श्रीकृष्णजी को राम के अंश से होना लिख दिया। जिससे शिष्यों को कभी असन्तोष होने का अवसर ही न मिल पाये।

सभी मनुष्य तो वेद, शास्त्र, पुराणों के ज्ञाता होते नहीं। उन्होंने तो किसी ऋषि के नाम का ग्रन्थ सुना झट विश्वास कर लिया कि—जब बड़े-बड़े महर्षियों ने भगवान राम को पूर्णब्रह्म लिखा है, तब अन्य की उपासना की चिन्ता में क्यों पड़ें ?

"अँधरन जग भरमायो साधो, अँधरन जग भरमायो। (टेक)
आपुन अन्ध पन्थ नहीं सूझे, औरनको भटकायो॥
औरन को बहु सीख सिखावें, अपनी दृष्टि न आयो।
बिना विवेक भेष धरे भोंदू, रुचि रुचि स्वांग बनाओ॥"

इस पद्य में जैसा लिखा है श्रीकृष्ण के निन्दक वैष्णवों के ऊपर अक्षरशः सत्य घट जाता है। आज कलियुग ने बुद्धि को दूषित कर दिया। सत्यासत्य का विचार करना तो दूर रहा, स्वार्थवश असत्य लिखते भी लज्जा अथवा पाप का भय नहीं होता कि 'वेद शास्त्र पुराणों के विरुद्ध हमारा असत्य कब तक टिक सकेगा और समाज हमारा क्या मूल्य अङ्कित करेगा ? जिस प्रकार गड़रिया अपनी भेड़ों को रोके रखने के लिये काँटों की वाड़ खड़ी कर लेते हैं, इन्होंने भी बाड़ खड़ी कर ली।

गुरु ज्ञान बिन गुरु बने, चेला कीन्हे ढेर।
गुरु मरे पर गड़रिया, शिष्य होंहि सब भेड़॥
"हरहिं शिष्यधन शोक न हर हीं, सो गुरु घोर नरक मंह पर हीं।"

Shri Prannath Ji Pustkalay

इत्यादि सन्त वचनों की अवहेलना करते हुए अबोध शिष्योंको प्रलोभनमें डाल अपना स्वार्थ सिद्ध करनेको किलेबन्दी कर ली ।

प्रेमी वाचकवृन्द ! आत्मा को साक्षी रखकर नीचे लिखे प्रमाणों पर विचार करेंगे तो मुझे विश्वास है कि–आपका हृदय सत्यकी ओर अवश्यमेव झुक जायेगा। भगवान रामके विषय में यों तो इतिहास, पुराण आदि सभी आर्ष ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है, परन्तु सबसे विशेष महत्त्व वाल्मीकि[1] रामायण का माना जाता है। कारण, वह उन्हींके अवतारको लक्ष्य करके लिखा गया है। देखो–वाल्मीकि रामा० (बालकां० सर्ग० १५–१६, १७) में—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः शंखचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः।
वैनतेयं समारुहच्य भास्करस्तोयदं यथा तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ।।

रावणके अत्याचारों से पीड़ित देव मण्डलीको जिस समय ब्रह्माजी सान्त्वना दे रहे थे, उसी समय शंख, चक्र, गदाधारी भगवान विष्णु गरुड़ पर विराजमान हो वहां पधारे। देवोंने प्रार्थना की।

"विष्णो ! पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्"

'हे विष्णो ! आप महाराज दशरथ के पुत्र बनिये। अपने को चार रूप में प्रकट कीजिये। भगवान विष्णु ने देवकृत प्रार्थना को स्वीकार कर अयोध्या में दशरथके यहां 'राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, रूपसे नरतन धारण किये हैं। एवं जब इस मृत्यु-लोकसे वैकुण्ठको जाने लगे हैं, तब भी—

---

1 इस सत्यको अयोध्यावासी पं. श्री सरजूदासजी 'वैष्णवधर्मरोचक' ने भी अपने ग्रन्थ 'उपासनात्रयसिद्धान्त' में माना है। यथा—प्रश्न–हे स्वामीजी ! वाल्मीकिजीने कौन अवतारकी कथा वर्णन की है ? उत्तर–हे शिष्य ! वाल्मीकिजी साकेत–निवासी रामजीके चरित वर्णन किये हैं। जो कहो कि कैसे जानें तो इसमें गुप्तभेद यह है कि वाल्मीकिजीने नारदजीसे प्रश्न किया कि इस काल इस लोकमें गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ.... ..... इत्यादि १६ गुणयुक्त कौन नर है ? सो कहिये। इसके उत्तरमें 'नारदजीने ६४ गुण करके युक्त इक्ष्वाकुवंशमें प्रकट श्रीरामजीको ही बताया।' (पृष्ठ ८३ उपासनात्रयसिद्धान्त)

प्रेमी पाठक ! इससे यह तो इन्हें भी मान्य है कि वाल्मीकिजीने दशरथ पुत्रके नामसे प्रसिद्ध रामका ही चरित अंकित किया है, अन्य कल्पके रामका नहीं। अतः इन्हें वाल्मीकि रामायणको विशेष ध्यानमें रखना चाहिये। उसके विरुद्ध जाना उचित नहीं।

Shri Prannath Ji Pustkalay

विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः (वाल्मी.)

— अन्त समयमें भाइयों के सहित रामचन्द्रजी सशरीर 'विष्णु' में पुनः प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार जगतमें विष्णु स्वरूप का आना और पुनः विष्णु स्वरूप में लय होना स्पष्ट लिखा है। योग वासिष्ठ में भी नीचे अनुसार लिखा है :–

वैकुण्ठादागतो विष्णुः त्रैलोक्याधिपतिः प्रभुः।
ब्रह्मणा पूजितस्तत्र सत्यलोकनिवासिभिः ॥

जिस समय सब देव ब्रह्माजीसे प्रार्थना कर रहे थे कि—हे ब्रह्माजी ! आप से वरदान पाकर रावण अजेय हो गया है और सबको सता रहा है। इसी अवसर पर भगवान विष्णु गरुड़ पर विराजमान हो वैकुण्ठसे आये। सत्यलोक निवासियों के सहित ब्रह्माजी ने विष्णुको पूजा सत्कारसे प्रसन्न किया और प्रार्थना की। 'हे प्रभो ! हम सब बहुत दुःखी हैं, आप रक्षार्थ अवतार धारण करें। इस प्रार्थनाको स्वीकार कर विष्णुने रामरूपसे अवतार धारण किया।

"वृन्दया शापितो विष्णुश्छलन यत्त्वया कृतम्।
अतस्त्वं स्त्रीवियोगं हि वचनान्मम यास्यति ॥
"भृगुर्भार्यां हृतां दृष्ट्वा प्रोवाच क्रोधमूर्छितः।
विष्णो ! तवापि भार्यया वियोगो हि भविष्यति ॥"

(क) सती वृन्दाको जब भगवान विष्णुने छला था, उसने भी श्राप दिया है कि तुमने मेरे साथ छल किया है, तुम्मारे साथ भी छल होगा। मेरे वचन से तुम भी स्त्री वियोग को प्राप्त होकर दुःखी होगे।

(ख) नारदजी को माया दिखानेके लिये मायानगर रच कर जब विष्णु स्वयंवरसे लक्ष्मी को लेकर चले और नारदको विदित हुआ कि भगवान विष्णुने हमें बन्दरका रूप प्रदान कर धोखा दिया है और आप हमारे अभीष्टको भंगकर स्वयं ही उसे लिये जा रहे हैं तो नारदजीने उनका पीछा किया और श्राप दिया है। 'हे विष्णो ! जिस प्रकार मेरे साथ छल कपट करके मेरी अभीष्ट प्रियाको लिये जा रहे हो, तुम्हारी भार्याको भी इसी प्रकार छल कर रावण ले जावेगा और तुम भी उसके वियोगमें विकल हो जंगलों में मारे-मारे फिरोगे। इस उपाख्यानका उल्लेख गो० तुलसी दासजीने भी बालकाण्डमें बड़े सुन्दर ढँगसे किया है। यथा—

"परम स्वतंत्र न सिर पर कोई, भावइ मनहि करहु तुम सोई ॥
भले भवन अब बायन दीन्हा, पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥"

Shri Prannath Ji Pustkalay

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा, सोई तनु धरहु श्राप मम एहा ॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी, करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥"

विष्णो ! जिस प्रकार तुमने मुझे दुखी किया है, तुम भी दुखी हो कर रहोगे और जो बन्दर का—सा स्वरूप मुझे प्रदान किया है। यही बन्दर स्वरूप तुम्हारी रक्षा करेगा। इस कथा को लगभग सबने लिखा है। इत्यादि उद्धरणों परसे सुतरां स्पष्ट हो जाता है कि–रामावतार भगवान विष्णु ने धारण किया है, पूर्णब्रह्म ने नहीं। यदि पूर्णब्रह्मको अवतार धारण करना होता तो ये सब कथा क्यों लिखी जाती।

पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः।
उवाच देवताः सर्वाः स्वयम्भूर्गर्भवानिदम् ॥
(वाल्मी० वा० कां १६—१)

रामो नाम श्रुतो लोके वनं चाप्युपयास्यति।
ब्राह्मणार्थे महाबाहुर्विष्णु–र्मानुषविग्रहः ॥
(वाल्मी० उ० कां ३०—४२)

इस प्रकार से दो चार नहीं, किन्तु शतशः स्थलों पर जिधर देखिये उधर ही विष्णु भगवान का दशरथ पुत्र होना, मनुष्यतन धारण करना, लिखा गया है। तुलसीदासजी ने भी जय–विजय के श्राप की कथा लिखी है। तीन जन्म तक आसुरी योनि में जन्म लेने का उल्लेख करते हुए उनके उद्धार के लिये रामावतार का होना लिखा है। जो इसी त्रेता युग के राम के लिये घटित होता है। क्योंकि वाल्मीकिजी ने इन्हीं राम के पुत्रों को रामायण की कथा सुनाई है। इन्हीं राम के चरित्र को लिखा है। इस बात को वैष्णव जन भी स्वीकार करते हैं। वाल्मीकि (बाल का० स० १५–२८, ३०) में स्पष्ट लिखा है। यथा—

भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्।
सपुत्र पौत्रं सामात्यं समन्त्रिजाति—बान्धवम् ॥

हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्।
दशवर्ष—सहस्राणि दशवर्ष शतानि च ॥

वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन्पृथिवीमिमाम्।
एवं दत्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ॥

Shri Prannath Ji Pustkalay

—इस प्रकार स्वयं भगवान विष्णु रावण के पुत्र, पौत्र, मन्त्री, जाति, बन्धु आदि को नाशकर देवों की रक्षा का वचन दे रहे हैं। पृथ्वी पर ग्यारह सहस्र वर्ष पर्यन्त अपने रहने का वचन देकर स्वयं विष्णुरूप में विदा भी होते हैं। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण का अध्ययन करने से स्पष्ट विदित हो जाता है।

ततो विष्णोश्चतुर्भाग--मागतं सुरसत्तमाः।
हृष्टाः प्रमुदितास्सर्वे पूजयन्ति स्म राघवम्॥ (वा. उ. कां. स. १०९)

विष्णु के चतुर्थ भाग से पृथ्वी पर आये हुए रामचन्द्रजी का प्रसन्न मन से सुरों ने पूजन किया। कुछ सज्जन कहते हैं कि राम को विष्णु का अवतार मान लें तो सीताजी के स्वयम्वर के समय हरि हर विधि सब विमानों पर चढ़कर स्वयम्वर देखने आये हैं, इस कथा की सङ्गति नहीं लगती। परन्तु इन्हें विचार करना चाहिये, जब विष्णु का चतुर्थ भाग ही राम में आया है तब शेष भाग देखने आ सकता है, इसमें आपत्ति क्या? इस प्रकार तुलसीदासजी के और वाल्मीकिजी के वचनों में परस्पर विरोध भी नहीं होता और रामचन्द्रजी का विष्णु अवतार होना सप्रमाण सिद्ध हो जाता है। पुराणोंमें तो स्थान-स्थान पर रामको विष्णुका अवतार माना ही है। यथा—

ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवः सुतौ।
रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ॥
तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये।

कुले रघूणां वै विष्णुः पुत्रो दशरथस्य तु।
भविष्यति विनाशाय दशग्रीवस्य रक्षसः॥ (पद्मपु. सृ. खं. ४०)

'सनकादिकों के श्राप से जय-विजय को तीन जन्म तक आसुरी योनि प्राप्त होना लिखा है। जिसमें प्रथम जन्म हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु और दूसरे जन्म में केशिनी नाम की माता से विश्रव के यहां रावण और कुम्भकर्ण नामक राक्षस हुए हैं, जिन्हें भगवान विष्णु ने राघवेन्द्र राम के रूप से श्राप पूरा करने के लिये मारा है। इस प्रकार एक बार नहीं, किन्तु दो तीन बार रामावतार का वर्णन आया है। (भाग २-७-२३ में तो राम को विष्णु की कला का अवतार ही लिखा।

'अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे।
तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्त्तिमार्च्छत्॥'

हमें सुखी बनाने के लिये कलाओं के ईश अथवा 'कला-काया, कला नाम माया का भी है। मायापति विष्णु ने इक्ष्वाकु वंश में दशरथ के यहां अवतार लेकर

Shri Prannath Ji Pustkalay

पिता की आज्ञा से प्रिया और अनुज के सहित बनमें निवास किया एवं रावण के विरोध करने पर उसको मारा और सबको सुखी बनाया।'

इस प्रकार से पुराण भी राम को विष्णु का अंश अवतार मानते हैं। वाल्मीकि जी ने इसी त्रेता युग में होने वाले दशरथ के पुत्र राम को लक्ष्य में रख कर वर्णन किया है, जो 'वाल्मीकि–रामायण' के नामसे प्रसिद्ध है। यथाः—

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥

(बा० रा० बा० कां ४—१)

भगवान रामचन्द्र जी जब राजसिंहासन पर विराजमान हो चुके थे, महर्षि बाल्मीकिजी ने सम्पूर्ण रामचरित को लिखा, जो विचित्र पद और अर्थ से युक्त है।" इस परसे सुनिश्चित हो जाता है कि बाल्मीकीने जो चरित्र लिखा है, वह इसी त्रेता युग में होने वाले दशरथ के पुत्र 'श्रीरामका' लिखा है।

कुछ रामोपासक रामरहस्योपनिषद और रामतापिन्युपनिषद का आश्रय लेकर रामचन्द्रजी को पूर्णब्रह्म का अवतार होना सिद्ध करते हैं। परन्तु एक तो उनका कथन शास्त्र पुराण विरुद्ध है। दूसरे, ब्रह्म को अवतार धारण करने का कोई हेतु नहीं पाया जाता। कारण, रामायण में राम के होने की जितनी कथाएँ लिखी हैं, वे सब विष्णु के साथ सम्बन्ध रखती हैं। यदि 'राम' पूर्णब्रह्म के अवतार होते तो बाल्मीकिजी और पुराणों के प्रणेता व्यास आदि महर्षि उन्हें विष्णु स्वरूप और कलावतार किस लिये लिखते ? उपनिषद में जो ब्रह्म स्वरूप लिखा है, उसके दो कारण हैं। एक तो 'ब्रह्म दृष्टिरुत्कर्षात्" इस व्यास सूत्र के अनुसार उनके उत्कर्षक को सूचित के लिये है। उपनिषदों का यथार्थ अर्थ व्यास सूत्रों में ही घटाया गया है। इसलिये उन्हें वेदान्तदर्शन के सूत्र कहा जाता है।

दूसरी बात जिसका विवाह होता है, उसके गीत गाना अनुचित नहीं होता। रामरहस्य अथवा रामतापिनी उपनिषद में राम के स्वरूप को उत्कृष्ट बताना अनुचित नहीं। कारण, उन उपनिषदों को राम की महिमा बताने के लिये ही लिखा गया है। हम गत प्रकरणों में इस विषय को बारम्बार स्पष्ट करते आये हैं—कि 'मनो ब्रह्म। अन्नं ब्रह्म। प्राणो ब्रह्म। आदित्यो ब्रह्म। सर्वं खल्विदं ब्रह्म।' इत्यादि श्रुतियो में जिस प्रकार मन, अन्न, प्राण, आदित्य और सबकी उत्कर्ष मात्र से ब्रह्म मान लिया है, एवं जिस प्रकार से शास्त्रों में अनेक अध्यस्त देवों को और विभूति पुरुषों को भी ब्रह्म लिख दिया गया है, पर वास्तव में ये सब ब्रह्म नहीं हैं; उसी प्रकार भगवान राम को भी उपनिषद में ब्रह्म लिख दिया गया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

वास्तव में विष्णु के अवतार हैं। यही बात रामोत्तरतापिन्युपनिषद से भी सिद्ध हो जाती है। यथा :—

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः। उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नतैजसात्मकः। प्रज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः। अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः। ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपाख्यानं भूतं भव्यं सर्वमोंकार एव ॥'

देखिये, उपनिषद ने बहुत कुछ उत्कर्ष बताने पर भी रामको ओङ्कार स्वरूप ही सिद्ध किया। अकार, उकार, मकार से तीनों भाई और अर्धमात्र से 'राम' इस प्रकार यह सब ओंकार के अन्तर्गत आ गया। अभी विन्दु स्वरूप ओङ्कार तो अवशेष ही रह गया, ये सब मात्रा रूप में आ गये। मात्राओं सहित जब बिन्दु का लय हो जाता है, तब ओङ्कार की मात्रा तो नित्य हो ही नहीं सकती। अतएव श्रुतियों में लिखा है—

एकमात्रो द्विमात्रश्च त्रिमात्रश्चैव भेदतः।
अर्धमात्रा परा ज्ञेया तत ऊर्ध्वं परात्परम् ॥
पञ्चधा पञ्चदैवत्यं सकलं परिपठ्यते (ब्रह्मविद्योप०)
पञ्चधा वर्तमानं तं ब्रह्मकार्यमिति स्मृतम्। (पञ्च ब्रह्मोप०)

इस प्रकार ओंकार की पांचों मात्रा कला मानी गई हैं। इन्हीं कलाओं से होने के कारण भगवान रामको कलावतार माना गया है। प्रणव की ये पांचों मात्राओं के स्वरूप को ब्रह्म का कार्य रूप कहा गया है। जो कार्यरूप होगा, वह तो अनित्य ही होगा। कदाच कहो कि फिर रामको 'ब्रह्मानन्दैकविग्रह' क्यों लिखा तो उसका तात्पर्य यह है कि—

अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः।
ओङ्कारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः ॥ (मांडूक्य १—२९)

हम प्रथम लिख चुके हैं कि प्रणव ब्रह्म दो स्वरूप हैं। एक समात्रिक और दूसरा मात्रा रहित। समात्रिक स्वरूपको अपर प्रणव और अमात्रिक को पर प्रणव कहा जाता है। पर प्रणव में अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्त अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा और बिन्दु, लयको प्राप्त होते हैं, अतएव उसे अनन्त मात्रिक भी कहते हैं और मात्राओंका लय होने के कारण उसमें मात्रा तो रहती नहीं, अतएव उसे अमात्रिक भी कहा जाता है। प्रकार से जो ओंङ्कार की अनन्त मात्राओं को

Shri Prannath Ji Pustkalay

अपने में लय करने की शक्ति रखता है, ऐसे अमात्रिक ओंकार को जो जानता है, वही तत्त्वज्ञ है। इस प्रकार से भी समात्रिक ओंकार की कलाओं से समुत्पन्न राम को हम ओंकार से परात्पर नहीं कह सकते। एवं विष्णुरूप मानें तो भी वैकुण्ठ से पर नहीं हो[1] सकते। यह तो ग्रन्थों की शैली है कोई विश्व को विष्णुमय वर्णन करते हैं और 'जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके' कह कर सर्वत्र विष्णु को ही व्यापक मानते हैं। कुछ विद्वान ओंकार की मात्राओं के विभाग से विरचित इस विश्व को 'ओंकार एवेदं' सर्वम् ओकारमय प्रतिपादन करते है। आशय सबका एक ही है।

इस प्रकार से देखा जावे तो वाल्मीकिजीका रामको "विष्णुमय" कहना और उपनिषदों का ओंकार रूप प्रतिपादन करना, समानार्थक जैसा है। यही कारण है कि भगवान राम की स्थापना 'किं पुरुष' वर्ष में मानी गई है। यदि पूर्णब्रह्म के पूर्णावतार होते तो उनकी स्थापना भारत वर्ष में होती। क्योंकि जहां पूर्णब्रह्म स्वरूप विराजमान हो वहीं से मुक्तिका द्वार खुलता है।

किं पुरुषे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामम्।
तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरुपासते॥

---

[1] कुछ विद्वानों के मत से विष्णु और परब्रह्म दोनों में कोई भेद नहीं अतएव राम को विष्णु का अवतार बताना उचित मानते हैं। माना कि कुछ स्थलों पर ब्रह्म की व्यापक सत्ता और सर्वान्तर्यामी धर्म को लेकर विष्णु शब्द से उल्लेख किया गया है, परन्तु वास्तव में विष्णु और परब्रह्म में स्वरूप भेद और शक्ति भेद दोनों प्रकार का अन्तर है। जिस प्रकार 'मनो ब्रह्म और अन्नं ब्रह्म' के उल्लेख से अन्न और मन की ब्रह्मत्वेन उपासना नहीं की जा सकती। उसी प्रकार से विष्णु शब्द का प्रयोग क्वचित ब्रह्म के लिये आया भी हो तथापि विष्णुको पूर्ण ब्रह्मत्वेन नहीं ग्रहण किया गया। यही कारण है कि पुराणों में विष्णु ब्रह्म माननेका निषेध भी मिलता हैं।

"महापापवतां पुंसां पूर्वजन्मसु सुव्रताः।
विष्णुः सर्वाधिको भाति न साक्षात्परमेश्वरः॥
विष्णुः सर्वाधिको भाति नारकी स न संशयः।
विष्णुः सर्वाधिको नान्य इति चिन्तयतां नृणाम्॥
नास्ति ससारविच्छित्तिः कल्पकोटि–शतैरपि।
(गरुड़ पु० यज्ञवैभवखण्ड)

इत्यादि अनेक शास्त्र वचनोंसे विदित होता है कि विष्णुको परब्रह्म मानना अज्ञान ही नहीं, किन्तु अपराध भी माना गया है। यही कारण है कि तत्त्वज्ञोंने विष्णु और परब्रह्ममें अन्तर माना है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

देखिये, 'किं पुरुष' वर्ष में राम की स्थापना होते हुए भी वहाँ से मोक्ष नहीं माना गया। कारण, नित्य मुक्ति तो पूर्ण ब्रह्म की उपासना से ही मानी गई है, अवतारों की उपासना से नहीं। यही कारण है, कि मुक्ति का क्षेत्र भारतवर्ष को माना गया है, अन्य खण्डों को नहीं। यथा—

नान्यत्र खलु मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते।
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते॥ (विष्णु पु०)
कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् (भा० ५-१९)

अन्य द्वीपों में और अन्य वर्षों में कर्मफल का मिलना भी नहीं माना गया। जब वहां से सालोक्यादि वैकुण्ठ की ही मुक्ति नहीं मिलती, तब अखण्ड धाम की कैवल्य मुक्ति किस प्रकार मिल सकेगी। यही कारण है, अठासी हजार ऋषियों ने भारत को अपनाया। कदाच कहो कि जब 'किंपुरुष, वर्ष में राम की स्थापना भी की गई और वे कलावतार हैं तो उन्हें "ब्रह्मानन्दैकविग्रहः" क्यों कहा? तो इसका तात्पर्य यह है कि पूर्णब्रह्म परमात्मा के स्वरूप में अनन्त ब्रह्मानन्दों की पूर्णता है अतएव ब्रह्म को "पूर्णात्पूर्णमुदच्यते" पूर्ण से भी पूर्ण उत्कृष्टतया पूजने योग्य कहा है। उन्हीं अनन्त ब्रह्मानन्दों में से एक आनन्द मात्रा से राम का स्वरूप है। ब्रह्म के आनन्द को जानने के लिये श्रुतियों में तथा पुराणों में आनन्द की मीमांसा लिखी है। देव, किन्नर, ब्रह्मा आदि के सैकड़ों आनन्दों की बराबर अव्याकृत–प्रकृति का एक आनन्द होता है। अव्याकृत के सैकड़ों आनन्दों की बराबर सबलिक, केवल ब्रह्म का एक ही आनन्द हो जाता है। इस प्रकार चतुष्पाद विभूति में ही अनन्त गणितानन्द हो जाते हैं, तब ब्रह्म के आनन्दों की संख्या कौन कर सकता है। उन्हीं अनन्त आनन्दों में से रामावतार को एक आनन्दमात्र कहा है, जो युक्ति प्रमाण दोनों से सङ्गत है।

इस प्रकार राम को कलावतार कहना सप्रमाण सिद्ध होता है। परन्तु कुछ रामोपासकों ने शुकसंहिता, विश्वंभरोपनिषद्, अनन्तसंहिता आदि अनेक साम्प्रदायिक ग्रन्थों की रचना कर ली है। यद्यपि ये सब शास्त्र पुराणों के विरुद्धकल्पित हैं, तथापि श्रद्धालु पुरुषों को प्रलोभन देकर फँसाने के साधन का काम करते हैं। कुछ ग्रन्थ तो ऐसे भी हैं जो इन्होंने प्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम से ही नवीन रच लिये हैं। कहीं पाराशर स्मृति नाम रख दिया, कहीं याज्ञवल्क्य स्मृति। इससे इन्हें लाभ यह होता है कि साधारण मनुष्य लोकप्रसिद्ध ग्रन्थों का नाम सुनकर श्रद्धा कर लेते हैं। उक्त कल्पित ग्रन्थों में कहीं कृष्ण को राम का अंश लिख दिया, कहीं राधिकाजी को सीता का अंश बता दिया।

यदि इनके ये कल्पित ग्रन्थ प्राचीन होते तो उन्हें किसी प्राचीन विद्वान

Shri Prannath Ji Pustkalay

ने प्रमाण में अवश्य लिया होता, परन्तु जब ये सब थे ही नहीं तो प्रमाण में कौन लेता ? व्यासादि महर्षियों ने तो पुराणों में स्पष्ट लिखा है—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।। (भाग० १–३–२८)
वनजौ जलजौ खर्वस्त्रिरामौ सकृपोऽकृपः ।
दशावतार एवैते कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।। (वि० पु०)

वाराह, नृसिंह, कच्छप और मत्स्य, वामन, राम, परशुराम और बलराम, एवं बौद्ध और कल्कि–इस प्रकार ये दश तो अवतार माने गये हैं। परन्तु कृष्णको स्वयं पूर्णब्रह्म स्वरूप ही प्रतिपादन किया है।' अतएव यह सुतरां सिद्ध हो जाता है कि कृष्ण को राम का अंश बताने वाले रामोपासक संभ्रान्त हैं और उनका कथन वेद शास्त्र के विरुद्ध होने से बाधित है। जिन ग्रन्थो के नाम लेकर वे जन समाजको भ्रम में डालते हैं, वे सब प्रथम तो कल्पित होने से अप्रमाणिक माने गये हैं। कदाच प्रमाणिक भी होते तथापि उनका मत बाधित होने से अधर्मरूप एवं अग्राह्य होता। क्योंकि वह शास्त्रविरुद्ध है।

अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः ।
विरोधिषु महीपाल ! निश्चित्य गुरुलाघवम् ।।
न बाधा विद्यते यत्र तं धर्मं समुपाश्रयेत् । (महाभा०)

भीष्म पितामह कहते हैं–हे सत्यविक्रम युधिष्ठिर ! धर्म के रूप में वही ग्रहण करना चाहिये जो शास्त्रके विरुद्ध न हो। कदाच परस्पर वचनों का विरोध आता हो तो गौरव–घालव पूर्वक विचार करना चाहिये। जिस मान्यता में शास्त्र के गौरव की रक्षा होती हो, उसे ही ग्राह्य मानना उचित है।' कारण—

(अ) धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं बलम्"
(क) गौणमुख्ययोर्मुख्ये संप्रत्ययः।"
(ख) उत्सर्गतो विशेषविधिर्बलवान् भवेत्।"
(ग) अबाधिताज्ञातदापकत्वं हि प्रामाण्यम्।"
(घ) न बाधा विद्यते यत्र तं धर्मं समुपाश्रयेत्।"

इत्यादि किसी भी सिद्धान्त की दृष्टि से देखा जाए तो भी श्री कृष्ण का पूर्ण ब्रह्म स्वरूप होना अबाधित है। और राम के अवतार को कलावतार कहना युक्त प्रमाण संगत है। कल्पित ग्रन्थों में जो कुछ शास्त्र विरुद्ध विषयोंको लिखा गया है, वह भी बाधित होने से प्रमाणकोटि तक नहीं पहुंच पाता। इस प्रकार हमने प्रत्येक दृष्टिकोण को उपस्थित करते हुए जो मीमांसा[1] लिखी है, वह अक्षरशः प्रणाम–

[1] विराट दर्शन में यों तो प्रायः सभी आर्ष ग्रन्थों को प्रमाण कोटि में लिया गया है—

Shri Prannath Ji Pustkalay

सिद्ध और सत्य प्रतीत होती है। इस परसे गीताका दृष्टिकोण पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्णकी उपासनाके अतिरिक्त अन्य अवतारोंकी उपासना बाधित हो चुकी है। अब तो "अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च" श्रीकृष्ण को ही सब यज्ञोंका–उपासनादिका भोक्ता और प्रभु मानना उचित है। जो ऐसा नहीं जानते, वे सम्भ्रान्त हैं, अतएव 'च्यवन्ति' पुनः पुनः जन्म–मरणमें पड़े रहते हैं। यही कारण है कि–भविष्यपुराण के प्रतिपर्व सर्गमें लिखा गया है—

सर्वपूज्यावतारश्च न भवेद्वै कदाचन ।
अस्मिश्चतुर्युगे देवाः पुराणपुरुषस्य हि ।।
त्रयोऽवताराः कथितास्तथानान्यच्चतुर्युगे ।
त्रेतायाः प्रथमे पादे रामो दाशरथिर्भुवि ।।
द्वापरस्य तथा कृष्णः शेषेण सह वै भुवि ।
कलेःशेषे तथाहं वै द्वात्रिंशाब्द सहस्रके ।!

स्वयं भगवान कहते हैं 'हे देवताओं ! इस चतुर्युगी में सब अवतार पूजनीय नहीं हैं, किन्तु तीन ही पूज्य माने गये हैं। त्रेतामें श्री राम, द्वापरमें श्रीकृष्णजी और कलियुगके बत्तीश सहस्र वर्ष रहनेपर कल्किरूपमें प्रगट होनेवाला मैं। परन्तु यह नियम इसी चतुर्युगीके लिये है अन्य चतुर्युगियोंके लिये नहीं।' इस प्रकारसे देखा जावे तो तीन ही अवतारोंको पूज्य माना गया है। जिसमें से कलियुगके चार लाख वर्ष तक श्रीकृष्ण ही [1] रह जाते हैं। क्योंकि रामचन्द्रजी कलावतार होनेके कारण पूर्णब्रह्मके समक्ष बाधित हो गये और कल्किका तो अभी अधिकार ही नहीं।

परन्तु न्यायविषयको विशेष महत्त्व नहीं दिया। कारण, 'बुद्धयारोहायकेवलम्' केवल बुद्धिके बढ़ानेको प्रमाण प्रमेय आदि षोड़श पदार्थों को उपयोगी माना है, ब्रह्म विषयमें नहीं। अतएव केवल शब्दप्रमाण की मुख्यताको लेकर विचार किया है। पुराणोंमें तो न्याय सिद्धांत को तामस कोटिका भी लिखा है। यथा—

सात्विकं तत्र वेदान्तं मीमांसा राजसं मतम् ।
तामसं न्यायशास्त्रं च हेतुवादाभियन्त्रितम् ।। (देवीभा० १–१)

वेदान्त दर्शनको सात्त्विक, मीमांसाको राजस और न्यायको तामस, कहनेका तात्पर्य यह है कि तर्कसे सात्त्विक भावना नष्ट होकर केवल हेतुवाद ही सूझने लगता है। जो भावुकताका विघातक माना गया है, अतएव इसे तामस लिखा है।

[1] यही कारण हैं कि पुराणोंमें सर्वत्र श्रीकृष्णकी अनन्यभक्तिको ही महत्त्व दिया है। यथा—

Shri Prannath Ji Pustkalay

तब तो श्रीकृष्ण का उक्त वचन यथार्थ ही है कि "मैं ही सबका भोक्ता और प्रभु हूं" जो इस प्रकार तत्त्व को नहीं समझते, वे जन्म मरण में पड़ा करते हैं। विस्तार भय से अधिक नहीं लिखा। अन्यथा इस विषय में बहुत कुछ लिखने योग्य अभी शेष है।

प्रणामका आदर्श

जब इस ग्रन्थ का नाम विराटपट दर्शन है तो जितने भी 'विराट–महान, पट अर्थात् आवरण हैं उन सबका दर्शन कराना तो इसका उद्देश्य ही है। इसलिये वर्तमान प्रणाम पद्धति पर भी कुछ प्रकाश डालना परमावश्यक है। वर्तमान युग का सभ्यवर्ग अन्य तत्त्वों को तो भूलता हो गया साथ ही शिष्टाचार को भी भूल बैठा। हम इतिहास, पुराण अथवा आर्ष ग्रन्थों पर जहां दृष्टि डालते हैं हमें हमारी प्राचीन संस्कृति के साथ साथ परस्पर प्रणाम करने का नियम एकसा मिलता है। इतना ही नहीं उससे हमें विविध प्रकार का लाभ भी बताया गया है। परन्तु वर्तमान युग के मनस्वी विचारों में उसकी अवहेलना की जा रही है। कोई 'राम राम' तो कोई 'जय श्रीकृष्ण' कहने लगा। किसी ने नमस्ते को पकड़ा तो कोई बन्दगी का बन्दा बन गया। कोई बन्दे मातरम् को उचित कहने लगा तो किसी ने 'जय हिन्द' को ठोक बैठा दिया। परन्तु यह विचार नहीं करते इन बहुरूपी शिष्टाचारों से लाभ होगा अथवा हानि ?

जिस देश का शिष्टाचार एक न होगा, जिस देश के शिष्टचारों की प्रथा प्रशस्त न होगी, वह परस्पर कलह, क्लेश और मतभेदों में पड़कर उत्थान की ओर शीघ्र न बढ़ सकेगा। भारत में अमुक मनुष्यों का परस्पर प्रेम अथवा मिलाप इसलिये भी नहीं हो पाता कि उनका शिष्टाचार पृथक्–पृथक् है। यही कारण है कि उसके लाभ से भारत का जनसमाज वंचित हो रहा है। मनुजी ने लिखा है—

—"दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरा मोक्षं व्रजन्ति वै"
"कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्"
"कलौ केशवकीर्तनात्"
"भृगुवर नरमात्रं तारेयत्कृष्णनाम"
"कहां तक कहौं मैं नाम बड़ाई, राम न सकहिं नाम गुण गाई"
"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"
"नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया–समावृतः।"

परन्तु योगमाया से समावृत्त श्रीकृष्ण के स्वरूप का महत्त्व सब मनुष्य नहीं समझ पाते।

Shri Prannath Ji Pustkalay

"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥
यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ (मनु० २)

जो मनुष्य अपने से वृद्ध पुरुषों के लिये अभिवादन–प्रणामसे शिष्टाचार करते हैं—प्रणाम पूर्वक स्वागत करते हैं, उनको चार पदार्थ प्राप्त होते हैं। आयु, विद्या, यश और बल, ये चारों ही उन्हें प्रणामके बदलेमें मिलते हैं। परन्तु जो पुरुष इस अभिवादन के बदले में प्रत्यभिवादन नहीं जानते, प्रणाम के बदले में प्रति प्रणाम बोलना नहीं जानते, वे शूद्र तुल्य होनेसे प्रणाम करने योग्य नहीं।

नमो बृहद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशितेभ्यः । (ऋग्वेद)
'नमः सखीभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकन्निषेभ्यः ।' (सामवेद)

वेद–काल ही सबसे प्राचीन माना जाता है। जिन वेदोंको हम अनादि और नित्य मानते हैं, उनमें भी इस बात पर जोर दिया गया है कि–छोटे बड़ेका भेद छोड़कर परस्पर प्रणाम करना चाहिये। स्त्रीवर्ग–सखी सहेलियोंको भी परस्पर प्रणाम करो। पूर्वजोंको प्रणाम करो। समान पुरुषोंको किंवा सहपाठियों को भी परस्पर प्रणाम करना चाहिये। इसलिये शास्त्रमें विधान है कि—

"कुर्वते वन्दनं यस्तु न कुर्यात् प्रतिवन्दनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथाशूद्रस्तथैव सः ॥"
"ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ।"
"दृष्ट्वैवमादिगोपीनां कृष्णाऽऽवेशात्मविक्लवम् ।"
उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ । (भाग०)

प्रणाम करते हुए पुरुषको जो प्रति प्रणाम नहीं करता, वह शूद्रके तुल्य उसे प्रणाम मत करो। प्रणामके बदले में प्रणाम न बोलनेसे—'आयु, विद्या, यश और बल, इन चारोंकी प्राप्ति नहीं हो पाती, इतना ही नहीं, प्रत्युत अपराध भी लगता है। शास्त्र उसे शूद्रकोटि में डाल देता है। इसलिये छोटे बड़ेका विचार त्यागकर परस्परमें प्रणामकी प्रथाको पुनः चालू करना मानवधर्म है। प्राचीन कालमें ऐसा होता था, इसके उदाहरण पुराणोंमें तथा इतिहासोंमें प्रायः आज भी मिलते हैं। मथुरा में श्रीकृष्ण और बलरामको मार्गमें आते हुए देखकर अक्रूरजी ने प्रसन्न होकर प्रणाम किया। उसके बदलेमें बलराम, कृष्ण दोनोंने अक्रूरजीको प्रणाम किया है। गोपिकाएँ स्त्री थीं। वय और जाति दोनोंमें उद्धवजी से छोटी भी थीं, तथापि उद्धवजी ने उन्हें पुनः पुनः प्रणाम किया है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

मूर्ध्ना प्रणम्य ते पादं प्रार्थयामि मुहुर्मुहुः ।
मा शोषय वपू रम्यं तपसा दुर्धरेण वै ॥

माहेश्वर तन्त्र में लक्ष्मीजी के तप करने की एक कथा आती है। भगवान उन्हें मनाने जाते हैं। पुनः पुनः चरणों को प्रणाम कर प्रार्थना करते हैं कि—हे प्रिये ! कठिन तप से शरीर को मत सुखाओ। स्वयं भगवान अपनी अर्धाङ्गिनी को भी प्रणाम ही करते हैं। अतएव भागवत में आता है—

'न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठांघ्रयभिवादनम् ।'

प्रयोजन के लिये अथवा शिष्टाचार से छोटे को प्रणाम के बदले में प्रणाम करना पड़े तो वह निन्दित नहीं होता। इस प्रकार सर्वत्र शिष्टाचार का गौरव देखने में आता है। अतएव परस्पर प्रणाम करने की प्रथा प्रशस्त और उचित है।

प्राचीन भारत में परस्पर प्रणाम करने की प्रथा प्रचलित थी। आज भी श्रेष्ठ पुरुषों में प्रचलित है। इसके महत्त्व को भूल जाने के कारण अन्य-अन्य शब्दों की प्रथा पृथक्-पृथक् रूप में चालू हो गई है, परन्तु उनसे भी यही सिद्ध होता है कि—प्रणाम के बदले में प्रणाम ही बोला जाता था। क्रिश्चियनों में गुडमोर्निङ्ग अथवा गुड इवनिङ्ग के बदले में आज भी गुडमोर्निङ्ग या गुड इवनिंग ही बोला जाता है।

यवनों में भी सलाम के बदले में सलाम ही बोलने की प्रथा है। आर्यसमाज नमस्ते के जवाब में नमस्ते ही बोलता है। कबीरपन्थी बन्दगी साहब के बदले में बन्दगी साहब बोलते हैं। साधु समाज दण्डवत् अथवा सीताराम के बदले में दण्डवत् अथवा सीताराम बोलता है। रामराम के बदले रामराम जय श्रीकृष्ण के बदले जय श्रीकृष्ण एवं संन्यासीवर्ग नमो नारायण के बदले में नमो नारायण कहते मिलेंगे। इन सबका कारण क्या है, तो मानना पड़ेगा कि—प्राचीन भारत में प्रणाम के बदले प्रणाम बोला जाता था। इसके अतिरिक्त जितनी भी वर्तमान प्रथा हैं, वे सब कल्पित, नवीन और शास्त्र विरुद्ध हैं। नवीन प्रथा क्यों प्रचलित हो गई ? इसका समाधान वन्देमातरं और 'जय हिन्द' से सहज में ही हो सकता है। जिस प्रकार ये दोनों प्रथा देखते-देखते प्रचलित हो चुकी हैं। इसी प्रकार अन्य प्रथा भी सत्ता और संकीर्णता के कारण प्रचलित होती गई हैं।

कुछ सज्जन कहने लगते हैं, यों नहीं तो इसी निमित्त मुख से भगवान राम या कृष्ण का नाम तो निकल जाता है। मान सकते हैं, कि इस निमित्त से प्रभु का नाम मुख से निकल जाता है। परन्तु यह प्रथा 'चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते' की घातक है। आयु, विद्या, यश और बल हमें वृद्धों से आशीर्वाद के स्वरूप में

Shri Prannath Ji Pustkalay

प्राप्त होते थे, वह भी प्राप्त नहीं हो पाते और परस्पर मतभेद भी वृद्धि पाया करता है, जो समाज को घातक और अनिष्टकारक है। प्राचीन भारत में संन्यासी तक प्रणाम ही बोलते थे, 'नमो नारायण' नहीं। यथा—

"इदानीं त्वां रघुश्रेष्ठ प्रणमामि मुहुर्मुहुः।" (मुक्तिको०)

"प्रणमेद् दण्डवद्भूमावश्वचाण्डालगोखरम्।" (याज्ञवल्क्य उप०)

"यो भवेत्पूर्वसंन्यासी तुल्यो वै धर्मतो यदि।
तस्मै प्रणामः कर्त्तव्यो नेतराय कदाचन॥" (याज्ञवल्क्य उप०)

इस प्रकार संन्यासी भी प्रणाम करते थे और संन्यासी के प्रति भी प्रणाम ही किया जाता था। जो कदाच अज्ञात संन्यासी है तो उसके लिये प्रणाम करने का निषेध भी है। इस परसे स्पष्ट विदित होता है कि उपनिषद् काल में भारत के प्रत्येक प्रान्त में प्रणाम की प्रथा चालू थी।

"प्रणम्य परमात्मानं बालधीवृद्धिसिद्धये।"

सारस्वत व्याकरण के प्रणेता अनुभूति स्वरूपाचार्य ने मङ्गलाचरण में प्रणाम लिखा है। इससे भी विदित होता है कि सूत्रकाल में प्रणाम का ही व्यवहार था। सूत्र काल को पांच हजार वर्ष पुराना तो प्रायः सब मानते हैं।

अथाजगाम भगवान्देवर्षिर्ब्रह्मलोकतः।
उत्थाय तं प्रणम्यसौ वसुदेवोऽभ्यपूजयत्॥ (देवीभा० म.अ. २)

ब्रह्मलोक से आये हुए नारदजी को वसुदेवजी ने उठकर प्रणाम कर पूजन किया। इस परसे भी विदित होता है कि—पुराण काल में भी प्रणाम की प्रथा थी। सूरदासजी तथा तुलसीदासजी के समय तक प्रणाम को महत्त्व प्राप्त रहा है। यों तो शिष्ट वर्ग में आज भी वर्तमान है। परन्तु मत मतान्तरों में उसकी अवहेलना होने लगी है। तुलसीदासजी राम के परम भक्त थे, परन्तु परस्पर में सीता राम से शिष्टाचार नहीं करते थे। इसका पता रामायण से स्पष्ट लगता है।

"सियाराममय सब जग जानी, करहुं प्रणाम जोरि युगपानी।"
"पितु समेत लै लै निजनामा, लगे करन सब दण्ड प्रणामा॥"

रामचरित मानस के पात्रों का जहां कहीं भी परस्पर मिलाप कराते हैं, प्रणाम के साथ शिष्टाचार दृष्टिगोचर होता है। परन्तु आज के युग में तो एक पवन सा फैल गया है, जिसे देखिये, वही डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पका रहा है। जितने सम्प्रदाय हैं सबका शिष्टाचार भिन्न-भिन्न हो रहा है, जो समाज के लिये घातक है।

Shri Prannath Ji Pustkalay

कुछ विद्वान वर्ग प्रणाम का प्रयोग करते भी हैं तो अधूरा, प्रणाम के बदले में केवल 'आयुष्मान् भव' कहकर रह जाते हैं। उनसे कहा जाता है तो उत्तर देते हैं—प्रणाम के उत्तर में आशीर्वाद तो देना ही चाहिये। झट 'भट्टोजी दीक्षित' की कौमुदी का प्रयोग उपस्थित कर देते हैं। वहां पर 'आयुष्मान् भव देवदत्त' प्रयोग आता है। परन्तु यह विचार नहीं करते कि—वहां पर 'आयुष्मान् भव देवदत्त' में प्लुत दिखाने के लिये ऐसा करना पड़ा है। वह तो "प्रत्यभिवादेऽशूद्रे" इस सूत्र का रहस्य बताया है कि—यदि द्विजवर्ग प्रणाम करे तो उसके नाम के अन्तिम अक्षरको प्लुत बोलना चाहिये। परन्तु ऐसा नियम नहीं किया कि प्रणाम के बदले में प्रणाम न बोलना चाहिये। यदि हम प्रणाम के बदले में आयुष्मान् कह कर रह जाते हैं तो फिर मनुजी के कथनानुसार "चत्वारि तस्य वर्धन्ते" निष्फल जाता है। क्योंकि केवल आयुष्मान् बोलने से 'विद्या धन और यश' ये तीनों छूट जाते हैं। इसलिये प्रणाम करने वाले घाटे में रह जाते हैं। शास्त्र के कथन अनुसार उन्हें चारों (आयु, विद्या, यश और बल) मिलने चाहिये, परन्तु प्रचलित प्रथा के अनुसार उन्हे एक ही फल मिलता है। यदि प्रणाम के बदले में प्रति प्रणाम ही बोला जावे तो उसे चार फ़ल मिलते हैं, ऐसा मनुजीका विधान है। यदि ऐसा न होता तो–

"यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥"

मनुजी ऐसा क्यों लिखते कि प्रणाम के बदले में जो प्रणाम करना नहीं जानता उसे प्रणाम मत करो। क्योंकि वह शूद्र तुल्य है। शूद्र को प्रणाम करने से युक्त चारों पदार्थ प्राप्त नहीं होते। कारण, उसमें आत्मबल नहीं होता। जिसमें आत्मबल है, वही उक्त चारों फल दे सकता है। इसलिये जो चारों फल न दे सके उसे प्रणाम मत करो। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि प्रणाम के बदले में प्रणाम बोलने से अवश्यमेव चार पदार्थ मिलते होंगे तभी तो मनुजीने लिखा है। यदि विश्वास होता तो सभी बोलते, परन्तु जिन्हें विश्वास नहीं वे किस प्रकार बोलने लगे। इस कारण, समाज के लिये विना श्रम जिन चार पदार्थों की प्राप्ति होती थी आज नहीं हो पाती। तब तो यही कहना चाहिये कि ये सब प्रणाम के प्रति प्रणाम नहीं बोलना जानते, अतएव प्रणाम करने योग्य नहीं।

शास्त्रों पर सूक्ष्म दृष्टिपात करें तो विदित होगा कि प्रणाम के बदले में प्रणाम ही बोलना चाहिये। विश्व के जितने भी वर्ग हैं, वे सब भारतीय शास्त्रों से अनुकरण करना सीखे हैं। और उनके यहां जो बोला जाता है उसके बदले में भी वही बोला जाता है। जो हमारा अनुकरण मात्र है। परन्तु हमने अपनी पद्धति के गौरव को भुला दिया, अन्य वर्गों ने उसे अपना लिया।

Shri Prannath Ji Pustkalay

वास्तविक रहस्य यह है कि–प्रणाम के बदले में प्रणाम बोलने से स्वतः आशीर्वाद हो जाता है और उसके परिणाम स्वरूप प्रथम प्रणाम करने वालेको 'आयु विद्या, यश, और बल, ये चारों मिल जाते हैं। अब इससे विशेष आशीर्वाद क्या हो सकता है ? यही कारण है कि–श्रीमन्निजानन्द आचार्य चरण ने प्रणाम के विनिमय (बदले) में प्रणाम ही बोलने की प्रथा चालू की है, जो सब प्रकार से प्रशस्त और अनुकरणीय है। यों तो यह प्रथा नवीन प्रचलित नहीं की, किन्तु प्राचीन प्रथाको ही प्रशस्त बताया है। तथापि विश्वके अन्य वर्ग उसे भूलते जा रहे हैं, अतएव उन्हें नवीन ही प्रतीत होती है। परन्तु यह समझने योग्य है कि जब शास्त्र हमको चार वस्तु केवल प्रणाम बोल देनेसे मिलने के रहस्य को समझा रहा है फिर क्या कारण है कि हमारी समझ में नहीं आता। अतएव विद्वद्वर्ग से निवेदन है कि—अपने प्राचीन गौरवको ग्रहण कर अनायास प्राप्त होनेवाले चारों पदार्थों को व्यर्थमें खोते रहना विद्वान वर्गको शोभा नहीं देता। विराट पट दर्शनमें अभी बहुत कुछ मननीय लिखना शेष रह गया है, परंतु समयाभाव और अस्वस्थताके कारण उन सब विषयों को निबद्ध नहीं कर सके।

Double Tap to Edit

यथाधरा–सागर–पर्वतानां विलोक्य रूपं किल मानचित्रे।
उद्यन्ति धीरा हृदये विशालं तद्वद्विलोक्यो ननु तत्त्वसारः॥
तारतम्यस्य दिव्यस्य सोपानस्य च ब्रह्मणः।
दर्शनं विराट्पट्टस्य निजानन्द–फल–प्रदम्॥

इति श्रीसद्धर्मसिद्धान्तवागीश पं. श्री कृष्णदत्तशर्मशास्त्रिविरचिते विराटपटदर्शने, परिशिष्टभागे समाधानपर्वनिरूपणं नाम प्रकरणं परिपूर्णम्॥

इतिश्री समाप्तम्

श्री प्राणनाथजी पुस्तकालय

महामति प्रिंटिंग प्रेस, भिवानी द्वारा मुद्रित।

Shri Prannath Ji Pustkalay